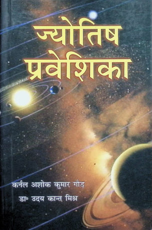

ज्योतिष प्रवेशिका

कर्नल अशोक कुमार गौड़
डा॰ उदय कान्त मिश्र

ज्योतिष प्रवेशिका

कर्नल अशोक कुमार गौड़
डा. उदय कान्त मिश्र

ALPHA

एल्फा पब्लिकेशन
2640, रोशनपुरा, नई सड़क दिल्ली–110006

प्रकाशक
ए. एल. जैन
एल्फा पब्लिकेशन
2640, रोशनपुरा,
नई सड़क दिल्ली–110006
फोन : 3268053, 3275468

©सर्वाधिकार लेखकाधीन

ISBN : 81-7948-047-X

संस्करण : 2017

मूल्य : 300 रुपए

पुस्तक मिलने का स्थान
पुस्तक भारती
भारतीय विद्या भवन
कस्तूरबा गांधी मार्ग,
नई दिल्ली–110 001
फोन : 3381369

समर्पण

सन् 1944 की दीपावली। शिमले की कड़कड़ाती ठंड। हज़ारों दीपों द्वारा आवाहित, आतिशबाज़ी और पटाखों की अगवानी में वह हमारे जीवन में प्रविष्ट हुआ। प्रदीप के लिये ही तुलसीदासजी ने लिखा–

गहि गुन पय, तजि अवगुन बारी,
निज जस जगत कीन्हि उजियारी। –

आज दिल्ली में जब आप लाजपत नगर, रिंग रोड़ से ओखला इन्डस्ट्रियल एरिया जाते हैं तो जो सड़क आप लेते हैं उसका नाम है "कैप्टेन गौड़ मार्ग" प्रदीप की 14 दिसम्बर, 1971 को भारत पाक युद्ध में दी गई शहादत की यह याद दिलाता है। आप जब इस सड़क से गुज़रें तो इस महावीर की याद कर हमारे गर्व में भागी बनें, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

"ईस अधीन जीव गति जानी"

मैं यह पुस्तक अपने अनुज

"कैप्टन प्रदीप कुमार गौड़"

महावीर चक्र की भीनी–भीनी स्मृति को समर्पित करता हूँ।

कर्नल अशोक कुमार गौड़

आमुख

ज्योतिष, जिसको अपरा विद्या की संज्ञा दी गई है, असीम कष्ट–साध्य और तपस्या–साध्य विद्या है। ज्योतिष का ज्ञान आज के विज्ञान और विज्ञापन के युग में संसार में सर्वव्यापी हो गया है। फिर भी सफल भविष्यवक्ता बहुत कम इसलिये होते हैं कि उनमें तकनीकी प्रवीणता होने पर भी जितेन्द्रियता नहीं होती है। जो भी ज्योतिष जगत में प्रवेश कर रहे हैं, उनके लिये ज्योतिष का उद्भव, विकास और प्रसार जानना आवश्यक है क्योंकि वेद से इसकी उत्पत्ति हुई, पुराणों में विकास हुआ और 18 ऋषियों ने इसको दिशा दी। ज्योतिष में ही कर्म का रहस्य दिखता है और दर्शाया जा सकता है। इस विषय को समझने के लिये कर्नल गौड़ तथा डा. मिश्र द्वारा विरचित प्रस्तुत पुस्तक अत्यन्त उपयोगी, सार्थक, विद्वत्तापूर्ण, विश्लेषण और मौलिक चिन्तन से भरपूर है।

के.एन. राव

पुस्तक के बारे में

यह पुस्तक आपको बताएगी–

- वेद, पुराण, उपनिषद्, ऋषिवाणी और ज्योतिष का संबंध।
- सुख ही सुख लाने के लिये ज्योतिष और जीवन में समन्चय के सूत्र।
- अच्छे ज्योतिषी के गुण
- ज्योतिष की व्यापकता और उपयोगिता।
- कर्म और कर्मफल की सरल, सटीक व्याख्या।
- प्रारब्ध और पुरुषार्थ के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध।
- ज्योतिष शास्त्र का जीवन के अन्य अंगों, यथा विज्ञान, मनोविज्ञान, आनुवांशिकी आदि से सम्बन्ध।
- पंचांग से विस्तृत परिचय।
- विवाह सम्बन्धी कुण्डली मेलापक के कतिपय अभिनव सूत्र तथा मंगल दोष
- सन्तान सम्बन्धी सुख की चर्चा
- संस्कारों की सरल व्याख्या
- कुण्डली बनाने की आधुनिक एवं पारम्परिक पद्धति
- ज्योतिष तथा मौसम विज्ञान
- किसी भी तारीख कें वार को जानने की सुगम विधि। बिहार के प्रख्यात ज्योतिषी पं. भैरव झा का अभिनव प्रयोग।
- समस्त भारत के लिए उपयोगी पूर्णतया शुद्ध तथा सर्वकालिक दैनिक लग्न सारणी।
- व्रत, पर्व और उत्सव के बारे में।

विषय सूची

अध्याय	विवरण	पृष्ठ
	आमुख	v
	पुस्तक के बारे में	vi
	दो शब्द	ix
1.	महर्षि पराशर, वेद व्यास, मैत्रेय आदि की कथाऐं	1
2.	ज्योतिष शास्त्र है क्या ?	13
3.	ज्योतिष शास्त्र : हमारी धरोहर	20
4.	समन्वयकारी ज्योतिष शास्त्र	27
5.	ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान का सच्चा अधिकारी	34
6.	ज्योतिष शास्त्र का आधार : नक्षत्र, ग्रह और राशियाँ	41
7.	दशावतार तथा नवग्रहों की पौराणिक कथाएँ	46
8.	ज्योतिष और मनोविज्ञान	69
9.	ज्योतिष शास्त्र और विज्ञान	82
10.	ज्योतिष शास्त्र और आनुवंशिकी (जेनेटिक्स)	85
11.	ज्योतिष और कर्म सिद्धान्त	87
12.	ज्योतिषीय इतिहास	106
13.	पारम्परिक पद्धति से कुण्डली बनाना	119
14.	आधुनिक पद्धति से कुण्डली बनाना	135
15.	भारतीय पञ्चांग पद्धति	154
16.	पंचांग तथा मुहूर्त्त प्रकरण	167
17.	तिथि–वार आदि की गणना की विशेष पद्धति	183
18.	पंचांग तथा षोड़श संस्कार	186

19. पंचांग तथा विवाह एवं संतान प्रकरण 201
20. पंचांग तथा मंगल दोष 227
21. ज्योतिष और वर्षा विज्ञान 254
22. दैनिक लग्न सारणी 282

संलग्नक :

1. व्रत, पर्व और उत्सव 285
2. मुगल साम्राज्य और ज्योतिष 329
3. नई दिल्ली की मासिक दैनिक लग्न–प्रवेश सारणी 346
4. देश के प्रमुख नगरों की लग्न–प्रवेश परिवर्तन सारणी 370

दो शब्द

विज्ञ पाठकों के सन्मुख पुस्तक का द्वितीय संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। पूरी पुस्तक प्रायः आद्योपान्त संशोधित एवं परिमार्जित रूप में फिर से लिखी गयी है।

यह पुस्तक अपने वर्त्तमान स्वरूप में श्री कृष्णन राजू नायर (ज्योतिषाचार्य, भारतीय विद्या भवन) के अथक प्रयत्नों तथा जिज्ञासाओं के कारण संभव हुई है। श्री राजू ज्योतिष शास्त्र के गम्भीर शोधकर्त्ता तो हैं ही, कम्पयूटर पर उनकी अद्भुत दक्षता तथा मातृभाषा न होने पर भी उनका हिन्दी का ज्ञान स्पृहणीय तथा अनुकरणीय है। श्री राजू ने वर्त्तमान संशोधित संस्करण के टंकण का दुष्कर कार्य स्वेच्छा से किया है। इस क्रम में उन्होने जिज्ञासु विद्यार्थी की अतुलनीय भूमिका निबाहते हुए भारतीय संस्कृति तथा ज्योतिष शास्त्र के अन्योन्याश्रय सम्बन्धों के विषय में अनेक शंकाएँ सामने रखीं। मुख्यतः ये प्रश्न दैनिक जीवन में पंचांग की भूमिका, षोडश संस्कार, मंगल दोष का औचित्य, विवाह, व्रत, पर्व और उत्सव, वर्षा विज्ञान आदि विषयों से सम्बन्धित थे। हमने उनके प्रश्नों के यथासंभव उत्तर दिये जिन्हें उन्होंने इस पुस्तक में सम्मिलित करने का विनम्र किन्तु दृढ़ आग्रह किया। यह मानते हुए कि उनकी शंकाएँ ज्योतिष शास्त्र के सामान्य ही नहीं अपितु कुशाग्र विद्यार्थियों की भी होंगी, हमने इस पुस्तक में उन सभी विषयों का संक्षेप में समावेश किया है। इस क्रम में पुस्तक का कलेवर अपेक्षाकृत वृहद हो गया है।

हमें यह स्वीकारते भी तनिक संकोच नहीं होता कि पिछले संस्करण में कुछ भाषागत अशुद्धियॉं रह गयी थीं किन्तु सरस्वती स्वरूपा सुश्री विभा बिष्ट ने अत्यन्त सावधानीपूर्वक सारी अशुद्धियों से मुक्ति दिला कर हमें कृतार्थ किया है। सुश्री विभा सम्प्रति सी.डॉट की राजभाषा अधिकारी हैं तथा दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के समाचार प्रभाग से सक्रिय रूप से जुड़ी हैं।

हम इस पुस्तक में मौलिक चिन्तन का दम्भ नहीं भरते किन्तु आर्ष सूत्रों को समसामायिक परिपेक्ष्य में देखने और दिखाने का हमारा यह निष्कपट प्रयास श्री राजू तथा उन जैसे शोधार्थियों के लिये किञ्चित भी उपयोगी सिद्ध हो तो हम विघ्नेश्वर श्री गणेश की कृपा ही समझेंगे।

''सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।''
(गीता अध्याय 8 श्लोक 17)

अर्थात्, 'जो हज़ार चतुर्युगों की ब्रह्मा की रात्रि और हज़ार चतुर्युगों के ब्रह्माजी के दिन को साक्षात् जानते हैं, वे पुरुष समय के तत्त्व को सही जानते हैं। इस श्लोक में दिन और रात क्रमशः विद्या और अविद्या के प्रतीक हैं। विद्या से तात्पर्य है यथार्थ–ईश्वरीय प्रकाश और अविद्या का अर्थ है माया का द्वन्द्व। जो इस तत्त्व को समझ चुके हैं, वे जानते हैं कि काल का प्रभाव कहाँ तक है। काल–समय, दिन और रात–के कारक हैं सूर्य। सूर्य के बारे में प्रश्नोपनिषद् का यह श्लोक अत्यन्त सुन्दर है–**''विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं, परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।।** (अध्याय 1, श्लोक 8)

इस सूर्य तत्त्व को जानने वालों का कहना है कि किरण जाल से मण्डित और प्रकाशमय तथा तपता हुआ सूर्य विश्व के समस्त रूपों का केन्द्र है। सभी रूप सूर्य से उत्पन्न और प्रकाशित होते हैं तथा सूर्य सर्वज्ञ और सर्वाधार होने के कारण जीवन का मूल है। सूर्य से ही उत्पन्न तथा उसके चारों ओर चक्कर लगाने वाले नौ ग्रहों की शक्ति के बारे में मानसागरी में कहा गया है,

**''ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च।
ग्रहैः व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।।''**

अर्थात्, 'ग्रह ही राज्य (शक्ति/प्रतिष्ठा/वैभव) देने और हरने वाले हैं। ग्रह तीन लोकों के चर तथा अचर सभी में व्याप्त हैं।'

प्रायः इन्हीं विचारों की पुष्टि देवगुरु बृहस्पति इस श्लोक में करते हैं–

**''ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना नरावशः कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहाः कर्म फल प्रदाः।
सृष्टिरक्षणसंहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः।।''**

अर्थात्, 'यह समस्त संसार ग्रहों के अधीन है और मानव तथा काल को भी ग्रहों के अधीन जानना चाहिये। ग्रह ही कर्मफल भी देते हैं। इस प्रकार सृष्टि, संरक्षण और संहार सभी ग्रहों के अनुगामी हैं।'

अर्थात् इस संसार में कोई भी जीवन हो जड़ या चैतन्य वस्तु हो, सभी सूर्य के अंश, ग्रहों से प्रभावित होते रहते हैं। ग्रह जिस विशाल परदे के आगे विचरण करते हैं, उसे भचक्र के नाम से जाना जाता है। इस भचक्र पर पिरोये हुए सुन्दर सत्ताईस नक्षत्र तथा बारह राशियाँ भी इन ग्रहों के माध्यम से जीवन

को प्रभावित करती हैं। इन सब अर्थात् नव ग्रह, सत्ताईस नक्षत्र तथा बारह राशियों का सम्यक् अध्ययन है ज्योतिष शास्त्र।"

ज्योतिष बारह दरवाजों की एक भव्य और नयनाभिराम बारादरी जैसी है। इसमें नौ कक्ष हैं जिसमें ग्रह रहते हैं। इस आकर्षक बारादरी के हर कक्ष में तीन–तीन खिड़कियाँ हैं। कक्षों की इन खिड़कियों में एक–एक नक्षत्र वास करते हैं। इसी बारादरी से समस्त जगत का संचालन होता है। सब चर–अचर जीवों के कर्मों का लेखा–जोखा करके कर्मफल यहीं पर निर्धारित किए जाते हैं। इस कर्मफल को ग्रहों के द्वारा जीवों तक पहुँचाया जाता है।

बारादरी से पूरा का पूरा ज्योतिष शास्त्र निरूपित होता है। इस बारादरी के बारे में, ज्योतिष शास्त्र के बारे में, बहुत सी जिज्ञासाएँ हरेक के मन में होती हैं। इन जिज्ञासाओं का निरूपण करके जिज्ञासु पाठक को इस ज्योतिषीय भवन के प्रवेश द्वार तक लाने वाली पुस्तक है यह ज्योतिष प्रवेशिका।

पातंजलि योग दर्शन में जानने की इच्छा रखने वाले तीन प्रकार के कहे गये हैं। सबसे पहले कौतूहलवश लोग कुछ जानना चाहते हैं। यह जानकारी नितान्त अनावश्यक होती है। फिर होते हैं जिज्ञासु, जो जानना तो चाहते हैं, पर उस ज्ञान का उपयोग नहीं कर पाते। तीसरी श्रेणी में मुमुक्षु आते हैं, जो जीवन् के यथार्थ को जानकर सही प्रकार से जीना चाहते हैं। वे जानते हैं कि जीवन में क्या छोड़ना है और क्या पाना है। मुमुक्षा का अर्थ ही है त्याग या छोड़ना। यह पुस्तक कम से कम जिज्ञासु तथा मुमुक्षु जनों के लिए पहली सीढ़ी का काम करेगी।

इस प्रवेशिका में ज्योतिष का इतिहास तो है ही, पंचांग के बारे में जो एक झिझक सी आम लोगों के मन में रहती है उसे भी सरल तरीके से दूर करने का प्रयास किया गया है। लग्न–सारिणी इसकी उपयोगिता अवश्य ही बढाएगी।

इस पुस्तक को हम सुधी पाठकों की सेवा में सहर्ष और सप्रेम प्रस्तुत कर रहे हैं। पाठकों से अनुरोध है कि अपनी प्रतिक्रिया और विचारों से अवगत कराते रहें ताकि भविष्य में प्रवेशिका का परिमार्जन कर इसे और उपयोगी बनाया जा सके।

गुरु पूर्णिमा, संवत 2064 **अशोक कुमार गौड़**
29, जुलाई 2007 **डा. उदय कान्त मिश्र**

अध्याय 1

महर्षि पराशर, वेद व्यास, मैत्रेय और विश्वामित्र की कथाएँ

हमें ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान देने वाली महान विभूति का नाम है ऋषि पराशर। पराशर ऋषि स्वयं कहते हैं,

"यच्छास्त्रं ब्रह्मणा प्रोक्तं नारदाय महात्मने।
तदेव शौनकादिभ्यो नारदः प्राह सादरम।।
ततो मया यथा ज्ञातं तुभ्यमुक्तं तथा द्विज।"

अर्थात्, 'हे ब्राह्मण, यह विद्या ब्रह्माजी से नारद जी को मिली। नारदजी ने यह ज्ञान शौनक आदि ऋषियों को दिया। उन ऋषियों से यह विद्या मुझ (पराशर ऋषि) को जैसी मिली वैसी ही मैंने तुम्हें (मैत्रेय ऋषि) बतायी है।"

इस श्लोक के माध्यम से हम जानते हैं कि कैसे ब्रह्मा से यह ज्ञान विभिन्न स्रोतों से गुज़रता हुआ महर्षि पराशर तक आया और महर्षि पराशर ने अपने शिष्य मैत्रेय के प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से इस धरा पर ज्योतिष गंगा को अवतरित किया। आइये, इन दो महान विभूतियों को थोड़ा और निकट से जान लें।

महर्षि पराशर—ऋषियों में महान अर्थात् महर्षि वशिष्ठ की क्षमाशीलता का कहना ही क्या ! उनकी पत्नी का नाम था अरुन्धति। वशिष्ठ के सौ पुत्र भी थे, जिनमें अनुपम थे शक्ति। शक्ति की पत्नी अदृश्यन्ती भी अत्यन्त धर्मपरायणा और सुशीला तो थी ही, अपने श्वसुर और सास के लिए उनके मन में अगाध भक्ति और श्रद्धा थी।

महर्षि वशिष्ठ के समकालीन एक अन्य ऋषि थे विश्वामित्र। वशिष्ठ और विश्वामित्र दो विपरीत धाराओं के प्रतीक थे। एक ओर थे वशिष्ठ, जो तीनों लोक में अपनी सौम्यता और ब्रह्म ज्ञान के कारण ब्रह्मऋषि कहलाये और दूसरी ओर थे विश्वामित्र, जो अपने तप के बल पर हुए राजऋषि। क्षत्रियों में श्रेष्ठ राजा गाधि की सन्तान थे इसलिए विश्वामित्र को राजर्षि कहा जाता था। विश्वामित्र की कथा आगे कही गयी है।

पूर्व काल में अयोध्या के सूर्यवंशी शासक बड़े प्रतापी होते थे। उस काल के एक अत्यन्त बली राजा थे त्रय्यारुण – इनकी चर्चा त्रिबन्धन एवं अनरण्य के नामों से भी मिलती है। एक प्रचलित आख्यान के अनुसार इनके इकलौते पुत्र सत्यव्रत कामी और उच्छृंखल थे। एक बार सत्यव्रत ने एक ऐसी ब्राह्मण कन्या का जबरन अपहरण कर लिया जिसका विवाह होने ही वाला था। इस दुष्कर्म से आहत होकर समस्त ब्राह्मण कुलों ने राजा के आगे जाकर गुहार लगायी। राजा ने राजपुरोहित (ब्रह्मर्षि वशिष्ठ) की सलाह पर अपने इकलौते पुत्र को देश निकाला दे दिया। व्यथित सत्यव्रत ने घनघोर जंगल में जाकर ऐसी कठिन तपस्या की कि पूरे राज्य में अकाल पड़ गया। उन दिनों विश्वामित्र भी तपस्या कर रहे थे तथा उनके परिवार के पास खाने को कुछ भी नहीं था। सत्यव्रत को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने उस परिवार के प्राणों की रक्षा के लिए भोजन उपलब्ध कराना प्रारंभ किया। एक दिन जब आखेट में उसे कुछ नहीं मिला तो वह वशिष्ठ की गाय नन्दिनी को ही मार कर ले गया और बिना उनकी जानकारी के नन्दिनी का मांस विश्वामित्र के परिवार को खिला आया। ऋषि वशिष्ठ को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने सत्यव्रत को चाण्डाल होकर जीवन व्यतीत करने का शाप दिया। उन्होंने यह भी शाप दिया कि उसे एक त्रिशंकु जीवन पर्यन्त पीड़ा देता रहेगा। इस शाप के तीन कारण थे – पिता से दुर्व्यवहार, ब्राह्मण कन्या का अपहरण एवं उससे बलात्कार तथा गौ हत्या। चाण्डाल बन कर वन में भटक रहे पुत्र के बारे में जानकर उसके पिता ने त्रिशंकु को बुला कर राजगद्दी सौंप दी तथा स्वयं वन में चले गये। त्रिशंकु का विवाह हुआ और उन्हे हरिश्चन्द्र नाम के पुत्र हुए जिन्होंने सत्य की रक्षा के लिए अपनी पत्नी शैव्या तथा पुत्र रोहिताश्व सहित अत्यन्त दुष्कर कष्ट सहे। उन्हें हम आज भी सत्यवादी हरिश्चन्द्र के नाम से, आदर सहित, याद करते हैं। त्रिशंकु की सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा हुई जिसे लेकर वे अपने कुलगुरु ऋषि वशिष्ठ तथा उसके पुत्र शक्ति के पास गये।

एक अन्य कथा के अनुसार सत्यव्रत के पिता त्रय्यारुण ने एक छोटे से अपराध के कारण सत्यव्रत को देश निकाला दे दिया था। सम्राट त्रय्यारुण का

साम्राज्य सारी पृथ्वी तथा स्वर्ग को छोड़ कर, अन्य सभी लोकों पर था। इस कारण सत्यव्रत सशरीर स्वर्ग जाना चाहते थे। बच्चों जैसी अपनी इस इच्छा को लेकर वे वशिष्ठ और उनके पुत्र शक्ति के पास गये। वशिष्ठ द्वारा विनयपूर्वक यह कहते हुए मना करने पर कि मानव शरीर या स्थूल शरीर लेकर स्वर्ग जाना ईश्वर के नियमों के विरुद्ध है, विश्वामित्र ने यह गुरुतर भार अपने कन्धों पर लिया था। इस क्रम में दोनों कुलों में हुए मनमुटाव का परिणाम भी बड़ा दुखद हुआ। विश्वामित्र के शाप के कारण रुधिर नाम का राक्षस शक्ति ऋषि को खा गया साथ ही शक्ति के शेष निन्यानवें भाइयों का भी उसने विनाश कर दिया। अपने वंश के क्षय को सामने देखकर महर्षि वशिष्ठ और माता अरुन्धती ने प्राण त्यागने चाहे तब शक्ति ऋषि की पत्नी अदृश्यन्ती ने बताया कि महर्षि वशिष्ठ का वंशज, उनके गर्भ में पल रहा है, उनका पौत्र। महर्षि वशिष्ठ को एक बार शक्ति की तरह स्पष्ट और मधुर स्वर में वेद की ऋचाओं का पाठ सुनाई पड़ा। वे स्तब्ध रह गये कि यह स्वर आखिर किसका था? तब स्वयं भगवान विष्णु ने प्रकट होकर वशिष्ठ को बताया कि यह स्वर महर्षि वशिष्ठ के समस्त कुल को तारने वाले तथा शिवजी के अनन्य भक्त गर्भस्थ शिशु का था। इस प्रकार वंशहीन होकर मरने और पितरों के अतृप्त रहने की आशंका से मुक्त हुए महर्षि वशिष्ठ और उनके इस अद्वितीय पौत्र का नाम हुआ पराशर!

बालक पराशर को जब अपने पिता और उनके भाइयों के राक्षस रुधिर के हाथों मारे जाने का ज्ञान हुआ तो उन्होंने भगवान शंकर की आराधना करके बहुत से वरदान प्राप्त किये और वे पूरे विश्व–संहार की योजना बनाने लगे। पितामह वशिष्ठ के बहुत समझाने पर उन्होंने विश्व–संहार की योजना तो छोड़ दी पर राक्षसों पर उनका क्रोध कम नहीं हुआ। राक्षसों के विनाश का यज्ञ उन्होंने प्रारंभ किया जिससे राक्षसों के झुण्ड के झुण्ड आकर हवन कुण्ड में भस्म होने लगे। फिर महर्षि वशिष्ठ ने क्षुब्ध होकर अपने पौत्र पराशर को समझाया कि सज्जनों का काम क्षमा करना होता है, औरों को कष्ट देना नहीं। राक्षस अपने कर्म फल से बँधे होने के कारण अपकर्म में रत हुए अन्यथा उनका तो वशिष्ठ के परिवार से कोई वैर ही नहीं था आदि आदि। इससे पराशर शान्त हो गये और उन्होंने यज्ञ को वहीं समाप्त कर दिया। राक्षसों के आदिकुल पुरुष महर्षि पुलस्त्य पराशर की क्षमाशीलता से अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हीं के आशीर्वाद से पराशर समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हो गये तथा पुराण संहिता आदि के कर्त्ता भी।

आगे यह कथा बहुत रोचक हो जाती है। कहा जाता है कि ज्योतिष ज्ञान से मण्डित पराशर एक नौका से यमुना नदी पार कर रहे थे। उनका ज्योतिष

ज्ञान इतना प्रखर था कि उसी समय उन्हें प्रतीत हुआ–एक अत्यन्त तेजस्वी महाप्रतापी बालक के गर्भ में आने का समय है यह! इसे शास्त्रों में निषेक लग्न कहा गया है। उन्होंने उसी समय यह बात उस नाव के मल्लाह को बताई जो केवटों का राजा था। मल्लाह ने कहा, महाराज, मेरी एक युवती कन्या है, यदि आपकी कृपा से वह अभी गर्भवती हो जाये तो मैं बड़ा सौभाग्य समझूँगा। कहा जाता है कि कन्या की स्वीकृति प्राप्त होते ही आधी नौका में ऐसा घना कुहासा भर गया कि हाथ को हाथ न सूझे और आधी नौका प्रकाशमय रही। महर्षि पराशर से उसी धीवरराज की कन्या का गर्भाधान हुआ। कन्या का नांम तो था मत्स्यगन्धा पर ऋषि पराशर के आशीर्वाद से उसके शरीर से अनुपम सुगन्ध निकलने लगी। मत्स्यगन्धा का नाम सत्यवती हुआ। यही गर्भ जिस तेजस्वी के रूप में फला–फूला, उन्हें हम वेदव्यास के नान से जानते हैं। हाँ, मत्स्यगन्धा से सत्यवती बनने के बाद जो उनके शरीर से सुगन्ध आयी उससे खिंचे चले आये अपने काल के महान राजा शान्तनु। उनकी कथा भी हमने आगे लिखी है।

महर्षि पराशर ने धीवर राज की कन्या मत्स्यगंधा के माध्यम से आर्यावर्त की भूमि को वेदव्यास रूपी अनुपम उपहार दिया। वेदव्यास का असली नाम था कृष्ण द्वैपायन (क्योंकि उनका रंग भगवान श्रीकृष्ण की भांति घन नील था इसलिए कृष्ण–यमुना के द्वीप पर जन्मे, इस कारण द्वैपायन! इस प्रकार उनका पूरा नाम पड़ा कृष्ण द्वैपायन) बदरी (बेर) के वन में रहने के कारण इनका एक नाम बादरायण भी है। किन्तु सारे वेदों की व्याख्या/विस्तार करने के कारण ही उनका नाम पड़ा वेद व्यास। भगवान व्यास ने ही अठ्ठारह पुराणों तथा महाभारत की रचना भी की थी। जैसा कि सुधी पाठक जानते ही हैं, व्यास की माता मत्स्यगंधा बाद में सत्यवती के नाम से प्रसिद्ध हुई। उनका ब्याह गंगापुत्र भीष्म पितामह ने अपने पिता शान्तनु से कराया था। शान्तनु भी कोई साधारण पुरुष नहीं थे। कुरु वंश के महाप्रतापी राजा प्रतीप के पुत्र रूप में जन्म लेने से पहले वे स्वयं महाभिष नाम के पुण्यात्मा राजा हुए। राजा प्रतीप हरिद्वार में नदी के सुनसान तट पर बैठे जाप कर रहे थे तभी लहरों के बीच से एक अत्यन्त रूपवती युवती के रूप में निकल कर माता गंगा प्रतीप की बायीं जाँघ पर न बैठ कर दाहिनी जाँघ पर बैठी जो बेटी या पुत्रवधु के लिए होती है! अतः प्रतीप ने उसे अपनी पुत्रवधु बनने को कहा – वह तब शान्तनु को वरण कर सकी। एक अन्य आख्यान के अनुसार किसी अन्य काल में ब्रह्मा जी के दरबार में महाभिष की दृष्टि देवी गंगा के शरीर पर पड़ी और वे मन्त्रमुग्ध हो गये। पुराणों में कहा गया है कि गंगा को भी राजा द्वारा देखा जाना बुरा

नहीं लगा पर ब्रह्माजी को इससे बड़ा क्रोध हुआ। कुपित ब्रह्माजी ने शाप दिया कि राजा को पृथ्वी पर फिर से जन्म लेना होगा जहाँ गंगा उनकी पत्नी बन कर उनकी अवज्ञा करेगी और जब राजा उनपर क्रोध करेंगे तभी यह शाप पूरा होगा।

हम पहले ही बता चुके हैं कि ऋषि पराशर के पितामह थे महर्षि वशिष्ठ। उनके आश्रम में एक अत्यन्त मनभावन गाय थी नन्दिनी। वशिष्ठ ने होम–धेनु के रूप में उत्तम नंदिनी गाय पायी थी जिसके पिता मुनि कश्यप और माँ दक्ष प्रजापति की पुत्री सुरभि थी। एक बार आठ वसु (वसु देवताओं के ही रूप हैं। आठ वसुओं के नाम हैं क्रमशः धर, ध्रुव, सोम, सवित्र, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास। प्रभास का एक नाम द्यौ भी है। वैसे तो कहा गया है तैंतीस कोटि देवियाँ और देवता हैं किन्तु उनमें मुख्यतया तैंतीस ही माने गये हैं। ये हैं क्रमशः प्रजापति, इन्द्र, बारह आदित्य, ग्यारह रूद्र और आठ वसु।) अपनी पत्नियों के साथ उस आश्रम के पास कल्लोल कर रहे थे कि उनमें से एक स्त्री ने उस गाय की याचना की। यद्यपि उसके पति ने बहुत समझाया कि देवताओं को गाय जैसी पार्थिव वस्तु की क्या आवश्यकता, पर स्त्री हठ के आगे किसी की क्या चल सकती थी। वसु पत्नी ने कहा कि मृत्यलोक में रहने वाली उसकी सहेली जितवती के लिए ही सही, पर नन्दिनी तो उसे अवश्य चाहिए थी। अन्त में सारे वसुओं ने मिलकर नन्दिनी को चुरा लिया। वशिष्ठ मुनि ने लौटते ही सारी बात समझ ली। उनके क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने सभी वसुओं को मनुष्यों जैसी लिप्सा रखने के कारण मनुष्य योनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। वसुओं को जैसे ही इसका पता चला वे घबराये हुए आकर वशिष्ठ के शरणागत हुए। ऋषि को दया आ गयी। उन्होंने कहा कि शाप तो वापिस नहीं लिया जा सकता, हाँ यह अवश्य हो सकता है कि शाप की अवधि कम हो जाये। सात वसुओं को तो उन्होने जन्म लेते ही मानव शरीर से मुक्ति पाने का वर दिया पर प्रभास, जिसने नन्दिनी चुरायी थी, को अधिक समय तक पृथ्वी पर रहना ही पड़ा। उन्होंने यह भी कहा कि वसुओं को गंगा माता से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे ही वसुओं की माँ बनें। वसुओं की प्रार्थनाएँ माँ गंगा ने मान लीं। उन्हें अत्यन्त सुन्दर स्त्री के रूप में जब राजा शान्तनु ने देखा तो अपना आपा ही खो बैठे और उनसे प्रणय निवेदन करके अपनी पत्नी बनने का अनुरोध किया। गंगा ने हँसते हुए कहा कि हे राजन, अगर आप मुझे कभी भी, कुछ भी करने से न रोकें तो मैं सहर्ष आपकी पत्नी बन जाऊँगी परन्तु जिस घड़ी आपने मुझे रोका या टोका, उसी क्षण मैं आपको छोड़ कर चली जाऊँगी। प्रेम में अन्धे शान्तनु को, बिना यह जाने हुए कि

वह स्त्री कौन थी, सभी कुछ स्वीकार्य था। आपको याद होगा कि यह सब हो रहा था ब्रह्म जी के शाप के कारण। राजा शान्तनु को उनकी पत्नी ने सारे सुख दिये। पत्नी धर्म की प्रतिमूर्ति बन गयी वह और शान्तनु तो जैसे धन्य हो गये। कालान्तर में शान्तनु की पत्नी को एक–एक करके सात पुत्र हुए किन्तु प्रसव होते ही वह प्रत्येक नवजात बालक को उठाती और गंगा में डुबोकर मुस्कराती हुई लौट आती। राजा शान्तनु हर बार पागलों की तरह छटपटाते पर अपनी पत्नी को न रोकने–टोकने के दिये गये वचन को याद करके मन मसोस कर रह जाते। किन्तु उनके भी धैर्य का बाँध उस दिन टूट गया जब उनकी पत्नी अपनी आठवीं संतान को डुबोने निकली। आखिर गंगा को भी तो शापमुक्त होना था! राजा ने अपनी पत्नी को रोक कर इस कुकृत्य का कारण पूछा। गंगा माता इसी अवसर की प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने वसुओं की पूरी कहानी बतायी और यह भी कहा कि वसुओं पर किये गये उपकार के कारण शान्तनु निश्चय ही उच्च लोकों के भागी होंगे किन्तु गंगा का कार्य पूरा हो चुका था। उन्होंने राजा शान्तनु से कहा कि इस बच्चे को थोड़े दिनों तक मेरे पास रहने दें, उसे बड़ा करके मैं वापस ला दूँगी–उपहार स्वरूप ! इस बालक को महर्षि वशिष्ठ ने वेद, वेदांग और वेदान्त पढ़ाये, युद्ध–कला में यह परशुराम के बराबर पराक्रमी हुए और अन्य कलाओं में इनकी तुलना में, सिवाय भृगु (शुक्राचार्य) के, जिन्होंने इन्हें अनेक शिक्षाएँ दीं; कोई खड़ा नहीं हो सका। गंगा ने शान्तनु को सर्वगुण सम्पन्न बालक सौंपा जिसका नाम बताया देवव्रत। देवव्रत को पाकर शान्तनु फूले न समाये पर गंगा की कमी उन्हें खटकती ही रही। उन्होंने देवव्रत को युवराज घोषित कर दिया। प्रायः चार वर्षों के उपरान्त यमुना के तट पर भ्रमण करते हुए शान्तनु को एक नैसर्गिक सुगन्ध का अनुभव हुआ। यह दिव्य गन्ध सत्यवती के शरीर से, ऋषि पाराशर के आशीर्वाद स्वरूप, आ रही थी। सत्यवती के अप्रतिम रूप को देखकर शान्तनु ठगे से रह गये। उन्होंने धीवरराज से इस कन्या का हाथ माँगा। पर धीवरराज ने स्पष्ट शर्त रखी कि यदि शान्तनु के बाद उनका उत्तराधिकारी सत्यवती का पुत्र बने तभी वे सत्यवती का व्याह शान्तनु से करेंगे। शान्तनु हताश वापस हो गये पर उनका दुःख देवव्रत से देखा न गया। वे धीवरराज को वचन दे आये कि शान्तनु के उत्तराधिकारी सत्यवती की सन्तान ही होंगे इसके लिए उन्होंने आजन्म कुंवारे रहने की प्रतिज्ञा की जो समस्त भूमण्डल में भीष्म प्रतिज्ञा के नाम से जानी गयी और देवव्रत का नया नाम हुआ भीष्म। भीष्म सत्यवती को लेकर अपने पिता के पास आ गये–अपनी विमाता बनाकर। शान्तनु और सत्यवती की दो संतानें हुई। बड़े का नाम था चित्रांगद और छोटा बेटा विचित्रवीर्य के नाम से

प्रसिद्ध हुआ। चित्रांगद युवा हुए ही थे कि शान्तनु अपने कर्मफल भोगने के बाद स्वर्गवासी हो गये। भीष्म की देखरेख में चित्रांगद ने राज–काज संभाला परन्तु यौवन का उन्माद और पराक्रम दिखाने के क्रम में नये–नये बने राजा चित्रांगद गन्धर्व राज से भी भिड़ गये। गन्धर्व राज का नाम भी चित्रांगद ही था–उस युद्ध में शान्तनुनंदन चित्रांगद वीरगति को प्राप्त हुए। अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए, स्वयं न बैठ कर, भीष्म ने अपने छोटे भाई बालक विचित्रवीर्य को राजगद्दी पर बिठाया। विचित्रवीर्य के बड़े होने पर भीष्म काशीराज की तीन कन्याओं को स्वयम्वर से अपने भाई के लिए हरकर ले आये। इनके नाम थे क्रमशः अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका। अम्बा पहले से ही, मन ही मन, राजा शाल्व को अपना पति मान चुकी थी। यह पता चलने पर भीष्म की आज्ञा से अम्बा को शाल्व के पास भेज दिया गया और विचित्रवीर्य की शादी अम्बिका और अम्बालिका से करा दी गयी। अम्बा को शाल्व ने भी अपनाने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसे भीष्म जीत चुके थे। अम्बा छः वर्षो तक शाल्व और भीष्म के पास जाती आती रही जिस क्रम में उसे कई बार अपमान का सामना भी करना पड़ा।

अन्त में हताश होकर अम्बा तपोवृद्ध शैखावट मुनि के आश्रम गयी जहाँ उसके नाना मुनि होत्रवाहन उससे मिले। उन्होंने अम्बा को अपने बाल–सखा महर्षि परशुराम के पास महेन्द्र पर्वत पर जाने को कहा पर उसी समय परशुराम का सेवक अकृतवण भी वहीं आ पहुँचा और उसने बताया कि अगले दिन स्वयं परशुराम होत्रवाहन से मिलने शैखावट के आश्रम पधार रहे थे। अम्बा की कथा सुनकर परशुराम बहुत द्रवित हुए और उन्होंने भीष्म से घनघोर युद्ध किया। इस युद्ध में भीष्म जब पराजित नहीं हुए तो परशुराम ने उनकी पीठ थपथपायी – उन्हें विदा किया। अम्बा को सन्तान के माध्यम से संसार में नाम अमर करने की इच्छा थी। परशुराम ने अम्बा की सन्तान की कामना तो पूरी नहीं की परन्तु उसे 'मुंथा' बना दिया। ज्योतिषशास्त्र में अभिरुचि रखने वाले जानते हैं कि 'मुन्था' का वर्ष कुण्डली में विशेष महत्व है। मुंथा देवी का मंदिर रवाई में मौजूद है। वहीं ऋषि परशुराम का आश्रम है तथा यक्ष, गंधर्व और किन्नरों का वास भी। यह लोकोक्ति है महाभारत में नहीं। हर प्रकार से निराश अम्बा ने व्रत करके शरीर छोड़ने का निश्चय किया। माँ गंगा ने अम्बा को वर दिया कि व्रत में स्थिर रहकर शरीर छोड़ने से वह टेढ़ी मेढ़ी बरसाती नदी बनेगी "अम्बा"। आज भी अम्बा नदी मात्र बरसात में जल से भरती है। उस काल में वह टेढ़ी मेढ़ी होकर बहती थी, जिसमें बहुत ग्राह के निवास करने के कारण उसमें उतरना और स्नान आदि तीर्थ कृत्यों का करना बहुत कठिन होता था।

युद्ध के बाद ऋषि परशुराम अपने आश्रम रामा सिराई लौट आये जहाँ उनकी माता रेणुका तथा पिता जमदग्नि रहते थे। माता रेणुका प्रत्येक दिन रामा सिराई से उतर कर जमदग्नि की पूजा अर्चना के लिए भागीरथी का जल लाती थी। एक दिन रेणुका ने मूर्तिकावर्त के राजा चित्ररथ को अपनी पत्नी के साथ भागीरथी में रमण करते देखा और वे अपनी सुधबुध खो बैठीं। वापसी में वे राढ़ी की चढ़ाई में वही सब सोचती रहीं और इस कारण वे अपने घर पर्याप्त विलम्ब से पहुँची और जमदग्नि से सब कुछ सच–सच कहा – तभी भागीरथी की एक धारा नाकुरी गाँव (बछेन्द्री पाल का जन्म स्थान) से पर्वतों के नीचे की अदृश्य सुरंग द्वारा (बड़कोट गंगाणी) लाकर यमुना में मिला दी गयी। तब से ऋषि स्वयं गंगाजल लाकर संध्या पूजा करते। उन्होंने रूमण्वान, सुषेण, वसु तथा विश्ववसु नामक पुत्रों को एक–एक करके अपनी माँ का गला काटने की आज्ञा दी जो यह सुनते ही बेहोश से हो गये। कुपित पिता ने श्राप दिया जिससे ये सभी चारों पुत्र चेतना खोकर जड़बुद्धि हो गये। सबसे छोटे बेटे परशुराम ने पिता की आज्ञा मानकर अपनी माता रेणुका की गर्दन काट डाली और साथ ही अपने पिता से उन्होंने वर माँग कर अपनी माता को जीवित करा लिया। यही नहीं परशुराम के वर माँगने के कारण उनके चारों भाइयों को पुरानी घटना याद नहीं रही तथा वे स्वस्थ्य हो गये।

ये तो लोकोक्तियें पर आधारित कथाएँ थीं जिनके माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया था कि कामदेव के प्रहार से अच्छे–अच्छे नहीं बच सके तो सामान्य मानव की क्या बिसात। आगे देखते हैं कि महाभारत में अम्बा की कथा कैसे बतायी गयी है। महाभारत में कहा गया है कि हर ओर से निराश होकर अम्बा ने भगवान कार्तिकेय की आराधना करके एक दिव्य माला प्राप्त की जिसे पहनने वाले के हाथों ही भीष्म के वध का वरदान भी अम्बा को मिला। अम्बा ने वह माला राजा द्रुपद के द्वार पर टाँग कर आत्महत्या कर ली। अगले जन्म में वह द्रुपद के घर शिखण्डी के रूप में जन्म लेकर भीष्म के वध का कारण बनी। यह कथा कभी बाद में, लेकिन अम्बिका और अम्बालिका के यौवनपाश में विचित्रवीर्य ऐसे बँधे कि उन्हें क्षयरोग हो गया और वे भरी जवानी में काल कवलित हुए। बहुत दुःखी हुई माता सत्यवती। अन्त में भीष्म और अन्य विद्वानों की सलाह से उन्होंने ऋषि पराशर द्वारा प्रदत्त अपने पुत्र व्यास को बुलाकर शान्तनु की वंश रक्षा का आदेश दिया। व्यास के आशीर्वाद से अम्बिका को पुत्र के रूप में मिले धृतराष्ट्र जो माँ के दोष के कारण दृष्टिहीन पैदा हुए। अम्बालिका की सन्तान का नाम हुआ पाण्डु क्योंकि वे अपनी माता के दोष के कारण पीले पैदा हुए। अम्बिका की प्रेरणा से उसकी दासी ने, व्यास

जी के द्वारा ही, विदुर को जन्म दिया जो धर्मराज के अवतार थे। इसकी कहानी भी बड़ी रोचक है। पूर्व काल में ऋषि माण्डव्य को राजा के सिपाहियों ने डाकू समझ कर सूली पर चढ़ा दिया। निष्पाप माण्डव्य द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर धर्मराज ने कहा कि माण्डव्य ने पूर्व जन्म में, बाल्यावस्था में, टिड्डियों को सताया था जिसके पापस्वरूप उन्हें इस जन्म में सूली पर चढ़ना पड़ा। इससे दुखी होकर माण्डव्य ने धर्मराज को पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दिया। जिसके फलस्वरूप धर्मराज विदुर बनकर जन्मे।

इस प्रकार अगर हम देखें तो पराशर ऋषि के पुत्र वेदव्यास ऋषि ही कौरवों और पाण्डवों के पिताओं के जनक हुए। सत्यवती के तीन पुत्र हुये। ऋषि पराशर से उन्हें वेदव्यास मिले। शान्तनु ने उन्हें दो पुत्र दिये चित्रांगद और विचित्रवीर्य। विचित्रवीर्य की पत्नियों को संतान दी वेदव्यास जी ने। उन्होंने ही महाभारत की रचना भी की।

भगवान व्यास सभी प्राणियों तथा जीवों की भाषा समझते थे। इस कारण उनका जीवन बहुआयामी हो गया था। उनके इसी ज्ञान के कारण जिस दूसरे महान चरित्र का हमें परिचय मिलता है वे हैं महर्षि मैत्रेय।

महर्षि मैत्रेय की कथा

भगवान व्यास ने एक बार एक छोटे से कीड़े को भागते हुए देखकर उससे उसकी घबराहट का कारण पूछा। कीड़े को एक बड़ी भारी बैलगाड़ी से कुचले जाने का भय था। व्यास ने कीड़े से कहा कि इस कीड़े की योनि में पड़े रहने से तो अच्छा मर जाना होता। कीड़ा करुणा से भर कर बोला कि वह मरने से नहीं डरता, सिर्फ इस कारण डरता है कि मर कर इससे भी नीचे योनि में जाना पड़ा तो क्या होगा। व्यास जी को दया आ गयी और उन्होंने कहा कि तुम डरो मत। जब तक तुम्हें ब्राह्मण शरीर में पहुँचा नहीं दूँगा तब तक सभी योनियों से शीघ्र ही छुटकारा दिलाता रहूँगा। यह सुनकर कीड़ा बैलगाड़ी के नीचे आकर मर गया। व्यास जी की कृपा से वह अनेक पशु/पक्षी योनियों में जन्म लेता गया और हर बार व्यास उसे उसके पूर्वजन्मों का स्मरण कराते रहे। मानव शरीर में भी कई योनियों में जन्म लेकर वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। जब यह बालक मात्र पाँच वर्ष की आयु का था, उसे भगवान व्यास ने सारस्वत मन्त्र का उपदेश दिया जिस कारण इस बालक को बिना पढ़े ही सारे वेद, शास्त्रों और धर्मग्रन्थों का ज्ञान हो गया। भगवान व्यास ने इसे यह भी आदेश दिया कि वह बहूदक नाम के तीर्थ में जाकर वहाँ तप कर रहे नन्दभद्र की सारी शंकाएँ दूर करे। नन्दभद्र की शंकाएँ आज भी लोगों के मन में उठती

हैं। ये शंकाएँ सनातन हैं। इनके आधार पर कर्म–फल सिद्धान्त की चर्चा की जायेगी। आइये, पहले नन्दभद्र की शंका समझें जिस कारण वे बहूदक तीर्थ में साधना कर रहे थे। उनकी शंका थी "पापी लोग भी सुखी क्यों देखे जाते हैं ?" सारस्वत मंत्र से सिद्ध इस बालक ने बहूदक तीर्थ जाकर नन्दभद्र से कहा "पूर्व जन्म में तामस भाव से किये गये धर्म के कारण इस जन्म में पूर्व जन्म के धर्म का फल तो मिलता है किन्तु प्रवृतियाँ पापी हो जाती हैं। फलतः वे ही पापी लोग सुखी देखे जाते हैं परन्तु तामस भाव के कारण धर्मानुराग नहीं रहता इसलिए ऐसे मनुष्य पुण्य भोग कर अवश्य नरकवासी होते हैं।" इस बालक ने यह भी बताया कि संसार में चार प्रकार के लोग देखे जाते हैं–पहले, जो पूर्व जन्म के पुण्य भोगते हैं पर नये पुण्य उपार्जित नहीं करने के कारण नरकगामी होते हैं। दूसरी तरह के वे लोग हैं जिनका पूर्व जन्मों में अर्जित पुण्य नहीं है। इसलिए इस जन्म में तो वे दुःख भोगते हैं पर अपने दुःख का कारण जान कर तप करने से वे परलोक में सुख भोगते हैं। तीसरे प्रकार के मनुष्य सर्वश्रेष्ठ होते हैं, जो पूर्वजन्म के पुण्य का फल भोगते हुए इस जन्म में भी पुण्य अर्जित करते रहते हैं। इस प्रकार उनके लिए दोनों लोकों में आनंद ही आनंद होता है। एक और भी मानव की श्रेणी है जो बहुत कष्टकारी है, क्योंकि इन लोगों के जीवन में न तो पूर्व जन्म का पुण्य होता है और न ही वर्तमान जीवन में ये पुण्य का अर्जन करते हैं। इस प्रकार इनको इहलोक और परलोक में कष्ट ही कष्ट होता है।

नन्दभद्र की शंका शान्त हुई किन्तु वह बालक तो गलित कुष्ठ का रोगी था। किसी ऋणानुबन्धन के कारण ही वह नन्दभद्र के पास भेजा गया था। उसने अपने पूर्वजन्मों तथा भगवान व्यास की कृपा की चर्चा की। सात दिनों तक भगवान सूर्य के मन्त्र का जाप करते हुए बहूदक तीर्थ मे उस बालक ने प्राण त्याग दिये। अगले जन्म में माँ मित्रा तथा पिता कुषारू के आँगन में यह बालक मैत्रेय नाम से जन्मा। अपने जीवन के त्राणकर्ता, भगवान व्यास के पिता, ऋषि पराशर के श्रीमुख से विष्णु पुराण तथा होरा शास्त्र का इन्होंने पाठ पढ़ा था। महाभारत में मैत्रेय ने कौरवों को समझाने का भी बड़ा प्रयास किया था। ऐसे महान थे महर्षि पराशर और वैसे ही आदरणीय उनके यह शिष्य मैत्रेय। पराशर हुए ऋषि वशिष्ठ के पौत्र और वशिष्ठ की कथा विश्वामित्र की कथा के बिना अधूरी है। इसलिए हम आपको विचित्र कथा बताते हैं विश्वामित्र की।

विश्वामित्र की कथा–कई बार आश्चर्य भी होता है कि महात्मा विश्वामित्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण कैसे हो गये? विश्वामित्र की महर्षि वशिष्ठ से लड़ाई

की चर्चा तो हम पहले ही कर चुके हैं। आइये, महाभारत में भीष्म पितामह द्वारा युधिष्ठिर को कही गयी यह कथा भी हम जान लें। भीष्म पितामह बताते हैं कि भरतवंश में गाधि नाम के यशस्वी राजा हुए। उन्होंने सन्तान की इच्छा से वन में यज्ञ किया जिससे उन्हें सत्यवती नाम की अपूर्व सुन्दरी कन्या प्राप्त हुई। च्यवन के पुत्र, विख्यात तपस्वी ऋचीक मुनि, ने राजा गाधि से उस कन्या का हाथ माँगा। याद रहे कि जहां गाधि तो क्षत्रिय कुल की शोभा थे वहीं ऋचीक थे ब्राह्मण। एक अन्य आख्यान के अनुसार ऋचीक के पिता का नाम भृगु बताया गया है। राजा गाधि ने ब्रह्मर्षि के आगे असंभव–सी शर्त रख दी। गाधि ने कन्या के शुल्क के रूप में एक हजार ऐसे घोड़े माँगे जो चन्द्रमा के समान कान्तिमान और वायु के समान वेगवान हों, साथ ही प्रत्येक घोडे का एक कान काले रंग का हो। ऋचीक मुनि ने वरुण (जल के देवता) से यही वरदान माँग कर गंगाजी के किनारे उन घोड़ों का चिन्तन किया। कन्नौज के पास अश्वतीर्थ नाम के स्थान पर मन–चाहे हजार घोड़े गंगा से प्रकट हो गये। अब कोई उपाय न देख कर राजा गोधि ने सत्यवती का ब्याह ऋचीक मुनि से कर दिया। ऋचीक न केवल विद्वान और तपस्वी थे, अपितु वे युद्धविद्या में भी पारंगत थे। सत्यवती ने अपने पति की निष्ठापूर्वक सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर मुनि ने अपनी पत्नी को वर माँगने को कहा। सत्यवती को पुत्र की कामना थी। सत्यवती ने यह बात अपनी माँ से बतायी तो उन्हें भी पुत्र की कामना हो गयी क्योंकि अपनी एकमात्र कन्या का ब्याह वह पहले ही कर चुकी थी। उन्होंने अपनी बेटी से कहा कि वह अपने पति से यह वर भी माँग ले। ऋचीक ने मन्त्र से सिद्ध करके दो चरु (देवताओं को प्रसन्न करने के लिए तैयार की गयी खीर की आहूति) बनाये। एक तो उन्होंने अपनी पत्नी को देकर उसे गूलर के वृक्ष की पूजा करने को कहा। दूसरा चरु उन्होंने अपनी पत्नी की माँ के लिए दिया और उनसे पीपल के वृक्ष की पूजा करने को कहा। गड़बड़ यह हो गयी कि सत्यवती की माँ किसी दुर्मति में पड़ गयी और उन्होंने अपनी बेटी को समझाबुझा कर चरु तथा वृक्ष दोनों अदला–बदली कर लिये। अर्थात् सत्यवती की माँ ने अपनी बेट्री का चरु खा लिया और उसने गूलर की पूजा की। दोनों स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं किन्तु महर्षि ऋचीक को दिव्य ज्ञान से यह पता चलने पर उन्होंने सर ठोक लिया। उन्होंने अपनी पत्नी से बताया कि सत्यवती की माँ के चरु में क्षत्रियोचित शक्ति डाली थी और सत्यवती के चरु में सम्पूर्ण ब्रह्मतेज भरा हुआ था। अब चरु बदल जाने से सत्यवती के गर्भ से तो क्षत्रिय बालक होने की बात हुई और उनकी माता के गर्भ में ब्राह्मणों वाले गुण वाला बालक आ गया। पति की यह बात सुनकर कि वह

तो कठोर कर्म करने वाले क्षत्रिय को जन्म देगी और उसकी माता के गर्भ से उत्तम ब्राह्मण उत्पन्न होगा, सत्यवती शोक से बेहोश हो गयी। जब सत्यवती को चेत हुआ तो उसने अपने पति से कृपा करने की प्रार्थना की और माँगा कि कुछ ऐसा हो कि उनका पुत्र कठोर क्षत्रिय न हो, ब्राह्मण हो तथा संभव हो तो उनके पुत्र का पुत्र भले ही कठोर कर्म करने वाला हो जाये। ऋचीक ऋषि ने ऐसा ही होने का वर दिया। कालान्तर में गाधि की पत्नी को ब्रह्मवादी विश्वामित्र पुत्र के रूप में प्राप्त हुए। ब्राह्मणोचित गुण वाले क्षत्रिय! हाँ, सत्यवती का क्या हुआ? सत्यवती की कोख से अपने पति के आशीर्वाद से जिस सौम्य ब्राह्मण कुमार का जन्म हुआ उनका नाम हुआ ऋषि जमदग्नि। भगवान के अवतारों में एक, परशुराम, के यशस्वी पिता जमदग्नि सप्तऋषियों में एक हुए। ऋचीक के वरदान के फलस्वरूप उनका नाम तीनों लोकों में फैला तथा उनकी पत्नी रेणुका ने श्री भगवान के अवतार, अत्यन्त कठोर कर्म करने वाले, ब्राह्मण कुमार भगवान श्री राम को जन्म दिया। श्रीराम में बाल्यकाल से ही असाधारण क्षात्र तेज दिख पड़ा। उन्हें महादेवजी से इच्छा–मृत्यु का वर मिला, साथ में एक परशु भी। परशु उनके हाथ में रहने पर उनसे कोई जीत ही नहीं सकता था। इसी परशु की सहायता से उन्होंने क्षत्रिय कुल पर सौ बार विजय प्राप्त की थी इसलिए उनका नाम परशुराम हो गया। भगवान परशुराम को भृगु का अवतार भी कहा गया है। ऋषि जमदग्नि, माता रेणुका तथा भगवान परशुराम के जीवन की एक लोमहर्षक कथा हम पहले ही कह चुके हैं।

विश्वामित्र के पुत्रों में याज्ञवल्क्य, जाबालि, सुश्रुत, कपिल आदि के नाम आज भी आदर से लिये जाते हैं। हमने देखा कि सुन्दर कथाओं के माध्यम से, हमारे पुराणों में कर्म और उसके फल का सम्बन्ध बहुत सुन्दर ढंग से बताया गया है।

अध्याय 2

ज्योतिष शास्त्र है क्या ?

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्।।

अर्थात्, "जैसे मयूर के मस्तक पर शिखा तथा सर्प के मस्तक पर मणि शोभायमान होती है, वैसे ही वेदांग शास्त्रों में ज्योतिष शास्त्र सबसे शीर्ष पर शोभायमान है।"

आइए, जीवन को वैदिक काल में ले चलें। उन दिनों प्रकाश के स्रोत रहे होंगे सूर्य और कुछ सीमा तक चन्द्रमा, हाँ अग्नि सुरक्षा, ताप तथा प्रकाश तीनों प्रदान करती रही होगी। दिनचर्या का निर्धारण इन्हीं दोनों प्रकाश ग्रहों पर आधारित रहा होगा। आज भी भारत में उन हिस्सों में, जहां विद्युत व्यवस्था नहीं हो पायी है, जीवन सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त ही क्रियाशील रहता है, सांझ ढलने पर गतिविधियां काफी सीमित रह जाती हैं। आज तो सूर्य का उगना और ढलना, तारों का एक–एक करके आकाश को आच्छादित करना, धीरे–धीरे पूरब से पश्चिम की ओर बढ़ते जाना और पूरब की लाली के साथ लोप हो जाना सामान्य बात लगती है। वैसे ही ऋतुओं का परिवर्तन हमें आजकल प्रभावित नहीं करता, पर आरंभ में तो अवश्य ही सूर्य, चन्द्र और तारों की गतिविधियां चमत्कार से कम नहीं लगती होंगी। वेदों में कल्पना की गयी है कि समुद्र में डूबे हुए सूर्य को देवता सवेरे उगने के लिए निकालते हैं। इसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि सूर्य सायंकाल में अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं।

ज्योतिष शास्त्र का अर्थ है ज्योति का शास्त्र अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा, जो ज्योति के दो मूल स्रोत हुए, उनका शास्त्र। **'ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहणां बोधकं**

शास्त्रमूर्द्ध''। अर्थात्, ''सूर्यादि ग्रहों का बोध कराने वाला, शास्त्रों में श्रेष्ठ है ज्योतिष।''

सूर्य की गति इतनी स्वाभाविक रूप से सधी हुई होगी कि उसके उगने को दिन से सहज ही जोड़ दिया गया होगा। फिर ध्यान में आयी होगी चन्द्रमा की गति–कभी तो शरद पूर्णिमा की मोहक छटा और कभी अमावस को पूरी तरह लोप होने का क्रम। इसकी भी लयबद्धता ने अवश्य मन को उद्वेलित किया होगा तब कल्पना हुई होगी चन्द्रमास की क्योंकि चन्द्रमा प्रायः 29 1/2 दिनों में पूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार ऋतुओं की लयबर्द्धता से वर्ष की परिकल्पना हुई होगी जो पुनः सूर्य और चन्द्र की गतियों पर आधारित है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र प्रारंभ में तो मात्र सूर्य और चन्द्र की दैनिक, मासिक तथा वार्षिक गतियों से खेती जैसे कार्यों को जोड़ने के काम में लाया जाता रहा होगा, बाद में जैसे–जैसे जानकारी में वृद्धि हुई होगी वैसे–वैसे ग्रहों के आधार पर मानव जीवन के उतार–चढाव का क्रम भी जानने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई होगी। सामान्य खेती–बाड़ी से जातक के जीवन के घटनाक्रम तक ज्योतिष शास्त्र की यात्रा के बीच में एक पड़ाव वह भी आया होगा जब राजा ग्रहों के आधार पर युद्ध की तैयारियाँ करने लगे होंगे। राष्ट्र से राजा और राजा से प्रजा तक धीरे–धीरे ज्योतिष शास्त्र के आने में कुछ तो समय लगा ही होगा।

ज्योतिष शास्त्र के आरंभिक तीन स्कन्ध या तीन शाखाएं क्रमशः गणित या सिद्धान्त, संहिता तथा जातक या होरा कहे गये।

गणित या सिद्धान्त में ग्रहों की चाल पर आधारित गणना के सिद्धान्त दिये गये जिनसे पता चलता होगा कि ग्रहण कब लगेंगे, नये मास, नयी ऋतु या नये वर्ष का अभिनन्दन कब करेंगे हम।

इसी प्रकार ग्रहण, ग्रह युद्ध आदि द्वारा विश्व के शुभाशुभ का ज्ञान, विवाहादि जैसे कार्यों के लिए मुहूर्त का निर्धारण आदि विषयों पर प्रकाश डालने के लिए बने स्कन्ध या शाखा का नाम रखा गया संहिता।

व्यक्ति के जन्मकालीन ग्रहों पर आधारित उसके जीवन में आने वाली घटनाओं की विवेचना करने के स्कन्ध का नाम हुआ जातक अथवा होरा।

आइए स्कन्धत्रय को एक बार और नजदीक से समझें। सबसे पहले एक बार फिर से जान लें कि वेद के छः अंगों में ज्योतिष अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इस वेदांग की मात्र 44 श्लोकों वाली एक प्राचीन पुस्तिका भी उपलब्ध है जिसका नाम ही है 'वेदांग ज्योतिष'। ऐसी मान्यता है कि इस पुस्तिका के प्रणेता हैं महात्मा लगध परन्तु ग्रंथकार का ठीक–ठीक पता नहीं चलता। एक

अनुमान से ग्रन्थकार वर्तमान कश्मीर या अफगानिस्तान के निवासी रहे होंगे और वेदांग ज्योतिष का रचनाकाल होगा प्रायः 1200 ई.पू.। इस पुस्तिका के दो पाठ मिलते हैं जो प्रायः समान हैं। एक है 44 श्लोकों वाला यजुर्वेद ज्योतिष और दूसरा है 36 श्लोकों वाला ऋग्वेद ज्योतिष। ये श्लोक दरअसल सूत्रों की तरह हैं, अर्थात बहुत ही संक्षिप्त हैं। इसलिए इनका अर्थ ज्ञात करना आसान नहीं है। धीरे–धीरे जब शोध होते गये तो पता चला कि इनमें ज्ञान की विपुल राशि छिपी हुई तो है, पर है वह प्रारंभिक ज्योतिष ही जिनमें गणना के स्थूल नियम बताये गये हैं। इन श्लोकों में 27 नक्षत्रों तथा उनके स्वामियों के नाम, तिथि और नक्षत्रों में सम्बन्ध, पूर्णिमा, अमावस, तिथि–क्षय, तिथि–वृद्धि आदि की गणना सम्बन्धी नियम भी दिये गये हैं। इसमें प्रायः वही पद्धति बताई गयी है जो आज भी पंचांगों में प्रयुक्त होती है।

अब हम सिद्धान्त स्कन्ध की चर्चा करते हैं। जैसा हम जानते हैं, हमारे ढेर सारे पुराणों में अट्ठारह मुख्य माने गये हैं। उसी प्रकार अट्ठारह प्रमुख ज्योतिष प्रवर्तकों की चर्चा गणक–तरंगिणी नामक पुस्तक में मिलती है।

"सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः। कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरंगिराः।।
लोमशः पौलिश्चैवच्यवनो यवनो भृगुः। शौनकोऽष्टादशैवेते ज्योतिः शास्त्रप्रवर्त्तकाः।।

अर्थात् ज्योतिष शास्त्र के अठारह प्रवर्त्तक सूर्य, पितामह, व्यास, वशिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश (रोमक), पौलिश, च्यवन, यवन, भृगु तथा शौनक हुए। ये नाम क्रमवार नहीं हैं क्योंकि पराशर ऋषि कहते हैं, पितामह ने जो नारद को, और नारद ने जिसे शौनकादि ऋषियों को दिया, उनसे ही ज्योतिष का ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ है।

किन्तु इन अट्ठारह सिद्धान्तों में वराहमिहिर मात्र पांच (पितामह, वशिष्ठ, रोमक, पौलिश और सौर) सिद्धान्तों को मान्यता देते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण वराहमिहिर ने अपनी पुस्तक पंचसिद्धान्तिका में किया है। पंचसिद्धान्तिका के 442 श्लोक 18 अध्यायों में बांटे गये हैं। वराहमिहिर के मतानुसार पाँच सिद्धान्तों में सूर्य सिद्धान्त सर्वोत्तम है, पौलिश और रोमक प्रायः सूर्य सिद्धान्त जैसे ही हैं और शेष दो अर्थात् पितामह और वशिष्ठ बहुत पीछे रह गये हैं। वराहमिहिर द्वारा उपलब्ध इस ग्रंथ के सिद्धान्त काफी सीमा तक आधुनिक ज्योतिष गणित की आधारशिला हैं, खगोल शास्त्र का मूल हैं। दुर्भाग्यवश खगोलशास्त्री अत्यन्त संकीर्ण दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ते हैं। जब तक एक अहम तथ्य वे स्वीकार नहीं कर लेते कि सृष्टि की प्रत्येक जड़ अथवा चेतन वस्तुओं का एक दूसरे से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, तब तक वे दुनिया को एकांगी दृष्टि से ही देखते रहेंगे।

यह तो हुई प्रथम स्कन्ध अर्थात् सिद्धान्त की चर्चा। लगे हाथों ज्योतिष स्कन्ध त्रय के दूसरे स्कन्ध, अर्थात् संहिता, की चर्चा भी कर लें।

संहिता स्कन्ध में ज्योतिष चर्चा समूहगत की गयी है, व्यक्तियों के जीवन पर ग्रहों के प्रभाव के बारे में बहुत थोड़ी चर्चा है वहाँ। संहिता में देश पर प्रकृति की कृपा/अकृपा यथा भूकम्प, महामारी, बाढ़ आदि का विस्तृत वर्णन है। सामान्य जन–जीवन पर प्रकृति का जबरदस्त प्रभाव रहता है, और इन सबों को नियंत्रित करते हैं ग्रह। इसलिए ग्रहों से राष्ट्र एवं राष्ट्रवासियों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा संहिता में की गयी है। संहिता में वैसे व्यक्तियों के बारे में भी चर्चा है जो राष्ट्र के नायक होते हैं और जिनके निर्णय से राष्ट्र के भाग्य में परिवर्तन हो सकते हैं, यथा युद्ध अथवा शान्ति। वर्तमान काल में ही हमारे पास अब इतने प्रमाण हैं कि संहिताओं में वर्णित सूत्रों के आधार पर प्राकृतिक आपदाओं का पूर्वानुमान बहुत पहले ही लगाया जा सकता है। सम्प्रति भारतीय विद्या भवन की खोजी टीम भूकम्प की भविष्यवाणियों पर श्री के. एन. राव के दिशा–निर्देश में स्तुत्य कार्य कर रही है।

अब बात करें ज्योतिष शास्त्र के सर्वाधिक लोकप्रिय स्कन्ध होरा की। अहो (दिन) तथा रात्रि (रात) शब्दों के बीच के दो अक्षरों (हो + रा) से बना छोटा सा शब्द 'होरा' सच में अनगिनत संभावनाओं वाला है। जीवन में प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालने वाले इस स्कन्ध की बात ही कुछ और है।

बृहत्जातक में वराहमिहिर कहते हैं :

"होरेत्य होरात्र विकल्प के वाञ्छति पूर्वापर वर्णलोपात्।
कर्मार्जितं पूर्वभवें सदादि यतस्य पंक्ति समभिव्यनक्तिः।।

अर्थात् कुछ लोग कहते हैं कि अहोरात्रि में अहो से 'अ' तथा रात्रि का 'त्रि' हटा कर होरा शब्द की उत्पत्ति हुई। होरा शास्त्र पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के अच्छे या बुरे फल के इस जन्म में प्राप्ति की अभिव्यक्ति करता है।

पूर्वजन्म से लेकर वर्तमान जीवन के सारे उतार–चढ़ाव की विहंगम झांकी देने वाले इस स्कन्ध से जीवन के प्रति एक नयी दृष्टि प्राप्त होती है। ईश्वर की असीम सत्ता में विश्वास बढ़ता है, सत्कर्मों की ओर प्रीति होती है और मन में सकारात्मक बदलाव अपने–आप आने लगता है। होरा शास्त्र के अध्ययन से अगले जन्म का भी आभास मिलता है तभी तो ऋषि पराशर मैत्रेय से कहते हैं :

"ये सुशास्त्रां पठन्तीदं ये वा श्रृण्वन्ति भक्तितः।
तेषामायुर्बल वित्तां वृद्धिमेति यशः सदा।।"

अर्थात्, "जो इस उत्तम होरा शास्त्र को पढ़ता अथवा भक्तिपूर्वक सुनता है उसके आयु, बल, धन तथा यश में सदा वृद्धि होती है।"

होरा शास्त्र की महिमा ऋषि मैत्रेय के मुख से ही सुन लीजिये–

"भगवान ! परमं पुण्यं ग्रह्यं वेदांङ्गमुत्तमम्। एतेपि त्रिषु श्रेष्ठा होरेति श्रयते सुने। त्वतस्तों श्रोतुमिच्छामि कृपया वद मे प्रभो।।

मैत्रेय पराशर ऋषि से विनती करते हैं, 'हे भगवान, वेदांगों में उत्तम ज्योतिष में भी होरा ही श्रेष्ठ है। वह मैं आपसे सुनने की इच्छा रखता हूं। कृपा करके मुझे आप (होरा शास्त्र के बारे में) बतायें।'

जैसे–जैसे ज्योतिष शास्त्र में अनुसंधान होने लगे, जानकारी का आकाश विस्तृत होता गया। स्कन्ध त्रय का स्थान धीरे–धीरे स्कन्ध पंच ने ले लिया। अब पूर्वोक्त तीन स्कन्धों में दो नये स्कन्ध क्रमशः शकुन और प्रश्न जुड़ गये। कालान्तर में वर्षफल या ताजिक शास्त्र भी ज्योतिष शास्त्र का ही अंग माना जाने लगा। इस प्रकार आज का ज्योतिष शास्त्र छः अंगों में बांटा जा सकता है। इनमें से स्कन्धत्रय की संक्षिप्त चर्चा पहले की जा चुकी है। शेष अपेक्षाकृत नये अंगों से भी परिचय करना उचित होगा।

शकुन अर्थात् प्रकृति में हो रहे बदलावों को देखकर किसी निश्चय पर पहुंचना क्या ज्योतिष विद्या का अंग माना जाये, यह प्रश्न बहुत बार मन को उद्वेलित करता है। लेकिन उल्कापात, पक्षी का बोलना, अंगों में स्फुरण, तिथि विशेष को छायी बदली, दीपक की बाती का हिलना–डुलना आदि जैसे शकुनों के आधार पर आने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान लगाने को ज्योतिष शास्त्र के लब्ध प्रतिष्ठित ग्रन्थों में स्थान मिलने के कारण इसका महत्त्व अनायास बढ़ गया है। अनुभवों से भी पाया गया है कि शुभ शकुन अच्छी भविष्यवाणियों में सहायक सिद्ध होते हैं। कारण भी है, शकुनों का सीधा या फिर घुमा–फिरा कर कोई न कोई सम्बन्ध ग्रहों से अवश्य होता है।

वर्तमान में हम प्रकृति से बिल्कुल कट गये हैं। अब न तो पक्षियों का स्वर सुनने का समय होता है, ना ही दीपक के प्रकाश में ज्योतिष शास्त्र पर चर्चा होती है। पेड़ के नीचे ज्योतिषी नहीं बैठते ना ही जातक की छाया का पता चलता है। शहरों में श्रृगाल नहीं दिखते क्योंकि वहां कंक्रीट के जंगल खड़े हो गये हैं। ऐसे समय में शकुनों को नये सिरे से जानने की आवश्यकता है, नयी व्याख्याएं मांगते हैं शकुन, ऐसी व्याख्याएँ जो आज के विज्ञान की कसौटी पर खरी उतरें।

प्रश्न शास्त्र—ज्योतिष शास्त्र में प्रश्न शास्त्र स्कन्ध की दुनिया ही निराली है। यह भी अपने–आप में चमत्कारिक रूप से सम्पूर्ण शास्त्र है, आज के प्रचलित एक दिवसीय या बीस–बीस ओवरों के क्रिकेट की तरह। किसी पूछे गये प्रश्न के काल की कुण्डली की विवेचना करके प्रश्नों के उत्तर ठीक–ठीक पाये जाते देखे गये हैं। यह विधा विशेष रूप से वैसी अवस्था में बहुत कारागर सिद्ध होती है, जब जातक की कुण्डली उपलब्ध न हो तथा पूरे जीवन की विवेचना की बजाय एकाध प्रश्नों के तत्काल उत्तर की आवश्यकता हो। भारतीय विद्या भवन में प्रश्न शास्त्र पर भी श्री दीपक कपूर द्वारा मौलिक शोध किये गये हैं। उनके द्वारा लिखी गयी प्रश्न शास्त्र की पुस्तक अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित है।

ताज़िक शास्त्र—होरा शास्त्र द्वारा बताई गई संभावनाओं की पुष्टि करने की सहज तकनीक ताजिक शास्त्र में उपलब्ध है। इसके मूल में है सूर्य की वार्षिक गति पर आधारित वर्षफल बनाने की पद्धति जो अब प्रायः स्थापित हो गयी है और फलादेश में बहुत सहायक सिद्ध पायी जाती रही है। जातक के जन्मकालीन सूर्य की स्थिति में गोचर का सूर्य 365 दिन 6 घन्टे तथा 9.2 मिनटों में पहुंच जाता है। उस काल की कुण्डली जातक के जीवन के आगामी एक वर्ष की सूचना बहुत अच्छी तरह दे पाती है। चूंकि भविष्यवाणी का काल खण्ड मात्र एक वर्ष का होता है इसलिये इसमें गलतियों की संभावना भी उतनी ही कम हो जाती है। वर्षफल या ताज़िक शास्त्र फलित ज्योतिष का ही एक अंग है, पर तकनीक भिन्न होने के कारण उसे अलग स्कन्ध मानने में भी कोई भूल नहीं प्रतीत होती।

अतीन्द्रिय शक्तियां ज्योतिष शास्त्र का अंग नहीं हैं। कई व्यक्तियों में अतीन्द्रिय शक्तियां जाग्रत पायी गयी हैं जिसके आधार पर वे अतीत की घटनाओं का सजीव वर्णन तो कर ही देते हैं, भविष्य की गहराइयों से भी सच्चे मोती निकाल कर प्रश्नकर्ता को चमत्कृत कर देते हैं। ऐसे लोग या तो योगी होते हैं या उनकी छठी इन्द्रियां जाग्रत होती हैं। कुछ लोगों पर कर्ण पिशाच सिद्धि के आरोप भी लगाये जाते हैं। कुछ व्यक्तियों की चेतना इतनी प्रबुद्ध और जाग्रत होती है कि सैंकड़ों हजारों किलोमीटर दूर हो रही या होने वाली घटनाओं का उन्हें पूर्वाभास हो जाता है। ये भविष्यवाणियां तो कर सकते हैं, परन्तु उनके ज्योतिष कारणों की व्याख्या नहीं कर पाते। न तो ये भविष्यवाणियां किसी गणना पर आधारित होती हैं, ना ही इनका कोई स्पष्ट ज्योतिषीय आधार होता है। इसलिए इन्हें ज्योतिष के स्कन्धों में डालना उचित नहीं जान पड़ता। हां, ऐसे व्यक्ति अवश्य ज्योतिषीय भविष्यवाणियों की परिपुष्टि कर सकते हैं।

ज्योतिष शास्त्र का आधार है गणित। गणना सही हो तो फलित के गलत होने की संभावना काफी कम होती है। ज्योतिष शास्त्र दैवीय ज्ञान है। गड़बड़ तब प्रारंभ होती है जब इस दैवीय ज्ञान की व्याख्या सीमित क्षमता और बुद्धि वाले मनुष्यों द्वारा होने लगती है। तब यह अपरिमित शास्त्र ज्योतिषी की चेतना, बुद्धि, समझ और ज्ञान की सीमाओं में बंध कर रह जाता है। आवश्यक है कि ज्योतिषी अपनी चेतना का विस्तार करें। ज्योतिष शास्त्र के अथाह सागर का ओर–छोर पाना तो असंभव सा है पर विस्तृत चेतना से इस सागर पर विहंगम दृष्टि डाल कर भी बहुत कुछ पाया जा सकता है।

अध्याय 3

ज्योतिष शास्त्र : हमारी धरोहर

हमारी परम्परा बड़ी समृद्ध है, यह अत्यन्त प्राचीन तो है ही, कालजयी भी है। जो सत्य हजारों वर्ष पहले ही हमारे पूर्वज उद्‌घोषित कर गये, वे शाश्वत हैं, आज भी वे उतने ही सम–सामयिक हैं। हमारी ऐश्वर्यशाली और गरिमामय परम्परा के मूल में हैं वेद ! वेद शब्द की उत्पत्ति 'विद' से हुई है जिसका अर्थ है 'ज्ञान'। आरंभ में वेद एक ही था किन्तु बाद में अंगिरा ऋषि ने उसमें से सरल तथा भौतिक उपयोग के छन्दों को संग्रहित किया जिसे अथर्वागिंरस अथवा अथर्व वेद के नाम से जाना गया। इस वेद में कर्मकाण्ड के अतिरिक्त मोहन, मारण आदि के स्तोत्र भी दिये गये हैं। बाद में ऋषि पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन ने वेदों का विस्तार किया, इसलिए वे कहे गये वेदव्यास। वेद व्यास की कथा पहले कही जा चुकी है। भगवान व्यास ने ऋक्, साम, यजुः और अथर्व वेद की शिक्षा क्रमशः पैल, जैमिनी, वैशम्पायन और सुमन्तु को दी। ऋक् वेद में देवताओं की आराधनाओं के स्तोत्र हैं। सामवेद में ऋक्वेद के बहुत से क्लिष्ट श्लोकों को लयबद्ध किया गया है। 'साम' की उत्पत्ति 'सम' से हुई है–जिसका अर्थ है मन में शान्ति। यज का अर्थ है प्रार्थना, यजुर्वेद में यज्ञ के कर्मकाण्ड की व्याख्या गद्य और पद्य दोनों में की गयी है।

वेद का ज्ञान अत्यन्त गूढ़ है, सर्वसाधारण की अति सामान्य बुद्धि से परे हैं वेद। वेद के ज्ञान तक पहुंचने के लिए कई सीढ़ियां चढ़नी होती हैं। ऋषियों को मानव मन की सीमाओं का आभास था। वेद व्यास ने वेदों के ज्ञान को सर्वसुलभ कराने की दिशा में सबसे पहले वेदों को अपने शिष्यों को पढ़ाया। वेदों के बारे में थोड़ी अधिक जानकारी कर्नल गौड़ की पुस्तक गोचर फलदर्पण में दी गयी है। वेदों का ज्ञान तो श्रुति और स्मृति, अर्थात् सुनने और याद

करने, के माध्यम से उपलब्ध था। कविताएं शीघ्रता से याद होती हैं, इसलिए हमारा प्राचीन वेदों का ज्ञान अधिकांशतः पद्य में है। इसी प्रकार सारा प्राचीन ज्योतिष ज्ञान या तो सूत्रों में है या फिर पद्य में।

वेद का पाठ तो दैनिक जीवन का क्रम था ही, परन्तु वेद की भाषा इतनी गम्भीर थी तथा शब्दों का चयन इतना सटीक था कि जीवन के हर स्तर पर इनकी व्याख्या अलग–अलग तरीकों से की जा सकती थी तथा सभी व्याख्याएँ अपनी सरलता अथवा गूढ़ता के कारण अलग होकर भी सही होती थीं। पर वेद के ज्ञान का बोझ संभवतः सबों के लिए उठा पाना संभव नहीं था। वेदों का सार भली–भांति जान कर जीने के लिए विशेष अनुभव और मानसिक परिपक्वता की आवश्यकता थी। जो उस स्तर पर खरे नहीं उतर पाते थे, उनके ज्ञान और मनोरंजन के लिए व्यास जी ने पुराणों की रचना की। पुराणों की महिमा और उनमें क्या वर्णित है, इसके लिए नारद पुराण का यह श्लोक देखिये।

यज्ञ कर्म क्रिया वेदः स्मृतिर्वेदः गृहाश्रमे। स्मृतिर्वेदः क्रियावेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः। पुराण पुरुषाज्जातं यथेदं जगद्दभुतम्। तथेदं वाङ्मयंजातं पुराणेभ्यो न संशयः।। न वेदे ग्रह संचारो न शुद्धिः काल बोधिनी। तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः।। इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा। यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्व लक्ष्यते स्मृतौ। उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते।

अर्थात्, 'यज्ञ और कर्मकाण्ड के लिए वेद प्रमाण हैं। गृहस्थों के लिए तो स्मृतियां ही प्रमाण हैं (स्मृतियों से अर्थ है धर्मशास्त्र) परन्तु पुराणों में वेद तथा स्मृतियां दोनों ही प्रतिष्ठित हैं। जैसे परम पुरुष (परमात्मा) से यह जगत उत्पन्न हुआ, वैसे ही पुराणों से सारा साहित्य। वेदों में ग्रह संचार, काल शुद्धि, तिथि वृद्धि या तिथि क्षय अथवा पर्व आदि का वर्णन नहीं है। ये सब बातें सबसे पहले इतिहास–पुराणों के द्वारा निश्चित की गयी हैं। इतिहास–पुराणों से अर्थ है पुराणों के अतिरिक्त महाभारत, वाल्मीकि कृत आदिरामायण, योग वाशिष्ठ आदि ग्रन्थ। जो बातें वेदों में नहीं मिलती, वे स्मृतियों में हैं और जो इन दोनों में भी नहीं हैं वे पुराणों में हैं।'

एक अन्य श्लोक में कहा गया है, **'चतुर्दशसु विद्यासु पुराणं दीप उत्तामः।'** अर्थात्, 'चौदह विद्याओं में पुराण विद्या ही सबसे उत्तम दीपक है। (ये चौदह विद्याएँ तथा अट्ठारह पुराण कौन से हैं इसके लिए पाठक कृपया गोचर फल दर्पण के अध्याय चार का अवलोकन करें।)' इस प्रकार वेद, वेदान्त, स्मृति आदि की अगली कड़ी बने पुराण। इन्हें थोडा और समझने का प्रयास करें तो पता चलेगा कि जनसाधारण के लिए इतिहास–पुराण, अर्थात् महाभारत, रामायण और

योग वाशिष्ठ आदि उपलब्ध हुए जिनमें ज्ञान के विभिन्न आयाम कथाओं की डोरी में पिरोये गये थे। ये सामान्य लोगों को समझ में भी आते थे और उनसे व्यक्तित्व निर्माण में सहायता भी मिलती थी।

वेद और पुराण तथा ज्योतिष

चरित्र की आधारशिला तो बचपन में ही रख दी जाती है। बच्चों को सही राह पर चलाने के लिए पंचतंत्र और हितोपदेश जैसे आख्यान भी उपलब्ध हुए। तात्पर्य यह है कि हमारी धरोहर में सब कुछ उपलब्ध है, वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास और पंचतंत्र तथा जातक कथाएँ भी। उपनिषदों में कहा गया है कि वेदों के निम्नांकित छः अंग (वेदांग) हुए।

(i) **शिक्षा**—वेदों का सही उच्चारण—वेदों की नासिका (नाक) है।

(ii) **कल्प**—यज्ञ करने की विधि—वेदों के हाथ।

(iii) **व्याकरण**—वैदिक और लौकिक शब्दों के अर्थ और प्रयोग के नियम—वेदों के मुख।

(iv) **निरुक्त**—वैदिक शब्दों का कोष—वेदों के कर्ण (कान)।

(v) **छन्द**—वैदिक छन्दों की जाति और भेद बताने वाली विद्या—वेदों के पैर।

(vi) **ज्योतिष**—ग्रह और नक्षत्रों की स्थिति, गति और उनसे हमारे सम्बन्ध—वेदों के नेत्र।

वेदांगों में ज्योतिष शास्त्र की महिमा अद्‌भुत है। पुराणों में भी ज्योतिष शास्त्र को बहुत महत्त्व दिया गया है। ज्योतिष शास्त्र के पुरोधा पराशर ऋषि ने विष्णु पुराण में ग्रहों के बारे में जो चर्चा की है, वह भी बहुत सुन्दर है। ग्रह ही अवतारों के रूप में पृथ्वी पर आये, इसकी चर्चा हम आगे कर रहें हैं। सभी पाठक उनसे लाभान्वित होंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। उन कथाओं से हमें नवग्रहों के बारे में और अच्छी तरह समझने का अवसर मिलेगा, ऐसा हमारा अनुभव रहा है। ये सारी कथाएँ पुराणों से ली गई हैं। नक्षत्रों के बारे में वेदों तथा पुराणों में चर्चा है। किन्तु राशियों का वर्णन मात्र पुराणों में है।

राशियों की चर्चा हम बाद में करेंगे। आइये देखें ज्योतिष शास्त्र के लिए प्रासंगिक विष्णु पुराण में पृथ्वी का वर्णन कैसे किया गया है।

विष्णु पुराण के द्वितीय अंश के द्वितीय अध्याय में मैत्रेय ऋषि पराशर ऋषि से पूछते हैं—

''कथितो भवता ब्रहमन्सर्गः स्वायम्भुवश्च मे।
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वतः सकलं मण्डलं भुवः।।''

अर्थात्, 'हे ब्रह्मण् ! आपने मुझसे मनु के वंश का वर्णन किया। अब मैं सारी पृथ्वी मंडल के बारे में जानना चाहता हूं।'

इस पर महर्षि पराशर जी विस्तार से पृथ्वी मण्डल मे बारे में बताते हैं। कालान्तर में भूगोल प्रायः वैसा नहीं रह गया है किन्तु विष्णु पुराण पढ़ कर कुछ सीमा तक भारत वर्ष का ठीक–ठाक सा बोध हो जाता है। ऋषि पराशर कहते हैं कि विस्तारपूर्वक इस प्रश्न का उत्तर सौ वर्षों में भी नहीं दिया जा सकता। फिर भी संक्षेप में वर्णन सुनो।

जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर नाम के सात द्वीप हैं जो क्रमशः लवण (खारा पानी), इक्षु (गन्ने) रस, मदिरा, घृत, दधि (दही), दुग्ध (दूध) और मीठे जल के सात समुद्रों से घिरे हुए हैं। जम्बू द्वीप इन सबों के मध्य में है और उसके बीचों–बीच सुवर्णमय सुमेरू पर्वत है। इसकी ऊँचाई चौरासी हज़ार योजन है। इसका ऊपरी तथा निचला हिस्सा क्रमशः बत्तीस तथा सोलह हज़ार योजन है। इस प्रकार ये पर्वत इस पृथिवी रूपी कमल की कर्णिका (कोश) के समान हैं। सुमेरू पर्वत के दक्षिण की ओर भारत वर्ष है। वर्ष शब्द का एक अर्थ भूमि खण्ड भी होता है। पहले भारतवर्ष का नाम हिम वर्ष था, जिसके स्वामी थे महात्मा नाभि। उनकी पत्नी का नाम था मेरू देवी। इंन दोनों की अत्यन्त कान्तिमय सन्तान का नाम था भरत। इन्हीं भरत के नाम से सुमेरू के दक्षिण की ओर के वर्ष का नाम भारतवर्ष पड़ा। (एक अन्य कथा के अनुसार दुष्यन्त और शकुन्तला के अत्यन्त प्रतापी पुत्र का नाम भी भरत था, जिनके कारण इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ।)

ऋषि पराशर आगे भारत वर्ष की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इसी देश में पुण्य कर्मों के द्वारा मनुष्य स्वर्ग या मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। इसी देश में पाप कर्म करने पर मनुष्य नरक या तिर्यग्योनि में पड़ते हैं। पृथ्वी में यहां के सिवाय मनुष्य के लिए कहीं और भी कर्म करने का विधान नहीं है। इसी भारतवर्ष में ही सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि नाम के चार युग हैं, अन्यत्र कहीं नहीं। देवता भी निरन्तर यही गान करते रहते हैं कि जिन लोगों ने स्वर्ग तथा अपवर्ग (नीचे के वर्ग जैसे नरक आदि) के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं। पता नहीं जिनसे हमें स्वर्ग मिला है, उन कर्मों के क्षय होने के कारण, हम कहां जन्म ग्रहण करेंगे; धन्य तो वे ही मनुष्य हैं जो भारत वर्ष में उत्पन्न होकर इन्द्रियों की शक्ति से हीन नहीं हुए हैं। अर्थात् मानव योनि में जन्म लेने के कारण हम उचित कर्म करके अपना ईहलोक और परलोक, दोनों सुधार सकते हैं।

सुमेरू के पूर्व, पश्चिम और उत्तर में क्रमशः भद्रअश्व, केतुमाला तथा उत्तरकुरू प्रदेश हैं, दक्षिण में तो भारत वर्ष है ही। मत्स्य पुराण में इन चारों प्रदेशों का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। भद्रअश्व का तात्पर्य है शुभ या अच्छा घोड़ा। चीन एवं उसके आसपास के देशों में ड्रैगन को बड़ा महत्त्व दिया जाता है धर्म में, आख्यानों में तथा कलाकृतियों में भी। ड्रैगन घोड़े जैसा ही दिखता है। कहीं भद्रअश्व प्रदेश आज का दक्षिण पूर्व एशिया क्षेत्र तो नहीं ?

मेरू के पश्चिम में वंकशु नदी का प्रदेश केतुमाला कहा गया। यह आज का पश्चिमी एशिया का हिस्सा हो सकता है।

इसी प्रकार उत्तरकुरू के हिमालय से लेकर उत्तरी महासागर तक का क्षेत्र होने की संभावना बहुत अधिक है। मेरू के बारे में पुराणों में कहा गया है कि वह ठीक वैसा ही है जैसे चार मुख वाले प्रजापति ब्रह्मा। पूर्व का मुख ब्राह्मणत्व का है, बिल्कुल श्वेत। दक्षिण की ओर का मुख वनिज या वैश्य चरित्र, पीले रंग का है। उत्तर का मुख लाल वर्ण और क्षत्रिय चरित्र वाला है तथा पश्चिम का मुख काले रंग तथा शूद्र वर्ण का है। सुमेरू का केन्द्र इलावर्त इला की कथा गोचर फल दर्पण में विस्तार से आयी है) कहा जाता है। भारत वर्ष के सर्व गुण सम्पन्न तथा सर्वश्रेष्ठ होने की चर्चा तो पुराणों में अटी पड़ी है।

पृथिव्यां भारतं वर्ष कर्मभूमिरूदाहृता।

(ब्रह्म पुराण, 27.2)

देहं लब्ध्वा विवेकाढ्यं द्विजत्वं च विशेषतः।
तत्रपि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम्।।

(अध्यात्म रामायण, 6.4.51)

न तत्रपि भारतं वर्ष कर्मक्षेत्रमुशन्ति ह।

(देवी भागवत, 8.7.34)

प्रयाति कर्मभूर्ब्रह्मन् नान्यलोकेषु विद्यते।

(मार्कण्डेय, 57.62).

भारतं नाम यद्वर्षं दक्षिणेन मयोदितम्।
तत् कर्मभूमिर्नान्यत्र संप्राप्तिः पुण्यपापयोः।
एतत् प्रधनं विज्ञेयं यत्र सर्व प्रतिष्ठितम्।।

(मार्कण्डेय, 55, 21-22).

जाम्बये भारतं वर्ष तीर्थ त्रैलोक्यविश्रुतम्।

कर्मभूमिर्यतः पुत्र तस्मात् तीर्थ तदुच्यते।

(ब्रह्म पुराण, 70.21).

अभिजितं संपूजितं यस्माद् भारतं बहु पुण्यदम।
कर्मभूमिरतो देवैवर्ष तस्मात्प्रकीर्तितम्।।

(ब्रह्म पुराण, 79.24)

एक विशेष बात जो उभर कर सामने आती है–भारत वर्ष ही कर्मभूमि है। कई मनीषियों का कथन है कि यह भारत वर्ष अपने आप कर्म भूमि नहीं बन गयी। अनन्त ऋषियों की सैकड़ों वर्षों की साधना का प्रतिफल है यह। भारतवर्ष को कर्मभूमि मान कर कर्त्तव्यों का पालन करने वाले ही स्वर्ग जाकर सुख भोगते हैं इसलिए स्वर्ग का नाम पड़ा भोग भूमि। जिन्होंने कर्मभूमि की चर्चा की है, वही कर्मफल की चर्चा भी करते हैं। उन्होंने ही कर्म और कर्मफल के सिद्धान्त बनाये हैं। कर्मों की गति, कर्मफल और कर्मफल का काल–ये सारे विषय ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र हैं। जो कर्मभूमि है, जहां कर्मफल प्राप्त होते हैं, उस प्रदेश के अतिरिक्त क्या कोई अन्य स्थान भी हो सकता है जहां कर्म और कर्मफल के सम्बन्धों की व्याख्या करने वाले महान शास्त्र ज्योतिष का अवतरण हुआ हो ? भारत वर्ष ही ज्योतिष शास्त्र का उद्गम स्थल है। ज्योतिष शास्त्र की प्रत्येक शाखा/प्रशाखा यहीं से फूटी है–ज्योतिष शास्त्र वेदांग है – वेदों का नेत्र। वेद स्वयं भगवान के वचन हैं। इसलिए ज्योतिष शास्त्र ईश्वरीय गुणों से भरा हुआ, आत्मज्ञान का सहज और सुन्दर मार्ग है।

ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से हम जीवन की बहुत सी गुत्थियां सुलझा सकते हैं–कर्मफल के बारे में जान सकते हैं। आइये, एक महान ग्रन्थ कर्म विपाक संहिता से थोड़ा परिचय करते हैं। कर्म विपाक संहिता मूलतः माता पार्वती तथा देवाधिदेव महादेव के वार्तालाप के रूप में लिखी गयी है।

महादेव जी कहते हैं, "हे पार्वती, संसार में उत्पन्न सभी जीव सर्वदा कर्मों को करते रहते हैं अतः देवता या मनुष्य सभी अपने कर्मों के फल भोगते हैं। मनुष्य को पाप और पुण्य दोनों भोगने पड़ते हैं जो भोगने से क्षय भी हो जाते हैं। पुण्य अथवा पाप का सुख–दुख रूपी फल बिना भोगे मनुष्य इससे छुटकारा नहीं पाता। कारण, कि भोग से ही पुण्य तथा पाप का क्षय होता है। सभी प्राणियों की तुलना में मनुष्यों को विशेष रूप से कर्म फल के भोग का पता चलता है। इनके तीन प्रकार के (प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण) कर्म होते हैं।"

भगवान शंकर कर्म विपाक संहिता में विशेष रूप से संचित कर्मों की व्याख्या करते हैं क्योंकि प्रारब्ध तो विस्तृत तथा अनेक जन्मों के कर्मों पर आधारित् हैं और वर्तमान दिख ही रहा है।

इसके बाद भगवान शंकर अलग–अलग नक्षत्रों के अलग–अलग चरणों में उत्पन्न लोगों के पूर्व जन्म के आख्यान बताते हैं। स्थानाभाव के कारण यहां सारी पुस्तक की चर्चा करना संभव नहीं है।

कर्म के बारे में भगवान शिव कहते हैं कि उत्तम, मध्यम और अधम कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है और उनके शुभ, मध्यम और निकृष्ट फल प्राप्त होते हैं। उत्तम, मध्यम तथा अधम कर्मों के फल क्रमशः स्वर्ग, पृथ्वी और नागलोक तथा विविध नरकों में भोगने पड़ते हैं। महादेव बताते हैं कि इस जन्म में होने वाले रोगों का कारण पूर्व जन्मों के अधम कर्म हैं। यही बात पराशर ऋषि भी मैत्रेय से हुई चर्चा में बार–बार बताते हैं। इस पुस्तक के अध्याय संख्या 10 में कर्म सिद्धान्त की चर्चा आगे की गयी है।

अध्याय 4

समन्वयकारी ज्योतिष शास्त्र

भारत भूमि की एक विशेषता है, कि यहां का प्राचीन साहित्य दर्शन के सूत्रों से अटा पड़ा है। ऐसे सुन्दर और शाश्वत सत्य हमारे पूर्वज कह गये हैं, जो सदा–सदा हमारा मार्गदर्शन करते रहते हैं। इनमें से कुछ को एक बार फिर से हम याद करना चाहेंगे।

मनुष्य ही एकमात्र कर्मयोनि है, यद्यपि देवता, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, ये सब कर्म करने में मनुष्यों से कहीं अधिक समर्थ और बुद्धिमान हैं। आइये, सबसे पहले उच्च योनि के प्राणियों को देखते हैं। उच्च योनि से तात्पर्य है भोग योनि। देवतादि भोग योनि के प्राणी कहे गये। बुद्धि उनमें मनुष्य से अवश्य अधिक है परन्तु उनको प्रकृति ने स्थूल शरीर नहीं दिया है। धर्माधर्म के लिए मात्र स्थूल देह आवश्यक नहीं है, यह भी आवश्यक है कि वह कर्म पृथ्वी पर ही किया जाये। इसी कारण राजा बलि को भी यज्ञ करने के लिए पृथ्वी पर आना पड़ा। देवता, दैत्य या उपदेवता कर्म तभी कर सकते हैं जब वे पृथ्वी पर मनुष्य रूप में आकर रहें। देवलोकादि 'भोगलोक' हैं वहां जो देह प्राप्त होते हैं, वे भोग देह हैं। उनमें नवीन कर्म संस्कार ग्रहण करने की क्षमता नहीं होती। एक बात और समझने की है–पशु–पक्षी, वृक्ष और लताएं तथा नारकीय प्राणी भी सबके–सब अपने पाप काट कर ऊपर की ओर बढ़ रहे हैं–इनके पाप का क्षय हो रहा है, इसलिए वे विकासोन्मुख हैं। दूसरी ओर देवता और अन्य उच्च लोकों के जीव अपने पुण्य का फल भोगते हुए उसे कम करते जा रहे हैं। वे नीचे गिरने वाले हैं क्योंकि उनका पुण्य कभी न कभी खत्म हो ही जायेगा। इसलिए भी ये पतनोन्मुख हैं क्योंकि उन लोकों में तो कर्म करने का विधान ही नहीं हैं। इन दोनों से बिल्कुल अलग है मानव जीवन। मानव जैसे कर्म

करता है, वैसे ही फल पाता है, क्योंकि वह कर्मयोनि का जीव है। वह शुभ कर्म करता है तो उत्थान के मार्ग पर चलता है और अगर बुरे कर्म करे तो पतन के गर्त में गिरता जाता है। एक बात और गौर करने वाली है। सारे पशु–पक्षी कीट तक, अपने जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक संस्कार माता के पेट से ही लेकर आते हैं। बन्दर के बच्चे को पेड़ पर चढ़ना और बत्तख के बच्चे को तैरना कोई नहीं सिखाता। ये सब भोग योनि के प्राणी हैं, अतः अपनी योनि के भोगों को भोगने के लिए आवश्यक ज्ञान देकर ही प्रकृति उन्हें भेजती है। मनुष्य के बच्चे की स्थिति सर्वथा भिन्न है। उसे प्रत्येक बात, भाषा, भोजन, रहन–सहन, वृक्ष पर चढ़ना, पानी में तैरना आदि सीखना पड़ता है। ये कर्म भी वह उन्हीं से सीख पाता है, जिनसे उसका पिछले जन्मों का ऋणानुबन्धन हो। इस प्रकार मानव ही कर्मयोनि का प्राणी है, अन्य कोई नहीं तथा उसका स्वभाव मात्र है, कर्म करना। जब तक मनुष्य इस शरीर में है, तब तक वह कर्म करेगा ही, शरीर साथ दे तो कायिक, शरीर अशक्त हो जाये पर बोली रह जाये तो वाचिक और पूरा शरीर लुंज भी हो जाये पर मन सही रहे तो मानसिक। सामान्यतः तो मनुष्य तीनों स्तर पर कर्मरत रहते ही हैं।

दूसरी बात है कि प्रत्येक क्रिया एक प्रतिक्रिया का कारण बनती है। अर्थात् जो कुछ होगा, किया जायेगा, उसका फल अवश्य प्राप्त होगा–भौतिक जगत में क्रिया और प्रतिक्रिया प्रायः बिना अधिक अन्तराल के घटित होती हैं। जैसे बिजली का स्विच दबाना क्रिया है तो बल्ब का जल जाना या पंखे का चलने लगना, प्रतिक्रिया। ये दोनों घटनाएँ प्रायः एक साथ हो जाती हैं। वैदिक शास्त्र में भी कर्म और कर्म–फल का सम्बन्ध अभिन्न है। इसके कुछ शाश्वत नियम हैं। जिन्हें नीचे लिखा जा रहा है।

1. कर्मफल प्रायः कर्त्तव्य के अहंकार से होता है तथा
2. कर्मफल कर्ता को ही भोगना पड़ता है।

ये सामान्य नियम है किन्तु सैंकड़ों नियम–उपनियम बताते हैं कि कर्त्ता, देश, काल, क्रिया, वस्तु, उपकरण आदि की प्रधानता से कर्मफल में थोड़ा परिवर्तन भी संभव है।

कर्मफल के अनेक भागीदार होते हैं– किन्तु इनमें से माता–पिता, पुत्र/पुत्री, जीवन साथी, देश का शासक और गुरु, इन्हें चाहे कर्ता के कर्म का पता भी न हो, ये फल का भाग अवश्य पाते हैं। इसी प्रकार कर्म का आदेश देने वाले, उसका समर्थन, प्रशंसा, निंदा या विरोध करने वाले भी कर्म का फल पाते हैं। इसलिए भगवद् गीता के चतुर्थ अध्याय के सत्रहवें श्लोक में कहा गया है, **"गहना**

कर्मणोगति'', कर्म की गति बहुत जटिल है–कर्म के फल कब, कहां और कैसे प्राप्त होंगे इसका विशद और सम्यक वर्णन ज्योतिष शास्त्र में ही है। मानव की स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह अपना भविष्य जान ले। यह बात भी उतनी ही सही है कि व्यक्ति को यदि भविष्य का पूरा–पूरा पता चल जाये तो जीवन ही नीरस हो जाये। कर्म की दिशा बदल जाये, कर्मफल का सिद्धान्त परिवर्तित हो जाये। इसलिए प्रकृति के इतने बड़े खेल के रहस्य का पूरा ज्ञान हो जाना न तो संभव है और न उचित ही। एक निश्चित सीमा के अन्दर रहते हुए ज्योतिष शास्त्र भविष्य का एक ऐसा सच्चा खाका तैयार कर ही देता है जिससे जीवन के पथ पर व्यवस्थित रूप में बढ़ना संभव हो जाता है। आइये, एक और आधारभूत सत्य को फिर से याद करें। जीवन समन्वय का दूसरा नाम है। जिस जीवन में वातावरण, परिवार, परिवेश, इच्छा, वासना, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समन्वय हो गया हो, वह जीवन सफल माना जाना चाहिए। जैसे सुन्दर संगीत में हर सुर अपने आप में तथा अन्य सुरों के साथ समन्वय में रहता है, वैसे ही जीवन के सारे तत्त्व, शरीर, विचार और भावना आदि के स्तर पर समन्वय में रहें तो जीवन सार्थक हो जाये। ज्योतिष शास्त्र जीवन के हर क्षेत्र में समन्वय लाता है।

हम पहले कह आये हैं कि ज्योतिष वेदांग दरअसल सम्पूर्ण विज्ञान से भी आगे बढ़ा हुआ महान समन्वयकारी शास्त्र है– जो इसी भारत भूमि में फला–फूला और विकसित हुआ क्योंकि यह कर्म सिद्धान्त पर आधारित है और भारतवर्ष ही कर्मभूमि है। भारतवर्ष कर्मभूमि यूं ही नहीं बन गया, अनगिनत ऋषियों ने अपने निष्काम तप से इसी भूमि को कर्मभूमि बनाया है, इसी भूखण्ड पर सारे अवतार आये हैं। भारत ही एक अकेला देश है जहां एक निश्चित समय में, एक विशेष ग्रह संयोजन के आधार पर लाखों करोड़ों लोग तीर्थाटन करते हैं। शिवपुराण के अनुसार जब गुरु, वृषभ और सूर्य कुंभ राशि में हों तो गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम स्थल पर स्नान करना अत्यन्त पुण्यकारक कहा गया है। इसी प्रकार जब गुरु, सिंह और सूर्य कुंभ राशि में आयें तो स्नान करने का तीर्थ बताया गया है उत्तर और दक्षिण भारत के मध्य स्थित गोदावरी में।

ये सारे स्नान, तीर्थ आदि एक निश्चित सोच के तहत निर्धारित किये गये थे। पूरे देश को एक सूत्र में बांधने का काम करते रहे हैं ये तीर्थ और ये विशेष पर्व, जिससे ग्रहों की एक निश्चित स्थिति आने पर उसका विशेषतम लाभ मिल सके। एक साथ प्रार्थना करके, सामूहिक रूप से जीवन को उर्ध्वगामी बनाया जा सके–बिना किसी स्वार्थ के, सबों के हितों के लिए, सबों की प्रगति के लिए, आत्मबोध के लिए तथा आत्मोन्नति के लिए भी।

आत्मबोध की दिशा में पहला पग है कि हमें अपनी अपेक्षाएं अपनी योग्यताओं के अनुरूप ही रखें। अपनी सीमाएं पता हों तथा अपनी विशेषताएं भी, तो अपेक्षाओं की सीमा अपने–आप तय हो जाती हैं–ज्योतिष शास्त्र इस समन्वय की प्रक्रिया में बड़ा सहायक होता है। ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता भी यही है–जीवन में समन्वय का मीठा सुर सदा बजता रहे।

किसी भी कुण्डली का दशम भाव कर्म भाव कहलाता है और एकादश भाव कर्मफल। आइये, एक सुप्रसिद्ध कुण्डली देखते हैं, जहाँ जातक की अपेक्षाओं और उसकी संभावनाओं का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। जातक हैं अमेरिका जैसे महान देश के लगातार दो बार राष्ट्रपति रह चुके डी.डी. आइजनहावर।

जातक थे द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मित्रदेशों की तीस लाख सेना के नायक, जिनके नेतृत्व में जर्मनी पर विजय प्राप्त करके विश्व का इतिहास बदल दिया गया। देखते हैं इनकी प्रतिभा और संभावनाओं में इनके जीवन में समन्वय कैसे होते गये। पहले एक दृष्टि–इनकी कुण्डली पर डालते हैं। विशेषताएं देखिए–

जन्मांग

नवांश

(i) लग्न तथा सूर्य दोनों वर्गोत्तम हैं।

(ii) शनि से प्रारंभ करके गुरु तक सातों ग्रह लगातार घरों में (छठे से एकादश तक) स्थित हैं।

(iii) बलशाली मंगल दशम भाव में दिग्बली हैं।

(iv) शनि को छोड़ कर प्रत्येक भाव के स्वामी अपने भाव से आगे हैं। द्वितीयेश मंगल नौ भाव, तृतीयेश शुक्र सात भाव, चतुर्थेश बुध चार भाव तथा पंचमेश चन्द्रमा भी अपने भाव से चार भाव आगे हैं। षष्ठेश सूर्य तीन भाव आगे,

सप्तमेश बुध तो उच्च के ही हैं, अष्टमेश शुक्र, नवमेश मंगल और दशमेश गुरु भी दो–दो भाव आगे हैं।

(v) अधिकांश ग्रह प्रकाश पक्ष (सप्तम भाव से लग्न) में हैं।

(vi) द्वादशेश शनि षष्टम भाव में (विमल योग) तथा षष्ठेश सूर्य अष्टम भाव में (हर्ष योग) बैठकर दो–दो विपरीत राजयोग बना रहे हैं।

(vii) गजकेसरी योग भी है यद्यपि यह अष्टम भाव में बैठे चन्द्रमा से बन रहा है।

(viii) यद्यपि सूर्य नीच के हैं फिर भी वर्गोत्तम हैं। इसी प्रकार नीच के गुरु भी नीचभंग राजयोग बना रहे हैं।

(ix) सूर्य के आगे तथा पीछे शुभ ग्रहों के कारण वेसी, वोशि और दुरधरा योग भी बन रहे हैं।

अब दशम भाव में बैठे द्वितीयेश तथा नवमेश मंगल को देखते हैं जो मित्र गुरु की राशि में बैठ कर दिग्बली हैं।

महादेव 'जातक तत्त्व' के सप्तम विवेक एकादश श्लोक में कहते है, **"भौमे सबले सेनापतिः"** अर्थात् अगर मंगल मजबूत हो. तो जातक सेनापति होता है। देखिये ज्योतिष विज्ञान की सत्यता! आइजनहावर के दस पुश्तों में शायद किसी ने फौज का मुंह तक न देखा होगा लेकिन बलशाली मंगल ने उन्हें विश्व का सर्वकालीन और सर्वाधिक चर्चित सेनापति बना दिया।

अब समन्वय देखिये। जन्मकालीन दशा थी राहु की–शेष दशा थी 8 वर्षों से कुछ कम। इसके बाद नीच भंग राजयोग देनेवाले दशमेश और लग्नेश गुरु की 16 वर्षों की दशा आ गयी। इस दशा ने जीवन को नयी दिशा दी–फिर विपरीत राजयोग कारक एकोदशेश तथा द्वादशेश शनि की 19 वर्षों की दशा आ गयी। तब तक जातक की आयु 43 वर्ष के आसपास की हो गयी थी। कुण्डली काफी सशक्त होने के बावजूद 45 वर्ष की आयु तक आइजनहावर फौज के एक सामान्य मेजर के पद पर काम करते रहे। लेकिन तब तक इनके ग्रह इनके मन में इनकी प्रतिभा के प्रति विश्वास देते रहे, समन्वय करते रहे। एक बात याद रखने की है–यह दशा शनि की रही थी। शनि–जो सभी ग्रहों में सबसे सख्त मिजाज माने जाते हैं, पूरी परीक्षाएं लेने और कसौटी पर अच्छी तरह परखने के बाद ही ये फल देते हैं। समझने वाली दूसरी बात यह है कि संभावनाओं से भरी कुण्डली के स्वामी के मन में कुछ नया और अच्छा करके आकाश चूमने की आकांक्षाएं उठती तो होंगी ही। सामान्य व्यक्ति ऐसी बलवती इच्छाओं से डगमगा जाये। अगर उन पर नियंत्रण न रख सके तो

असीम क्षमताओं के रहते हुए भी सही निर्णय न ले पाता है ऐसा जातक! ऐसी सशक्त कुण्डली को अगर उम्र के सही मोड़ पर सही दिशा का सहारा मिलता जाये तो क्या कहने ! हाँ, तो एकादशेश/द्वादशेश शनि आइजनहावर को तपाते रहे, उनकी क्षमताओं पर सान चढ़ती रही, आकांक्षाएं बलवती होती गयीं और शनि के बाद सप्तम भाव में बैठे उच्च के सप्तमेश बुध की दशा आते ही जैसे दुनिया ही बदल गयी। सप्तम भाव में बैठा उच्च का सप्तमेश उन्हें पंचमहापुरुष योगों में भद्र योग दे रहा है। इसलिए एक दूसरे से केन्द्र में बैठे, बुध में मंगल की अन्तरदशा आते ही, वे दुनिया की सबसे बड़ी सेना के महानायक बन गये। वैसे अधिकारी भी आइजनहावर के मातहत काम करने को बाध्य हुए जो कभी आइजनहावर से वरिष्ठ रह चुके थे।

एक बात और भी देखने की है। लग्न और चन्द्रमा दोनों से मंगल द्वितीयेश हैं—द्वितीय भाव है बोलने की क्षमता का कारक। बुध की अन्तरदशा आने पर बुध, जो बोलने की कला के कारक हैं, आइजनहावर के भाषण सुनने को लोग सांस रोक कर प्रतीक्षा करते थे। उनका बोला गया प्रत्येक शब्द वैसा ही मनोहारी होता था जैसे चातक के लिये स्वाति की पहली बूंद! कर्मफल जिस कर्म भाव (दशम भाव) से प्राप्त होते हैं वहां अग्नितत्त्व की राशि है धनु और उसमें बैठे हैं अग्नि तत्त्व के ग्रह मंगल। निश्चित रूप से यह सेना के सर्वोच्च पद की ओर ही इंगित करता है। गुरु दशमेश हैं, गुरु ज्ञान के कारक हैं। दशमेश के पंचमेश चन्द्रमा से केन्द्र में होने के कारण गजकेसरी योग बन रहा है। गुरु पंचम भाव (मन) तथा सप्तम भाव (उच्च पद) दोनों को देख रहे हैं। अर्थात् अपनी सद्बुद्धि और ज्ञान से जातक को उच्च पद की प्राप्ति हुई। नवमेश मंगल दशम भाव में हैं और तृतीयेश (लगन, मेहनत, निष्ठा) शुक्र नवम भाव में—अतः इनकी स्वयं की लगन और निष्ठा के अतिरिक्त बहादुरी और हिम्मत ने भी इन्हें आगे बढ़ाया।

ऐसी कुण्डलियां यदा–कदा ही देखने को मिलती हैं जिनके कर्मफल इतने शक्तिशाली होते हैं—एक प्रभा मण्डल बना देते हैं जातक के चारों ओर, जिसका परिणाम अत्यन्त सुखद होता है। ये सारे कर्मफल मंगल के माध्यम से प्राप्त हुए जो दशम भाव में होने के कारण मध्य आकाश में स्थित थे। अपने कर्म फलों से अच्छा समन्वय कैसे हुआ, इसे एक बार फिर देखते हैं। फौज की नौकरी के कारण जातक ने ऐसे कर्म किये जिनके फल ऊर्ध्वगामी ही हो सकते थे। केतु की महादशा में दुनिया के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति के पद पर आसीन हुए आइजनहावर। केतु की दशा इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि वे मंगल की राशि में होने के कारण मंगल जैसे ही शक्तिशाली हैं।

समझने की बात है कि प्रत्येक व्यक्ति को कुण्डली में बताये गये तथ्यों के अनुरूप अपने कर्म रखने चाहिए, जिससे कर्म और कर्मफल में समन्वय बना रहे। इसके बाद दशाएं आती और जाती रहेंगी जीवन में ज्वार–भाटा के क्रम आते ही रहेंगे। कभी बड़ा सम्मान मिलेगा तो कभी उपेक्षा और तिरस्कार भी। सुख पाकर अभिमान से फूलना और विपत्ति में घबरा कर हाथ पांव फूलने देना, दोनों ही अतिरेक अवस्थाएं हैं। इन दोनों परिस्थितियों में मानसिक सन्तुलन बनाये रखने वाला समन्वयकारी है ज्योतिष शास्त्र। जो दरवाजा खींचने से खुले, उसे धकेलिये मत और जो सिर्फ धकेलने से खुले, वैसे दरवाजे को खींचने का क्या लाभ ? इसलिए अपनी ऊर्जा को सही कर्मों में लगाइये, सही समय पर। ज्योतिष शास्त्र का यही ध्येय है, आपकी आकांक्षाएं आपकी क्षमता के अनुरूप रहें–सुख और दुःख दोनों अवस्थाओं में आप स्थितप्रज्ञ रहें और जीवन समन्वय की मिसाल बन जाये–यही है महान समन्वयकारी ज्योतिष शास्त्र का औचित्य!

अध्याय 5

ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान का सच्चा अधिकारी

महर्षि पराशर अपने प्रिय शिष्य मैत्रेय को ज्योतिष शास्त्र की गूढ़ता से परिचित तो कराते ही जाते हैं, बीच–बीच में, उत्तरों के मध्य में, पराशर ऋषि कुछ अत्यन्त रोचक और ज्ञानवर्द्धक बातें भी बताते जाते हैं। ज्योतिष शास्त्र वह खीर नहीं जो हर कोई खा जाये, इसकी याद मैत्रेय को पराशर ऋषि बार–बार दिलाते रहते हैं। वृहद पराशर होरा शास्त्र नाम के संग्रह में तीन बार महर्षि पराशर ऋषि मैत्रेय को सावधान करते हैं कि इस वेदांग के ज्ञान को पाने का सही अधिकारी कौन है। महर्षि पराशर की उक्ति के अनुसार यह अमृत सभी पात्रों में उड़ेला भी नहीं जा सकता। अपनी वार्ता क्रम के प्रथम चरण में ही पराशर मुनि कहते हैं– (सृष्टिक्रम कथनाध्याय श्लोक 7, 8)

शान्ताय गुरुभक्ताय सर्वदा सत्यवादिने। आस्तिकाय प्रदातव्यं ततः श्रेयो ह्यवास्यति।
न देतं परशिष्याय नास्तिकाय शठाय वा। दत्ते प्रतिदिनं दुःखं जायते नात्र संशयः।।

अर्थात्, "इस शास्त्र का ज्ञान उसी को देना चाहिये जो शान्त चित्त का, गुरु में भक्ति रखने वाला तथा सदा सच बोलने वाला हो। साथ ही ज्ञान पाने की इच्छा रखने वाले को आस्तिक (ज्योतिष शास्त्र में, ईश्वर में आस्था रखने वाला) होना चाहिये। इसी से शिक्षक को श्रेष्ठ कल्याण प्राप्त होता है। विपरीततः यह ज्ञान परशिष्य (ऐसा व्यक्ति जिसकी श्रद्धा ज्योतिष सिखाने वाले गुरु में न हो), नास्तिक अथवा मूर्ख को देने वाले शिक्षक का प्रत्येक दिन निस्सन्देह दुःख में ही बीतता है।"

अर्थात् पराशर ऋषि ज्योतिष ज्ञान की चर्चा प्रारंभ करने से पहले ही लक्ष्मण रेखा खींच देते हैं। अब एक और बानगी देखिये, ऋषि पराशर उपसंहाराध्याय में एक बार फिर से प्रायः यही बातें दुहराते हुए, मैत्रेय को, चेतावनी सी देते हैं,

**''नासूयकाय दातव्यं परनिन्निन्दारताय वा। जडाय दुर्विनीताय नाज्ञाताय कदाचन।।
देयामेतत् सुशीलाय भक्ताय सत्यवादिने। मेधाविने विनीताय सम्यग् ज्ञातकुलाय च।।
पुण्यदं ज्योतिषं शास्त्रमग्रयं वेदाङ्गमुत्तमम्।।**

अर्थात्, 'हे मैत्रेय, यह ज्ञान (ज्योतिष शास्त्र) असूयक (ईर्ष्यालु), दूसरों की निन्दा करने वाले, मूर्ख या ऐसे व्यक्ति को जिसमें ब्रिनय का अभाव हो, कभी नहीं देना। हां, जो सुशीत हैं, भक्त हैं (ईश्वर तथा ज्योतिष शास्त्र में श्रद्धा रखने वाले) सदा सच बोलते हैं, मेधावी (बुद्धिमान) और विनीत (नम्र) हैं तथा जिनके कुल का आपको ज्ञान है (अर्थात् परिचित व्यक्ति, जो इस ज्ञान का दुरुपयोग नहीं करेगा) वैसे ही लोगों को यह पुण्यों से भरा शास्त्र ज्योतिष, जो वेदांगों में उत्तम है, सिखलाना चाहिये।'

याद रखने की बात है कि सारा उपदेश देने के बाद, ज्योतिषशास्त्र की विस्तृत जानकारी देने के उपरान्त, उपसंहार में दोबारा याद दिलाते हैं महर्षि पराशर जिससे मैत्रेय से चूक न हो जाये। कुपात्रों के हाथों में यह ज्ञान पड़कर नष्ट–भ्रष्ट न हो जाये। तीसरी बार स्पष्टबलाध्यायः में पराशर ऋषि फलकथनाधिकारी (अर्थात् होरा शास्त्र का फल कहने के अधिकारी) की चर्चा निम्नांकित श्लोकों में करते हैं–

**गणितेषु प्रविणो यः शब्द शास्त्रे कृतश्रमः।
न्यायविद बुद्धिमान देशदिक्कालज्ञो जितेन्द्रियः।।
उहापोह-पटुर्होरा-स्कन्धश्रवण-सम्मतः। मैत्रेय!
सत्यतां याति तस्य वाक्यं न संशयः।।**

आइये, इन श्लोकों का भी अर्थ एक बार जान लें। सफल ज्योतिषी के लिए पहली शर्त कही गयी गणित का सही ज्ञान, जो गणित में प्रवीण हो (गणित की शुद्धि के बिना फलित के निष्फल होने की पूरी संभावना रहती है)। दरअसल पूरा का पूरा फलित जन्म कुण्डली के अतिरिक्त वर्ग कुण्डलियों, दशाओं, ग्रहबलों, अष्टकवर्ग आदि की शुद्धता पर निर्भर करता है। जब तक इनकी शुद्धता के प्रति शत–प्रतिशत आश्वस्त न हो लिया जाये, तब तक फलित की सत्यता की आशा रखना अर्थहीन है। कम्प्यूटर के इस युग में सहज लालसा होती है कि

कष्टकारी गणित के पचड़े में क्यों पड़ा जाये। लेकिन अभी कम्प्यूटर के द्वारा उपलब्ध कराये गये ज्योतिषीय आंकड़ों पर आंख मूंद कर भरोसा करना उचित नहीं। इसलिए गणित की प्रवीणता आज भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

शब्द शास्त्रे कृतश्रमः–ज्योतिषी के पास भाषा समृद्ध होनी चाहिये। सम्प्रेषण की कला, अर्थात् बातचीत, में शब्दों का बहुत महत्व होता है। जो बात कही जाये, वही ठीक–ठीक सुनने वाले तक पहुंचे, तब तो कहने वाले की सार्थकता है अन्यथा अर्थ का अनर्थ बनने में देरी ही कहां लगती हैं। भाषा का ज्ञान न हो, तो ज्योतिषीय सूत्रों को समझना भी टेढ़ी खीर ही है। निश्चित है कि जातक की समस्या को ठीक से समझ कर, उचित ज्योतिषीय सूत्रों के आधार पर, उनका सही समाधान करने वाला ज्योतिषी ही सफल होगा। इसलिए आवश्यक है कि श्रम करके शब्द शास्त्र (भाषा व्याकरण आदि) की जानकारी ली जाये। अर्थात् पहले तो गणित का सम्यक ज्ञान हो, फिर गणना के आधार पर प्राप्त आंकड़ों को सूत्रों के माध्यम से समझ कर व्याख्या करने अथवा समझाने की क्षमता हो। फलित की सफलता के लिए अगला चरण है–

न्यायविद–ज्योतिष के विद्यार्थी प्रायः एक उलझन में पड़ जाते हैं। एक हीं कुण्डली में अलग–अलग ग्रह विपरीत फल बताते हैं, अब ज्योतिषी किसे सही माने, क्योंकि होरा शास्त्र भिन्न–भिन्न परिस्थितियों के लिए भिन्न–भिन्न व्याख्याएँ देता है। तब पराशर ऋषि कहते हैं कि जैसे एक न्यायाधीश अनेक प्रकार की गवाहियां सुनने के बाद निर्णय पर पहुंचता है, उसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की न्यायपूर्वक विवेचना करने के बाद फलादेश कहना चाहिये। न्यायविद बनने के लिए गुरूकृपा आवश्यक है, इसलिये होरा शास्त्र को गुरुमुखविद्या भी कहा गया है। जो गणित और शब्द शास्त्र में पारंगत होकर गुरु कृपा से न्यायविद भी हो गया, उसे मूलतः बुद्धिमान भी होना ही चाहिये, ऐसा कहते हैं महर्षि पराशर ! इसलिये सफल ज्योतिषी के लिए अगला आवश्यक गुण है कि ज्योतिषी जी बुद्धिमान भी हों।

बुद्धिमान–बुद्धिमान से क्या तात्पर्य ? ऐसा व्यक्ति जो अपनी प्रतिभा के विस्तार और ज्ञानार्जन के प्रति सदैव सचेष्ट है, जो अपनी भूल से तो सीखता ही है, दूसरों के अनुभवों को भी आत्मसात कर लेता है। ज्योतिष शास्त्र के ऐसे विद्यार्थी ही बुद्धिमान कहे जाते हैं–शुद्ध बुद्धि तथा अच्छी स्मरण शक्ति बुद्धिमान के लक्षण हैं। अब तो हम गणित और भाषाशास्त्र में प्रवीण हो गये, न्यायविद गुरु ने बना दिया और बुद्धिमान तो मूलतः थे ही, आगे पराशर ऋषि एक अच्छे ज्योतिषी में कौन सा गुण देखना चाहते हैं ? ऋषि पराशर की बताई अगली कड़ी है–

देश दिक्कालज्ञो – अर्थात् देश, दिशा और काल का सम्यक ज्ञान। यह सच भी है, प्रत्येक बीस कोस में (करीब 65 किलो मीटर पर) जहां भाषा बदल जाये और प्रत्येक स्थान की अपनी परम्परा, परिपाटी हो, वहां सभी को एक ही डंडे से कैसे हांका जा सकता है ? सामाज्कि मान्यताएँ देश, दिशा और काल के हिसाब से बदलती रहती हैं। जो सामाजिक मान्यताएं पूरब में सहज ही स्वीकृत हैं, पश्चिम में वे प्रायः उलटी हो जाती हैं। इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण में भी रहन–सहन का बहुत अधिक अन्तर है। पराशर ऋषि कहते हैं कि अच्छा ज्योतिषी देश, काल, दिशा, पात्र आदि का विचार करने के बाद ही फलादेश कहे तो सफल होगा। अब तो गणित, शब्द शास्त्र, न्यायविद, बुद्धिमान, देश, दिशा और काल का जानकार हमारा ज्योतिषी हो गया। आगे अपेक्षित है कि वह जितेन्द्रिय भी हो।

जितेन्द्रिय : ज्योतिष शास्त्र की भारी विडंबना है कि वह जातक की बातें बताने के लिए ज्योतिषी पर निर्भर करता है। इसलिए सही फलादेश के लिए ज्योतिषी का सही व्यक्तित्व उतना ही महत्वूपर्ण हो जाता है, जितना जातक की सही कुण्डली।

जिस ज्योतिषी की कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां उसके वश में रहती हैं, वही राग, द्वेष, ईर्ष्या से परे, जातक के शुभ की कामना करता हुआ, सच्ची भविष्यवाणी कर सकता है, क्योंकि उसका 'स्व' जातक की कुण्डली के आड़े नहीं आता। ज्योतिषी के व्यक्तिगत चरित्र का असर उसकी सोच और समझ पर पड़ता है, जो उसके फलित ज्ञान को अवश्य ही प्रभावित करती है। सच्चा ज्योतिषी अगर जितेन्द्रिय भी हो तभी वह फलित की सही विवेचना कर सकता है। जितेन्द्रिय भी हो गया हमारा ज्योतिषी, आगे पराशर ऋषि अपेक्षा करते हैं कि वह हो–

उहापोहपटु : उहापोह में पटु, अर्थात् किसी भी बात के सभी पहलुओं पर सही प्रकार से विचार करने का सामर्थ्य हो उसमें। न्यायविद होने और उहापोह में पटु होने में थोड़ा अन्तर है। न्यायविद होने से फलित कथन मात्र तथ्यों पर आधारित होता है। उल्टी–सीधी अटकलों पर नहीं। किंतु तथ्य क्या है, इसकी विवचेना उहापोह में निपुण ही कर सकता है। यही सत्य है और यहां तक पहुंचने में सभी पहलुओं पर विचार कर लिया गया है, सभी उपलब्ध तथ्य देख लिये गये हैं, ऐसा सामर्थ्य जिसमें हो, उसे ही कहेंगे उहापोह पटु। अब पराशर ऋषि की सच्चे ज्योतिषी से आखिरी अपेक्षा की ओर आते हैं–

होरा स्कन्ध श्रवण सम्मतः अर्थात्, 'जिसने होरा स्कन्ध को सुनकर अच्छी तरह समझ लिया हो। होरा शास्त्र के दरवाजे पर आने की सीढ़ियां मात्र हैं

गणित, शब्द शास्त्र, न्यायविद, बुद्धिमान, देश दिक्कालज्ञ, जितेन्द्रिय और उहापोह पटु होना। इतनी सारी विशेषताओं से सुसज्जित विद्यार्थी के लिए ही होरा शास्त्र के द्वारा खुलते हैं, जहां उसे सुनकर (उन दिनों पुस्तक की सुविधा तो उपलब्ध थी नहीं और अपेक्षित था कि सुनकर ही होरा शास्त्र याद हो जाये !) होरा शास्त्र की समझ हो जाये।

जो उपर्युक्त गुणों से जितना अधिक लैस होगा, पराशर ऋषि के वचनों के अनुसार, होरा शास्त्र जानना उसके लिए उतना ही सहज होगा। पराशर ऋषि कहते हैं, 'हे मैत्रेय, उपर्युक्त गुणों से सज्जित ऐसे व्यक्ति का फलादेश सदा सत्य होता है जिसे होरा शास्त्र का ज्ञान भी हो।'

भारतीय ज्योतिष शास्त्र की परम्परा में पराशर ऋषि के बाद की कड़ी हैं वराहमिहिर। वराहमिहिर सफल ज्योतिषी के गुणों की चर्चा कुछ इस प्रकार करते हैं–

'शुचिर्दक्षः प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभावान् देशकालवित् सात्विको न पार्षद्भीरुः सहाध्यायिभिरनभिवनीयः कुशलोष्व्यसनी शान्तिक पौष्टिकाभिचार- स्नान विद्याभिज्ञो विबुधार्चन व्रतोपवासनिरतः स्वतन्त्राश्चर्योत्पादित प्रभावः, पण्ष्टाभिणाय्यन्यत्रा दैवात्ययात्। ग्रहगणित संहिता होरा ग्रन्थार्थ वेत्तोति।।३।।

श्री के.एन. राव ने वराहमिहिर द्वारा प्रतिपादित सफल ज्योतिषी के लिए आवश्यक गुणों को बहुत सुन्दर भाषा में पिरोया है जिसका अक्षरशः अनुवाद संभव नहीं। हां, उनमें से कुछ आवश्यक गुण, जो पराशर ऋषि की विवेचना में रह गये हैं, नीचे लिखे जा रहे है–

1. **शुचिता/शुद्धता**–ज्योतिषी का अन्तःकरण शुद्ध हो तो उसमें नैसर्गिक विनम्रता आ जाती है। साथ ही साथ कुण्डली देखने की दृष्टि भी स्पष्ट हो जाती है, कोई संशय नहीं रहता।
2. **आन्तरिक शान्ति और स्थिरता**–ज्योतिषी विपरीत स्थितियों से विचलित न हो, कुण्डली में विपरीत या सर्वनाशी योग देखकर भी अपनी शान्ति न खोये, तभी वह जातक को सही दिशा–निर्देश दे सकेगा।
3. **निर्भयता**–अपने सम्यक ज्ञान के आधार पर किसी सभा में या बड़े से बड़े व्यक्ति के सन्मुख निर्भय होकर सच कहने की क्षमता ज्योतिषी के लिए आवश्यक गुण है।
4. **शकुन का ज्ञान**–ज्योतिषी को होरा शास्त्र के अतिरिक्त प्रकृति के अन्य संकेतों को पढ़ने का सामर्थ्य होना चाहिये, इससे फलित कहने में सहायता मिलती है।

5. **व्यसनमुक्त**—ज्योतिषी को यदि कोई व्यसन लग जाये तो सारा सोना मिट्टी हुआ जानिये। हां, ज्ञान की पिपासा, सत्य का अनुसंधान जैसे व्यसन क्षम्य ही नहीं, अपेक्षित भी है।

ग्रह शान्ति के लिए मन्त्रों का ज्ञान—फलित शास्त्र में आवश्यक है परिहार का ज्ञान। ग्रहों के कारण हो रहे कष्ट तो समझ में आते ही हैं, उन कष्टों के निवारण का उपाय भी ज्योतिषी को आना चाहिये। इसके लिए मन्त्रों की शरण में जाना सर्वश्रेष्ठ होता है, जिसका सही ज्ञान ज्योतिषी को होना आवश्यक है।

अधम क्रियाओं को निष्फल करने का ज्ञान—एक मान्यता है कि कुछ लोग मारण, मोहन, वशीकरण जैसी तांत्रिक क्रियाओं के द्वारा दूसरों को कष्ट पहुंचा सकते हैं—ज्योतिषी को इन क्रियाओं को निष्फल बनाने की विधि भी आनी चाहिये, तभी वह जातक की हर प्रकार से रक्षा/सुरक्षा कर सकेगा।

आध्यात्मिक व्यक्तित्व—ज्योतिषी का जीवन आध्यात्म की नाव पर चले, **''बहुजन हिताय बहुजन सुखाय आत्मबोणाय च''**, सबों का भला हो, मंगल हो तथा मुझे भी आत्मबोध होता रहे, ऐसी भावना जिसके हृदय में रहे, उसकी भविष्यवाणियां अवश्य सफल होती हैं।

उचित चेतावनी देने का सामर्थ्य—अच्छा ज्योतिषी जातक के भले के लिए उचित समय पर सही चेतावनियां देता रहता है। ठकुरसुहाती या लल्लो—चप्पो करने वाले ज्योतिषी का विनाश अवश्यम्भावी है। बिना डराये, बिना कोई भय का वातावरण बनाये, तथ्यपरक चेतावनियां, सावधानियां और परिहार बताना ज्योतिषी के कर्त्तव्य हैं।

ये तो थे ऋषि पराशर और वराहमिहिर के वचन। एक बात बार— बार सामने आती है कि ज्योतिषी की शुचिता, शुद्धता, उसका जितेन्द्रिय होना, आध्यात्मिक चेतना, सदाशयता और उस पर गुरुकृपा होना सबसे आवश्यक है। उसकी सत्यवादिता, सम्यक ज्ञान और हृदय में सबों के लिए दया और करुणा का भाव भी परम आवश्यक है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि उसका ज्योतिष ज्ञान सम्यक हो, दिनानुदिन बढ़ता रहे। वह फलित कहने के साथ—साथ परिहार भी बताता जाये और अपने यजमान की ढाल बन कर रक्षा करे। यह भी आवश्यक है कि हम अपनी परंपराओं की रक्षा करें। आज जब प्रायः पूरा विश्व मानसिक रूप से घोर अशांति की ओर बढ़ रहा है, विज्ञान और तकनीकी ज्ञान जीवन में आनन्द की बजाय शून्यता का बोध कराते जा रहे हैं, एक सच्चा ज्योतिषी ही पग—पग पर साथ देकर इस दुर्गम यात्रा को सरल बना सकता है। संयुक्त

परिवार टूट गये, सच्ची मित्रता अतीत की वस्तु हो गयी, सारे सम्बन्ध स्वार्थ पर आधारित हो गये और ईश्वर में आस्था का अभाव बढ़ता ही जा रहा है तो ऐसे में एक ही प्रकाश की किरण दिखती है जो मानसिक, आध्यात्मिक और संवेदना के तल पर सहायता कर सकती है, इस प्रकाश का स्रोत है सच्चा ज्योतिषी। पहले तो परिवार के पुरोहित, पुर–आगे, हित–कल्याण अर्थात् जो यजमान के परिवार के भविष्य के हित के लिए सदा सचेष्ट रहें) ही ज्योतिषी भी होते थे अतः उन्हें परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की कुण्डली का ज्ञान तथा उनके अन्योन्याश्रय सम्बन्ध का पता रहता था। अतः प्रायः प्रत्येक दिन के नक्षत्र पर आधारित पूजा–पाठ आदि के निर्देश उनसे प्राप्त होते रहते थे। अब वह परम्परा लुप्त प्रायः सी हो गयी है। फिर भी ऐसा परिवेश जनहित में आवश्यक है।

ऊपर जो गुण बताये गये हैं, वे सभी अपेक्षित ही नहीं, आवश्यक हैं। फिर भी यदि ज्योतिष के विद्यार्थी उनमें से कुछ भी अपने–आप में समाहित कर सकें और शेष के लिए सच्चा प्रयास करते रहें तो जीवन में ज्योतिषी कहलाने के सही अधिकारी होंगे, अन्यथा किसी धूर्त, चालबाज, फरेबी और मक्कार या ठग और पाखंडी ज्योतिषी में कोई विशेष अन्तर नहीं रहेगा।

अध्याय 6

ज्योतिष शास्त्र का आधार : नक्षत्र, ग्रह और राशियाँ

ज्योतिष शास्त्र का आधार है नक्षत्र, ग्रह और राशियों की विवेचना। वेदों में 27 नक्षत्रों और नौ ग्रहों की चर्चा की गयी है। अर्थात् आकाश में सूर्य के 360° के पथ को 27 बराबर खण्डों में बांटा गया है, जिसमें प्रत्येक का मान 13°20′ के बराबर है। प्रत्येक खण्ड में कोई एक तारा या कई ताराओं का एक समूह है जिसके आधार पर उस खण्ड को एक नक्षत्र विशेष का नाम दिया गया है। इन नक्षत्रों के स्वामी भी हैं। ये नक्षत्र पुराणों की कथा के अनुसार दक्ष प्रजापति की 27 कन्याएं हैं जिन सबों के पति हैं चन्द्रमा। चन्द्रमा प्रत्येक नक्षत्र के साथ एक पूरा दिन बिताते हैं। इस प्रकार चन्द्रमा प्रायः 27 दिनों में सभी सत्ताईस नक्षत्रों का भोग करते हैं। इस पूरी कथा को हमने अगले अध्याय में बताया है। वहीं हमने सूर्य आदि नौ ग्रहों की कथाएं भी लिखी हैं।

एक बात देखने की है कि वेदों में इन सत्ताईस नक्षत्रों में घूमते (गोचर करते) ग्रहों के फलों की भी चर्चा आती है। वेदों में कहा गया है कि प्राणियों के जन्म से मृत्यु तक सारे दुख–सुख ग्रहों के अधीन होते हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि प्रत्यक्ष फल देने वाले होते हैं। इनमें भी सूर्य प्रधान हैं क्योंकि परब्रह्म परमात्मा अपनी शक्ति (प्रकृति) के द्वारा सर्वप्रथम आकाश और उसके बाद सूर्य की रचना करते हैं।

सूर्य से ही चन्द्र आदि अन्य ग्रहों तथा वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्त्वों की सृष्टि होती है। पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों की सृष्टि, पालन और संहार

के कारण भी सूर्य ही हैं। इसलिए वेद में तो सूर्य को चराचर जगत की आत्मा माना गया है।

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋग्वेद 1/115/1, यजुर्वेद 7/42, अथर्ववेद 13/2/35)
"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम कल्पयत। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमयो स्वः।।"
(ऋग्वेद १०/१६०/३)

देवगुरु बृहस्पति कहते हैं–

"ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना नरावशः कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहाः कर्म फल प्रदाः। सृष्टिरक्षणसंहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः।।"

यह समस्त संसार ग्रहों के अधीन है और मानव तथा काल को भी ग्रहों के अधीन जानना चाहिये। ग्रह ही कर्मफल भी देते हैं। इस प्रकार सृष्टि, संरक्षण और संहार सभी ग्रहों के अनुगामी हैं।

तो ये हुई ग्रहों/ नक्षत्रों की गाथा। जैसा हम पहले बता आये हैं, राशियों की चर्चा वेद में नहीं है। परन्तु वेदों और धर्मशास्त्रों से जो छूट गया है, उस सबकी चर्चा पुराणों में है। आइये, राशियों के ज्ञान के लिए हम वामन पुराण की ओर चलते हैं।

वामन पुराण में चर्चा आती है कि देवर्षि नारद ने विद्वानों में परम श्रेष्ठ पुलस्त्य महर्षि से कई प्रश्न पूछे थे जिनमें एक था–

"श्रूयते च द्विजश्रेष्ठ दक्षस्य दुहिता सती। शंकरस्य प्रिया भार्या बभूव वरवर्णिनी। किमर्थं सा परित्यज्य स्वशरीरं वरानना। जाता हिमवतो गेहे गिरीन्द्रस्य महात्मनः।। पुनश्य देवदेवस्य पत्नीत्वमगच्छुभा। एतं मे संशयं छिन्धि सर्ववित्वं मतोऽसि मे।।"

अर्थात्, 'हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, यह सुना गया है कि दक्ष की पुत्री सती अत्यन्त सुन्दरी और भगवान शंकर की अत्यन्त प्रिय पत्नी थी। ऐसा क्या कारण हुआ कि वे अपना शरीर त्याग कर सारे पर्वतों के राजा हिमवान के घर जन्म लेकर फिर उन्हीं देवों के देव श्रीमहादेव की पत्नी बनी? मेरे इन संशयों को आप दूर करें।'

महर्षि पुलस्त्य कहते हैं, 'शरत्काल बीतने के बाद देवोत्थापनी एकादशी तिथि आ गई थी। केशव प्रभु के जगने पर प्रजापतियों में श्रेष्ठ दक्ष ने यज्ञ किया जिसमें अरुधन्ती सहित वशिष्ठ, अनुसूया सहित अत्रि, धृति सहित कौशिक, अहल्या सहित गौतम, अमाया सहित भरद्वाज, चन्द्रा सहित अंगिरा अर्थात् सभी ऋषियों और मुनियों को सपत्नीक आमंत्रण दिया गया था। धर्म तथा उनकी

पत्नी अहिंसा के अतिरिक्त रोहिणी सहित चन्द्रमा भी बुलाये गये थे। दक्ष ने एक पुत्री सती और जामाता शंकर को छोड़कर सभी देवी–देवताओं, पुत्रियों–जामाताओं आदि को बुलाया था।

नारद जी के इसका कारण पूछने पर पुलस्त्य मुनि कहते हैं कि शंकर जी निश्चय ही ज्येष्ठ (बड़े), श्रेष्ठ, वरिष्ठ और आद्य थे लेकिन उनके क्रपाल धारण करने के कारण ही उनके श्वसुर प्रजापतियों में श्रेष्ठ दक्ष ने उन्हें निमंत्रण नहीं भेजा। सती को जब इसकी सूचना गौतम ऋषि की बेटी जया से मिली तो उन्हें इतना शोक और क्रोध हुआ कि उसके कारण ही वह वहीं भूमि पर गिरकर पञ्चतत्त्व को प्राप्त हो गयी। (नोट : यह आख्यान वामन पुराण में वर्णित है। अन्य कथाओं, यथा रामायण, शिवपुराण आदि में कहा गया है कि जब सती को निमंत्रण नहीं मिला तो वह अकेली पिता के घर गयीं और जब उन्होंने वहां शिव का अपमान होते देखा तो वह सबों को शाप देकर स्वयं जल कर भस्म हो गयीं।) सती की यह अवस्था देखकर जया रोने लगी। उसका हृदय विदारक रुदन सुन कर शंकर जी पधारे और सती को मृत पाकर आपे में न रहे। उनके गणों ने दक्ष के यज्ञ को तहस–नहस कर दिया। भगवान शंकर ने भी घनघोर युद्ध किया। शंकर अपने अर्द्ध भाग से जटाधर तथा अन्य अर्द्धभाग से गगन में शर्व काल रूपी नाम से प्रसिद्ध हुए।

देवर्षि नारद पुलस्त्य मुनि से पूछते हैं कि हे भगवान, आपने अन्तरिक्ष में दिखायी देने वाले भगवान शम्भु को कालरूपी बताया है अब उनके लक्षण और स्वरूप का भी वर्णन करें।

पुलस्त्य ऋषि कहते हैं, "यह समस्त अम्बर व्याप्त करने वाले शंकर जी का स्वरूप सुनो। अश्विनी, भरणी और कृतिका का एक अंश मिल कर मेष राशि बनती है, वह शंकर जी का सर है। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका के स्वामी क्रमशः अश्विनी कुमार, यम और अग्नि हैं। मेष राशि मंगल ग्रह का क्षेत्र है। कृतिका रोहिणी और मृगशिरा के स्वामी क्रमशः अग्नि, ब्रह्मा और चंद्र हैं। कृतिका का तीन हिस्सा, रोहिणी पूरी की पूरी तथा मृगशिरा के आधे हिस्से को मिलाकर जो क्षेत्र बना वह है वृषभ राशि और यह शंकर जी का श्री मुख है। आधी मृगशिरा, पूरी आर्द्रा (आर्द्रा के स्वामी हुए शिव) और अदिति की सन्तान पुनर्वसु के तीन अंश (पुनर्वसु के स्वामी अदिति कहे गये हैं, इसलिए पुनर्वसु को आदित्य भी कहा गया है) मिलकर बुध का क्षेत्र बनाते हैं जिसका नाम मिथुन है और जो शंकर जी की भुजाएं हैं। आदित्य (पुनर्वसु) का एक अंश, पुष्य (पुष्य के स्वामी हैं बृहस्पति) तथा आश्लेषा (स्वामी हैं सर्प) मिल कर कर्क

राशि बनाते हैं जो चन्द्रमा का घर है तथा यह प्रदेश शंकर जी की पीठ/कन्धे हैं। हे ब्राह्मण, पितर नक्षत्र (मघा के स्वामी पितर हैं) भग दैवत्य (पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र के देवता हैं भग, जो सूर्य का ही एक नाम हैं) तथा उत्तर फाल्गुनी का एक अंश (उत्तर फाल्गुनी के स्वामी हैं अर्यमा अर्थात फिर से सूर्य) मिल कर भगवान शंकर का हृदय क्षेत्र बनाते हैं जिस राशि का नाम है सिंह तथा इसके स्वामी स्वयं सूर्य हैं। उत्तर फाल्गुनी के तीन अंश, पाणि (हस्त का अर्थ है पाणि, हस्त के भी देवता हैं सूर्य) तथा चित्रा का आधा अंश (चित्रा के देवता हैं त्वष्टा अर्थात् विश्वकर्मा) मिल कर चन्द्रमा के पुत्र, बुध, का दूसरा गृह बनाते हैं जिसका नाम है कन्या और यह शंकर जी का जठर (पेट) है। चित्रा के दो अंश, स्वाती (देवता पवन) तथा विशाखा (देवता इन्द्राग्नि) के तीन अंश मिल कर शुक्र का दूसरा गृह बनाते हैं जिसका नाम है तुला यह शंकर जी की नाभि है। विशाखा का एक अंश, अनुराधा (देवता–मित्र अर्थात सूर्य) और ज्येष्ठा (देवता–इन्द्र) मिल कर मंगल ग्रह का दूसरा गृह बनाते हैं जिसका नाम है वृश्चिक तथा यह भगवान शंकर का पेडू है। मूल नक्षत्र (देवता–राक्षस), पूर्व आषाढ़ (देवता–जल) और उत्तर आषाढ (देवता–विश्वदेव) का एक अंश मिल कर बृहस्पति का गृह धनु बनाते हैं। यह शंकर जी के दोनों उरूओं (जांघों) के बीच का हिस्सा (जननेन्द्रिय आदि) हैं। उत्तर आषाढ के शेष अंश, श्रवण (देवता–विष्णु) और धनिष्ठा (देवता–वसु) का आधा अंश, मिलकर मकर राशि का निर्माण करते हैं जिसका स्वामी शनि है। यह भगवान शंकर की जंघाएं हैं। आधी धनिष्ठा, शतभिषा (देवता–वरुण) और पूर्वभाद्रपद के तीन अंश (पूर्वभाद्रपद के देवता हैं एकपादअज–अर्थात् रुद्र या शंकर भगवान) मिलकर कुंभ राशि का निर्माण करते हैं, जिसके स्वामी फिर से हैं शनि, यह प्रदेश शंकर जी के पांव हैं। और अन्त में पूर्व भाद्रपद का एक अंश, उत्तर भाद्रपद (देवता–अहिर्बुध्न्य अर्थात् रुद्र या शंकर जी) तथा रेवती (देवता पूषा या सूर्य) मिल कर मीन राशि का निर्माण करते हैं जिसके स्वामी हैं गुरु, यह राशि शंकर जी के चरण हैं।"

पुलस्त्य ऋषि आगे कहते हैं, 'इस प्रकार त्रिनेत्र प्रभु ने अपना काल रूप धारण करके क्रोध से वाणों के द्वारा यज्ञदेव का हनन किया था।'

पाठकों ने एक बात अवश्य देखी होगी। पुलस्त्य मुनि जब राशियों की बात करते हैं तो वे नक्षत्रों के आधार पर राशियों का बंटवारा करते हुए काल पुरुष के शरीर के विभिन्न अंगों की चर्चा करते हैं। उनके लिए भी नक्षत्र ही महत्त्वपूर्ण रहे हैं राशियां नहीं। पाठकों से एक विनम्र निवेदन और है। वे नक्षत्रों के देवताओं की ओर विशेष रूप से ध्यान दें। चन्द्रमा दैनिक गति के कारण

प्रायः एक दिन में एक नक्षत्र का भोग करते हैं। सूर्योदय काल के नक्षत्र के देवता की आराधना करना शुभ कहा गया है, विशेष तौर से विपत, प्रतिहारी, वध और जन्म नक्षत्र के देवताओं की आराधना उचित दिनों में अवश्य करनी चाहिए, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।

अध्याय 7

दशावतार तथा नवग्रहों की पौराणिक कथाएँ

बृहत पाराशर होराशास्त्र के अवतारकथनाध्याय में महर्षि पराशर मैत्रेय से कहते हैं–

> "रामोऽवतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः।
> नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बुद्धः सोमसुतस्य च।।
> वामनो विबुधेज्यस्य भार्गवो भार्गवस्य च।
> कूर्मो भास्कर पुत्रस्य सैहिंकेयस्य सूकरः।।
> केतोर्मीनावतारश्य चे चान्ये तेऽपि खेटजाः।
> परात्मांशोऽधिको येपु ते सर्वे खेचराभिधाः।।"

इन श्लोकों में विभिन्न ग्रहों के पृथ्वी पर अवतार लेने की बात कही गयी है। पराशर ऋषि कहते हैं कि सूर्य से भगवान श्रीराम, चन्द्र से भगवान श्रीकृष्ण, मंगल से नृसिंह, बुध से बुद्ध, गुरु से वामन, शुक्र से परशुराम, शनि से कूर्म (कछुआ), राहु से वराह, और केतु से मत्स्य अवतार हए। इससे पहले पराशर बता चुके हैं कि इन अवतारों में राहु, मंगल, सूर्य तथा चन्द्र के अवतारों में पूर्ण परमात्मांश है। अर्थात् वराह, नृसिंह, श्री रामचन्द्र और श्री कृष्ण के अवतार पूर्ण कहे गये बाकी पाँच अवतारों में जीवांश भी मिश्रित कहा गया। ज्योतिष शास्त्र में ऐसा मानते हैं कि जीवन में सफलता के लिए पूर्ण परमात्मांश वाले ग्रहों (यानी सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और राहु) का कुण्डली में बलशाली होना आवश्यक है। यदि ये ग्रह ठीक हों तो जातक के इहलोक और परलोक, दोनों ठीक हो जाते हैं। आइये, इन अवतारों को वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये।

विज्ञान का कहना है कि जीवन का प्रारंभ जल में हुआ। हमारे पूर्वज कहते हैं कि पहला अवतार मत्स्य रूप में हुआ अर्थात् जीवन जल में ही प्रांरभ हुआ।

मत्स्य अवतारः प्राचीन काल में सत्यव्रत राजा की अञ्जलि में तर्पण करते समय एक छोटी मछली आ गयी जिसे उन्होंने कमण्डल में रख दिया। पर वह इतनी जल्दी–जल्दी बढ़ने लगी कि उसे कमण्डल से ताल, ताल से गंगाजी और अन्त में गंगाजी से समुद्र में छोड़ना पड़ा। उसी मछली ने (जो श्री भगवान का पहला अवतार हुआ) ग्क सप्ताह बाद महाप्रलय आने की भविष्यवाणी की और जब पृथ्वी प्रलय के जल में डूबने लगी तो सप्तऋषियों को लिये हुए एक दिव्य नौका आ गयी। श्री भगवान के आदेशानुसार सत्यव्रत प्रत्येक जीव–जन्तु के जोड़े के अतिरिक्त उस नौका में सभी फल, फूल आदि के बीज के साथ सवार हुए। मत्स्य भगवान ने इस नौका को अपनी नाक पर उगी सींग में बाँध कर प्रलय से बचाया, जिसके बाद सृष्टि फिर से चली। आपको आश्चर्य होगा कि बाईबल में भी इसी कथा का वर्णन आता है कि प्रलय आने पर हज़रज नूह एक नौका में वैसे ही बैठे रहे जैसे सत्यव्रत। मत्स्य अवतार का एक और कारण भी था। हयग्रीव नाम के राक्षस (जिसकी गर्दन घोड़े जैसी थी) ने वेदों को पाताल में छुपा दिया था। श्री भगवान ने मत्स्य अवतार लेकर हयग्रीव को मारा तथा वेदों का उद्धार किया। (**नोट** : पुराणों की अन्य कथा के अनुसार जब मधु–कैटभ नाम के दैत्यों ने श्रुतियों को रसातल में फैंक दिया था तब श्री भगवान ने स्वयं भी हयग्रीव के रूप में अवतार लिया था।) जैसा हम अध्याय 4 में कह चुके हैं, वेद चार हुए–पहले वेद शब्द का अर्थ जान लीजिये। 'विद' का शाब्दिक अर्थ है ज्ञान! चारों वेद में क्या लिखा है यह भी जान लीजिये। पहला वेद है ऋग्वेद। ऋक् का अर्थ है स्तोत्र, स्तुति। ऋग्वेद में देवताओं की आराधना के स्तोत्र हैं। हमारा दूसरा वेद है यजुर्वेद जिसमें यज्ञ के कर्मकाण्ड की व्याख्या गद्य और पद्य दोनों में की गयी है। यज का अर्थ है प्रार्थना। सामवेद हमारा तीसरा वेद है। साम की उत्पत्ति 'सम' से हुई है जिसका अर्थ है मन में शान्ति! सामवेद में ऋग्वेद के बहुत से क्लिष्ट श्लोकों को लयबद्ध किया गया है। चौथे और आखिरी वेद का नाम है अथर्व वेद। अथर्व का अर्थ है पुरोहित। इस वेद में कर्मकाण्ड के अतिरिक्त मोहन–मारण आदि के भी स्तोत्र दिये गये हैं।

प्रत्येक वेद चार भागों में विभक्त है जो जीवन के चार अध्यायों क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और वनवास से सम्बन्धित है। इनके नाम हैं क्रमशः संहिता (दैनिक जीवन से संबंधित जैसे जन्म–मरण, ब्याह– शादी, खेती–बाड़ी, गृह–निर्माण आदि), ब्राह्मण (नीति परक–सांसारिक और आध्यात्मिक जीवन में सामंजस्य), अरण्यक (अरण्य का अर्थ है जंगल–अतः अरण्यक में सांसारिक जिम्मेवारियों से मुक्ति के

बाद आध्यात्मिक यात्रा प्रारंभ करने के सूत्र हैं) और वेद के अंतिम अंग (वेदांत) हैं उपनिषद् (इसमें दर्शन, धर्म और जीवन की विस्तृत विवेचना है)।

कूर्मावतार : खैर, हयग्रीव के कारण काफी विषयान्तर हो गया–हम तो अवतारों की वैज्ञानिक व्याख्या के क्रम में मान चुके हैं कि जीवन जल में प्रांरभ हुआ इसलिए मत्स्य अवतार प्रथम अवतार हुए। अब जीवन को जल से भूमि की ओर आना था, ऐसे रूप में जो जल और भूमि दोनों स्थानों पर समान रूप से रह सके। कुछए से अच्छा कौन सा रूप होता, जो दोनों स्थानों पर समान रूप से रह सके? इसलिए श्री भगवान का दूसरा अवतार हुआ कछुए के रूप में–इसे कूर्मावतार कहा गया। अमृत निकालने के लिए समुद्र मंथन किया जाना था। राक्षसों की ओर से राजा बलि और देवताओं की ओर से इन्द्र के नेतृत्व में वासुकी नाग को रस्सी बनाकर मंदराचल की मथनी बनायी गयी लेकिन मंदराचल अपने ही भार से समुद्र में डूबने लगा। तब देवताओं की प्रार्थना से श्री भगवान कच्छप रूप में पधारे और उन्होंने मंदराचल को अपनी पीठ पर संभाल लिया।

जीवन में भी जब हम अपने ही कर्मों के बोझ से डूबने लगते हैं तो श्री भगवान स्वयं आकर हमारा भार उठा लेते हैं। जीवन तो गतिशील है। उसे अब पूरी तरह पृथ्वी पर आना था।

वराह अवतार : हमारे यहाँ माना गया कि श्री भगवान का अगला अवतार वराह (जंगली सूअर) के रूप में हुआ। वराह पूर्णतः जमीन पर रहने वाला जीव है। कहते हैं मनु की प्रार्थना पर ब्रह्मा जी ने उन्हें धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करने का आदेश दिया। किन्तु तब पृथ्वी तो प्रलय के जल में डूबी हुई थी। तब ब्रह्माजी की नाक से अंगूठे के आकार का वराह शिशु निकला जो देखते ही देखते पर्वताकार हो गया। इन्हीं वराह रूपी भगवान को देखकर पृथ्वी के हृदय में स्त्री सुलभ कामना हुई कि भगवान उन्हें पति के रूप में प्राप्त हों। वराह अवतार की कथा आगे मंगल ग्रह की चर्चा के क्रम में की गयी है।

नृसिंह अवतार : जीवन पृथ्वी पर पशु के रूप में आ चुका था अब इसे मनुष्य का रूप पाना था। पशु और मनुष्य के बीच की कड़ी के रूप में श्री भगवान अवतरित हुए नृसिंह के रूप में–हिरण्याक्ष के भाई हिरण्यकशिपु का वध करने। हिरण्यकंशिपु के ईश्वरभक्त पुत्र का नाम था प्रहलाद। हिरंण्यकशिपु अपनी तपस्या के बल पर वरदान प्राप्त कर चुका था कि उसका वध न तो दिन में होगा न रात में, न तो मनुष्य द्वारा ना ही पशु द्वारा–देवता भी उसे मार नहीं सकेंगे। इसलिए प्रहलाद द्वारा यह कहे जाने पर कि ईश्वर तो कण–कण में विद्यमान है, हिरण्यकशिपु ने खंभे में लात मार कर कहा कि इसमें कहाँ है भगवान? और उसी समय, उसी खंभे से, श्री भगवान

प्रकट हुए जिनका आधा शरीर नर का था और आधा सिंह का–इसलिए कहे गये नृसिंह। अपने उसी रूप में श्री भगवान ने हिरण्यकशिपु का वध किया।

वामन अवतार : जीवन को अब मानव के रूप में आना था। आपको पता होगा कि प्रायः जितनी आदिम जातियाँ हैं, सब का कद बहुत छोटा है। विज्ञान कहता है कि मानव की पहली खेप कद में बौनी रही होगी। श्री भगवान भी मनुष्य के रूप में जब आये तो वामन (बौने) के रूप में ही। अर्थात् नृरसिंह के बाद वामनावतार हुआ। दैत्यराज बलि ने शुक्राचार्य की कृपा से इन्द्र को हराकर स्वर्ग पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इन्द्र की माँ अदिति (जो सभी देवताओं की माँ थी) ने अपने पुत्रों के दुःख से दुःखित होकर भगवान की बड़ी कठोर साधना की। भगवान उन्हीं के गर्भ से वामन के रूप में अवतरित हुए और छोटे से ब्राह्मण के रूप में बलि के पास गये। राजा बलि अश्वमेघ यज्ञ पूरा कर चुके थे। उनसे वामन ने तीन पग भूमि माँगी। दो पगों में वामन रूपी भगवान ने सारी पृथ्वी और स्वर्ग को माप लिया तथा तीसरा पग बलि के सिर पर रखकर उसे भी भव बाधा से मुक्त कर दिया। आज भी जब हम किसी के हाथों में मौली बांध कर रक्षास्तोत्र पढ़ते हैं तो कहते हैं–

ये न बद्धो बलि राजा दानवेन्द्र महाबलः, तेन त्वामनुबध्नामि रक्षे माचलः।।

अर्थात् जैसे राजा बलि अपने वचन से बद्ध हुए, वैसे ही मैं आपकी रक्षा का वचन देता हूँ–माता उमा उसकी साक्षी बनें।

परशुराम अवतार : जीवन कब तक एक बौने शरीर में अटका रहता? उसे तो विकसित होना ही था। इसलिए वामन के बाद ऋषि जमदग्नि और उनकी पत्नी रेणुका की सन्तान के रूप में श्री भगवान परशुराम अवतरित हुए। परशुराम के रूप में उन्होंने गौ, ब्राह्मण और साधुओं की रक्षा में असमर्थ हैहेयवंशीय अत्याचारी राजाओं का वध किया। परशुराम थे महाक्रोधी–उनके क्रोध का परिहास जगत–माता सीता के स्वयंवर काल में लक्ष्मण जी ने बहुत मीठे तरीके से किया था। महाभारत काल में पशुराम ने अम्बा के कहने से भीष्म पितामह से युद्ध किया था जो अनिर्णीत रह गया था।

श्री रामावतार : परशुराम पुरुष रूप में तो आये पर पुरुषोत्त्म के रूप में श्री भगवान का अवतार पुरुषोत्तम श्री राम के रूप में हुआ। रावण को मार कर अत्याचार का नाश करने, धर्म की स्थापना हेतु भगवान श्री राम पधारे। राम कथा कहने का यहाँ स्थान नहीं है।

श्री कृष्णावतार : श्री राम के बाद श्री भगवान श्री कृष्ण के रूप में देवकी और वासुदेव की सन्तान बन कर अवतरित हुए और कुरुक्षेत्र में भ्रमित अर्जुन को उन्होंने गीता का उपदेश दिया।

श्री बुद्धावतार : अब तक के सारे अवतार पृथ्वी पर कुछ न कुछ लीला रच कर गये। प्रायः सभी अवतार किसी एक विशेष पापी की मृत्यु और मोक्ष का कारण बने–उनका वध किया। किन्तु हिंसा को अहिंसा में बदलने के लिए श्री भगवान का जो अगला रूप अवतरित हुआ उसे हम कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन एवं उनकी पत्नी माया की सन्तान सिद्धार्थ के नाम से जानते हैं जिन्हें बाद में सारी दुनिया ने भगवान बुद्ध के नाम से जाना–बुद्ध जो अपने आपको जान गया हो।

कल्कि अवतार : कहते हैं कलियुग में श्री भगवान का कल्कि रूप में अवतार होगा जो धर्म की फिर से स्थापना करेंगे और आगे फिर से सतयुग आयेगा। ऐसी ही सुखद आशाओं पर जीवन आगे चलता रहता है।

तो ये हमने आपसे दशावतार की बात कही। आइये अब इन नौ अवतारों को, जो अब तक पृथ्वी पर आ चुके हैं, तथा जो ऋषि पराशर के अनुसार नौ ग्रहों के ही रूप हैं, थोड़ा और करीब से ग्रहों के रूप में देखें।

भारतीय परम्परा में वेदपाठी का मानसिक स्तर उच्चतम रहा होगा। उससे कुछ कम मेधा वालों के लिए ब्राह्मण, अरण्यक, वेदान्त, वेदांग आदि रहे होंगे। सामान्य जनों के लिए तो रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थ और पुराण का पाठ ही यथेष्ट माने गये। आगे के आख्यान पुराणादि पर ही आधारित हैं।

सूर्य : पुराणों में 'आदि सूर्य' की कल्पना की गयी है। कहते है परमपिता ब्रह्मा के मुख से 'ॐ' प्रकट हुआ यही सूर्य का आदि स्वरूप और सूक्ष्म रूप है। यद्यपि 'ॐ' से पहले भी ब्रह्मा ने अपने ही मुख से भुः, भवः तथा स्वः को उत्पन्न किया था किन्तु ये तीनों जब 'ॐ' से मिले तभी सूर्य को स्थूल रूप मिला। अर्थात् अशरीरी से शरीरी हुए भगवान भुवन भास्कर। तत्पश्चात् 'महः', 'जनः', 'तपः' और 'सत्यम्' से मिल कर इनका दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला द्युतिमान, कान्तिमय स्वरूप बना। सृष्टि के आरंभ में उत्पन्न होने से इनका नाम आदित्य पड़ा।

एक अन्य, और अधिक लोकप्रिय, कथा के अनुसार जब सृष्टि की इच्छा हुई तो परम पिता प्रजापति ने अपने दाहिने अंगूठे से दक्ष तथा बायें अंगूठे से उनकी पत्नी को उत्पन्न किया। दक्ष की तेरहवीं कन्या का ब्याह हुआ ब्रह्मा के पुत्र मरीचि (मारीचि) के पुत्र कश्यप से, जो सप्त ऋषियों में एक है। अदिति और कश्यप के पुत्र देवता कहलाये।

अदिति के पुत्रों को कश्यप ऋषि की अन्य पत्नियों (दिति, दनु और खस) के पुत्रों क्रमशः दैत्यों, दानवों और राक्षसों से बार–बार पराजय मिली। अदिति ने करुण होकर भगवान सूर्य से प्रार्थना की कि उनके पुत्रों के त्राण के लिए भगवान सूर्य उन्हें कश्यप ऋषि के माध्यम से पुत्र रूप में प्राप्त हों। उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर सूर्य

का हजारवाँ अंश, जिसे सुषुम्ना भी कहा गया है, उनके गर्भ में आ गया। तत्पश्चात् अदिति ने निराहार रहकर कठोर तप प्रारंभ किया। कश्यप ऋषि इस तप से घबरा गये और उन्होंने कहा **त्वया मारितम् अण्डम्** अर्थात् आपके निराहार रहने से तो यह पिण्ड नष्ट हो जायेगा। अदिति ने उन्हें आश्वस्त किया था कि यह पिण्ड नष्ट हो ही नहीं सकता, शत्रुओं का हन्त होगा इससे उत्पन्न जीव! इस प्रकार सूर्य का नाम मार्तण्ड पड़ा। अदिति के पुत्र होने के कारण भी आप आदित्य कहलाये। सूर्य ने अपनी माता की इच्छा के अनुरूप शत्रुओं का निर्दयता पूर्वक दमन करके भाइयों को युद्ध में विजय दिलायी। उन्हें राज्य संचालन और राज्य की सुरक्षा के नियमों की विस्तृत शिक्षा दी। ज्योतिष शास्त्र में सूर्य को 'क्रूर' ग्रह कहा गया है, दुष्ट या खल नहीं। यह बात इस कथा से ठीक भी लगती है। ऋषि पत्नी की तपस्या से, देवताओं की रक्षा और त्राण के लिए, जो उत्पन्न हुआ होगा वह दुष्ट तो नहीं हो सकता। दुष्टों का नाश करने में कई बार क्रूरता की हद तक कठोर होना पड़ता है। प्रशासन में भी यही बात सत्य है। यह भी स्मरण रखना होगा कि सूर्य के फल हमें तपस्या से ही प्राप्त हो सकते हैं। सूर्य की कृपा से शत्रुओं पर विजय, राज्य की प्राप्ति आदि सब कुछ संभव है।

ऋग्वेद के मण्डल दो में छः तथा मण्डल नौ में सात आदित्यों की चर्चा है जो अदिति के पुत्र हैं। ये संभवतः छः ऋतु और सप्ताह के सात दिनों के परिचायक हों। अदिति के पुत्रों के रूप में शतपथ ब्राह्मण तथा विष्णु पुराण के दसवें अध्याय में बारह आदित्यों के नाम कहे गये हैं जो शायद माह पर आधारित हों। यद्यपि अमर कोश में 47 तथा ब्रह्म पुराण में 108 आदित्यों के नाम हैं।

आइये, लगे हाथों भगवान आदित्य के परिवार की चर्चा भी हो जाये। सूर्य भगवान की तीन पत्नियाँ क्रमशः संज्ञा, राज्ञी और प्रभा कही जाती हैं। वैसे ऋग्वेद् में त्वष्टा की पुत्री शरायु से भी सूर्य के ब्याह की चर्चा है। एक मतानुसार शरायु और संज्ञा एक ही हैं। दूसरे मत से संज्ञा को विश्वकर्मा की पुत्री बताया गया है। राज्ञी से सूर्य के जो पुत्र हुए उनका नाम है रैवत तथा प्रभा से उत्पन्न पुत्र का नाम है प्रभात ! कहीं–कहीं सूर्य की पत्नियों के नाम प्रभा, छाया, उषा, प्रत्युषा, निक्षुभा आदि भी मिलते हैं। संज्ञा से उत्पन्न सबसे बड़े पुत्र का नाम है वैवस्वत जिन्हें हम वैवस्वत मनु के नाम से, मानव संस्कृति के जनक के रूप में, जानते हैं।

संज्ञा से ही जुड़वाँ सन्तान यम और यमी (यमुना नदी) उत्पन्न हुए। यम 22वें द्रेष्काण, 64वें नवांश तथा अष्टम भाव और दक्षिण दिशा के स्वामी हैं। यमुना और यम के स्नेह की याद हम आज भी दीपावली के दो दिनों के बाद, भ्रातृ द्वितीया या भाई दूज मनाकर करते हैं। वैवस्वत मनु के दस पुत्र हुए जिनमें प्रसिद्ध हुए

इक्ष्वाकु तथा एक पुत्री भी हुई जिसका नाम था इला, जो पहले पुरुष थी, शापवश स्त्री बनी और बाद में स्त्री से पुरुष बन गई। लिंग परिवर्तन का संभवतः यह पहला मामला रहा होगा।

संज्ञा का अपने पति पर अतुलनीय प्रेम होने के बाद भी वह अपने पति का तेज सहन नहीं कर पायी। वह अपने स्थान पर अपनी 'छाया' से अपने पति और बच्चों की देखरेख करने को कहकर अपने पिता के पास गयी जिनसे अपनी व्यथा–कथा सुनाने के बाद वह अज्ञातवास में चली गयी। उत्तर में हिमालय की घाटियों में संज्ञा ने एक मनोहर घोड़ी का रूप धारण करके तपस्या करना शुरू किया।

आइये यहाँ तक की कथा पर एक ज्योतिष दृष्टि डालें। सूर्य को विच्छेद कारक ग्रह कहा गया है। सूर्य का तेज सहन करना सबके लिए संभव नहीं, पंचम भाव का सूर्य गर्भ नष्ट करता है और सप्तम भाव का सूर्य वैवाहिक जीवन में व्यवधान पहुँचाता है।

अब आगे की कहानी देखिये। अपने घर में हुई उथल–पुथल से बेखबर सूर्य छाया को संज्ञा समझ कर उसके साथ जीवन बिताने लगे जिस क्रम में उन्हें दो पुत्र हुए, क्रमशः मनु और शनिश्चर। छाया का अनुराग अपने इन दो बच्चों के प्रति विशेष था। कालान्तर में विमाता के व्यवहार का अन्तर यम से सहा नहीं गया और उसने बड़ा विरोध किया। इससे छाया को क्रोध आ गया और छाया ने यम को शाप दे दिया। यम अपने पिता के शरणागत हुए–सूर्य ने उन्हें शाप से मुक्ति तो अविलम्ब दे दी पर स्वयं चिन्ता में पड़ गये कि आखिर कोई माता अपनी ही सन्तान को शाप कैसे दे सकती है। कुपित सूर्य ने छाया के केश पकड़ कर खींचे तो छाया ने सब कुछ सच–सच बता दिया कि संज्ञा सूर्य का तेज सहन न कर सकने के कारण चली गयी है। सूर्य पछताते हए अपने श्वसुर विश्वकर्मा की शरण में गये। तब विश्वकर्मा ने इनका तेज कम करने के लिए उससे विष्णु का चक्र, शिवजी का त्रिशूल, यम का दण्ड और देवताओं के सेनापति कार्तिकेय के पाश की रचना की। सुन्दर, तपे तपाये सूर्य स्वयं घोड़े के वेश में वहाँ गये जहाँ संज्ञा तपस्या रत थी। इस अलौकिक मिलन से भी उन्हें जुड़वाँ सन्तान की प्राप्ति हुई जो अश्विनी कुमार कहे गये (देवताओं के चिकित्सक, ऋषि च्यवनप्राश के नेत्रों की ज्योति लौटाने वाले)।

सूर्य के वाहन रथ में एक ही पहिया है जो संवत्सर कहलाता है। इस पहिये में बारह डंडे लगे हैं जो बारह मासों के प्रतीक हैं। सूर्य के मुख्य अस्त्र है चक्र, शक्ति, पाश और अंकुश। सूर्य को मार्कण्डेय पुराण में भगवान भास्कर कहा गया अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बन कर क्रमशः सृष्टि, पोषण और संहार करने वाला।

अब सूर्य पर एक बात गौर की जाये। सूर्य को ज्योतिष शास्त्र में कालदर्शी भी कहा जाता है। समय का बोध कराने वाला, दिन–रात का कारक, ऋतुओं की सृष्टि करने वाला आदि–क्योंकि सूर्य का नाम सविता भी है जिसका अर्थ है–सृष्टि करने वाला। **"सविता सर्वस्य प्रसविता"** अर्थात् सबको जन्म देने वाले हैं सूर्य। सूर्य के पहले पुत्र हुए वैवस्वत मनु जिन्होंने सृष्टि की गतिविधियाँ आगे बढ़ायीं। दूसरे हुए यम, जो काल के अवधारक हैं, हमारे जन्म–जन्मान्तरों का चोला बदलवाने वाले, तथा आध्यात्मिक रूप से जो परिपूर्ण होकर अपने कर्त्तव्यों से निवृत हो चुके, उनके लिए मोक्ष का द्वार खोलने वाले। सूर्य के एक और पुत्र हुए मनु, जिन्होंने हमें मनुस्मृति दी–जीवन चर्या तय की। और एक पुत्र हुए शनैश्चर महाराज जो आयुष्कारक कहे गये–हमारे जीवन के श्वासों की गिनती रखने वाले। अब और देखिये सूर्य पुत्रों को यानी अश्विनी कुमारों को जो अलौकिक चिकित्सक कहे जाते हैं, देवताओं के स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले–अर्थात् सूर्य का सारा परिवार शरीर और स्वास्थ्य तथा जीवन से जुड़ा हुआ है।

कुण्डली में सूर्य की शक्ति से जातक के शारीरिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य का अन्दाज लगता है। सूर्य ने तो अपनी पत्नी छाया तक के केश खींचे तो हम मानवों की बिसात ही क्या? लग्न का सूर्य केशों में कमी लाता है। सूर्य का ताप उसकी पत्नी तक से सहन नहीं हो सका, तो अन्य ग्रहों की बात ही क्या? कोई भी ग्रह उसके समीप आ जाये तो उसे हम अस्तगत कह कर मानते हैं कि उस ग्रह की शक्ति कम हो गयी।

यह तो हुई ज्योतिष चर्चा। अब सूर्य के बारे में उपलब्ध पौराणिक आख्यानों में से एक हम आपको बताते हैं। सूर्य को अक्सर राहु भक्षण करने दौड़ता है–(यह कहानी विस्तार से हमने आगे बताई है) सूर्य ने सभी देवताओं की रक्षा के लिए राहु का वैर मोल ले लिया था। अमृत का पान तो सभी देवताओं ने किया था पर राहु के कोप का भाजन बने मात्र सूर्य और चन्द्रमा। इसलिए क्षुब्ध होकर सूर्य ने समस्त सृष्टि को तपाना प्रारंभ कर दिया–लगा जैसे चारों ओर अग्नि वर्षा हो रही हो। तब ब्रह्मा के पास दौड़े गये देवताओं ने ब्रह्माजी की सलाह पर अरुण को सूर्य का सारथी नियुक्त किया। अरुण भी कश्यप के पुत्र हैं परन्तु पाँव नहीं हैं उनके। कहते हैं अरुण स्वभाव से मृदु हैं। अरुण के दो पुत्र हुए जिनके नाम हैं क्रमशः सम्पाति तथा जटायु। यही जटायु रावण द्वारा सीता के हरण के समय मारे गये। अरुण सूर्य के रथ को ऐसे हाँकते गये कि पृथ्वी पर सूर्य के कोप का प्रभाव कम पड़ा–सृष्टि बच गयी। इसलिए ज्योतिष शास्त्र में कहा गया है कि सूर्य के साथ यदि कोई शुभ ग्रह हो तो वह सूर्य की क्रूरता में कमी लाता है।

अब हम सूर्य के आयुधों को देखें। वे हैं क्रमशः चक्र, जो जीवन का प्रतीक है, शक्ति–जो शौर्य का प्रतीक है तथा अंकुश और पाश जो जीवन को उच्छृंखल होने से रोकते हैं। सूर्य की वंशावली बड़ी समृद्ध है। वैवस्वत मनु की श्रृंखला में ही भगवान राम हुए हैं।

सूर्य के मेष राशि में प्रवेश के दिन का स्वामी (वारेश) उस वर्ष का मंत्री, कर्क में प्रवेश के दिन का स्वामी सस्येश, सिंह में प्रवेश का स्वामी दुर्गेश, कन्या में प्रवेश का स्वामी धनेश, तुला में प्रवेश का स्वामी रसेश, धनु में प्रवेश का स्वामी धान्येश, मकर में प्रवेश का स्वामी नीरसेश, मीन में प्रवेश का स्वामी फलेश तथा आद्रा नक्षत्र में प्रवेश का स्वामी मेघेश कहलाता है। इस प्रकार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा जिस दिन पड़े उस दिन का स्वामी राजा या वर्षेश कहलाता है। वृषभ, मिथुन, वृश्चिक और कुंभ में सूर्य के प्रवेश को कोई नाम नहीं दिये गये हैं। इन राशियों के स्वामियों की दूसरी राशि में सूर्य के प्रवेश का महत्त्व पहले ही बता दिया गया है।

चन्द्रमा : भगवान शंकर के द्वादश ज्योतिर्लिंगों की चर्चा में सबसे पहले कहा जाता है **"सौराष्ट्रे सोमनाथं च"** अर्थात् सौराष्ट्र (आज के गुजरात का पश्चिमी तट) में शंकर जी सोमनाथ (चन्द्रमा के नाथ) के नाम से प्रतिष्ठित हैं। और भी, भगवान भोले शंकर का नाम है चन्द्रशेखर अर्थात् जिसने चन्द्रमा को सर पर रखकर प्रतिष्ठा दी–किन्तु भगवान शंकर से चन्द्रमा के सम्बन्धों की चर्चा से पहले आवश्यक है कि हम चन्द्रमा के जन्म की कथा भी समझ लें।

हरिवंश पुराण में कथा आती है–ब्रह्मा ने सृष्टि के आरंभ में 7 मानस पुत्रों को अवतरित किया जो पूर्णतः वैराग्य की ओर उन्मुख थे। उनमें एक थे ऋषि अत्रि जिनकी पत्नी अनुसूया के पतिव्रत धर्म की चर्चा बहुत बार आती है। उन्होंने चन्द्रमा को पुत्र के रूप में पाने की कामना की और अत्यन्त श्रद्धाभाव से उनका ध्यान किया। इस ध्यान स्वरूप उनके नेत्रों से ऐसी द्युति निकली जो चन्द्रमा के समान कान्तिमान थी। दसों दिशाएँ, क्रमशः पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, ऊर्ध्व और पाताल, इस ज्योति को अपने गर्भ में लेकर पोषण करने लगीं। किन्तु वह तेज उन दसों दिशाओं से भी पल न सका और पृथ्वी पर गिर पड़ा। यही कान्तियुक्त परन्तु शाक्तिहीन चन्द्रमा हुए, जिन्हें ब्रह्मा जी ने उठाकर अपने रथ पर बैठा लिया। इस शक्तिहीन चन्द्रमा को उन्होंने पृथ्वी की 21 बार परिक्रमा करवायी तथा वेद मन्त्रोच्चारण के द्वारा दसों दिशाओं को शक्ति दिलवायी–इस प्रकार चन्द्रमा को जीवन मिला। चन्द्रमा को बीज, औषधि, जल तथा ब्राह्मणों का स्वामित्व दिया। पृथ्वी की परिक्रमा के दौरान चन्द्रमा पृथ्वी पर औषधि तथा अन्य प्रकार के बीजों की वृष्टि

करते रहे जिनसे सभी देवताओं, पितरों, तथा, मनुष्य, भूत–प्रेत, पशु–पक्षी और वृक्षादि के प्राणों का आप्यायन (पोषण) होता है।

एक बात अब ज्योतिषीय सन्दर्भ में देखने की है। यदि कुण्डली में चन्द्रमा कमजोर भी हो तो उचित मन्त्रोच्चारण के द्वारा उसे शक्तिशाली बनाया जा सकता है। चन्द्रमा मनस है–मन, जिसके द्वारा हम निर्णय लेते हैं। उद्वेलित मन को, चंचल मन को शान्त करने का सर्वसम्मत उपाय प्रार्थना ही है। मन की चंचलता और उसके विस्तार की सीमा दसों दिशाएँ हैं। अर्थात् मन के विचरण का क्षेत्र असीमित है। इसलिए मन की चंचलता का भी ओर–छोर नहीं हे। मन कब कहाँ से भटक कर कहाँ पहुँच जाये, कोई नहीं जानता। उसे दृढ़ता और ठोस रूप प्रदान करने के लिए ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने तपस किया–वेदपाठ किया। मन की शान्ति के लिए यही दो बातें अर्थात् तप और धर्मग्रन्थों का पाठ आवश्यक हैं। एक बात और देखिये। चन्द्रमा बीज और जन्म दोनों के स्वामी हैं। अर्थात् सृजन का पूरा भार उन पर है। माता–पिता तथा सन्तान के बीच के सम्बन्ध का कारण है चन्द्रमा।

श्रीमद्‌भागवत के अनुसार अत्रि और अनुसूया की सन्तान है चन्द्रमा! ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों अनुसूया के पातिव्रत्य की परीक्षा लेने भिक्षुओं का वेश धर कर उनके पास गये। उनसे भिक्षा लेने की बड़ी विचित्र शर्त रखी इन त्रिदेवों ने कि माता अनुसूया को निर्वस्त्र होकर इन्हें भोजन कराना होगा। माता अनुसूया इनकी लीला समझ गयीं और उन्होंने अपने पतिव्रत के बल से तीनों को नवजात शिशु में परिवर्तित करके, उन्हें निर्वस्त्र होकर, भोजन कराया। किन्तु इस प्रक्रिया में उनका मातृत्व जाग गया और उन्होंने सन्तान की कामना की। उन्हें तीन पुत्र क्रमशः दत्तात्रेय, चन्द्रमा और दुर्वासा प्राप्त हुए। देखिये, यहाँ चन्द्रमा एक छल से जुड़ गये हैं। मन तो छली होता ही है।

हरिवंश पुराण के एक आख्यान के अनुसार दक्ष की सत्ताईस कन्याओं, क्रमशः अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, आदि से चन्द्रमा का विवाह हुआ। महाभारत के वन पर्व के अनुसार चन्द्रमा की ये सभी पत्नियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली, सुशीला और सुन्दर थीं फिर भी चन्द्रमा रोहिणी के प्रति अधिक आसक्त हुए–परिणाम स्वरूप इनके श्वसुर दक्ष ने इन्हें गलित क्षय हो जाने का शाप दिया। भयभीत चन्द्रमा ने तभी सोमनाथ मन्दिर बनाकर भगवान शंकर की आराधना समुद्र तट पर की। शंकर जी ने चन्द्रमा की पूजा से प्रसन्न होकर कहा कि यद्यपि दक्ष के शाप से चन्द्रमा की मुक्ति संभव नहीं फिर भी शंकर जी की दया से चन्द्रमा क्षय होने के बाद फिर से पूरा शरीर धारण करेंगे–इस प्रकार चन्द्रमा गलते ओर बनते रहते हैं। पूर्णिमा से अमावस्या तक दक्ष के शाप के कारण चन्द्रमा के शरीर का क्षय होता है तथा

अमावस से पूर्णिमा तक शंकर जी के आशीर्वाद से शरीर पुष्ट होता जाता है। हाँ, इसी क्रम में चन्द्रमा ने वायदा भी किया कि वे प्रत्येक पत्नी के साथ बराबर, अर्थात् एक दिन का, समय व्यतीत करेंगे।

आज भी चन्द्रमा एक नक्षत्र में एक दिन ही रहते हैं। क्षय रोग को हम टी.बी. के नाम से जानते है। क्षय रोग का सम्बन्ध फेफड़े से है, छाती से है। इस प्रकार चन्द्रमा के कमज़ोर होने से छाती और फेफड़े सम्बन्धी रोग होते हैं।

चन्द्र देव का वाहन दस बलवान, दिव्य, अनुपम, शंख के समान सफेद और मन के समान वेगवान घोड़ों से जुता रथ है। चन्द्रमा को श्वेत वस्तुओं का कारक कहा गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार इन घोड़ों के कान और नेत्र भी सफेद हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार इनके सात घोड़े हैं।

एक और अपवाद चन्द्रमा की चंचलता से जुड़ा हुआ है। चन्द्रमा कभी अपनं गन की गिरी हुई अवस्था के कारण देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को बलपूर्वक भगा कर ले गये। यह तो अत्यन्त कुत्सित कृत्य था किन्तु यदि किसी का मन ही गिरा हुआ हो तो उसके पतन की सीमा क्या होगी। चन्द्रमा ने यह कुकृत्य भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को किया इसलिए उस तिथि के चन्द्रमा को देखना भी वर्जित है। कहते हैं भाद्र मास के शुक्ल पक्ष की चौथ कें चन्द्र–दर्शन से मन में कुविचार ही आते हैं। चन्द्रमा को तारा से एक सन्तान प्राप्त हुई–पुत्र रत्न–यह पुत्र बड़ा मेधावी हुआ जिसे हम 'बुध' के नाम से जानते हैं। बुध की कथा बाद में! देवताओं के हस्तक्षेप के कारण ही बुध और तारा बृहस्पति को वापस दिये गये। किन्तु चन्द्रमा के इस दुष्कृत्य ने उसे कहीं का ना छोड़ा। चन्द्रमा को भी पश्चाताप हुआ और उसकी प्रार्थना सुनकर भगवान शंकर तथा ब्रह्माजी ने उसके पाप को समुद्र में धोया ! (शायद इसी कारण चन्द्रमा ने पश्चाताप सौराष्ट्र में सागर के तीर पर किया था।) शंकर जी ने चन्द्रमा के दो हिस्से किये। जो प्राञ्जल, शुभ्र तथा शुभ था, उसे शंकर जी ने सर पर धारण करके चन्द्रशेखर का नाम पाया–जो अशुद्ध था, ग्राह्य नहीं था, पतित था, चन्द्रमा का वह हिस्सा देवताओं के बीच उपहास का पात्र बना, ग्लानि और पश्चाताप में डूबता रहा। अन्त में चन्द्रमा ने निश्चय किया कि वह समुद्र में डूबकर प्राण त्याग देगा। ब्रह्मा जी ने समुद्र स्नान कराके चन्द्रमा को शुद्ध किया–अत्रि ऋषि, जो उसके पिता थे, ने उसे शक्ति प्रदान की। इस प्रकार अपने पापों से मुक्त तथा शुद्ध चन्द्रमा देवताओं के बीच पुनर्प्रतिष्ठित हुए।

चन्द्र लग्न के महत्त्व के बारे में हम इस पुस्तक के पहले ही अध्याय में चर्चा कर आये है। फिर भी एक पुरानी कहावत का प्रसंग वश जिक्र करना उचित होगा–'मन के हारे–हार है मन के जीते–जीत'। मन अगर निश्चय कर ले तो

असंभव भी संभव हो जाता है। ज्योतिष शास्त्र में चन्द्रमा के सबल होने से ही जीवन संग्राम में सफलता अवश्यम्भावी कही गयी है।

तैत्तरीय संहिता में एक मनोरंजक प्रश्नोत्तर है। 'कौन है जो अकेला चलता है'? और वह कौन है जो बार–बार जन्म लेता है? उत्तर भी वहीं मिलते हैं–सूर्य है जो अकेला चलता है और चन्द्रमा है जो बार–बार जन्म लेता है। कितनी सुन्दर बात निहित है इस आख्यान में !

सूर्य अर्थात् राजसत्ता, अधिकार, गांभीर्य, निर्णय लेना आदि। वहाँ अकेला ही चलना पड़ता है। सारे निर्णय स्वयं लेने होते हैं–वहाँ भागीदारी नहीं चलती–वहीं दूसरी ओर देखिये चन्द्रमा की अवस्था। एक जैसा, एक दिशा में सोचना संभव नहीं रहने देता है मन! बार–बार नये भाव जन्म लेते हैं और नष्ट होते रहते हैं।

महाभारत के वनपर्व में ही यक्ष प्रश्न की चर्चा आयी है–यक्ष पूछते हैं "वायु से भी वेगवान कौन है तथा तृणों से भी अधिक क्या है?" युधिष्ठिर उत्तर देते है "मन वायु से भी अधिक वेगवान तथा विचार तृणों से भी अधिक संख्या में है।" मन की अस्थिरता तथा विचारों में तारतम्य का अभाव कितनी सुन्दरता से समझाया गया है इस प्रश्न के उत्तर के माध्यम से कि उस काल के ऋषियों की मेधा पर आश्चर्य होता है। सच में पवन से भी तेज मन–चंचलता की पराकाष्ठा है और विचारों का क्या–वे तो अन्तहीन होते ही हैं–किसी प्रकार विचारों को दिशा दे दी जाये और मन को भटकने से रोका जाये तो आकाश मुट्ठी में आ जाये–इसके लिए कुण्डली के चन्द्रमा को तप से शक्तिशाली बनाना होगा।

चलते–चलते यक्ष का एक और प्रश्न – **"किं विचित्रम्"** विचित्र बात क्या है? और युधिष्ठिर कहते हैं, हम अपने चारों ओर मृत्यु देखते हैं–हर पल जो वर्तमान है, भूतकाल हो जाता है फिर भी हम अपनी नश्वरता के बारे में सचेत नहीं हैं। हमारा मन मानता ही नहीं कि एक दिन हम भी नष्ट हो जायेंगे। यही बात सबसे आश्चर्यजनक है। यहाँ भी मन का सहयोग आवश्यक है। यदि मन नश्वरता, क्षणभंगुरता के प्रति सचेत हो जाये तो आवागमन से ही मुक्ति मिल जाये–पर मन तो मोहमाया के वश में है–उसे छुड़ाने के लिए आवश्यक है तपस्या– सोलह कलाओं से युक्त, अन्नमय, मनोमय, अमृतमय स्वरूप भगवान चन्द्रमा की।

चन्द्रवंश आगे कैसे चला इसकी कथा भी बड़ी मनोरंजक है। एक अन्य कथा के अनुसार प्रजापति कर्दम के एक पुत्र का नाम था इला (इला के बार में हम सूर्य की कथा के दौरान चर्चा कर चुके हैं और उसे वैवस्वत मनु की कन्या इला के रूप में बताया है।) यह इला एक प्रतापी राजा हुआ जिसने दैवयोग से देवाधिदेव महादेव तथा माता पार्वती को आनन्द मनाते हुए देख लिया। उस समय महादेव रमण के क्षेत्र

में सभी प्राणियों, जीव जन्तुओं, वृक्षों आदि को स्त्री लिंग में परिवर्तित करके स्वयं भी नारी रूप में माता उमा के साथ परिहास कर रहे थे। जड़, चेतन आदि समस्त भावनाएँ स्त्री–स्वरूपा हो गयी थीं। उस मातृ–क्षेत्र में प्रवेश करते ही इला अपने सैनिकों समेत अत्यन्त रूपवती स्त्री के रूप में परिवर्तित हो गये। राजा इला भगवान के श्री चरणों में गिर कर अपने पुरुष स्वरूप में पुनः वापस आने की प्रार्थना करने लगे। भगवान तो टस से मस नहीं हुए पर माता को दया आ गयी। उन्होंने इला को आशीर्वाद दिया कि वह एक माह की अवधि तक तो पुरुष रहेगा, तब उसे अपने स्त्री स्वरूप की याद भी नहीं रहेगी और दूसरे माह वह स्त्री रूप में आ जायेगी तब उसे अपने राज्य आदि का कुछ भी स्मरण नहीं रहेगा। इसी रूपवती इला पर बुध रीझे। बुध ने इला को अंगीकार किया और एक माह बाद जब पुनः इला राजा बन गया तो उसे बुध ने समझा–बुझा कर योग ध्यान की ओर प्रवृत किया। माह बीतने पर इला का पुनः स्त्री रूप वापस हो गया। इस प्रकार सहवास के नवें माह में, जब इला का स्त्री स्वरूप था, उसे एक कान्तिमान पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम रखा गया पुरुर्वा–हम उसकी कहानी भी जानते हैं। पुरुर्वा ही चन्द्र वंश को लेकर आगे बढ़े। हाँ, इला का क्या हुआ यह बात आप अवश्य जानना चाहेंगे। इला के पिता ने देवाधिदेव महादेव की तुष्टि के लिए अश्वमेघ यज्ञ किया और भगवान भोलेनाथ प्रकट हुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया और इला पुनः सदा के लिए पुरुष हो गये! इधर चन्द्रवंश आगे बढ़ा उधर इला की सन्तति आगे बढ़ी।

मंगल :– मंगल को प्रायः 'भूमिपुत्र' – 'भूमिसुत' आदि के नाम से याद किया जाता है। प्रत्येक कल्प में मंगल के जन्म की अलग–अलग कथाएँ हैं–प्रायः प्रत्येक कथा में मंगल की जननी पृथ्वी को ही कहा गया है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार वाराह कल्प की बात है जब हिरण्यकश्यपु के बड़े भाई हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को चुरा कर अनन्त सागर की गहराइयों में छुपा दिया। तब भगवान स्वयं वराह के रूप में अवतरित हुए और उन्होंने हिरण्याक्ष का वध करके पृथ्वी का उद्धार किया। वराह अवतार के बारे में इसी अध्याय में पहले ही कहा जा चुका है। वराहावतार के समय भगवान् का रूप और तेज करोड़ों सूर्य के समान असह्य था अतः पृथ्वी की कामना पूरी करने के लिए भगवान अपने मनोरम रूप में उपस्थित हुए तथा उन्होंने पृथ्वी के साथ एक दिव्य वर्ष तक एकान्तवास किया जिससे मंगल की उत्पत्ति हुई। मंगल के शरीर के रोयें लाल हैं, लाल मालाएँ और लाल वस्त्र इन्होंने धारण किया है।

एक अन्य कथा के अनुसार सती की मृत्यु से विकल शंकर कैलास पर्वत पर घनघोर तपस्या करके अपनी विकलता से, चित्त की चंचलता से मुक्ति पा सके।

ध्यान पूरा होने के बाद जब भोले नाथ जी जगे तो उनके दिव्य पसीने की एक बूँद पृथ्वी पर आ गिरी जिससे एक सुन्दर बालक उत्पन्न हो गया। पृथ्वी ने यह दैविक उपहार स्वीकार किया–"बच्चा मंगलकारी होगा–यह सबों को पार्थिव सुख और समृद्धि देगा, यह शक्ति, ऊर्जा और क्रियाशीलता का कारक होगा"–ऐसे आशीर्वाद भगवान शंकर ने उस बालक को दिये जिसका नामकरण मंगल हुआ। मंगल अर्थात् शुभकारी !

मंगल महाराज भूमिपत्र हैं अतः जगह, जमीन, जायदाद, मकान के कारक हैं और इन्हें प्राप्त करने के बाद इन्हें बनाये रखने में सहायक। मंगल का मतलब है उपयोगी कार्यशीलता, कर्मठता, आत्म विश्वास और कभी–कभी घमंड भी। मंगल और शुक्र क्रमशः पुरुष और स्त्री के द्योतक हैं। मंगल ही स्त्री–पुरुष के आकर्षण, मेल और उसके परिणाम का कारक है। मंगल को सेनाध्यक्ष भी कहा गया है। पौरुष, वीरता, शत्रु पर विजय आदि, मंगल के कारकत्व हैं।

बुध :– चन्द्रमा की कथा में चन्द्रमा की उच्छृंखलता की चर्चा के दौरान देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के बारे में बताया गया है। अथर्ववेद के अनुसार बुध की माता का नाम तारा तथा पिता का नाम चन्द्रमा है। ब्रह्माजी ने इनका नाम इनकी बुद्धि की गंभीरता को देखते हुए ही बुध रखा। श्रीमद्भागवत के अनुसार ये सभी शास्त्रों में पारंगत तथा चन्द्रमा के समान ही कान्तिमान हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार इनको सर्वाधिक योग्य देखकर ही ब्रह्माजी ने इन्हें भूतल का स्वामी तथा ग्रह बना दिया। इन्हें सर्वाधिक योग्य क्यों न कहा जाये? देवगुरु और चन्द्रमा का जिसे सम्बल मिले, वह तो योग्य होगा ही ! चन्द्रमा और गुरु किसी भी कुण्डली में परस्पर केन्द्र में आकर गज केसरी योग बनाते है जो शत्रुंजयी होता है। इन दोनों के वरदहस्त के कारण बुध की प्रतिभा का क्या कहना! बुध का रथ तो श्वेत है पर उसमें विभिन्न रंगों के दस घोड़े जुते हैं जो वायु के समान वेगवान हैं। बुध कान्तिमान है चन्द्रमा के समान। जब चन्द्रमा तारा का अपहरण कर ले गये थे तब उन्होंने राक्षसों के आचार्य शुक्राचार्य के यहाँ शरण ली थी तभी बुध को गर्भ में सुरक्षा मिली। इसलिए यह समझना मुश्किल नहीं कि बुध चन्द्रमा को शत्रु, शुक्र को मित्र तथा गुरु को सम क्यों समझते हैं? बुध को मीमांसक भी कहते हैं अर्थात् जो गूढ़ से गूढ़ बात त्वरित गति से समझ कर अच्छी तरह समझा सके–

बुध चिन्तन, बुद्धि, तर्क शक्ति, वाक चातुर्य, मेधा और त्वरित निर्णय का परिचायक है। चन्द्रमा है चंचलता, मानस। मन और बुद्धि में सामंजस्य हो जाये तो सबसे अच्छे परिणाम मिलते हैं। चन्द्रमा है, चंचलता, बुध को अपना मित्र मानता है। भावुकता को बुद्धि का सहयोग मिले तो क्या बात है परन्तु गुरु बुध को शत्रु समझते

हैं–विवेक का बुद्धि और तर्क से सीधा सम्बन्ध हो भी नहीं सकता क्योंकि बुध आनन–फानन में निर्णय ले लेते हैं। महाभारत की एक कथा के अनुसार उनकी विद्या, बुद्धि से प्रभावित होकर महाराज मनु ने अपनी कन्या इला का विवाह बुध से किया जिसके परिणाम स्वरूप महाराज पुरुर्वा की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार चन्द्रवंश का विस्तार हुआ। बुध को पुरुष नंपुसक भी कहा जाता है साथ ही ऐसा ग्रह भी जो साधारणतया शुभ होते हुए भी सहचर्य से फल देता है।

देवगुरु बृहस्पति :– ऋषि अंगिरस के पुत्र हुए अथर्वन। अथर्वन के एक पुत्र हुए उशिज और उशिज के तीन पुत्रों के नाम हैं क्रमशः उचथ्य, बृहस्पति और संवर्त। एक आख्यान के अनुसार उचथ्य की पत्नी का नाम ममता था जो जब गर्भवती थी तभी बृहस्पति ने उनसे व्यभिचार की चेष्टा की जिसका गर्भस्थ शिशु के विरोध करने पर बृहस्पति ने उसे ही श्राप दे दिया कि वह जन्मान्ध पैदा हो। यह बालक दीर्घतमा, ाड़ांग वेदों का ज्ञाता, जन्मान्ध पैदा हुआ किन्तु अखण्ड प्रार्थना के बल पर इसने भी ृष्टि वापस पायी। आगे की कहानी विचित्र है, संभवतः अपनी माता के साथ हुए अत्याचार के कारण इन्होंने भी अपने अनुज की स्त्री के साथ व्यभिचार करना चाहा और शरद्वात ऋषि के श्राप से पुनः दृष्टिहीन होकर पानी में फेंक दिये गये जहाँ से उन्हें राजा बलि ने निकलवाया। बलि की स्त्री सुदेष्णा को दीर्घतमा के आशीर्वाद से क्रमशः अंग, बंग, कलिंग, पौण्ड्र और ब्रह्मा नाम के पुत्र हुए जिनके नाम पर ये पाँच प्रदेश बनाये गये। एक अन्य आख्यान महाभारत के आदि पर्व में मिलता है। बृहस्पति ऋषि अंगिरा के पुत्र हुए। अंगिरा की पत्नी ने सनतकुमारों के बताये व्रतों का पालन करके बृहस्पति को पुत्र रूप में पाया। स्कन्द पुराण के अनुसार प्रभास तीर्थ में जाकर बृहस्पति ने भगवान शंकर की कठोर तपस्या की जिसके कारण भगवान शंकर ने उन्हें देवगुरु का पद प्रदान किया और एक ग्रह बना कर ग्रहों में प्रतिष्ठा दी। इनकी तीन पत्नियाँ क्रमशः शुभा, तारा और ममता कहीं गयीं। शुभा से इन्हें सात कन्याएँ उत्पन्न हुईं जिनके नाम हैं क्रमशः भानुमती (जिसके पिटारे की बात आपने पढ़ी होगी), राका, अर्चिकाती, महामती, महिष्मती, सिनीवाली और हविष्मती। तारा से हुए सात पुत्र और एक कन्या तथा ममता से हुए दो पुत्र जो क्रमशः भरद्वाज तथा कच कहलाये। भरद्वाज सप्तऋषियों में एक होकर चमके (अन्य छः हैं कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, गौतम और जमदग्नि)। भरद्वाज वाल्मीकि के पट्‌ट शिष्य रहे। कच की कहानी आगे बतायी जायेगी।

ऋगवेद के अनुसार बृहस्पति का वाहन सोने का रथ है जिसमें वायु के समान वेग वाले आठ घोड़े जुते हैं। प्रकारान्तर से बृहस्पति के रथ का नाम नीतिघोष है। श्रीमद्‌भागवत् के अनुसार बृहस्पति प्रत्येक राशि पर एक–एक वर्ष रहते हैं। वक्रगति

होने से इसमें अन्तर आ जाता है। बृहस्पति द्वारा रचित बृहस्पति संहिता में धर्म और दान की विशेष चर्चा की गयी है। कहते हैं देवगुरु ने बृहस्पति संहिता देवताओं के राजा इन्द्र को प्रदान की थी।

देवताओं के गुरु होने के कारण स्वाभाविक था कि बृहस्पति देवासुर संग्राम में देवताओं की क्षति न होने देते। किन्तु राक्षसों के गुरु थे शुक्राचार्य जिन्हें मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त थी। असुरों के राजा वृषपर्वा के गुरु शुक्राचार्य किसी भी युद्ध में मृत हुए असुरों को जीवित कर देते थे। देवताओं की क्षतिपूर्ति नहीं करवाने का क्षोभ बृहस्पति को तो था ही। बृहस्पति ने अपने पुत्र कच को शुक्राचार्य के पास मृतसंजीवनी विद्या सीखने के लिए भेजा जहाँ शुक्राचार्य की एकमात्र सन्तान, देवयानी नाम की कन्या, ने कच के प्रति बड़ा स्नेह दिखाया और उसकी जिद के कारण शुक्राचार्य ने कच को अपने शिष्यत्व में ले लिया। दो बार जब असुरों ने कच का वध कर दिया था तब शुक्राचार्य ने उसे जीवित कर दिया था पर तीसरी बार असुरों ने कच का वध करके उसे जला दिया तथा उसकी राख को मदिरा में घोल कर शुक्राचार्य को ही पिला दिया। कच को लौटने में विलम्ब होता देखकर देवयानी ने शुक्राचार्य से उसे वापस बुलाने की प्रार्थना की। शुक्राचार्य के आवाज देने पर जब पता चला कि कच तो उन्हीं के उदर में था तब देवयानी की प्रार्थना और उसी के आग्रह पर कच को शुक्राचार्य ने मृत संजीवनी विद्या सिखायी–कच शुक्राचार्य का पेट फाड़कर बाहर निकला और उसने मृत संजीवनी विद्या का प्रयोग करके शुक्राचार्य को भी जीवित कर दिया। गुरु के शुक्र से विचित्र संबंध हैं। गुरु शुक्र को अपना शत्रु मानते हैं–फिर भी अपने पुत्र को शिक्षा प्राप्ति के लिए वहीं भेजते हैं। शुक्र के लिए गुरु सम हैं तथा शुक्र गुरु की राशि मीन में उच्च के होते हैं। गुरु का ज्योतिषशास्त्र पर पूर्ण प्रभाव है–स्थूलता के लिए भी गुरु कारक हैं, साथ ही ज्ञान, धन, पुत्र और स्त्री के लिए तो हैं ही। कहते हैं लग्न में बैठा बृहस्पति कुण्डली के सवा लाख दोषों को दूर करता है। क्यों न हो, लग्न में बैठे बृहस्पति लग्न के अलावा पंचम, सप्तम और नवम भाव पर दृष्टि डाल कर इहलोक और परलोक दोनों को संपुष्ट करते हैं।

शुक्र :– आइये अब असुरों के गुरु शुक्राचार्य की चर्चा की जाये। शुक्राचार्य को एक नेत्र से काम चलाना पड़ता है। कहते हैं कि राजा बलि ने जब वामनावतार रूप में प्रभु को तीन पग भूमि देने के संकल्प के लिए कमण्डल से जल निकालना चाहा तो उसकी टोंटी में शुक्राचार्य घुस गये ताकि कमण्डल से जल निकल ही न सके। वामन ने कुश से कमण्डल की टोंटी की सफाई करनी चाही। कुशाग्र शुक्राचार्य की बायीं आँख में घुसकर उसे फोड़ गया। ऋषि भृगु के पुत्र हुए उषान् जो स्वयं बड़े सिद्ध ऋषि हुए। इन्हें ही हम शुक्राचार्य के नाम से जानते है।

महाभारत के आदि पर्व के अनुसार शुक्राचार्य दानवों के पुरोहित तथा योगों के आचार्य हैं। महाभारत और मत्स्य पुराणों के अनुसार शुक्राचार्य ने शिवलिंग की स्थापना करके इतनी कड़ी तपस्या की कि भगवान शंकर स्वयं प्रकट हुए। शुक्राचार्य ने उनका स्वागत 'अष्ट मूर्त्तयाष्टक स्तोत्र' से किया। शुक्राचार्य ने अपने शिष्यों, दानवों, के लिए भगवान शंकर की जैसी आराधना की थी, वैसी किसी ने कभी नहीं की। इसलिए भगवान शंकर ने एकमात्र उन्हें ही मृत संजीवनी विद्या का वरदान दिया। साथ ही अन्य वरदान भी दिये यथा वे ग्रहों में सर्वोपरि रहेंगे, उनकी कान्ति सूर्य और अग्नि से भी अधिक होगी तथा वे जब सन्मुख होंगे तो स्त्री या पुरुष द्वारा कोई भी प्रारंभ किया गया कार्य पूर्ण नहीं होगा। शुक्र पूर्व दिशा में कृतिका से लेकर अश्लेषा तक सात नक्षत्रों से गोचर करते हुए सन्मुख कहे जाते हैं। अगले सात नक्षत्र हैं उनसे शुक्र का गोचर पश्चिम सन्मुख और अगले सात नक्षत्रों से शुक्र का गोचर दक्षिण सन्मुख कहलाता है अर्थात् मघा से विशाखा तक। अनुराधा से श्रवण तक अभिजित को लेकर, जो सात नक्षत्रों, अर्थात् धनिष्ठा से लेकर भरणी तक शुक्र का गोचर उत्तर सन्मुख कहा जाता है। भगवान शंकर ने शुक्राचार्य को यह भी वर दिया कि ब्याह आदि धार्मिक कृत्य शुक्र के आकाश में उदित होने के बाद (अर्थात् सूर्य से अस्तंगत होने के बाद जब उससे शुक्र छूट जायें) ही होंगे। नन्दा तिथियाँ अर्थात् प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी शुक्र से सम्बन्ध होने के कारण ही शुभ कही जायेंगी। शुक्र की आराधना करने वाले पुंसकत्व को प्राप्त करके सन्तान सुख भोगेंगे। शुक्र ने जिस लिंग की स्थापना करके पूजा की थी, उसको शुक्रेश कहा जायेगा तथा वे शंकर जी के उदर में वास करने के उपरान्त, उनके शुक्र (वीर्य) के साथ बाहर आयेंगे।

कालान्तर में दानवों के राजा अन्धक ने देवताओं को बड़ा सताया। उसकी सेना में हत हुए लोग शुक्राचार्य द्वारा मृत संजीवनी विद्या के प्रयोग के कारण जीवित हो जाते थे। अन्धक एवं उसकी सेना से पीड़ित देवगण भगवान शंकर के पास अपनी व्यथा कहने गये क्योंकि उन्हीं के आशीर्वाद के कारण शुक्राचार्य ने दानवों को अजेय बना दिया था। भगवान शंकर ने अपने बैल नन्दी को भेज कर शुक्राचार्य को बुलाया और उन्हें जीवित ही उदरस्थ कर गये। दानव शक्तिहीन होकर हार गये। तब भगवान शंकर के वीर्य के साथ शुक्राचार्य प्रकट हुए जिन्हें भगवान शंकर तथा माता गौरी ने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया और अमरत्व का वरदान दिया। मत्स्य पुराण के अनुसार शिव के वरदान के कारण शुक्र इहलोक और परलोक की सारी सम्पत्ति के स्वामी बना दिये गये। महाभारत के आदि पर्व के अनुसार तो केवल सम्पत्ति ही नहीं शुक्राचार्य औषधियों, मन्त्रों तथा रसों के भी स्वामी हैं। इनका सामर्थ्य

अद्भुत है किन्तु इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति अपने शिष्यों, असुरों को दे दी और स्वयं तपस्वी जीवन ही स्वीकार किया। ब्रह्मा की प्रेरणा से शुक्राचार्य ग्रह बन कर तीनों लोकों के प्राण की रक्षा करते हैं।

शुक्र महा शुभ फलदायक हैं। अभिजात्य, परिष्कृत रुचि, कला के प्रति अभिरुचि आदि इनके गुण तो हैं ही, इनके कारकत्व की विस्तृत चर्चा पहले ही की जा चुकी है।

शनि :– शनि के जन्म की कथा हम सूर्य के अंश में पढ़ चुके हैं। छाया (संवर्णा) तथा सूर्य के पुत्र शनैश्चर बचपन से भगवान श्री कृष्ण के परम भक्त थे। ब्रह्मपुराण में यह कथा आती है कि वयस्क होने पर शनि का व्याह इनके पिता ने चित्ररथ की कन्या से कर दिया। शनि जहाँ एक ओर श्री कृष्ण के अनुराग में डूबे रहते थे वहीं उनकी पत्नी भी साध्वी और ईश्वर पथानुगामिनी थी। एक रात पुत्र प्राप्ति की इच्छा से ऋतु स्नान के बाद वह अपने पति के पास गयी जो कृष्ण के ध्यान में डूबे हुए थे। लाख प्रयास के बाद भी शनि महाराज का ध्यान नहीं टूटा–उनकी पत्नी का श्रृंगार तो व्यर्थ गया ही उसका ऋतुकाल भी निष्फल हो गया जब वह गर्भवती हो सकती थी। क्षुब्ध होकर पत्नी ने उन्हें शाप दे दिया कि अगर वे अपनी पत्नी को भी नहीं देख सके तो अब उनकी दृष्टि विच्छेद कारक हो जायेगी–अर्थात् उनकी दृष्टि जहाँ पड़ेगी वहाँ अवश्य विनाश होगा। ध्यान टूटने पर शनि ने अपनी पत्नी को मनाया जिससे उसे भी बड़ा पश्चाताप हुआ किन्तु होनी को कौन टालता। शनि, जो पहले से ही अन्तर्मुखी थे, तब से अपना सर नीचे करके रहने लगे ताकि न तो उनकी दृष्टि कहीं पड़ेगी न ही कहीं विच्छेद होगा। यह कथा आगे और करुण हो जाती है–

भगवान श्रीकृष्ण प्रत्येक मन्वन्तर के आरंभ में मनु के साथ प्रकट होते हैं। श्री कृष्ण का जन्म विघ्न नाशक गणेश के रूप में माता पार्वती की कोख से होता रहा है। नये मन्वन्तर के प्रारंभ में कैलास पर्वत पर आनन्दमय वातावरण था। माता पार्वती की कोख से भगवान श्री गणेश धरा पर पधारे–देवी देवताओं के दमकते मुखड़ों के बीच बेचारे शनि दृष्टि नीची किये बैठे हैं। शनि महाराज सर झुकाये हुए ही नवजात की मंगल कामना और उसे दीर्घायु होने का आशीर्वाद देते हैं। आखिर नवजात हैं तो उनके आराध्य कृष्ण के ही रूप ! किन्तु विधि का विधान, माता पार्वती शनि से पूछती हैं कि उन्होंने नवजात शिशु को बिना देखे आशीर्वाद क्यों दिया? शनि निःसंकोच अपनी पत्नी के शाप की कथा बताते हुए कहते हैं कि पूरी सृष्टि कर्मफल से बँधी हुई है। उसी कर्मफल के परिणाम स्वरूप भगवान श्री कृष्ण गणेश के रूप में अवतरित हुए हैं। शनि महाराज आगे कहते हैं, "मैं तो अपने कर्मों के फल से

शापित हुआ जो मुझे ही वहन करना होगा किन्तु मैं नहीं चाहता कि मेरी दृष्टि किसी जीव पर पड़कर उसे कष्ट दे।"

उस सभा में उपस्थित समस्त स्त्रियाँ संभवतः एक पत्नी पीड़ित नर की व्यथा कथा पर हँस पड़ी होंगी जिससे माता पार्वती के अहंकार को ठेस पहुँची होगी। माता शनि से कहती हैं कि मेरे पुत्र को तो तुम्हारी दृष्टि से कोई अहित हो ही नहीं सकता–विश्व की कोई शक्ति विघ्नेश्वर, विघ्ननाशक का बाल तक बाँका नहीं कर सकती–मैं तुम्हें आदेश देती हूँ कि गणेश पर अपनी दृष्टि डालो। बेचारे शनिश्चर, माता के कोप के भय से नवजात गणेश पर दृष्टिपात करते हैं और दृष्टि पड़ते ही उस शिशु का सर धड़ से अलग होकर ब्रह्माण्ड में विलीन हो जाता है। सरहीन धड़ अपनी गोद में पाकर माता पार्वती मूर्च्छित होकर गिर पड़ी और सारा कैलास शोक–मग्न हो गया। तभी भगवान विष्णु गरुड़ पर आरूढ़ होकर निकले और उन्हें पुष्प भद्र नदी के तीर पर हाथियों का एक झुण्ड दिखा। अविलम्ब उस झुण्ड के स्वामी का सर काट कर अपने साथ लिये हुए गरुड़ पर सवार श्री विष्णु कैलास पहुँचे जहाँ आनन–फानन में यह नवजात के धड़ से जोड़कर उसे जीवित कर दिया गया। माता पार्वती की मूर्च्छा टूटी और गज के सर वाला पुत्र उन्होंने स्वीकार कर लिया। किन्तु जैसे ही उनकी दृष्टि सामने हाथ बाँधे, सिर झुकाये, नीची दृष्टि किये खड़े शनि पर पड़ी, उनका क्रोध भभक उठा–खीज कर उन्होंने शनि को तुरंत अपंग होने का शाप दे दिया। बेचारे शनि को अकारण दो स्त्रियों के क्रोध के कारण शापित होना पड़ा। तब वहाँ उपस्थित देवताओं ने माता से शनि की ओर से प्रार्थना की और उन्हें स्मरण दिलाया कि शनि ने मात्र उनके आदेश का, वह भी अनिच्छा से, पालन किया था इसलिए माता का शाप अकारण ही था। माता पार्वती ने भी समझा कि यह शाप अनावश्यक ही था इसलिए उन्होंने शनि को बहुत आशीर्वाद दिये। उसे अनासक्ति का, ईश्वर भक्ति, तपस्वी होने का, दीर्घायु होने का तथा ग्रहों में पूजनीय होने का आशीर्वाद दिया। शाप तो पड़ ही चुका था किन्तु उसे भी माता ने लँगड़ा कर चलने तक सीमित कर दिया। तबसे शनि नीची दृष्टि किये लँगड़ा कर धीमे–धीमे चलते हैं। यह तो हुई शनि के दुर्भाग्य की कथा।

अब हम रोहिणी शकट की चर्चा करेंगे। शकट गाड़ी को कहते हैं। रोहिणी नक्षत्र में तारे उसे गाड़ी का रूप देते हैं। ज्योतिष शास्त्र में कहा गया है कि रोहिणी में शनि का प्रवेश प्रजा के लिए कष्ट कारक होता है जिसे रोहिणी शकट कहते हैं। इसके कारण पृथ्वी पर बारह वर्षों का दुर्भिक्ष पड़ जाता है। रघुकुल के प्रतापी राजा दशरथ के शासन काल में यह योग आने वाला था। इस सूचना से विचलित होकर दशरथ ने अपने दरबार में मंत्रणा की। वशिष्ठ ऋषि ने कहा कि रोहिणी के स्वामी

हैं ब्रह्मा जो प्रजा के पालक हैं। यदि शनि-रोहिणी भेद करते हैं तो प्रजा को कष्ट अवश्यंभावी है। किन्तु महा प्रतापी दशरथ इस सूचना से विचलित न होकर आगे की सोचने लगे। वे क्षत्रिय धर्म निबाहते हुए अपने रथ पर सवार होकर नक्षत्र मण्डल में पहुंचे और नित्य की भांति शनि महाराज को प्रणाम करके उनसे युद्ध करने लगे। शनि दशरथ की कर्तव्यनिष्ठा से प्रसन्न हुए और उन्हे वर माँगने को कहा। प्रजापालक दशरथ ने शनि से वर माँगा कि जब तक सूर्यादि ग्रह तथा अन्य नक्षत्र हैं तब तक शनि के रोहिणी संचार से प्रजा को कष्ट न हो। उन्होंने शनि की आराधना जिस मंत्र से की, वह आज तक शनि को प्रसन्न करने हेतु प्रयोग में लाया जाता है।

ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता इसी बात में है कि पीड़ा से ऊपर उठकर उसे ही शक्ति का माध्यम बना लिया जाये जैसे शनि महाराज ने किया। कर्म फल तो भोगने ही पड़ते हैं–अच्छे ज्योतिषी और ज्योतिषशास्त्र में विश्वास रखने वाले लोग उस भोग काल को समदर्शी भाव से देखने की तैयारी करा देते हैं। अर्थात् जब अच्छा काल चल रहा हो तो प्रभु का विस्मरण न हो, ग्रहों की शान्ति के पाठ चलते रहें और अगर काल विपरीत हो तो अच्छा है कि प्रभु के नाम सुमिरन से वह काल भी शांन्तिपूर्वक कट जाये।

राहु-केतुः- राहु–केतु की कथा भी विचित्र हैं। पुराणादि के पढ़ने से प्रतीत होता है कि पृथ्वी पर जीवन को तीन मुख्य भागों में बाँटा जाता था–मानव, असुर और दैत्य अथवा दानव। इनके अतिरिक्त देवता थे जिनकी माता अदिति से हम पहले ही परिचित हो चुके हैं। असुर, दैत्य अथवा दानवों के पिता तो एक ही थे अर्थात् कश्यप ऋषि किन्तु अलग–अलग माताओं से जन्म लेने के कारण इनके नाम अलग–अलग हुए। राक्षसों की माता का नाम था खस वहीं दैत्यों की माता का नाम दिति था। पुराणों के अनुसार मानव तो जम्बूद्वीप में रहते थे–जो संभवतः आज का एशिया या पूर्वी यूरोप या उसका मिला–जुला हिस्सा होगा। दानवों के मिले भू–भाग को पाताल मानते हैं। राक्षसों की नगरी जम्बूद्वीप के दक्षिण में कहीं रही होगी । कहते हैं देवताओं का वास स्वर्ग में था जो शायद आज का कैलास मानसरोवर क्षेत्र है। वहीं से देवतागण पृथ्वी के साम्राज्य का संचालन करते थे। कश्यप ऋषि के पुत्र हिरण्यकश्यपु नामक असुर की कथा आप जानते ही हैं। इन्हीं की बहन थी होलिका जो हिरण्यकश्यपु के पुत्र और भगवान के भक्त प्रह्लाद को गोद में लेकर जलती अग्नि में बैठकर मृत्यु को प्राप्त हुई थी। हिरण्यकश्यपु की एक बेटी भी थी जिसका नाम था सिंहिका। सिंहिका का ब्याह विप्रचिति से हुआ था–जैसा कि नाम से स्पष्ट है विप्रचिति का चित्त आसुरी नहीं था। इन्हीं माता–पिता से स्वरभानु नामक सन्तान

की प्राप्ति हुई। स्वरभानु ने घोर तपस्या की। वह देवताओं की तरह पूजा जाना चाहता था–चाहता था उसे भी अमरत्व प्राप्त हो जाये। भगवान उसकी तपस्या से प्रकट हुए और कहा तुम्हें देवत्व तो प्राप्त नहीं हो सकतां क्योंकि तुम्हारा जन्म असुर कुल में हुआ है फिर भी तुम देवताओं के साथ पूंजे जाओगे यह वरदान तुम्हें मिलता है। यह स्वरभानु की साधना थी कि असुर से वह सुर में गिनने योग्य बनने का प्रयास कर रहा था। श्रीमद्भागवत् के अनुसार समुद्र मन्थन से चौदह रत्न निकले वे क्रमशः कामधेनु गाय, उच्चैश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, कौस्तुभ मणि, कल्प द्रुम, रम्भा नाम की अप्सरा, वारुणी नाम की कन्या, पारिजात वृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मी, विष, मदिरा, अमृत और शंख थे।

इनमें प्रायः सारे के सारे रत्न, विष समेत, देवताओं के हिस्से आये क्योंकि असुरों की रुचि उनमें थी भी नहीं। हाँ जब अमृत के बाँटने का समय आया तो देवताओं के साथ–साथ असुरों में भी उसे पीने की होड़ लगी। स्वरभानु ने देखा कि यही अमरत्व पाने का सबसे अच्छा अवसर है। इस बीच भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके अमृत पिलाने का काम अपने जिम्मे ले लिया। वह महामाया, मोह माया, जिसके प्रभाव से त्रिभुवन मोहित है, उसी मोहिनी के आगे असुरों की क्या बिसात थी। मोहिनी ने देवताओं और असुरों को एक क्रम में बिठाया और अमृत पिलाने का काम उस छोर से प्रारंभ किया जहाँ देवता बैठे थे। स्वरभानु, जो न जाने कब से तृषित इस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था, ताड़ गया कि माजरा क्या था। फिर क्या था, वह भी देवता के वेश में सूर्य और चन्द्रमा के बीच में जा बैठा। मोहिनी, जो जगत् मोहती थी, ने भी काल के वश स्वरभानु के मुँह में अमृत डालना प्रारंभ किया। सूर्य और चन्द्रमा को जैसे सच का पता चला तत्क्षण उन्होंने स्वरभानु का भेद खोल दिया और मोहिनी रूपी भगवान विष्णु ने अमृत पिलाते–पिलाते ही उसका सर काट दिया–अमृत का संसर्ग होने से उसका सर और उसका धड़ दोनों अमर हो गये–ब्रह्मा जी ने उन्हें ग्रह बना दिया। असूया (सिंहिका) स्वरभानु का सर अपने साथ ले गयी और प्यार से उसका पालन पोषण किया। कालान्तर में उस सर से साँप का धड़ निकल आया। इसी का नाम राहु पड़ा। उधर मिनी नामक ब्राह्मण धड़ ले गया था जिसको वह पुत्रवत सेवता रहा। इस धड़ को भगवान विष्णु ने सर्प का सर दे दिया। इस हिस्से का नाम केतु हो गया जो अपने प्रयासों और पूर्व जन्म के कर्मफल के कारण ईश्वर भक्त होकर श्रद्धा का पात्र बना। ऋग्वेद के अनुसार असूया का पुत्र राहु सूर्य और चन्द्रमा को जब तम से आच्छन्न कर लेता है तब इतना अंधकार छा जाता है कि लोग अपने स्थान को भी पहचान नहीं पाते। महाभारत, भीष्म पर्व, के अनुसार अन्य ग्रहों के साथ राहु भी ब्रह्मा की सभा में बैठता है। ग्रह बनने के बाद

भी राहु वैर भाव से पूर्णिमा को चंद्रमा और अमावस्या को सूर्य पर आक्रमण करते हैं। इसे हम ग्रहण या राहु पराग कहते हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार राहु का रथ अन्धकार स्वरूप है जिसे कवच आदि से सजाये हुए काले रंग के आठ घोड़े खींचते हैं। ग्रहण के अलावा भी चन्द्रमा के आकार में राहु के कारण परिवर्तन होते हैं। राहु को इसलिए नित्य राहु भी कहा गया—वह राहु जो प्रतिदिन चन्द्रमा पर प्रहार करके उसके आकार में परिवर्तन करता रहता है। पर्व राहु चन्द्रमा को ग्रस कर ग्रहण का कारण बनता है।

केतु राहु का ही कबन्ध है जो राहु के साथ ग्रह बन गया। मत्स्यपुराण के अनुसार केतु बहुत से हैं जिनमें प्रधान धूमकेतु हैं। जहाँ राहु का स्वरूप महाभारत में भीष्म पर्व के अनुसार मण्डलाकार है वहीं केतु का मण्डल ध्वजाकार माना गया है। शायद यही कारण है कि इसकी कल्पना झण्डे की तरह की गयी है। कहा जाता हैं केतु की ध्वजा सूर्य की ध्वजा से भी ऊँची लहराती है। केतु के कारण सूर्य ग्रहण होते हैं—यद्यपि केतु का माप मात्र छः अंगुल बताया गया है। राहु—केतु पहले तो एक ही शरीर में स्वरभानु के नाम से जाने जाते थे किन्तु ग्रह बनने के बाद उनका पुनर्जन्म माना गया। उन्हें क्रमशः पैठीनस और जैमिनी गोत्रों का सदस्य माना गया।

एक बात याद रखने की है। राहु और केतु, अपवादों को छोड़ कर, प्रायः क्लेशकारी होते हैं। यह भी कहा जाता है कि इनमें केतु अपेक्षाकृत कम कष्टदायक हैं और जातक को धर्मोन्मुख करता है। द्वादश भाव का केतु मोक्षकारी कहा गया है। भारतीय विद्या भवन में ज्योतिषशास्त्र के वरिष्ठ अवैतनिक अध्यापक श्री शिवराज शर्मा ने राहु पर बहुत सुन्दर शोधपरक पुस्तक लिखी है। उसके अध्ययन से एक बात स्पष्ट होती है कि राहु तथा केतु हमेशा बुरे फल नहीं देते जैसे शनि और मंगल हमेशा बुरे फल नहीं देते।

जैसा हम पहले कह चुके हैं पराशर ऋषि सभी अवतारों को ग्रहों के अवतार कहते हैं इसलिए हर ग्रह ईश्वर का स्वरूप है। बुरी दशाएँ हमें माँजने के लिए आती हैं। हमारा तमस शेष हो जाये, पूर्व जन्म के पाप कटें और हम ईश्वर को ग्राह्य हों यही कार्य है ग्रहों का। पाठकों की सुविधा के लिए इस अध्याय के अन्त में नवग्रहों की शांति के बारे में कुछ अनुभूत बातें कहीं गयी हैं। यहाँ हमने महर्षि पराशर द्वारा ग्रहशान्त्यध्याय' को ही आधार बनाया है। हाँ, पराशरी में शान्ति हेतु रत्न की चर्चा नहीं की गयी है। फिर भी आज के देश, काल और स्वभाव को देखते हुए उनका भी वर्णन कर दिया गया है किन्तु सत्य तो यह है कि जगत जननी की कृपा से शान्ति के मन्त्र ग्रहों को सुफल देने में अवश्य प्रेरित करेंगे। पराशर ऋषि का वचन है,

"यस्य यश्च सदा दुःस्थ स तं यत्नेन पूजयेत्।
एषां धात्रा वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ।
मानवाना ग्रहधीनां उच्छ्रायाः पतनानि च।
भावाऽभावौ च जगतां तस्मात् पूज्यतमा ग्रहाः।।"

अर्थात् जिस व्यक्ति के लिए जिस समय जो ग्रह अशुभ फल देने वाले हों उस समय वह व्यक्ति उस ग्रह की भक्ति पूर्वक पूजा करे क्योंकि श्री ब्रह्माजी ने ग्रहों को वरदान दिया है कि जो तुम्हारी पूजा करे तुम उसका कल्याण करो। ग्रहों को पूज्यतम (सबसे अधिक पूजने योग्य) मानना चाहिये क्योंकि संसार की उत्पत्ति तथा विनाश के साथ ही मानवों के जीवन का उत्थान और पतन भी ग्रहों के ही अधीन है।

भारतीय विद्या भवन की ज्योतिष कक्षाओं में हम ऐसा ही मानते हैं।

अध्याय 8

ज्योतिष शास्त्र और मनोविज्ञान

हमने पिछले अध्यायों में ज्योतिष शास्त्र पर विस्तृत चर्चा की है। ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से जातक के जीवन के उतार चढ़ाव की झाँकी तो मिलती ही है, मन के आवेगों पर, जिनके कारण पीड़ा, दुःख आदि का अनुभव होता है, नियन्त्रण रखने का धैर्य भी मिलता है। असल चीज है मन – मन का सन्तुलन बना रहे, मन कुण्ठाओं और पूर्वाग्रहों से मुक्त रहे तो आनन्द की प्राप्ति होती है। सफल जीवन की कुंजी है मानसिक संतुलन और उसके कारण मिली शान्ति।

यजुर्वेद के 11 वें अध्याय के 2 और 3 मन्त्र याचनाएँ है जिनमें कहा गया है,
''युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। सुवर्गेयाय शक्त्या।। 2।।''

अर्थात् हम लोग सबको उत्पन्न करने वाले परमदेव परमेश्वर की आराधना रूपी यज्ञ में लगे हुए मन के द्वारा स्वर्गीय सुख की प्राप्ति के लिए पूरी शक्ति से प्रयत्न करें–मन के माध्यम से ही सुख की अनुभूति हो सकती है। अगले श्लोक में कहा गया है,

''युक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतो धिया दिवम् बृहज्जोतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्।। 3।।''

सबों को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर मन और इन्द्रियों के देवताओं को प्रेरणा देते रहें कि हमारे मन, बुद्धि (ज्योतिष में जिनके कारक क्रमशः चन्द्रमा और बुध कहे गये हैं) और इन्द्रियों में प्रकाश फैला रहे अर्थात् हम अन्धकार का अनुभव मन, बुद्धि या इन्द्रियों से कभी न करें–अन्धकार है अभाव!

वेद के बाद थोड़ी चर्चा श्वेताश्वतरोपनिषद् के चौथे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक की करते हैं जहां कहा गया है कि मनुष्य परमात्मा को जानकर परम शान्ति पा लेता है जो उसका चरम लक्ष्य है।

भगवद्गीता के नवें अध्याय के इकतीसवें तथा अठारहवें अध्याय के 62 वें श्लोकों में इसे क्रमशः शाश्वत् और पराशान्ति कहा गया है। अर्थात् मानव जीवन का चरम लक्ष्य है शान्ति। शान्ति का अभाव ही चंचलता, व्यग्रता, अस्थिरता और अविश्वास को जन्म देता है जिससे हम कष्ट का अनुभव करते हैं। ज्योतिष शास्त्र वेदांग है– इसमें अलग से मनोविज्ञान की चर्चा तो नहीं है पर मन के बारे में बहुत कुछ कहा गया है।

एक बात अवश्य याद रखने की है कि ज्योतिष शास्त्र और मनोविज्ञान, दोनों के प्रयास एक जैसे ही हैं–मन की गहराइयों में झाँक कर वहाँ बैठे भय के भूत को भगाना, आत्मविश्वास जगाना, जीवन के प्रति आस्थावान बनाना और जैसा वेदों, उपनिषद और गीता में कहा गया है, मन, बुद्धि और इन्द्रियों में शान्ति का प्रकाश फैलाना। ज्योतिष शास्त्र की कितनी ही शाखाएँ/प्रशाखायें बढीं पर मनोविज्ञान में ज्योतिष जैसी विधा की आवश्यकता कभी भी महसूस नहीं की गयी क्योंकि चन्द्र कुण्डली के माध्यम से जातक की मानसिक स्थिरता और उसके कारण होने वाले परिवर्तनों की यथेष्ट सूचना प्राप्त हो जाती है।

हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि ज्योतिष शास्त्र अपने आप में सम्पूर्ण है जिसमें जीवन का प्रत्येक पहलू, जैसे व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, यहाँ तक कि मौसम, पर्यावरण आदि भी समाहित है। पाश्चात्य देशों में मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र की एक प्रशाखा के रूप में पुष्पित–पल्लवित हुआ। प्लेटो और अरस्तु जैसे दार्शनिकों ने मानव स्वभाव के कई गुणों की चर्चा की है किन्तु ये चर्चाएँ दर्शन शास्त्र का ही अंग बन कर रह गयीं।

पिछली शताब्दी से पाश्चात्य देशों में मन को समझने की दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं–इसे एक विज्ञान का रूप दिया गया है–मनोविज्ञान। व्यवहार और अनुभवों के वैज्ञानिक अध्ययन को मनोविज्ञान कहा जाता है। ज्योतिष शास्त्र की भांति मनोविज्ञान भी बहुआयामी है।

कालान्तर में मनोविज्ञान को वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने का काम फ्रांसीसी दार्शनिक रेने देरकार्ट्स के अलावा ब्रितानी दार्शनिक थामस हाब्स तथा जॉन लोके ने किया। बाद के सारे आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने लोके की विचारधारा को आगे बढ़ाया। लोके के विचार से अनुभव ही मानव के ज्ञान के स्रोत हैं। अब तो खैर, मनोविज्ञान का विस्तार मानव मन की गहराइयों में झांकने के अतिरिक्त शिक्षा, व्यवसाय, सीखने की क्षमता, विकास के क्षेत्र, सामाजिक चिकित्सा, क्रीडा, अपराध आदि क्षेत्रों में भी हो गया है। सुधी पाठक समझ सकेगें कि उपर्युक्त क्षेत्रों में से प्रत्येक में ज्योतिष शास्त्र की पैंठ बहुत गहरी और पुरानी है।

विषय पर पुनः वापस आते हुए यह याद करना उचित होगा कि मनोविज्ञान को आधुनिक स्वरुप डा. सिगमेन्ड फ्रायड ने दिया–सन 1923 में प्रकाशित उनके लेख ने जैसे नयी क्रान्ति का उद्‌घोष कर दिया। फ्रायड की अवधारणा 'लिबिडो' या इन्द्रीयजन्य रही है। फ्रायड के अनुसार बचपन के अनुभव और इच्छाएँ ही भविष्य की आधारशिला रखती हैं। ज्योतिषशास्त्र इससे कहीं बहुत आगे है। यह शास्त्र जानता और मानता है कि न सिर्फ इस जन्म बल्कि सभी पूर्व जन्मों के अनुभवों और कर्मो का प्रतिफल इस जीवन के प्रत्येक क्षण में मिलता है!

खैर, फ्रायड के दो गुणी शिष्यों, क्रमशः डा. कार्ल गुस्ताव यंग और डा. एल्डाफ एडलर, ने अपने गुरु से अलग परम्पराओं का श्री गणेश किया। डा. यंग ने अपने सिद्धान्त की आधार शिला इतिहास और पौराणिक कथाएँ रखीं। उन्होंने न्यू मैक्सिको, भारत और केन्या जैसे देशों की दन्त/पौराणिक कथाओं का अध्ययन करके चेतन और अवचेतन मन के बीच के सम्बन्धों की व्याख्या की। स्वप्नों की व्याख्या के अतिरिक्त बहिर्मुखी तथा अन्तर्मुखी व्यक्तित्वों की परिभाषाएँ भी उन्होंने ही दीं। उनके साथी, ऑस्ट्रिया के रहने वाले डा. एडलर ने मन की हीन भावना को व्यक्तियों के विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का कारण बताया।

मनोविज्ञान मन की चेतनावस्था या अधिक से अधिक अर्द्ध चेतनावस्था तक ही प्रवेश कर पाया है क्योंकि उसकी आधार शिला है अनुभव या चेतना या याददाश्त जिसे हम मेमोरी कहते हैं। यह सुखद बात है कि मनोविज्ञान की एक शाखा विकसित हो रही है जिसका नाम है परा मनोविज्ञान (Para Psychology) जो अब पिछले जन्मों के अनुभवों को भी स्वीकार करने लगी है।

दूसरी ओर ज्योतिषशास्त्र की तो आधारशिला ही है पुनर्जन्म का सिद्धान्त! यहाँ भी ज्योतिशास्त्र मनोविज्ञान से हजारों वर्ष पुराना सिद्ध होता है।

हाँ, हम मनोविज्ञान की उस विधा की चर्चा कर रहे थे जहां मनोचिकित्सक रोगी के इस जन्म के अनुभवों का विश्लेषण करके मन की अशान्ति के कारणों की खोज करते हैं और उसका बड़ा आसान सा इलाज भी बता देते हैं। यह भी कारण है कि मनोरोगी को बार–बार अपने चिकित्सक के पास आना पड़ता है। मनोविश्लेषण विशेष रूप से जटिल कार्य है। यहां अनुभवों को आधार बनाया जाता है और कई बार रोगी सारी बातें बता नहीं पाते क्योंकि उनके बहुत से अनुभव अर्द्धचेतन या अचेतन में चले गये होते हैं जहां से उन्हें सहज निकाल पाना संभव नहीं होता। मनोचिकित्सक की भी अपनी सीमाएँ होती हैं क्योंकि हरेक मन को किसी नियम विशेष में बाँधा नहीं जा सकता। मनोचिकित्सक के अनुभव भी अलग–अलग होते हैं–वहां प्रभाव तो पता चलते रहते हैं पर कारणों की खोज में बहुत जटिलता रहती

है। दूसरी ओर ज्योतिष शास्त्र पूरी तौर से कारण और प्रभाव के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसलिए अच्छा ज्योतिषी कारण और प्रभाव की व्याख्या तो कर ही सकता है, निदान भी बता सकता है। मानसिक अशांति के आरम्भ और अन्त काल के अतिरिक्त स्थिति में परिवर्तन के समय की चेतावनी भी ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से आसानी से दी जा सकती है। ज्योतिषशास्त्र जन्मजन्मातरों के कर्मो के फलों का लेखा जोखा रखते हुए भविष्य की दशा और दिशा की ओर स्पष्ट रूप से इंगित करता है। एक मनोचिकित्सक के लिए आवश्यक होता है कि वह रोगी से मिले, उसे विश्वास में ले और उसके अनुभवों का अध्ययन करे–कारण तलाश करे और रास्ता बताये। यह काम प्रायः कई बार मिलने के बाद ही हो पाता है। दूसरी ओर ज्योतिषी के लिए यह कतई आवश्यक नहीं कि वह जातक से मिले। मात्र जन्म काल, स्थान और जन्म की तिथि के आधार पर जातक के जीवन की परत–दर–परत में ज्योतिषी आसानी से प्रवेश करता जाता है।

हमने पेहले ही चर्चा की है कि ज्योतिषी बच्चे की कुण्डली देखकर उसके नैसर्गिक रुझान का पता कर सकता है और उसे सही पढ़ाई की सलाह दे सकता है। हम यह भी पहले कह आये हैं कि अभिरुचि के अनुसार व्यवसाय या नौकरी की दिशा के बारे में जितना सम्यक ज्ञान ज्योतिषी से प्राप्त हो सकता है, उतना किसी भी मनोवैज्ञानिक से नहीं।

जीवन के सबसे अहम निर्णयों में एक है जीवनसाथी का चयन। मनोविज्ञान में मैरिज काउन्सिलिंग या ब्याह सम्बन्धी सलाह का चलन बढ़ा है किन्तु ज्योतिषीय आधार पर विवाह के लिए सही जीवन साथी चुनना सरल और सहज तो है ही, अधिक विश्वसनीय भी। आइये, अब इस बात पर विचार करें कि कुण्डली में जातक के मनोविज्ञान के बारे में ज्योतिषी को क्या कुछ देखना चाहिये। सबसे पहले तो यह याद रखना होगा कि ज्योतिष शास्त्र आत्मा, बुद्धि और चेतना (जिसमें स्मृति का भी हाथ होता है) के तल पर उतर कर पड़ताल करता है जब कि मनोविज्ञान मन या स्मृतियों से आगे नहीं बढ़ता। आत्मा के कारक हैं सूर्य इसलिए हम अपनी विवेचना वहीं से प्रारंभ करते हैं।

1.0 सूर्य–सूर्य का स्वामित्व सिंह राशि पर है। सिंह राशि पर जितने शुभ प्रभाव होंगे, उतने ही अच्छे फल देंगे सूर्य – पाप ग्रह की दृष्टि या युक्ति से सिंह राशि कमजोर होगी और वही कमजोरी सूर्य में भी दिखेगी। सिंह राशि में दुस्थानों के स्वामी अर्थात, षष्ठेश, अष्टमेश या द्वादशेश के बैठने से भी सिंह राशि दोष युक्त हो जाती है। अतः सिंह राशि या सूर्य पर इनके प्रभाव न हों तो अच्छे फल मिलते हैं। सूर्य इस बात के परिचायक हैं कि हम कौन हैं, आत्मरूप कैसा है हमारा – हम अपने आप को कैसा देखते हैं।

तो आत्मा के लिए कारक ग्रह कहे गये सूर्य। कुण्डली में आत्मरूप का पता प्रथम भाव से चलता है। अतः लग्न भाव अर्थात् लग्न, लग्नेश और सूर्य का कुण्डली में स्वस्थ होना एक सुन्दर शुरुआत की घोषणा करता है। सुन्दर होने से तात्पर्य कि सूर्य केन्द्र या त्रिकोण के स्वामी हों, पाप ग्रह (मंगल या शनि) के प्रभाव में न हों तथा अपने चिर शत्रु राहु केतु के अक्ष में भी न हों। दशम भाव में बैठे सूर्य दिग्बली कहलाते हैं। ऐसे सूर्य में अच्छा करने की विशेष शक्ति होती है।

2.0 लग्न तथा लग्नेश–लग्न जातक के मस्तिष्क का प्रतिनिधित्व करता है। अतः लग्न और लग्नेश भी इसी प्रकार जिस हद तक पाप प्रभावों से मुक्त होंगे–जातक अपने मस्तिष्क से उसी सीमा तक स्पष्ट निर्णय ले सकेगा। लग्न से यह भी पता चलता है कि हम अपने आपको दूसरों के आगे कैसा प्रस्तुत करते हैं–शरीर और मन दोनों स्तरों पर। अर्थात् हमारी पूरी छवि बनती है लग्न और लग्नेश के आधार पर। लग्न और लग्नेश के आक्रान्त या पीड़ित होने से शरीर और मन दोनों पर विपरीत असर पड़ते हैं।

3.0 चन्द्रमा–हम पहले भी कह आये हैं कि चन्द्रमा हैं मन के कारक। हम दूसरों के प्रति क्या विचार रखते हैं–परिवार, मित्र और समाज के प्रति हम कितने चैतन्य हैं–मन किस हद तक संवदेनशील और प्रतिबद्ध (Sincere) है यह भी चन्द्रमा से ही पता चलता है। सूर्य की भाँति चन्द्रमा भी यदि स्वस्थ हों अर्थात् पाप ग्रहों से युति न हो, न ही उनकी दृष्टि पड़े–दुःस्थानों के स्वामियों से भी अछूते रहें तथा राहु–केतु महाराज से बच जायें–शुभ भाव में बैठे हों–पक्षबल अवश्य हो अर्थात् शुक्ल पक्ष की अष्टमी से लेकर कृष्ण पक्ष की सप्तमी तक के चन्द्र हों तो फिर क्या बात है ! हाँ, चन्द्रमा लग्न की तरह हैं जिसे किसी अन्य ग्रह का आलम्बन भी चाहिये। हम जानते हैं कि चन्द्रमा किसी भाव में ऐसे बैठ जाये कि उसके दोनों ओर के भावों में कोई भी ग्रह न हो तो विशेष परिस्थितियों में केमध्रुम नाम का अशुभ योग बनता है जो अनिष्टकारी है। कुण्डली में, वह भी कलियुग में, दोष रहित चन्द्रमा कम दिखते हैं – पर जितने कम पाप ग्रहों का प्रभाव हो और जितने अधिक शुभ ग्रहों की दृष्टि/युति चन्द्रमा को मिले, उतने ही अच्छे होंगे चन्द्रमा और मन की अशांति उतनी ही कम होगी।

4.0 चतुर्थ भाव और चतुर्थेश–चतुर्थभाव है सुखस्थान! सुख–भौतिक स्तर के हों या मन के तल पर, सबों के बारे में विस्तृत जानकारी हमें चौथे भाव से ही मिलती है। चौथे भाव से हम माता के बारे में भी जानते हैं जो हमें बचपन से भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करती है। हम यह भी जानते हैं कि सुख या दुःख एक अनुभूति है जो मन के तल पर भोगी जाती है और मन तथा चतुर्थ भाव के कारक हैं चन्द्रमा! चन्द्रमा

के बारे में पहले ही बात हो चुकी–चतुर्थभाव और चतुर्थेश से हमारी भावुकता, मनोभाव, आनन्द, सौंदर्य को परखने की क्षमता, कला और प्रेम को सराहने की संभावनाएँ आदि भी पता चलती हैं। अर्थात् जिन कारणों से सुख प्राप्त होने की संभावनाएँ होती हैं, सबों का खज़ाना है चौथा भाव! चौथा भाव अध्यात्म के बारे में भी बताता है जो चिरस्थायी रूप से आनन्द प्रदान करता है। इस प्रकार चौथा भाव, उसके स्वामी तथा चन्द्रमा का दोष मुक्त होना सही मानसिकता के लिए परम आवश्यक है। एक बात स्मरण रखने से लाभ होगा। ज्योतिष शास्त्र में जहां राहु, शनि और मंगल पृथकतावादी कहे गये हैं–वहीं सूर्य को क्रूर कहा गया है। इन में दो ग्रहों का एक साथ प्रभाव जिस भाव आदि पर पड़े उसकी हानि होती है। यथा लग्न या चतुर्थ भाव पर इनमें से किसी दो ग्रहों का दृष्टि या युति के कारण प्रभाव हो तो शरीर या मन ठीक नहीं रहता।

5.0 पंचम भाव तथा पंचमेश एवं बुध तथा गुरु–पंचम भाव से हमारी चेतना (Intellect) के विस्तार की विवेचना की जाती है। बुद्धिमत्ता का परिचय भी पंचम भाव से ही मिलता है। स्मृति का बोध कराने वाला भाव भी पंचम है। अतः पंचम भाव और पंचमेश का पीड़ित होना स्मृति के लिए अच्छा नहीं होता। पूर्व जन्म के कर्म का लेखा जोखा यहीं से मिलने के कारण पंचम भाव के पीड़ित होने से चेतना या स्मृति का कमजोर होना भी संभव है।

जो लोग चेतना खो देते हैं, पूर्व जन्म की यादों से परेशान रहते हैं, स्मृति ह्रास के रोगी होते हैं अथवा अकारण भयभीत रहते हैं, उनकी कुण्डली में पंचम भाव और पंचमेश के अतिरिक्त बुध भी आक्रान्त रहते हैं क्योंकि ग्रहों में सबसे प्रतिभाशाली माने गये हैं बुध–बुध को बुद्धि तथा स्नायु तन्त्र (Nervous System) के अतिरिक्त तार्किकता (Logic) और परिपक्वता का भी कारक कहा गया है। निश्चय ही बुद्धि के कारक बुध के पीड़ित होने पर अकारण भय (Fobia), स्मृति ह्रास आदि मानसिक बीमारियां संभव होती हैं। इस प्रकार बुध पर शुभ ग्रहों का प्रभाव (दृष्टि, युति या केन्द्रीय प्रभाव) स्वस्थ मानसिकता देता है।

दूसरी ओर विद्वत्ता, ज्ञान और परिपक्वता के कारक हैं देवगुरु बृहस्पति! जिसकी कुण्डली में गुरु शक्तिशाली होते हैं, वह जातक जीवन के खेल की माया जानता है–छोटे–मोटे थपेड़े उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते। परम यशस्वी गुरु श्री के. एन. राव कहते हैं कि लग्न में बैठे गुरु सवा लाख दोषों का निवारण कर देते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुण्डली में जो भाव मानसिकता के परिचायक हैं, वे है क्रमशः लग्न, चतुर्थ और पंचम। किन्तु कई मानसिक रूप से परेशान लोगों को अनिद्रा का भी शिकार पाया गया है। इसके लिए थोड़ा विस्तृत विवेचन अच्छा होगा।

द्वादश भाव को कहा गया है शयन सुख का भाव। अतः द्वादश भाव तथा द्वादशेश यदि आक्रान्त हों तो अनिद्रा हो सकती है। इस प्रकार मानसिक तनाव के कारण लग्न, चतुर्थ भाव तथा पंचम भाव के अतिरिक्त द्वादश भाव से भी ढूंढ़े जा सकते हैं। इन भावों के स्वामियों पर भी यदि दोष हो, अर्थात् ये पाप ग्रस्त हों तो मन पर बुरे असर होंगे।

दूसरी ओर ग्रहों में यदि सूर्य, चन्द्र, बुध और गुरु स्वस्थ हों, शुभ भावों के स्वामी होकर शुभ भावों में, उच्च, मूल त्रिकोण, स्व, अधिमित्र या मित्र की राशि में हों–वर्गोत्तम हों, पुरुषोत्तम नवांशों में (अर्थात् नवांश में गुरु या शुक्र की राशि में हों), पाप ग्रहों (शनि, मंगल, राहु, केतु) के प्रभाव में न हों, त्रिक भावों (6, 8 तथा 12) के स्वामियों का प्रभाव न हो, ग्रह युद्ध में पराजित न हुए हों, शुभ वर्गों में हों तथा अस्तंगत न हों तो मानसिक रूप से जातक सबल होता है। एक बात और देखने की है, तथाकथित पाप ग्रहों का प्रभाव सदैव बुरा नहीं होता। पाप ग्रह भी कई बार योग कारक हो जाते हैं यथा कर्क और सिंह लग्न के लिए मंगल। पापग्रह यदि शुभ ग्रहों के नवांशों (गुरु और शुक्र के नवांश) में चले जायें तो भी उनकी अशुभता में भारी कमी आती है। पाप ग्रह यदि शुभ ग्रहों के नक्षत्रों में हों तब भी वे अशुभ फलदायी नहीं रहते।

इस प्रकार कुण्डली में भली–भाँति विचार करके जातक की मानसिक शक्ति का आकलन करना चाहिये। जीवन का ध्येय है मानसिक शान्ति। श्री राव ने भागवत गीता के बारहवें अध्याय के श्लोक 12 की विशेष चर्चा की है जिसमें कहा गया है कि–

''श्रेयो हि ज्ञानमभ्या साज्जानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्म फल त्यागस्त्यागाछान्तिरनन्तरम्''।।

अर्थात्, 'मर्म को न जान कर किये हुए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से परमेश्वर का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी सब कर्मो के फल का त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है।'

मनोविज्ञान और ज्योतिष शास्त्र दोनों ही मानसिक शान्ति के मार्ग बताते हैं। मनोवैज्ञानिक के लिए यह कार्य आसान नहीं है कि वह अशांति के आध्यात्मिक कारण ढूँढ ले। वह तो इस जन्म के अनुभवों तक ही अपनी खोज की गहराई सीमित रखता है पर ज्योतिषी मन की गहनतम सीमाओं को लांघकर कई ऐसे निष्कर्षों पर पहुँच सकता है जो सत्य हैं किन्तु सामान्यतः समझे नहीं जा सकते। आइये, ज्योतिष शास्त्र की कसौटी पर हम मनोविज्ञान के आधुनिक पुरोधा सिगमण्ड फ्रायड की कुण्डली की विवेचना करें।

फ्रायड की जन्म कुण्डली

फ्रायड की नवांश कुंडली

लग्न $6^{s}\ 17^{0}\ 09'$ (आर्द्रा), सूर्य $0^{s} 25^{\circ} 58'$ (भरणी), चन्द्र $1^{s} 24^{0} 10'$ (मृगशिरा) मंगल $5^{s} 13^{0} 01'$ (हस्त), बुध $1^{s} 7^{0} 25'$ (कृतिका), गुरु $11^{s} 9^{0} 13'$ (उत्तर भाद्रपद), शुक्र $0^{s} 5^{0} 50'$ (अश्विनी) शनि–$2^{s} 7^{0} 11'$ (मृगशिरा), राहु $0^{s}\ 3^{0} 07'$ (अश्विनी) केतु $6^{s} 3^{0} 07'$ (चित्रा)

यहाँ दृष्टव्य है कि लग्न पर केतु–राहु के अतिरिक्त सूर्य का भी प्रभाव है अर्थात्, लग्न पर अच्छे प्रभाव नहीं हैं। लग्न आर्द्रा नक्षत्र में होने के कारण राहु के प्रभाव में है तथा लग्नेश शुक्र यद्यपि लग्न पर सीधी दृष्टि डाल रहे हैं फिर भी शुक्र स्वयं अग्नि तत्व राशि तथा केतु के नक्षत्र में हैं। केतु चित्रा नक्षत्र में होने के कारण मंगल के प्रभाव में हैं जो शुभ नहीं है। उधर चन्द्रमा और मंगल में नक्षत्र परिवर्तन योग बन रहा है जो शुभ नहीं है क्योंकि तुला लग्न के लिए मंगल सप्तमेश और द्वादशेश होकर मारकत्व से ग्रसित हैं। फ्रायड की जीवनी पढ़ने से पता चलता है कि उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य हमेशा विपरीत रूप से प्रभावित होता रहा–सूर्य उच्च राशि में हैं, नवांश में दिगबली हैं, लग्नेश के नक्षत्र में हैं इसलिए लोगों को प्रभावित करने की योग्यता फ्रायड में सदा से ही रही परन्तु सप्तम भाव में होने के कारण सूर्य ने फ्रायड को उस भाव के सुखों से वंचित रखा। यहाँ सप्तम भाव बुरी तरह आक्रांत है क्योंकि वहाँ विच्छेद कारक ग्रहों का वह प्रभाव तो है ही जो लग्न भाव के सदंर्भ में हम पहले बता चुके हैं, साथ ही मंगल की दृष्टि भी पड़ रही है। हम जानते हैं कि फ्रायड के जीवन में प्रेम और दाम्पत्य सुख का सदा अभाव रहा।

राहु और शुक्र दोनों ही एक हीं नक्षत्र अश्विनी में होने के कारण उसके स्वामी मंगल से प्रभावित हैं साथ ही इन पर मंगल की दृष्टि भी है। शुक्र और राहु दोनों

क्रमशः कामभावना और अचेतन मन के कारक हैं। इसी प्रकार सप्तम भाव व्यवसाय का भी प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि वह दशम से दशम भाव है इसलिए फ्रायड का व्यवसाय ऐसा शोध विषय हुआ जहां उसने अचेतन मन के काम भावना को प्रधानता दी। असामान्य मनोविज्ञान में अग्नि तत्व या हिंसात्मक प्रवृतियों पर भी फ्रायड ने बहुत मौलिक कार्य किये।

लगे हाथों चतुर्थ भाव तथा चतुर्थेश को भी जाँच लेना अच्छा होगा। चतुर्थ भाव राहु–केतु सूर्य और शुक्र के केन्द्रीय प्रभाव में है परन्तु उस पर किसी भी ग्रह की स्पष्ट दृष्टि नहीं पड़ रही है। चतुर्थेश शनि नवम भाव में जाकर राजयोग कारक बन गये हैं जिन पर भी किसी ग्रह की दृष्टि नहीं है। शनि मृगशिरा नक्षत्र में हैं जिसके स्वामी हैं मंगल – यह भी भौतिक रूप से जातक को यश/राजकृपा तो दे गये पर शनि की विच्छेदकारी प्रवृति, नकारात्मकता तथा हीन भावनाओं का बार–बार प्रभाव फ्रायड की ज़िन्दगी पर पड़ा। नवांश कुण्डली में यह शनि पुरुषोत्तम नवांश में हैं इसलिए फ्रायड के जीवन पर लोगों ने जब भी उंगली उठाई, फ्रायड को बदनाम करने का प्रयास किया – उसके शत्रु असफल रहे। नवांश में भी शुक्र पर सूर्य तथा चन्द्रमा के केन्द्रीय प्रभाव स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

अब आइये, मन के कारक चन्द्रमा की विवेचना करते हैं। जन्म कुण्डली का दशमेश चन्द्रमा उच्च राशि में नवमेश बुध के साथ बैठ कर अष्टम भाव में राज योग बना रहे हैं। इन पर किसी भी ग्रह की दृष्टि नहीं है। चन्द्रमा मृगशिरा नक्षत्र में होने के कारण मंगल के दुष्ट प्रभाव से आक्रान्त हैं। ऐसे भी चन्द्रमा और मंगल के नक्षत्रों में परिवर्तन योग बना हुआ है जो शुभ नहीं है क्योंकि तुला लग्न के लिए मंगल शुभ ग्रह नहीं माने गये। मंगल द्वादश भाव में वक्री होकर बैठे हुए हैं। वक्री ग्रह बार–बार पीछे की ओर ले जाते हैं, अतीत की ओर। द्वादश भाव से गोपनीयता का भी पता चलता है। अचेतन मन, पारलौकिकता आदि बातें भी द्वादश भाव से जुड़ी हुई हैं। मंगल क्रोध, आक्रामकता, विध्वंस आदि के कारक भी हैं। यहां मंगल बारहवें भाव में कन्या (शत्रु ग्रह की) राशि तथा चन्द्रमा (तात्कालिक शत्रु ग्रह) के नक्षत्र में हैं। इसलिए यह मंगल मन की गोपनीय गलियों में घूम कर वहां की आक्रामकता तथा विध्वंसता खोजने की प्रवृति बताते हैं। यह भी सच है कि मनोविश्लेषण करते हुए कई बार फ्रायड स्वयं उग्र हो जाया करते थे।

अष्टम भाव का राजयोग मन की छिपी प्रवृतियों की ओर, खोज की ओर तथा बुध का साथ होने के कारण बुद्धि की गहराइयों में झांकने की प्रवृति इंगित करता है। नवांश में चन्द्रमा दुःस्थान (षष्ठम भाव) का स्वामी होकर सप्तम (मारक) भाव में चले गये हैं। इस कारण विभिन्न प्रकार के अवरोध/प्रतिरोध और गतिरोध का फ्रायड

सामना करते रहे, अपने देश में मान्यता नहीं मिली और उनका, मानसिक स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहा।

फ्रायड की कुण्डली में बुद्धि के कारक बुध बड़ी विचित्र परिस्थियों में फंसे हुए हैं। पाप कर्त्तरी योग, अष्टम भाव, शत्रु ग्रह चन्द्रमा से युति आदि ढेर सारे कष्टकारी प्रभाव बुध पर स्पष्ट देखे जा सकते हैं। बुध सूर्य के नक्षत्र में हैं जो एकादशेश है और बुध के लिए तात्कालिक रूप से मित्र होने के कारण अशुभ नहीं हैं। ऐसे बुध से बहुत अपेक्षा करना व्यर्थ है। हाँ, अष्टम भाव में होने के कारण चन्द्रमा की तरह गोपनीय बातों की ओर विशेष ध्यान देने की प्रवृत्ति बुध अवश्य देते हैं—न सिर्फ प्रवृत्ति बल्कि महारथ भी क्योंकि नवांश में बुध नीच भंग राजयोग कारक हो जाते हैं, गुरु से परिवर्तन योग में आकर गुरु की दृष्टि पाते हैं तथा किसी भी अन्य पाप ग्रह से दृष्ट नहीं हैं। इसलिए बुद्धि पर शुभता का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। बुद्धि की कमी फ्रायड को थी, ऐसे उनके शत्रु भी नहीं सोचते थे। उनकी तर्क शक्ति का लोहा सभी मानते रहे और यह सब दिया भाग्येश बुध ने। आइये अन्त में मेधा के कारक गुरु की भी विवेचना कर ली जाये। जन्म कुण्डली में गुरु शनि के नक्षत्र में हैं, अपने घर, षष्ठम भाव में, बैठे हुए हैं और शनि तथा मंगल दोनों से दृष्ट हैं। शनि प्रायः योगकारक हैं क्योंकि वह चतुर्थ और पंचम भाव के स्वामी होकर नवम् भाव में बैठे हैं। गुरु पर विच्छेदकारी ग्रहों का प्रभाव तथा उसका छठे भाव में बैठना आदि अच्छे लक्षण नहीं है। यह व्यक्ति बार–बार ज्ञान के तल पर शत्रुओं से घिरा और बार बार उन पर विजय पायी। नवांश में यह गुरु अष्टम भाव में जाकर शनि से दृष्ट हो गये हैं। फिर वही मन के अन्दर जाने की अन्तहीन यात्रा, अकेलापन, गोपनीयता आदि आदि प्रभाव स्पष्ट दिखते हैं। फ्रायड के जीवन काल में ही, उनके दो पट्ट शिष्य, क्रमशः यंग और एडलर उनसे अलग खड़े हो गये। एक पूरी नयी विचार धारा प्रारंभ कर गये वे! ऐसा सब कुछ देख पाना ज्योतिष शास्त्र के लिए सामान्य बात है। अन्त में एक बात और, फ्रायड के आत्म कारक हैं सूर्य। वे उच्च की राशि में बैठे तो हैं ही, शुक्र के प्रभाव में भी हैं। शुक्र का प्रभाव नवांश कुण्डली में और स्पष्ट है। नवांश में स्वग्रही शुक्र के अतिरिक्त स्वगृही मंगल भी आत्मकारक तथा दिगबली सूर्य को देखते हैं। इस प्रकार फ्रायड सेक्स एनर्जी (काम शक्ति) की क्रूरता, आक्रामकता और उग्रता में उलझ कर रह गये। सूर्य का नक्षत्र भरणी होने के कारण, जिसके स्वामी शुक्र हैं, वे अन्त तक काम वासना को ही जीवन की प्रत्येक घटना का कारण मानते रहे। यह सिद्धान्त स्थूल तल पर तो तर्क की कसौटी पर शायद ठीक लग भी जाये पर गहराई में जाने से यह विचार एकांगी प्रतीत होता है।

एक अन्य सटीक उदाहरण से हम इस अध्याय में वर्णित सिद्धान्तों का उपयोग देखते हैं। प्रस्तुत कुण्डली अमेरिका के एक प्रख्यात विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की

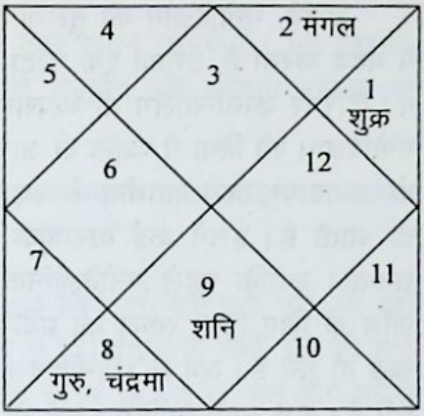

शिक्षिका की है जो श्री राव के पास विमर्श के लिए तब आयी जब उनकी शुक्र की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा चल रही थी। आइये, कुण्डली देखते हैं।

(i) पहली दृष्टि में ही सप्तम भाव का कष्ट उभर कर आता है जहां अष्टमेश शनि बैठे हैं और जिन पर द्वादश भाव में बैठे षष्ठेश मंगल की आठवीं दृष्टि पड़ रही है।

(ii) सप्तमेश गुरु भी सुखी नहीं हैं क्योंकि वे षष्ठम भाव में बैठे हैं तथा उपचयेश एवं मिथुन लग्न के लिए सब प्रकार से कष्टदायक मंगल उन्हें बारहवें भाव से देख रहे हैं। गुरु के साथ नीच के चन्द्रमा उनके कष्ट में वृद्धि ही करते हैं। इस प्रकार सप्तम भाव तथा सप्तमेश दोनों अपार कष्ट में हैं। सप्तमेश का षष्ठम भाव (मुकदमे, कोर्ट–कचहरी आदि) में नीच के चन्द्रमा के साथ बैठना मानसिक तनाव तथा कानूनी उलझाव बताता है।

अब चन्द्र लग्न से कुण्डली को देखते हैं – चन्द्र लग्न से सप्तम भाव में चन्द्र लग्न से षष्ठेश मंगल बैठे हैं जिनका चन्द्र लग्न से सप्तमेश शुक्र के साथ परिवर्तन योग है। इस प्रकार एक बात तो स्पष्ट हुई कि लग्न तथा चन्द्र लग्न, दोनों स्थानों से सप्तमेश (क्रमशः गुरु तथा शुक्र) शुभ ग्रह होने के बावजूद षष्ठम भावों में हैं। साथ ही दोनों लग्नों से सप्तम भावों में पापी ग्रह (क्रमशः शनि तथा मंगल) बैठे हैं। यह भी स्पष्ट है कि लग्न तथा चन्द्र लग्न के सप्तमेश पीड़ित हैं।

अब दशानाथों की स्थिति देखिये। शुक्र तथा चन्द्रमा ने इस महिला के षष्ठम भावों को जाग्रत कर दिया। मिथुन लग्न के लिए मारक कहे जाने वाले चन्द्रमा नीच के होकर सप्तमेशों (तथा मारकेश/ बाधकेश) गुरु को प्रभावित कर रहे हैं। वहीं चन्द्र लग्न से सप्तमेश शुक्र षष्ठेश मंगल से परिवर्त्तन योग बना कर पीड़ित हैं। दोनों लग्नों से सप्तम भावों तथा सप्तमेशों पर महान पीडादायक मंगल का प्रभाव है जो दोनों लग्नों से षष्ठेश हैं। ज्योतिष शास्त्र का सामान्य जानकार भी इन तथ्यों तथा दशा को देखकर निष्कर्ष निकाल सकता है कि इस काल में विवाह जैसी पवित्र संस्था कचहरी में घसीटी गयी और विवाह विच्छेद ही इस सम्बन्ध की दुखान्त परिणति है। यह विवेचना सुनकर श्री राव के प्रति विस्मय और श्रद्धा से भरी जातक ने कहा कि जो विवेचना श्री राव ने पांच मिनटों में कर दी, उतनी सूचना एकत्रित करने में ही किसी दक्ष मनोवैज्ञानिक को भी कम से कम तीन चार घन्टों तक गहन पूछताछ करने की आवश्यकता पड़ती।

आइये, मनोविज्ञान की तुलना में ज्योतिष शास्त्र कैसे जीवन को सरल बनाने में मदद करता है, इसका एक छोटा उदाहरण हम देखें, पढ़ाई की दिशा तय करने में। कैरियर काउन्सिलिंग या व्यवसाय सम्बन्धी विमर्श का धन्धा अभी जोरों पर है। मनोविज्ञान की विधा में व्यक्ति के आगे प्रश्नावली रख दी जाती है और उसके उत्तरों के आधार पर, आगे बातचीत के माध्यम से, भविष्य की दिशा का निर्णय लेने में मदद दी जाती है। इसमें कई बार चूक होने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। क्योंकि पहले मनोवैज्ञानिक IQ (इन्टैलिजेन्स क्वोशेन्ट) या बुद्धिमता की जाँच के लिए जिस स्केल का प्रयोग करते थे, अब उसी की वैधता पर प्रश्नचिन्ह खड़े हो गये हैं। अब EQ (इमोशनल क्वोशेन्ट) या भावात्मक स्तर पर जाँच की जा रही है। कुछ मनोवैज्ञानिक इससे भी परे SQ (स्पिरिचुअल क्वोशेन्ट) या आध्यात्मिक स्तर पर जाँच की भी बात करने लगे हैं। यह वही तल है जिसकी बात ज्योतिष शास्त्र कई शताब्दियों से करता आया है। ज्योतिषी का कार्य बहुत सरल है। वह जन्म कुण्डली के अतिरिक्त चतुर्थ विंशांश (D-24) कुण्डली में संभावनाएं देखकर पढ़ाई की दिशा तथा कैरियर काउन्सिलिंग या व्यवसाय विमर्श में सटीक सलाह दे सकता है। श्री के. एन. राव के निर्देश में किये गये मौलिक एवं उच्च स्तरीय शोधों की पुस्तक है " Advanced Techniques of Astrological Predictions Vol-I" उस पुस्तक में संभावनाओं पर बहुत से उदाहरण दिये गये हैं। इस पुस्तक का विषय नहीं होने के कारण सुधी पाठकों से आग्रह है कि वे विशेष जानकारी के लिये उस पुस्तक का अवलोकन अवश्य करें।

इसी प्रकार मनोविज्ञान की सीमित अवधारणाओं से मुक्त होकर ज्योतिष शास्त्र के अगाध सागर में डुबकी लगाकर व्यक्ति व्यवसाय का चुनाव सफलता पूर्वक कर सकते हैं। इसके लिए विज्ञ पाठक कर्नल गौड़ द्वारा रचित ज्योतिष और आजीविका नाम की पुस्तक से अत्यन्त विश्वसनीय सूत्रों की जानकारी पा सकते हैं।

आज मनोविज्ञान जितनी भी शाखाओं/प्रशाखाओं में फैल रहा है, प्रायः प्रत्येक के लिए ज्योतिषशास्त्र में समुचित उत्तर है चाहे वह सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology) हो या परा मनोविज्ञान (Para Psychology)! दुःख सिर्फ इस बात का है कि ज्योतिष शास्त्र की विधा में आगे शोध के लिये न तो वित्तीय संसाधन उपलब्ध हैं न ही उचित आधार! दूसरी ओर मनोविज्ञान के लिये दुनिया भर के शोध संस्थान और धन उपलब्ध है, वहाँ हम प्रत्येक पग पर पश्चिम का मुँह देखकर आगे बढ़ते हैं। हमारी अपनी संस्कृति में आयुर्वेद, योग तथा ज्योतिष शास्त्र के समुचित उपयोग से जीवन को सफल बनाने के कई नुस्खे उपलब्ध हैं परन्तु उनको उचित दिशा देने के लिये विशेष प्रयास नहीं किये गये। वर्त्तमान काल में, जैसा पहले भी कहा गया है, जीवन को सही राह पर लाने के लिये सरकार ने ज्योतिष शास्त्र को विश्वविद्यालय

स्तर पर पढ़ाने की मान्यता देने की दिशा में कुछ कदम उठाये हैं। यह निश्चय ही स्पृहणीय हैं। शायद इन्ही सब उपायों से यजुर्वेद की कामना सफल हो सकेगी।

पश्येम शरदः शतं/जीवेम शरदः शतं/श्रुणुयाम शरदः शतं/प्रब्रावम शरदः शतम/दीनाःस्याम शरदः शतं/भूयश्च शरदः शतात्।।"

हम सौ शरद् ऋतुओं तक देखें—सौ वर्षो तक जियें, सौ वर्षो तक सुनें, सौ वर्षो तक बोलें, सौ वर्षो में कभी दीनावस्था को प्राप्त न हों। इतना ही नहीं, हम सौ वर्षो से अधिक काल तक भी देखते, सुनते, बोलते और स्वस्थ रहें। शरीर, मन और आत्मा के तल पर !

अध्याय 9

ज्योतिष शास्त्र और विज्ञान

आज की दुनिया में प्रत्येक ज्ञान को विज्ञान (विशेष ज्ञान) बनाने की होड़ सी लगी है। गृह सज्जा, पाक शास्त्र तथा परिवार की देखंभाल जैसे भावुक कार्य भी अब कला नहीं रहे – इन्हें गृह–विज्ञान (Home Science) कहा जाता है। भूगोल भी लुढ़कता हुआ विज्ञान की बिरादरी में शामिल हो गया है। गणित अपने आप में सम्पूर्ण शास्त्र था, अब गणितज्ञ गणित वैज्ञानिक हो गये हैं – इस प्रकार विज्ञान का दानव ज्ञान को चारों ओर से घेर कर अपने चंगुल में कसने का प्रयास कर रहा है। दरअसल विज्ञान की आधारशिला है अविश्वास! विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरने के आधार हैं अवलोकन (observation), प्रयोग (experiment), कठोर परीक्षण (critical testing), एक जैसी परिस्थिति में प्रयोग के फल की पुनरावृत्ति (replication) तथा इनकी सत्यता स्थापित होने पर इन्हें सूत्र बद्ध करना (formulation)। जब तक कोई सूत्र इन सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण न हो जाये तब तक उसे विज्ञान सम्मत नहीं माना जाता। आइये, एक बार ज्योतिष शास्त्र को भी इन्हीं कसौटियों पर कसते हैं। हम पहले ही बता चुके हैं कि ग्रहों, नक्षत्रों आदि के अध्ययन वाले शास्त्र का नाम है ज्योतिष। हज़ारों वर्षों तक इनके अवलोकन (observation) के बाद इनका सम्बन्ध प्राकृतिक घटनाओं यथा भूकम्प, आंधी, बाढ़, वर्षा, ऋतु आदि से स्थापित होता पाया गया। यह सब प्रकृति के प्रयोग (experimentation) थे। बाद में इन्हीं ग्रहों के प्रभाव दैनिक मानव जीवन पर पड़ते पाये गये। प्रत्येक दिन इनका परीक्षण (critical testing) जीवन में सफलता पूर्वक होते देखा गया। तब सूत्र व्यवस्थित हुए (formulation)। उन्हें पहले जन साधारण तक श्रुति और स्मृति के माध्यम से, और बाद में पुस्तकों के माध्यम से, पहुंचाया गया। हम जब ज्योतिष और कर्म सिद्धान्त की चर्चा कर रहे थे तब हमने कतिपय सूत्रों के माध्यम से स्थापित किया था कि

किन परिस्थितियों में जातक सबसे बड़ी, सबसे छोटी या अपनी योनि (पुरुष या स्त्री) में सबसे बड़ी या सबसे छोटी सन्तान होगी। इसी प्रकार एक अन्य सूत्र भी संत्यापित हुआ था कि किन परिस्थितियों में जातक दत्तक सन्तान होती है अथवा उसका धर्म परिवर्तन होता है।

एक नया सूत्र देखिये : इसे हम शनि तथा गुरु का संयुक्त गोचर प्रभाव कहेंगे। प्रातः स्मरणीय ज्योतिष गुरु श्री राव द्वारा शोध किये गये इस सूत्र में बताया गया है कि जब तक शनि तथा गुरु किसी जातक की कुण्डली के पंचम भाव/ पंचमेश अथवा नवम भाव/नवमेश को गोचर में प्रभावित नहीं करते, तब तक उसके आंगन में सन्तान का फ़ूल नहीं खिल सकता। इस सिद्धान्त को हम विश्वविख्यात पिता–पुत्री की जोड़ी की कुण्डलियों पर लगाकर इसकी सत्यता परखते हैं।

पिता की कुण्डली

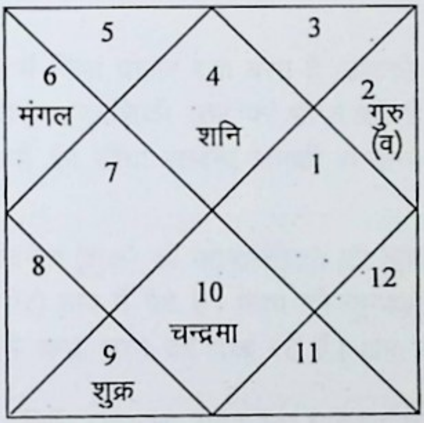

पुत्री की कुण्डली

जब पुत्री का जन्म हुआ तब शनि कर्क में थे। इन्हें पिता की कुण्डली में रखने से वहां यह लग्न में बैठ जाते हैं। उनकी तीसरी दृष्टि पिता की कुण्डली के पंचमेश मंगल पर पड़ती है। अब पुत्री की कुण्डली के गुरु को पिता की कुण्डली में रखने पर वे वहां वृषभ राशि (एकादश भाव) में स्थापित होते हैं। वहां से उनकी पांचवीं दृष्टि मंगल (पंचमेश) तथा सातवीं दृष्टि (वृश्चिक) पंचम भाव पर पड़ रही है। इस प्रकार इस सूत्र की सुन्दर पुष्टि होती है कि गोचर के शनि तथा गुरु का प्रभाव पिता की कुण्डली के पंचम भाव/ पंचमेश या नवम भाव/ नवमेश पर अवश्य होना चाहिये।

यहां तो मात्र एक सिद्धान्त के प्रतिपादन द्वारा स्थापित किया गया है कि ज्योतिष शास्त्र विज्ञान की सीमाओं से बहुत आगे है। ऐसे हज़ारों ज्योतिषीय सूत्र हैं जिन्हें कभी और कहीं भी परखा जा सकता है।

अन्त में एक बात और – यदि कहीं पहाड़ी पर खड़े होकर सूर्योदय या सूर्यास्त का चित्र एक साथ सौ कैमरों से खींचा जाये तो सबों का दृश्य एक जैसा होगा। यह है विज्ञान की निर्ममता। किन्तु यदि उसी सूर्यास्त का दृश्य दो चित्रकार कैनवास पर अंकित करें तो दोनों चित्रों में, चित्रकारों की कल्पनाओं में अन्तर होने के कारण, कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होगा। यह है कला का विस्तार ! इसी प्रकार दो विभिन्न ज्योतिषी एक ही कुण्डली की वैज्ञानिक विवेचना करके एक ही फल की भविष्यवाणी तो करते हैं परन्तु प्रत्येक भविष्यवाणी के रस में ज्योतिषी के अनुभवों के विस्तार के कारण थोड़ा अन्तर पड़ता है। यह है ज्योतिष शास्त्र के कला भी होने का प्रभाव। अतः ज्योतिष शास्त्र विज्ञान से परे, विज्ञान और कला का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। इसे शास्त्र कहना ही उचित है, जिसका अर्थ है जानने योग्य सम्पूर्ण तथ्यों की उपलब्धता।

अध्याय 10

ज्योतिष शास्त्र और आनुवंशिकी (जेनेटिक्स)

ज्योतिष शास्त्र हमारे दैनिक जीवन में किस प्रकार रचा बसा है, उसकी एक बानगी देखिये। इसका वैज्ञानिक प्रयोग हम आनुवंशिकी स्तर पर भी देखते हैं कि कैसे माता तथा पिता, दोनों की कुण्डलियों का सीधा सम्बन्ध उनकी सन्तानों की कुण्डलियों से होता है।

सबसे पहले पिता की कुण्डली के पंचमेश (शुक्र) को ज्येष्ठ संतान की कुण्डली में देखते हैं। वहां ये लग्न (जातक के शरीर) भाव में बैठे हैं। माता की कुण्डली के पंचमेश शनि ज्येष्ठ संतान की कुण्डली में चन्द्र लग्न को देख रहे हैं। अब प्रथम

तिथि: 26/8/1950 समय: 1:49 जबलपुर

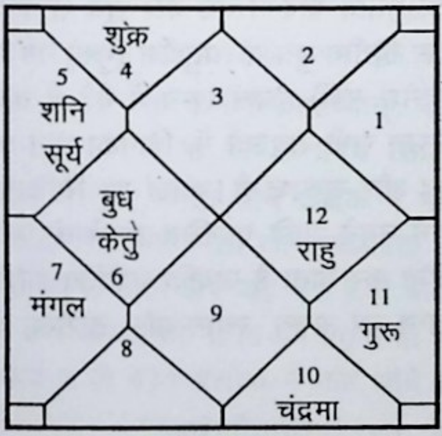

पिता

तिथि: 14/9/1957 समय: 7:35 शाहजहांपुर

माता

तिथि: 02/1/1979 समय: 4:15

विशाखपट्टनम (पहली संतान)

तिथि: 19/12/1984 समय: 7:20

मुम्बई (दूसरी संतान)

सन्तान की कुण्डली के नवमेश चन्द्रमा को देखिये जो उनके पिता के बारे में बताते हैं। इनको पिता की कुण्डली में देखने पर पता चलेगा कि वहां अष्टम भाव में बैठकर वे पिता के पंचमेश (शुक्र) को देख रहे हैं। है न पिता और ज्येष्ठ पुत्र में ज्योतिषीय सम्बन्ध ? अब ज्येष्ठ पुत्र के चतुर्थेश (शनि) को मां की कुण्डली में देखिये जहां ये स्वयं पंचमेश तो हैं ही, तृतीय भाव में बैठ कर पंचम भाव को भी देख रहे हैं। कैसा चमत्कार है यह! चलिये दूसरे पुत्र के सम्बन्ध में भी विवेचना करते हैं। दूसरी सन्तान के लिये पंचम नहीं, सप्तम भाव (पंचम से तीसरा) देखना होगा। पिता तथा माता, दोनों के सप्तमेश गुरु ही हैं और आश्चर्य की बात है कि वे दूसरी सन्तान के लग्नेश होकर उसके लग्न में विराजमान हैं। अब दूसरी सन्तान की कुण्डली के नवमेश (सूर्य) को पिता की कुण्डली में बिठाइये। वहां तृतीय भाव में बैठ कर सूर्य सप्तमेश (पंचमेश नहीं) गुरु को देख रहे हैं। इसी प्रकार द्वितीय पुत्र के चतुर्थेश (गुरु) को मां की कुण्डली में देखिये। वहां वे सप्तमेश (पंचमेश नहीं) होकर लग्न में बैठे हैं तथा सप्तम भाव को देख रहे हैं। एक परिवार के उन सभी सदस्यों में, जिनका खून का रिश्ता है, ज्योतिषीय सम्बन्ध भी कितना सुदृढ़ और सुस्पष्ट है। आज का चिकित्सा विज्ञान न जाने कितने प्रयोगों, खून के कितने नमूने आदि एकत्रित करने के बाद, काफी समय लेकर, आनुवंशिक सम्बन्ध स्थापित कर पाता है जबकि ज्योतिष शास्त्र के लिये यह मात्र तीन सूचनाओं, क्रमशः जन्म का समय, स्थान और तारीख, के आधार पर चुटकियों में सम्भव है।

अध्याय 11

ज्योतिष शास्त्र और कर्म सिद्धान्त

ज्योतिष शास्त्र का आधारभूत सिद्धान्त है कि मनुष्य कर्म करने को उत्पन्न हुआ है, अपने कर्म के अनुरूप वह जन्म–जन्मान्तरों में फल भोगता हुआ अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है। आइये, इनकी थोड़ी विषद चर्चा करें। श्रीमद्भगवद्गीता में तृतीय अध्याय के पांचवें श्लोक में भगवान श्री कृंष्ण कहते हैं–

''न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सव्रः प्रकृतिजैर्गुणैः।।''

अर्थात्, 'निसन्देह ही मनुष्य किसी भी काल में बिना कर्म किये क्षणभर भी नहीं रहता क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृतिजन्य गुणों द्वारा, परवश हुआ, कर्म करने के लिये बाध्य किया जाता है।' कर्म करना और कर्म करते रहना मनुष्य का प्राकृतिक गुण है। आज के मनोवैज्ञानिक थार्नडाईक और पावलाव भी यही कहते हैं कि काम करना मनुष्य का जन्मजात स्वभाव है, वह निष्क्रिय नहीं रह सकता।

इससे पहले भगवान श्री कृष्ण एक बात और कहते हैं :

न कर्मणामनारम्भान् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।''

अध्याय तीन के ही चौथे श्लोक में भगवान बताते हैं, 'मनुष्य न तो कर्मों को आरंभ किये बिना निष्कर्मता को प्राप्त होता है और न कर्मों के केवल त्याग मात्र से सिद्धि को प्राप्त होता है।' यह एक बड़ी बात है कि मानव को कर्म करने ही पड़ते हैं। अब कर्म करना तो मानव की प्रवृति हो गयी, किन्तु उसी बात को भगवान पहले ही अध्याय 2 के 47वें श्लोक में कह आये हैं:

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषुकदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोंऽत्वकर्मणि।''

अर्थात्, 'हमारा अधिकार मात्र कर्म करने में है, फल में बिलकुल नहीं'–भगवान कंहते हैं; 'तू कर्मफल का कारण कभी न हो, न ही कर्त्तव्य न करने में तेरी आसक्ति हो। अर्थात् कर्म तो करते ही रहना है–कर्त्तव्य करते ही रहने हैं परन्तु कर्मफल का कारण मैं न बनूँ यह कैसे संभव है इसके लिये अध्याय 2 का 51वां श्लोक देखना उचित होगा।

''कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदंगच्छन्त्यनामयम्।।''

अर्थात्, 'बुद्धियोग से युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फलों को त्यागकर जन्म और मृत्यु के बन्धनं से छूट जाते हैं। इस प्रकार उन्हें उस अनामय पद की प्राप्ति होती है जो सभी दुःखों से परे है।' बार–बार लगता है कि कर्म फलों का त्याग करना मानव जीवन का चरम लक्ष्य और परम ध्येय है। जैसी हम पहले चर्चा कर आये हैं, कर्म करना तो प्रकृति का वरदान है मनुष्य के लिये, लेकिन कर्म क्या है, कर्म के कितने प्रकार हैं आदि आदि की जानकारी भी आवश्यक है।

कर्मकाण्ड और कर्म के प्रकार

वेदों में कर्मकाण्ड का बड़ा महत्त्व है। कर्त्तव्य कर्मों की शिक्षा का नाम कर्म काण्ड है। कर्त्तव्य कर्म दो कहे गये क्रमशः इष्ट और पूर्त्त। इष्ट कर्म यज्ञ आदि जैसे कर्म हुए जिनकी विधि मन्त्रों में दी हुए है किन्तु पूर्त्त कर्म वैसे लौकिक कर्म हुई जो सामाजिक तौर पर किये जाते है और जिनकी आज्ञा वेदों में दी गयी है जैसे पाठशाला, कूप, आदि बनवाना। इष्ट और पूर्त्त कर्म को पुनः तीन प्रकारों में बांटा गया है–

1) **नित्य कर्म**-ये शास्त्रों द्वारा कहे गये रोज किये जाने वाले कर्म हैं। शरीर और मन तथा प्राण की शुचिता/शुद्धि, समाज, पर्यावरण की सुरक्षा के लिये ये कर्म आवश्यक कहे गये हैं।

2) **नैमित्तिक कर्म** -नैमित्तिक कर्म किसी विशेष निमित्त (प्रयोजन/कारण) से किये जाते हैं। जैसे हमारे यहाँ षोड़श संस्कार आवश्यक कहे गये जो गर्माधान से मृत्यु पर्यन्त किये जाते हैं। मृत्यु के बाद श्राद्ध कर्म, पुत्र का जन्म होने पर जातकर्म संस्कार आदि नैमित्तिक कर्म हुए।

3) **काम्य कर्म** - वैसे कर्म जो किसी लौकिक या परालौकिक कामना से किये जायें उन्हें काम्य कर्म कहते हैं। स्वास्थ्य लाभ की कामना से किये गये रुद्राभिषेक को हम इस कोटि में रख सकते हैं। अर्थ लाभ के लिये की गयी नौकरी लौकिक रूप से स्थायित्व देती है। ये कर्म काम्य कर्म कहे गये हैं।

थोड़ी और गहराई में देखने से कर्मो के दो अन्य भेद और स्पष्ट होते हैं वे है क्रमशः निषिद्ध कर्म और प्रायश्चित कर्म।

4) **निषिद्ध कर्म** – जो कार्य वर्जित है, शास्त्रोक्त नहीं है वैसे कर्म निषिद्ध कहे गये। ये वर्जना या रोक इसलिये लगायी गयी कि समाज सही रास्ते पर चलता रहे। उदाहरण स्वरूप सगोत्रीय विवाह निषिद्ध है क्योंकि उससे आने वाली संतान पर आनुवंशिक दोषों का प्रभाव पड़ सकता है। उसी प्रकार स्त्री, वृद्ध आदि पर हाथ उठाना निषिद्ध है क्योंकि वे अपनी रक्षा नहीं कर सकते। ऐसे कर्म पतन की ओर ले जाते हैं।

5) **प्रायश्चित कर्म**–जैसा नाम से ही स्पष्ट है, बुरे कर्म के पछतावे स्वरूप किये गये कर्म प्रायश्चित कर्म हुए। कर्म जो विधि विरुद्ध किये गये–वैसे कर्म जो निषिद्ध थे अथवा वैसे कर्म नहीं किये गये जो करने चाहिये थे तो उस का अपराध बोध ग्लानि पैदा करता है। उससे छूटने के लिये जो कर्म किये जाते हैं, उन्हें प्रायश्चित कर्म कहते हैं।

एक बात समझने की है। नित्य कर्म और नैमित्तिक कर्म तो आवश्यक हैं, ये मोक्ष की ओर प्रवृति का कारक हैं। इन्हें कर्म समझ कर करना चाहिये। प्रायश्चित कर्म भी मोक्ष की ओर उन्मुख करते हैं। काम्य कर्म ओर निषिद्ध कर्म के फल हमें भोगने पड़ते हैं। ये फल शुभ नहीं होते और इनसे निवृति आवश्यक है।

कर्म की प्रवृत्ति

उपर्युक्त कर्म क्रमशः सात्विक, राजसिक और तामसिक प्रवृतियों में प्रकट होते हैं। शरीर, मन, भावना, चेतना आदि के स्तर पर इनका अनुभव किया जा सकता है।

ज्योतिष शास्त्र में दशम भाव को कर्म स्थान कहा गया है। दशमेश तथा दशम भाव को और जन्म कुण्डली, नवांश कुण्डली तथा दशमांश कुण्डली देखकर जातक के क्रमशः सात्विक, राजसिक या तामसिक कर्म की प्रवृति का अच्छी प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है–लौकिक, नित्य तथा नैमित्तिक कर्म के प्रति जातक के रुझान का पता दशम भाव के अतिरिक्त नवम भाव से भी चलता है। ये बातें जातक की काया (शरीर), मानसिकता और वचन (बोली) से दुनिया को पता चलती हैं।

एक अन्य प्रकार से कर्म को नीचे लिखे गये चार स्त्रोतों में भी बाँटा जा सकता है।

(*i*) **संचित कर्म** – जन्म जन्मातरों में किये गये कर्म फल भोगने के बाद वे कर्म फल जिन्हें लेकर हम इस जन्म में आये उन्हें संचित कर्म कहा गया। अर्थात् इस जन्म के समय, प्रारंभ में, जो हमारा खाता खोला गया वह हुआ संचित कर्म। इसका

पता हमें पंचम भाव से चलता है। संचित या जमा किये गये कर्म फल में सारे के सारे फल इसी जन्म में वे ही भोग सकते हैं जिनका यह आखिरी जन्म हो। अन्यथा इनमें से उतना सा अंश ही इस जन्म में व्यक्ति भोगता है जिसे हम प्रारब्ध या भाग्य कहते हैं।

(*ii*) **प्रारब्ध** – प्रारब्ध दूसरे प्रकार के कर्म हुए। ये वैसे कर्म या कर्म फल हुए जिन्हें जातक इसी जीवन में भोगेगा। कुण्डली का नवम भाव इसका परिचायक है।

(*iii*) **क्रियमाण कर्म** – वर्तमान काल में किये जाने वाले कर्म को क्रियमाण कहा जाता है जिसके लिये कुण्डली में दशम भाव महत्वपूर्ण है क्रियमाण कर्म तीसरे प्रकार के कर्म हुए।

(*iv*) **आगामी कर्म** – इसके अतिरिक्त चौथे प्रकार के कर्म को आगामी कर्म कहा गया है। ये वैसे कर्म हैं जो आने वाले जन्मों में किये जाने हैं।

कर्म का स्वरूप :

गीता के चतुर्थ अध्याय के 16, 17 तथा 18वें श्लोक क्रमशः नीचे दिये जा रहे हैं जहाँ भगवान ने दिग्भ्रमित अर्जुन को कर्म के स्वरूपों के बारे में बताया है। भगवान कहते हैं,

''किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्य सेऽशुभात्।।''

अर्थात्, 'कर्म क्या है और अकर्म क्या है इसके निर्णय में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिये वह कर्मतत्व मैं तुम्हें समझा कर कहूंगा जिससे तू कर्म बन्धन से मुक्त हो जायेगा।'

यहाँ भगवान कर्म और अकर्म दो स्वरूपों को कहते हैं। कोई भी कार्य मन, वचन या कर्म से किया जाये, तो वह कर्म ही कहा जायेगा। अकर्म वैसे कर्म हैं जो मुक्ति की ओर ले जाते हैं–कोई भी कर्म अनासक्त भाव से, बिना फल की इच्छा के, किया जाये तो वह अकर्म ही हो जाता हैं क्योंकि उसके फल की इच्छा जब शेष हो गयी तो अकर्म पूर्व जन्मों के कर्म फल काटता और आगामी जन्मों के लिये कर्मफल बनने नहीं देता है। कर्म सम्बन्धी भगवान की अगली उक्ति देखिये।

''कमर्णो हयापि बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्य बोद्धव्यं गहना कर्मणोगतिः।।''

भगवान कहते हैं, **कर्म, अकर्म और विकर्म** का स्वरूप भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गहन गति है।' अर्थात् एक नयी बात आयी, कर्म का नया स्वरूप बताते हैं भगवान विकर्म! विकर्म निषिद्ध कर्म हैं जो जन्मजन्मान्तरों के चक्कर में डाल देते हैं। अट्ठारहवें अध्याय के 39वें श्लोक में भगवान कहते हैं,

'यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्ताम समुदाहृतम्।''

अर्थात्, 'जो सुख भोगकाल तथा परिणाम में भी आत्मा को मोहित करने वाला है–निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न, वैसा सुख तामस कहा गया है।' इस प्रकार तामस कर्म पूर्णतः विकर्म हुए और इनके लिये प्रायश्चित कर्म ही एकमात्र आलम्बन हैं।

अब हम श्री भगवान की अगली सीख समझते हैं अध्याय 4 के 18वें श्लोक में भगवान कहते हैं :

''कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि चकर्म यः।
बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।''

अर्थात्, 'जो मनुष्य कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म को देखता है वह बुद्धिमान है और सभी कर्मो को करने वाला है।' वह फल की कामना से परे हो गया है।

प्रकारान्तर से कर्म फल के भी चार प्रकार पहले ही कहे जा चुके हैं, संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण और आगामी। मान लीजिये इस जन्म में आने के समय पूर्व जन्मों के सारे कर्मफल आदि भोगने के बाद 100 फल भोगने शेष रह गये थे। वह हुआ संचित। अब मान लीजिये कि जातक को इस जन्म में कुल 60 ही फल भोगने का अवसर मिलने वाला है तो प्रारब्ध हुआ 100-60 = 40 फल आगामी जन्मों में भोगने को मिलेगा। इस जन्म में 60 कर्मफल तो हमने पूर्वजन्मों के भोगे लेकिन नये कर्म भी किये जिनके कर्म फल मिलते हैं 20।20 हुए क्रियमाण कर्म। इन 20 में शायद 10 के फल इसी जन्म में मिलें तो 10 जो बच गये वह भी आगामी जन्मों के हिसाब में मिल गये। अर्थात् आगामी जन्मों के कर्म हो गये 40+10 =50, अब अगले जन्म के लिये संचित कर्म तो 50 होंगे – इस प्रकार यह धारा चलती ही जायेगी। शास्त्रों में कहा गया है,

''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
न युक्तं क्षीणते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।।

अर्थात्, 'शुभ या अशुभ दोनों प्रकार के कर्मो के फलों को भोगना ही पड़ता है।' (नोट : यहां पर याद रखने की बात है कि गीता के चतुर्थ अध्याय के 41वे श्लोक में भगवान अभय वचन देते हैं–

योगसन्यस्त कर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।।''

अर्थात्, 'ऐ अर्जुन, जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मो को परमात्मा में

अर्पण कर दिया है और विवेक द्वारा जिसके समस्त संशय का नाश हो गया है, उसे कर्म नहीं बाँधते !)

कर्मफल के आधार पर कर्मों को **दृढ़, अदृढ़ तथा दृढ़ादृढ़** भी कहा गया है।

जिनके फल बदले नहीं जा सके वे कर्म दृढ़ कहे गये। वैसे कर्म जिनके फल प्रायश्चित या नैमित्तिक कर्मों के माध्यम से बदले जा सकें उन्हें अदृढ़ कर्म कहा गया। किन्तु ऐसे कर्म, जिनके फल बदलने की संभावना हो पर संशय भी हो जैसे मरणासन्न रोगी के लिये मृत्युञ्जय का जाप, दृढ़ादृढ़ कहे गये।

कुण्डली में स्वस्थ चन्द्रमा और पापहीन गुरु तथा अन्य सुन्दर योग हों तो व्यक्ति जन्म–जन्मान्तरों के बन्धन से अवश्य मुक्त होता है।

पुनर्जन्म और ज्योतिष का सीधा सम्बन्ध है जिसे समझना थोड़ा आवश्यक है। कर्म सम्बन्धी जानकारी का तो अथाह सागर है। श्रीमद्भगवद्गीता–जहाँ द्वितीय अध्याय के 27 वें श्लोक में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं:

''जातस्य हि धुवो मृत्युर्धुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।''

अर्थात्, 'जन्मे हुए की मृत्यु और मृत हुए का जन्म निश्चित है। इस विषय पर सोचने के योग्य तू नहीं है।' अर्थात जन्म और मृत्यु का चक्र चलता ही रहता है। इसी प्रकार महाभारत में भी कहा गया है।

''यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति।।''

अर्थात्, जैसे सहस्रों गायों के झुण्ड में भी बछड़ा अपनी माँ को पहचान लेता है उसी प्रकार पूर्व जन्मों में किये गये कर्म अपने कर्त्ता को पहचान कर उस के पास पहुँच जाते हैं और कर्ता को अपने शुभ और अशुभ दोनों कर्मों के फल भोगने ही पड़ते हैं।'

भारतीय दर्शन पूरी तौर से पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास करता है। अब पाश्चात्य देशों में भी इस पर कार्य होने लगे हैं–यह धारणा बनने लगी है कि यह शरीर मात्र इस जन्म के अनुभवों को लेकर ही आगे नहीं बढ़ रहा है–कुछ है जो पहले से भी आ रहा है। इतना ही नहीं, कुछ ऐसा भी है जो आगे तक जायेगा। प्रख्यात् पाश्चात्य विद्वान डा. ईयान स्टिवेन्सन नें दुनिया भर में फैले सभी धर्मो, देशों आदि में 600 से अधिक मामलों की पड़ताल करके पुनर्जन्म सिद्धान्त की पुष्टि की है।

हम कहां से आये, पूर्व जन्म में क्या थे, क्या करते थे आदि विषयों की चर्चा

ज्योतिष शास्त्र में की गयी है। यद्यपि उसमें भी कुछ अस्पष्ट क्षेत्र हैं किन्तु उनकी अस्पष्टता के भी निश्चित कारण हैं–यह अनायास नहीं है कि बृहज्जातक में सब कुछ जहाँ बड़ी स्पष्टता से लिखा गया है, पूर्व जन्म वृत्त की चर्चा पर रहस्य का झीना पर्दा पड़ा हुआ है। पूर्व जन्म का इतिहास जानना संभवतः बहुत अच्छा नहीं समझा गया। कर्म विपाक संहिता में अवश्य इस पर चर्चा की गयी है। दक्षिण भारत में कई नाडी ग्रन्थ पाये जाते हैं जहाँ जातक की कुण्डली के आधार पर पूर्व जन्म का वर्णन मिलता है। इसी पुस्तक में हमने मैत्रेय की चर्चा के दौरान बताया है कि उन्हें व्यास जी की कृपा से सभी पूर्व जन्मों का वृत्तान्त याद था।

अब लगे हाथों इस बात पर भी चर्चा हो जाये कि पूर्व जन्मों के संस्कार जन्म जन्मान्तरों तक कैसे चलते हैं। मनुष्य को कर्मयोनि का प्राणी कहा गया है। यह कर्मयोनि के प्राणी की ही विशेषता है कि वह अपने प्रारब्ध के कारण प्राप्त परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढाल लेता है। अन्य सभी योनियों के प्राणी, भोग योनि में होने के कारण, अपनी–अपनी योनियों के लिए आवश्यक ज्ञान लेकर आते हैं। कर्मयोनि में फल भोगने लिए स्थूल देह की आवश्यकता होती है।

विवेक चूडामणि के 87 से लेकर 91 श्लोकों में बताया गया है कि स्थूल देह पूर्व जन्मों के कर्मों के कारण त्वचा, माँस, रक्त, स्नायु, चर्बी, मज्जा और हड्डियों का बना हुआ है। इस स्थूल शरीर की रचना कर्म फलों को भोगने के लिये हुई है। स्थिति, जन्म, मृत्यु आदि विभिन्न अवस्थाएँ इसका धर्म है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तावस्था में यह शरीर रहता है जिसके माध्यम से बाहरी भोग किये जा सकते हैं। इस शरीर से जब प्राण वायु का सम्पर्क हट जाता है तो उसे मृत्यु कहते हैं। प्राण वायु के अतिरिक्त कुछ तत्त्व और भी हैं जो प्राण के साथ–साथ स्थानान्तरित होते रहते हैं। इसे शास्त्रों में सूक्ष्म शरीर या लिंग देह कहा गया।

विवेक चूडामणि में 26 वें श्लोक में कहा गया है

''वागादि पञ्च श्रवणादि पञ्च प्रणादि पञ्चाभि मुखानि पञ्च।
बुद्धयाद्यविद्यापि च काम कर्मणी पुर्यष्टक सूक्ष्म शरीर माहुः।।

हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रिय है, दृष्टि, श्रवण, स्वाद, स्पर्श और घ्राण (सूंघना)। कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच ही हैं– जिह्वा, हाथ, पाँव, गुदाद्वार और जननेन्द्रिय। प्राण भी पाँच कहे गये–प्राण वायु, अपान वायु, उदान वायु, व्यान वायु और समान वायु। इसके अतिरिक्त हुए मन और बुद्धि। इन सत्तरह तत्त्वों से (इन्हीं में अविद्या, काम आदि भी मन और बुद्धि के स्तर पर शामिल हो जाते हैं) सूक्ष्म शरीर बना है। यह जीवात्मा या सूक्ष्म शरीर या लिंग देह ही कर्म के अनुसार शरीर परिवर्त्तित करता रहता है। गीता में अध्याय 2 के श्लोक–22 में कहा है,

''वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य न्यानि संयाति नवानि देही।''

अर्थात्, 'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।'

पुराने शरीर से इस सूक्ष्म को लेकर जीव चैतन्य का नये स्थूल देह में प्रवेश जन्म कहा जाता है। मृत्यु के समय सूक्ष्म देह ही जीव को स्थूल देह से वहन करके ले जाता है।

सूक्ष्म शरीर के अन्तर में भी एक शरीर है उसे कहते हैं कारण शरीर। सूक्ष्म शरीर या जीवात्मा पुनर्जन्म का कारण है। यह जीवात्मा अंगूठे भर का होता है **''अंगुष्ठमात्रः पुरूषो ज्योतिरिवाधूमकः।''** ऐसा कठोपनिषद में कहा गया है। किन्तु कारण शरीर विशुद्ध आत्मा या परमात्मा हैं। स्थूल शरीर नष्ट होते रहते हैं, जब तक सभी कर्मफलों का नाश न हो जाये तब तक जीवात्मा भी शेष नहीं होती। हाँ, जब सभी कर्मफल शेष हो जायें, सभी जन्म जन्मान्तरों के बन्धन दूट जायें तो लिंग देह कारण देह में परिवर्त्तित हो जाता है। कारण देह ज्योतिर्मय है। विवेकचूड़ामणि के 120 वें श्लोक में कारण शरीर को कुछ ऐसे बताया गया है, **''अव्यक्तमेतत्त्रिगुणैर्निरूक्तं तत्कारणं नाम शरीर मात्मनः''**

अर्थात्, 'रजोगुण, तमोगुण ओर सत्त्वगुण से परे, अव्यक्त रुप से जहाँ ये तीनों गुण रहते हैं, वह कारण शरीर है।' यह शरीर ही (प्रत्येक) स्थूल और सूक्ष्म शरीर का कारण होने के कारण ही कारण शरीर कहा जाता है। सूक्ष्म शरीर बार–बार जन्म लेता है इसलिये श्री शंकराचार्य कहते हैं,

''पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे।।''

अर्थात्, 'बार–बार माँ की कोख में आना, बार–बार जन्म लेना और बार–बार मरना, इस संसार सागर को पार करना बहुत कठिन है, मुरारी की कृपा चाहिये।'

यह भी विरलों का ही भाग्य है कि वह अपने–आप को जन्म मरण के बन्धन में बंधा हुआ जाने और परिव्राजन (अपकर्मो का त्याग) की ओर बढ़े। परिव्राजन के योग कुण्डलियों में पता चलते हैं। कुण्डली में स्वस्थ चन्द्रमा और पापहीन गुरु के साथ–साथ अन्य सुन्दर योग हों तो व्यक्ति जन्म–जन्मांतरों के बन्धन से अवश्य मुक्त होता है। सुधी पाठक श्री के. एन. राव की अद्भुत पुस्तक Yogies, Destiny and Wheel of Time को पढ़कर इस विषय की अनमोल जानकारियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि कर्म, कर्मफल और पुनर्जन्म का सीधा और गहरा सम्बन्ध है। इन्हें थोड़ा ज्योतिष के संदर्भ में भी देखना अच्छा होगा। कल्याण के परलोक और पुनर्जन्मांक (सैंतालीसवें वर्ष के विशेषांक) में श्री वेणी राम शर्मा जी देवगुरु बृहस्पति के वचन बताते हैं,

''ग्रहाधीनं जगतसर्वं ग्रहाधीना नरावराः। काल ज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहाः कर्मफल प्रदाः। सृष्टिरक्षण संहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः।''

अर्थात्, 'ग्रहों के अधीन ही समस्त जगत, मनुष्य आदि सभी जीव हैं। काल का ज्ञान भी ग्रहों के अधीन है– ग्रह ही कर्मफल देने वाले हैं। सृष्टि, पालन और विनाश ये सब भी ग्रहों के अधीन ही हैं।'

यह तो कर्मफल पर ग्रहों के असर की बात हुई। लगे हाथों ज्योतिष शास्त्र के ज्योतिर्स्तम्भ वराहमिहिर की कालजयी रचना बृहतजातक के 25वें निर्याणाध्याय के श्लोक 14 तथा 15 भी देख लेते हैं जहां उन्होंने यह बताया है कि मनुष्य इस जन्म में किस लोक से आया है। अर्थात् पूर्वजन्मों के कर्मफल उसने कहां भोगे तथा मृत्यु के बाद वह किस लोक में जायेगा। इसके लिये वे क्रमशः द्रेष्काण आदि का प्रयोग बताते हैं।

गुरुरुडपतिशुक्रौ सूर्य भौमौ यमज्ञौ विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः।
दिनकर शशि वीर्याधिष्ठितास्त्र्यंश नाथाः प्रवर सम निकृष्टास्तुगंभागादनूके।।14।।
गतिरपि रिपुरन्ध्रत्र्यंशपोऽस्तस्थितो वा गुरुरथरिपुकेन्द्रच्छिद्रगः स्वोच्चसंस्थः।
उदयति भवनेऽन्त्ये सौम्य भागे च मोक्षे। भवति यदि बलेन प्रोज्झितास्तत्र शेषाः।15।।

इन श्लोकों के भाव प्रायः इस प्रकार हैं—जन्म कुण्डली में देखना होगा कि चन्द्र तथा सूर्य में कौन अधिक बली है। (यहां हमारी सम्मति से षडबल देखना अच्छा होगा।) बली ग्रह का निर्णय करने के बाद यह देखना होगा कि ये ग्रह द्रेष्काण में कौन सी राशि में गये। अब उस राशि के पति यदि गुरु हैं तो व्यक्ति देव लोक से आया है। यदि चन्द्रमा या शुक्र द्रेष्काण राशि के पति हों तो व्यक्ति को पितृ लोक या पितरों के लोक से आया हुआ जानना चाहिये। यदि द्रेष्काण राशि के स्वामी सूर्य अथवा मंगल हों तो जातक तिर्यक् (मर्त्य लोक या पृथ्वी) से आया हुआ होगा किन्तु यदि द्रेष्काण का स्वामी शनि या बुध नपुंसक ग्रहों में से एक हो तो जातक का आगमन नरक लोक से हुआ होगा, ऐसा समझना चाहिये।

एक और बात दैवज्ञ वराहमिहिर कहते हैं कि जिस लोक से प्राणी आया है, वहां वह कैसी स्थिति में था, इसका पता भी जन्म कुण्डली में सूर्य या चन्द्र में से अधिक बली ग्रह के द्रेष्काणपति की अवस्था देखकर बताया जा सकता है। यदि द्रेष्काणपति अपनी उच्च राशि के समीप हों तो जातक पूर्व लोक में उच्च स्थान को

प्राप्त हुआ था, इसी प्रकार द्रेष्काणपति यदि नीच राशि के समीप हो तो पूर्व लोक में उसकी अवस्था नीची थी तथा यदि द्रेष्काणपति उच्च और नीच के बीच में कहीं हो तो उसी प्रकार के फल कहे जा सकते हैं।

अब श्लोक 15 पर विचार करते हैं। मरणोपरान्त जातक की यात्रा के बारे में वराहमिहिर कहते हैं कि कुण्डली के छठे, सातवें तथा आठवें भावों में बैठे ग्रहों में जो सबसे बली हैं, उन्हीं के द्वारा बताये गये लोक में प्राणी मृत्यु के बाद जायेगा। अर्थात् यदि इन भावों में बैठे ग्रहों में सबसे बली गुरु हों तो देव लोक लेकिन शनि या बुध हों तो नरक लोक की गति समझना चाहिये। यदि इनमें कोई भी ग्रह न हों तो छठे तथा आठवें भावों के द्रेष्काण पतियों को देखना होगा। इनमें जो भी बली होंगे, जातक मरने के बाद उन्हीं के द्वारा बताये गये लोक में जायेगा। किन्तु इन सब से अधिक महत्त्व वराहमिहिर उच्च के बृहस्पति को देते हुए इसी श्लोक में कहते हैं कि यदि उच्च के गुरु छठे, आठवें या किसी भी केन्द्र भाव में हों अथवा मीन लग्न उठ रहा हो, नवांश शुभ ग्रह का हो, गुरु उच्च के हों तथा अन्य सभी ग्रह निर्बल हों तो व्यक्ति मोक्ष पा जाता है। यहाँ दृष्टव्य है कि श्लोक 15 की विवेचना प्रख्यात विद्वान प्रोफेसर पी.एस.शास्त्री ने कुछ भिन्न प्रकार से करते हुए कहा है कि पाठकों को 15वें श्लोक में वराहमिहिर के विचारों को अस्वीकार कर देना चाहिये जो हमारे मत से उचित नहीं होगा।

एक अन्य मत के अनुसार यदि कर्क लग्न में बैठे गुरु धनु के नवांश में हों (अर्थात् छठे नवांश में हों) तथा तीन या चार ग्रह केन्द्र में हों तो ऐसा व्यक्ति ब्रहमपद (मुक्ति) प्राप्त करता है।

हमने कल्याण के सैतालीसवें विशेषांक की चर्चा की है। उसी अंक में श्री मुकुन्द बल्लभ जी का भी एक सुन्दर आलेख छपा है "**ज्योतिष में पुनर्जन्म और परलोक**"। इसमें मुकुन्दबल्लभ जी ज्योतिषशास्त्र के कुछ अनुभवी विद्वानों के हवाले से कहते हैं कि परलोक गमन के लिये जातक की जन्म कुण्डली के अतिरिक्त उसके मृत्यु काल की कुण्डली भी देखनी चाहिये। यदि जन्म कुण्डली के अष्टम भाव में केवल शुभग्रह हों तो जातक को मरने के बाद अच्छे लोक की प्राप्ति होती है। अब जन्म कुण्डली यदि उच्च परलोक लेकिन मृत्यु के काल की कुण्डली अशुभ परलोक कहे तो प्राणी को मध्यम लोक (यथा पृथ्वी) प्राप्त होना चाहिये। किन्तु दोनों कुण्डलियाँ यदि अशुभ लोकों की ओर इशारा करें तो समझना चाहिये कि आत्मा नरकवासी हुई होगी।

यह जानकर सुधी पाठकों को आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि महर्षि पराशर ने भी की है। वृहद पराशर होरा शास्त्र नाम की कई पुस्तकें

उपलब्ध हैं परन्तु पं. सीताराम झा द्वारा सम्पादित पुस्तक को सभी पाठक सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। पं० सीताराम झा की टीका के मारक भेदाध्यायः (45) के श्लोक सख्या 41 से 45 में ठीक वही बातें कही गयी हैं जो हम पूर्वजन्म तथा मरण के बाद के स्थानों के बारे में वराहमिहिर की उक्तियों के माध्यम से पहले बता आये हैं, अर्थात् रवि और चन्द्र में बली ग्रह के द्रेष्काण के स्वामी से जातक के जन्म से पहले के लोक और लग्न से 6, 7और 8 वे स्थान में बैठे ग्रहों के अनुसार मृत्यु के बाद गन्तव्य स्थान का पता चलता है।

अन्त में ज्योतिषशास्त्र के एक अन्य विद्वान मन्त्रेश्वर की अमरकृति फलदीपिका के कुद्द उद्धरण प्रसंगवश लिखे जाते हैं। **फलदीपिका, भावार्थ- बोधिनी** (पं. गोपेश कुमार ओझा) के चौदहवें अध्याय के 21वें से 29वें श्लोक्रें में यह वर्णन हैं कि जातक के पूर्व जन्म का विचार नवम भाव, वहाँ बैठे ग्रहों तथा नवमेश से किया जाना चाहिये। यदि ग्रह उच्च के हों तो देवलोक, स्व या मित्र राशि के हों तो भारतवर्ष में ही तथा नीच या शत्रु राशि के हों तो पूर्व जन्म विदेश से समझा जाना चाहिये। इसी प्रकार पुनर्जन्म के लिये पंचमेश, पचंम भाव में स्थित ग्रहों तथा पंचम भाव से विचार किया जाता है। मंत्रेश्वर बताते हैं कि जिन ग्रहों से पूर्व जन्म का विचार किया गया है, वे यदि स्थिर राशि या स्थिर नवांश में हों साथ ही पृष्ठोदय राशि में भी हों तो पूर्व जन्म में जातक वृक्ष या लता था ऐसा मानना चाहिये। किन्तु स्थिर नवांश, पृष्ठोदय राशि आदि न हो तो पूर्व जन्म की योनि मनुष्य ही मानी जानी चाहिये। कुछ और बातें भी जानने योग्य हैं। मन्त्रेश्वर कहते हैं कि यदि नवमेश उस राशि में हो जहां लग्नेश उच्च, सम तथा नीच या शत्रु राशि के होते हैं तो जातक को पूर्व जन्म में क्रमशः मनुष्य, पशु और पक्षी योनि से आया हुआ जानना चाहिये। इसी प्रकार पंचमेश यदि उस राशि में हो जहां लग्नेश नीच या शत्रु क्षेत्र के होते हैं तो कहना चाहिये कि मृत्यु के बाद जातक पक्षी योनि में जन्म लेगा। यदि नवमेश और पंचमेश एक ही राशि में हों तो व्यक्ति पिछले जन्म और अगले जन्म में एक ही स्थान पर होगा। मन्त्रेश्वर एक बात और भी कहते हैं कि मरने के बाद की अवस्था का विचार उन ग्रहों से करना चाहिये जिनसे 12वें घर के स्वामी सम्बन्ध करते हैं। यहाँ पंचम भाव तथा द्वादश भाव के फलों में अन्तर समझना उचित होग। 12 भाव उस लोक के बारे में बताता है जहाँ मृत्यु के बाद जातक का सूक्ष्म शरीर-ले जाया जायेगा और कर्मफल भोगेगा, पंचम भाव अगले जन्म के स्थूल शरीर की गति बताता है। पंचम भाव से द्वादश भाव अष्टम स्थान में है, यह भी समझना चाहिये।

ज्योतिष, प्रारब्ध और पुरुषार्थः-

प्रारब्ध अर्थात् भाग्य और पुरुषार्थ की बहस प्रायः हर पढ़े–लिखे लोग करते हैं।

कुछ का कहना है कि यदि भाग्य ही सब कुछ है, अर्थात् सब कुछ पहले से नियत है और हम अपने प्रारब्ध के हाथों की कठपुतली मात्र हैं तो हमारा कर्म और कर्मफल से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। कुछ करना ही नहीं चाहिये, सब कुछ अपने आप ही हो जायेगा–ऐसा एक मत प्रचलित है। दूसरी ओर कुछ पुरुषार्थी कहते हैं कि भाग्य आदि सिर्फ आलसी लोगों का बहाना है, दृढ़ इच्छा शक्ति, संकल्प और कड़ी मेहनत से कुछ भी पाया जा सकता है। लोगों में सुविधानुसार पाला बदलने की प्रवृति भी पायी जाती है। अर्थात् असफलता के लिये भाग्य को दोष देना और सफलता के लिये अपने पुरुषार्थ पर गर्व करना सामान्यतः हमारे स्वभाव का हिस्सा बन गया है। अच्छे

कुण्डली-**1**
सबसे छोटी सन्तान (पुत्र)
एकादशेश तृतीय भाव में

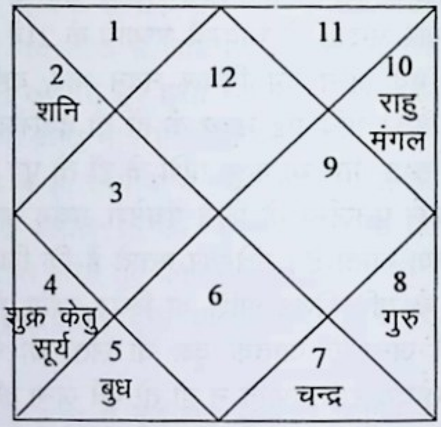

कुण्डली-**2**
सबसे छोटी सन्तान (पुत्री)
एकादशेश तृतीय भाव में

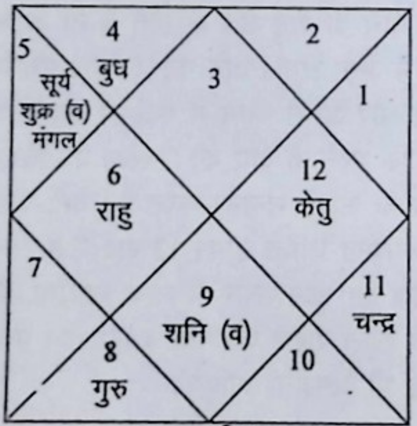

कुण्डली-**3**
सबसे छोटी सन्तान
एकादशेश तृतीय भाव में

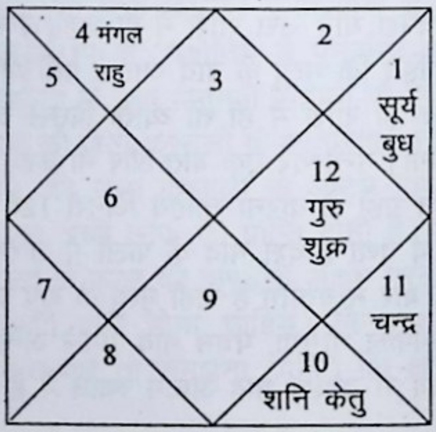

कुण्डली-**4**
सबसे बड़ी सन्तान
तृतीयेश एकादश भाव में

कुण्डली-5
सबसे छोटी सन्तान
एकादशेश तृतीय भाव में

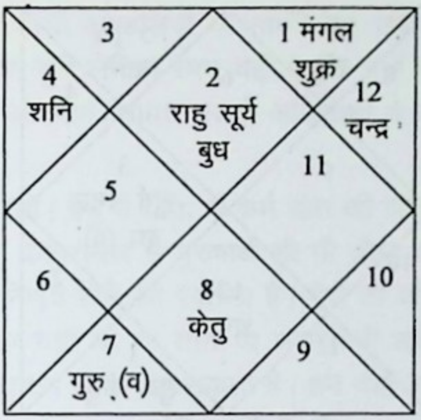

कुण्डली-6
सबसे बड़ी सन्तान
तृतीयेश एकादश भाव में

संस्कारों से युक्त मनुष्य प्रायः इस दुविधा के शिकार पाये जाते हैं। हाँ, ज्योतिष शास्त्र में ऐसी दुविधा नहीं है। कर्म या पुरुषार्थ और प्रारब्ध या भाग्य के परस्पर सम्बन्धों को ज्योतिष शास्त्र अच्छी तरह समझता है। हम पहले कह आये हैं कि कर्म फल दृढ़, अदृढ़ और दृढादृढ़ कहे गये। दृढ़ कर्मफल वे हैं जो पूरी तरह प्रारब्ध या भाग्य के अधीन हैं जैसे किसी परिवार विशेष में जन्म लेना, बच्चों में सबसे बड़ा या सबसे छोटा होना, भाइयों में सबसे बड़ा या सबसे छोटा भाई अथवा बहनों में सबसे बड़ी या सबसे छोटी बहन होना। हम एक मोटे सूत्र की चर्चा छः उदाहरणों के माध्यम से करेंगे। नीचे छः कुण्डलियाँ दी गयी हैं। पहली दो कुण्डलियों के स्वामी सभी भाई बहनों में सबसे छोटे हैं। तीसरी और चौथी कुण्डलियों के जातक भाइयों में सबसे बड़े हैं। पाँचवी कुण्डली का जातक भाइयों में सबसे छोटा है तथा छठे कुण्डली में जातक भाई/बहनों में सबसे बड़ी है।

इन छः कुण्डलियों में स्पष्ट है कि या तो एकादशेश तृतीय भाव में है या फिर तृतीयेश एकादश भाव में। एक सामान्य नियम कहा जा सकता है कि किसी कुण्डली में यदि ऐसा पाया जाये कि एकादशेश तृतीय भाव में अथवा तृतीयेश एकादश भाव में है तो वह जातक सबसे बड़ा, सबसे छोटा अथवा भाइयों या बहनों में सबसे बड़ा या सबसे छोटा होगा। अब यह देखने की बात है कि क्या हममें से किसी को भी माता/पिता चुनने की स्वतन्त्रता है? क्या हममें से कोई भी यह तय कर सका था कि वह माता/पिता की कौन सी संतान होगा, सबसे बड़ी या सबसे छोटी या फिर बीच में कहीं भी? क्या हम अपने भाई–बहन परिवार आदि चुनने को स्वतन्त्र है? यह वैसे कर्मफल हैं जो दृढ़ हैं।

श्री पी.वी. नरसिंहराव
उदाहरण-1

श्री चोकाराव
उदाहरण-2

पारसी जातक
उदाहरण-3

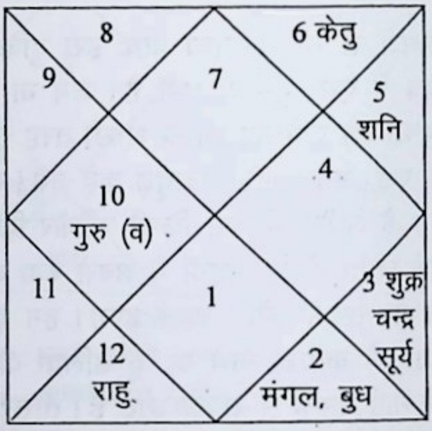

ब्राह्मण जातक
उदाहरण-4

अब इसी प्रकार के चार दूसरे उदाहरण चुनते हैं, जहाँ नवमेश अष्टम भावं में चले गये हैं। ऐसी परिस्थितियों में जातक के पिता का परिवर्तन हुआ है अर्थात् जातक जिन संस्कारों से पैदा हुए उनसे अलग कहीं दूसरे धर्म में दीक्षित हो गये या दूसरे धर्म में साधना की।

कृपया पहली दो कुण्डलियां देखें। श्री नरसिंह राव तथा श्री चोका राव, दोनों ही बचपन में गोद ले लिये गये थे। यह उनका प्रारब्ध था जिस पर उनका कोई वश नहीं था। तीसरी कुण्डली एक पारसी जातक की है जिन्होंने हिन्दू गुरु से दीक्षा लेकर गिरनार की पहाड़ियों में साधना की। वह चाह कर भी अपने धर्म से जुड़ा नहीं रह सका। अन्तिम कुण्डली एक ब्राह्मण की है जो एक जापानी गुरु से बौद्ध धर्म की

साधना सीख रहा था। यद्यपि तीसरी और चौथी कुण्डलियों के स्वामी कह सकते हैं कि उन्होंने अपनी इच्छा से अपने अपने मार्ग चुने लेकिन सत्य यही है कि उन्हें कोई अन्य रास्ता था ही नहीं—उनके प्रारब्ध ने जो मार्ग बताया उसके अतिरिक्त वे कहीं जा ही नहीं सकते थे।

अब थोड़ी चर्चा पुरुषार्थ पर भी हो जाये। प्रभु ने गीता में कर्म योग की व्याख्या करते हुए पुरुषार्थ के महत्त्व को बताया है। प्रकारान्तर से पुरुषार्थ की भी सीमा होती है जहाँ तक मनुष्य को लगता है कि वह निर्णय लेने को स्वतन्त्र है। ऐसे तो जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में प्रतीत होता है कि यहाँ दो या तीन या उससे भी अधिक उपलब्ध संभावनाओं में से किसी एक का चुनाव किया जा सकता है। हम यहाँ बच्चों

उदाहरण-1
(पंचमेश शनि अपने ही नक्षत्र में)

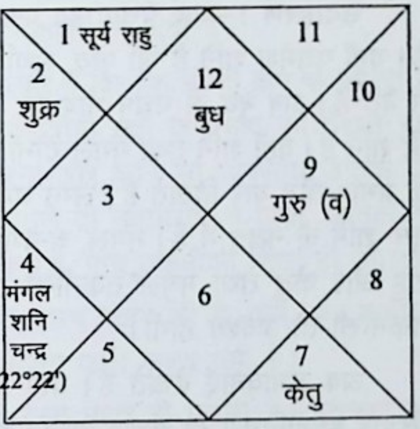

उदाहरण-2
(पंचमेश चन्द्र बुध के नक्षत्र में)

उदाहरण-3
(पंचमेश शुक्र अपने ही नक्षत्र में)

उदाहरण-4
(पंचमेश बुध राहु के नक्षत्र में)

के लिये पढ़ाई का मार्ग या विषय चुनने की ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से प्रक्रिया पर विचार करेंगे। इसके लिये एक क्रमवार सिलसिला नीचे दिया जा रहा है।

(*i*) पंचमेश का नक्षत्र देखें–पंचमेश तथा पंचम भाव पर अन्य ग्रहों का प्रभाव भी।

(*ii*) अब शिक्षा के कारक बुध से पंचम भाव तथा पंचमेश की विवेचना करें।

(*iii*) ऊपर लिखे गये (i) तथा (ii) के अनुसार ग्रहों पर सम्यक् विचार करके दशा देखनी चाहिये।

(*iv*) इन में जिस ग्रह का प्रभाव सबसे अधिक होगा तथा जिसकी दशा होगी उस ग्रह के अनुरूप व्यक्ति उच्चतर शिक्षा पायेगा और उसी के अनुसार जीवन यापन भी करेगा। इसे हम चार उदाहरणों के माध्यम से समझेंगे।

उदाहरण 1–यहां पंचम भाव पर गुरु की दृष्टि है। पंचम भाव में कोई ग्रह नहीं है। यहाँ पंचमेश शनि हैं जो पुष्य, अर्थात् अपने ही नक्षत्र में हैं तथा चन्द्रमा की राशि में बैठे हैं। अब बुध से पंचम भाव को देखते हैं। वहाँ मकर राशि है जिसके स्वामी भी शनि हैं। वहाँ शनि तथा मंगल दोनों की दृष्टि है। इस प्रकार कुल मिला कर शनि के प्रभाव तीन बार दिखते हैं। लग्न तथा बुध दोनों से पंचमेश शनि हैं, पंचमेश शनि पुनः शनि के नक्षत्र में हैं। मंगल, चन्द्रमा और गुरु का प्रभाव एक–एक बार है। शनि, राहु और केतु तथा मंगल तकनीकी शिक्षा देते हैं। इस प्रकार जातक की शिक्षा तकनीकी तो अवश्य होगी।

अब संभावनाएँ देखते हैं। ग्रहों के कारकत्व के अनुसार विद्युत, इन्जीनियरी, सिंचाई इन्जीनियरी या संचार माध्यम की संभावनाएं स्पष्ट दीखती थी परन्तु चन्द्रमा के तृतीय (संचार का कारक) भाव में होने के कारण जातक आटोमोबाइल इन्जीनियर बना।

उदाहरण 2–यहाँ लग्न तथा बुध दोनों से पंचम भाव में चन्द्रमा, बुध और शनि हैं तथा सभी बुध के नक्षत्र में ही हैं। पंचम भाव तथा पंचमेश पर शनि और मंगल दोनों ग्रहों के प्रभाव होने के कारण तकनीकी शिक्षा तो अवश्यंभावी थी।

जातक ने मैकेनिकल इन्जीनियरी की पढ़ाई की। उसके बाद उसका मन पेट्रोल पम्प में लगा और बाद में वह भवन निर्माण के व्यवसाय में लग गया।

उदाहरण 3–तीसरे उदाहरण में पंचम भाव में शनि बैठे हैं जिन पर गुरु की दृष्टि है। पंचमेश शुक्र पर बुध और सूर्य के अतिरिक्त मंगल की अष्टम दृष्टि भी है किन्तु शुक्र स्वयं शुक्र के नक्षत्र में हैं। बुध भी शुक्र के नक्षत्र में हैं अर्थात् कुल मिला कर बुध और शुक्र का प्रभाव स्पष्ट है। बुध के कारण जातक ने बी.काम. की पढ़ाई की। शुक्र के सुन्दर प्रभाव के कारण जातक को फैशन डिजाईन में काम करने की

सलाह दी गयी थी। जातक ने वह डिप्लोमा पूरा किया और अब अपना स्वतन्त्र व्यवसाय चला रही है, बहुत सफलतापूर्वक!

अन्त में एक उदाहरण देखते हैं जहाँ जातक ने कई विधाओं में शिक्षा प्राप्त की।

यहाँ पंचमेश बुध राहु के नक्षत्र में हैं। राहु चन्द्रमा के साथ गुरु की राशि में हैं। बुध से पंचमेश भी स्वयं बुध हैं बुध से पंचम भाव में केतु बैठे हैं। बुध पर मंगल की दृष्टि है तथा बुध शुक्र और सूर्य के साथ बैठे हैं। बुध से पंचम भाव पर राहु केतु और चन्द्रमा का प्रभाव है ही। पंचम भाव पर गुरु की दृष्टि है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पंचम भाव तथा पंचमेश पर सभी नौ ग्रहों के प्रभाव हैं। इस लड़की ने इतिहास, अर्थशास्त्र आदि की पढ़ाई तो की ही, संगीत और नृत्य की भी शिक्षा पाने के बाद टैक्स की पढ़ाई पूरी करके आयकर अधिकारी बन गयी है।

उपर्युक्त चार उदाहरण मात्र यह बताते हैं कि दशाओं के क्रम के कारण जातक के जीवन में कई मोड़ आते रहते हैं। ज्योतिषी ग्रहों के प्रभाव को देखते हुए बता सकता है कि कब और क्या पढ़ाई करना और कौन सा व्यवसाय जातक के लिए सबसे अच्छा होगा। लेकिन जैसा हमने पहले दो उदाहरणों में पाया, जातक के पास चयन करने के लिये, उसके प्रारब्ध के कारण, मात्र तकनीकी शिक्षा ही उपलब्ध थी।

यहाँ ज्योतिषियों के लिये एक बात ध्यान रखने की है–कर्म तथा कर्मफल को पूरी तरह से जानकर उनकी व्याख्या करना कभी संभव नहीं है।

प्रारब्ध तथा पुरुषार्थ के बीच की रेखा बहुत ही पतली है। पुरुषार्थ कहां से प्रारम्भ होता है तथा प्रारब्ध के चक्र की सीमा कहाँ समाप्त होती है यह पता करना बहुत सहज नहीं है। एक बात तो सारी दुनिया मानती है, प्रार्थनाओं का प्रभावं अवश्य होता है। तब पुरुषार्थ का अंहकार नहीं रहता और प्रारब्ध द्वारा लगायी गयी वर्जनाएँ टूट जाती हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में शरशय्या पर पड़े भीष्म पितामह युधिष्ठिर को बताते हैं, 'कर्म बीज स्वरूप हैं जिनके कारण बीज से पौधा, पौधे से वृक्ष, पत्ते, फूल, फल आदि प्राप्त होते हैं। पुरुषार्थ है जमीन को जोतने – मिट्टी को सहज बनाने का काम–दोनों काम न हों तो बीज पौधे और पौधे से फूल–फल आदि में नहीं बदल सकता। जीवन इसी प्रकार कर्म और पुरुषार्थ के सह अस्तित्व का नाम है।

एक बार फिर से हम अपने आर्ष साहित्य की ओर चलते हैं। वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ अपने किये गये पाप (जब उनसे अनजाने में श्रवणकुमार पर वाण चल गया था) याद करके कहते हैं–"**यदा चरति कल्याणि शुभ व यदि वाशुमम्। तदेव लभते भद्रे कर्मजमात्मनः।।**"

अर्थात्, 'हे कल्याणी, जो जैसा (शुभ या अशुभ) कार्य करता है उसके अनुसार (अच्छे या बुरे) फल पाता है।'

हंस गीता के 32वें श्लोक में भी कहा गया है–

''यादृशैः संनिवसति यादृशांश्रोचसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः।।

अर्थात्, 'पुरुष जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे मनुष्यों का सेवन करता है और जैसा होना चाहता है वैसा ही होता है।'

इसलिये गीता के तीसरे अध्याय के 19वें श्लोक में भगवान स्वयं कहते हैं–

'तस्मादसक्तः सततं कार्य कर्म समाचर।
असक्तो हयाचरन्कर्म परमान्पोति पूरुषः।।'

अर्थात्, 'हे अर्जुन, तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को भली–भाँति करता रह क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।'

अब सामान्य मनुष्य के लिये आसक्ति रहित कर्म करना बहुत आसान तो नहीं हैं इसलिये पूजनीय वेदव्यास की एक उक्ति, जो बहुत सुन्दर है, उद्धृत की जा रही है–

''अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीड़नम्।।''

इस श्लोक का भावार्थ कुछ ऐसा है–महर्षि व्यास ने अठारह पुराण लिखे हैं जिनमें बहुत सी बातें कही गयी हैं किन्तु इन अठारह पुराणों का सार मात्र दो वचनों में कहा जा सकता है। दूसरों का उपकार करना पुण्य (सद्‌कर्म) है तथा जिससे दूसरों को पीड़ा हो वैसे कर्म पाप (अपकर्म) हैं।

अगर स्वार्थ से ऊपर उठकर इतना ही याद रह सके तो बहुत विद्वान होना आवश्यक नहीं। भगवान ने भी कहा है–

''योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म चभक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्।''

अर्थात्, 'मैंने ज्ञान, कर्म तथा भक्ति नाम के तीन योग बताये जिसके सिवाय कल्याण का कोई रास्ता नहीं है।'

मनुष्य को चाहिये कि अपनी प्रवृति के अनुसार, ज्योतिषी से सलाह लेकर,

अपना रास्ता चुने और व्यास जी की उक्ति ध्यान में रखते हुए निवृत्ति की ओर सदा बढ़ता रहे।

नोटः–इस विषय में अधिक जानकारी की इच्छा रखने वाले पाठकों से हमारा विनयपूर्वक आग्रह है कि वे श्री के.एन.राव की अद्‌भुत पुस्तक "**हिन्दू ज्योतिष में कर्म और पुनर्जन्म**" अवश्य पढ़ें। यह पुस्तक न सिर्फ ज्ञान का भंडार है, श्री राव के मौलिक शोध की उत्कृष्टता का एक अतुलनीय उदाहरण भी है।

अध्याय 12

ज्योतिषीय इतिहास

इतिहास आखिर है क्या ? इतिहास सामान्यतः किसी भी क्रियाकलाप, घटना, राष्ट्र, धरोहर, विज्ञान, कला इत्यादि किसी भी संदर्भ के प्रारंभ तथा विकास का सटीक, और क्रमवार बनाया गया मसौदा होता है। इसका महत्त्व इसकी सच्चाई में निहित होता है। पूर्व सोवियत संघ में साम्यवादी अपने उन्माद में अपनी राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इतिहास को निरन्तर परिवर्तित एवं व्यवस्थित करते रहे जिस कारण वहाँ कहावत ही बन गई कि 'रूस में भूतकाल की सही भविष्यवाणी असंभव है'। यदि रूस में सात दशकों का साम्यवादी शासन इतनी हानि पहुँचा सकता है तो कल्पना कीजिए भारतीय इतिहास की दुर्दशा की, जो लगभग पांच शताब्दियों तक सांस्कृतिक रूप से विभिन्न विचार धाराओं द्वारा शासित रहा! फिर भी हम वेदों के समान अनादि इस ज्योतिष शास्त्र का इतिहास ढूंढ़ने का प्रयास कर रहे हैं जिसका पाँच शताब्दियों तक हम रूदन भी ढंग से नहीं सुन पाए। एक असम्भव सा लगने वाला कठिन कार्य है यह।

भारत की ज्योतिषीय धरोहर का निरीक्षण–परीक्षण हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे–

(अ) अवशेषों की खोज और उसमें निहित कठिनाइयाँ

(आ) ज्योतिषीय तिथि निर्धारण तकनीक

(इ) विभिन्न युगों की ज्योतिषीय रूपरेखा और

(ई) विस्तृत विवेचन।

ज्योतिष एक सूक्ष्म किन्तु सुस्पष्ट बौद्धिक विज्ञान है परिणामतः इसके इतिहास का बिल्कुल सटीक आकलन तथा विश्वसनीय तिथि–वार ब्यौरा संभव होना चाहिये।

परन्तु निम्नांकित कारणों से वास्तविकता कुछ भिन्न है।

श्रुति एवं स्मृति : छपाई तथा कागज का आविष्कार अधिक पुराना नहीं है। हम पहले ही कह चुके हैं कि पूर्वकाल में सभी ज्ञान मानवीय मस्तिष्क में याददाश्त के माध्यम से संग्रहित किया जाता था। यही 'स्मृति' है। ज्ञान का प्रचार व प्रसार मुख से बोलकर, कानों से सुनकर, शब्दों के माध्यम से किया जाता था। यही श्रुति है। स्मृति व श्रुति व्यक्ति विशेष की क्षमताओं पर निर्भर थीं। परिणामतः गलतियों तथा पथभ्रष्टता व मतिभ्रम की संभावना असामान्य नहीं हैं।

सांस्कृतिक आक्रमण : भारतीय धरोहर एवं सभ्यता को लगभग पाँच शताब्दियों तक सांस्कृतिक रूप से आदिम आक्रान्ताओं के प्रहारों का सामना करना पड़ा है। इन आक्रमणकारियों ने भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को जलाया, लूटा तथा बर्बाद किया। इसके बाद भी उनकी सन्तुष्टि नहीं हुई। उन्होंने हमारे इतिहास को पुनः व्यवस्थित किया और अपनी सुविधा के अनुसार, अपने सीमित ज्ञान से, पुनः लिखा।

ज्ञानी अनुवादकों तथा व्याख्याकारों की कमी : संस्कृत भाषा का अंग्रेजी में भाषान्तर विवेचन करने वाले कुछ अनुवादकों तथा भारतीय आकलन–कर्ताओं (इन्डोलोजिस्ट) के प्रभुत्व ने ज्योतिष शास्त्र को अधिक हानि पहुँचाई। ये भाषान्तरकार तथा टीकाकार मुख्यतः यूरोपियन थे जिनका विश्वास भारतीय संदर्भो से, जीवन मूल्यों से, बिल्कुल अलग ही था। दरअसल पूरब की तुलना में तो पश्चिम की संस्कृति अभी शैशवावस्था में ही है। स्वाभाविक है कि उनके इतिहास आकलन की दृष्टि अत्यन्त संकुचित ही होगी। दो सदियों पहले तक तो पश्चिम में यही धारणा थी कि ब्रह्माण्ड का उदय 3000 ईसा पूर्व ही हुआ है। परिणामतः संपूर्ण भारतीय इतिहास ही गलत ढंग से कुल 3000 वर्षो की समय सीमा में संकुचित कर दिया गया। सच तो यह है कि गुजरात में खंभात की खाड़ी में विश्व के सबसे पुराने नगर के अवशेष मिले हैं जो ई. पू. 7,500 वर्ष माने जा रहे हैं। इस प्रकार भारतीय सभ्यता की प्राचीनता में तो कोई संदेह नहीं होना चाहिये। (इन्डिया टुडे–13 जनवरी, 2002)

इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है कि कुछ स्वार्थी ज्योतिषियों ने गत सौ वर्षों की अवधि में अपने लेखन में न तो ईमानदारी का परिचय दिया न ही सत्यनिष्ठा का। महर्षि पराशर द्वारा निर्देशित 'कृत श्रम' मार्ग अर्थात् कड़े परिश्रम, समर्पण तथा खोज कार्य को छोड़ इन व्यक्तियों ने थोथी प्रसिद्धि हेतु किसी इक्की–दुक्की अद्भुत सनसनीखेज भविष्यवाणी का सहारा लेकर आम लोगों की मानसिकता को प्रभावित किया। ऐसे ही तथाकथित दैवज्ञों ने अपनी सीमित बुद्धि से अनर्गल इतिहास भी रचा।

आइये, अब उपलब्ध जानकारियों को आधार बनाकर कुछ ठोस कदम उठाते हैं जिससे सही इतिहास का विहंगम आकलन किया जा सके। इसके लिये निम्नांकित वैज्ञानिक आधार अपनाये जा रहे हैं–

तिथि निर्धारण तकनीक : तिथि निर्धारण हेतु निम्न तकनीक तर्क–सम्मत हैं:

(क) विषुव अयन एवं (ख) मुख्य घटनाओं का ज्योतिषीय रिकार्ड।

(क) विषुव अयन : पृथ्वी के अक्षांश पर डगमगाते हुए चलने से विषुवीय बिन्दु लगभग 50.3" प्रति वर्ष पीछे चला जाता है। विषुवीय बिन्दु की नक्षत्र विशेष में स्थिति घटनाओं के तिथिवार घटित होने का प्रमाण देती है। विषुवीय बिन्दु 72 वर्ष में 1^0 चलता है। इस प्रकार एक नक्षत्र करीब ($13^0 20^1$) 960 वर्ष में तथा एक राशि (30°) लगभग 2160 वर्षो में पार होती है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि वर्षा पर निर्भर करती है। अज्ञात काल से ही सूर्य कां ग्रीष्म संक्रान्ति (सूर्य की दक्षिणायन यात्रा) प्रवेश वर्षा प्रारम्भ से संबंधित रहा है। 8 जून सन 2002 को 09 : 54 बजे सूर्य मृगशिरा नक्षत्र में स्थित थे। मृगशिरा से सूर्य का आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश 22 जून 2002 को 8 : 50 बजे हुआ।

पूना निवासी डा. पद्माकर विष्णु वर्तक की गणना के अनुसार ऋक् वेद काल में वर्षा सूर्य के मृगशिरा प्रवेश पर प्रारम्भ होती थी। यदि उपरोक्त के आधार पर गणना की जाए तो ऋक् वेद का काल ईसा पूर्व 23,920 वर्ष बनता है (27 नक्षत्र x 960 वर्ष = 25900 - 2002 = 23,918 वर्ष) वेद काल में मृगशिरा नक्षत्र में सूर्य संक्रान्ति अंश की सही जानकारी उपलब्ध नहीं है। परिणामतः गलती संभावना के लिए 960 वर्ष त्रुटि के रूप में मान करके शोध के माध्यम से उक्त गणना को और संशोधित किया जा सकता है।

(ख) **मुख्य घटनाओं का ज्योतिषीय रिकार्ड** : परम्पराएँ किसी राष्ट्र तथा युग की आधारशिला होती हैं जिनका अर्थ एवं भाव केवल उसी देश के नागरिक ही समझ सकते हैं क्योंकि उनका संबंध जन मानस से होता है। पश्चिमी भारतीय खोज कर्ता (इण्डोलोजिस्ट) इन्हें समझने में नाकाम रहे। हम किसी मुख्य घटना (जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के जन्म, महाभारत युद्ध आदि) के समय की ग्रहों की स्थिति के आधार पर भी युग का कार्यकाल निश्चित कर सकते हैं। डा. वर्तक के शोध के अनुसार भगवान श्री राम की जन्म पत्रिका के अनुसार उनका जन्म 7323 वर्ष ईसा पूर्व हुआ होगा तथा महाभारत युद्ध के समय के ग्रहों की स्थिति (शनि–पूर्वफाल्गुनी, गुरु–श्रवण, राहु–उत्तर अषाढ़ तथा मंगल–अनुराधा) के आधार पर युद्ध के प्रारंभ होने की तारीख 16 अक्टूबर, 5561 वर्ष ईसा पूर्व है। इसके अतिरिक्त एक ही माह

की अवधि में चन्द्र एवं सूर्यग्रहण के सांख्यकीय आंकड़े महर्षि वेदव्यास जी ने दिए हैं। यह घटनाक्रम आधारित तरीका अधिक सटीक व शुद्ध गणना प्रदान करता है। इनके आधार पर हमने ज्योतिष शास्त्र के इतिहास को आगे बताया है।

विभिन्न युगों की ज्योतिषीय परिसीमा :

ज्योतिषीय इतिहास को अध्ययन की सुविधानुसार क्रमशः वैदिक, पौराणिक, पाराशरी, वराहमिहिर तथा वर्तमान युगों में बाँटा जा सकता है।

(1) वैदिक युग (23,920 ई.पू. - 8350 ई.पू.)

वेद की निश्चित प्रारम्भिक तिथि अनादि हैं। इनमें पूर्ण ज्ञान निहित है। ज्योतिष एक वेदांग होने के कारण, वेद के समकक्ष न होकर, उसका भाग है। हजारों वर्षों के अवलोकन व अध्ययन के आधार पर ऋषियों, मुनियों व मनीषियों तथा साधु–पुरुषों ने श्लोकों, ऋचाओं तथा सूक्तियों की रचना की।

हमने ग्रहों, उनकी गति, खगोल में ग्रहों की स्थिति की जानकारी इसी युग में प्राप्त की। इस युग में हमारा खगोल शास्त्र में विकास उच्चस्तरीय था। हाँ, ज्योतिष के संबंध में हमारा ज्ञान अपनी शैशव अवस्था में ही था। इस युग के तीन श्लोक आगे कहे गये हैं।

दिवा अधिपति :

आदित्य सौमो भौमश्च तथा बुद्ध बृहस्पति।
भागर्व शनैश्चरैव एते सप्रदिनाधिपाः।।1।।

इस श्लोक में वार के स्वामियों के रूप में सातों ग्रहों के नाम बताये गये हैं।

जन्म नक्षत्र तथा जन्म नक्षत्र का अन्य नक्षत्रों से सहसंबंधः

जन्म संपादितः क्षेम्यः प्रत्यरः साधकस्तय।
नैधनौ मित्र वर्गश्य परमोमैत्र एव च।।2।।

दशम जन्म नक्षत्रात्कर्म नक्षत्र मुच्चते। एकोन विशति चैव गर्भाधानक मुच्चते।।3।।

अर्थात् जन्म, सम्पत, क्षेम, प्रत्यारी, साधक, नैधन, मित्र और परम मित्र नक्षत्र के बाद दशम नक्षत्र को कर्म नक्षत्र कहा जाता है।

हम आज भी, इसी क्रम में, बिना किसी परिवर्तन के नक्षत्रों को जानते हैं।

(2) पौराणिक युग (8350 ई.पू. - 3000 ई.पू.)

यज्ञकर्मक्रियादेवः स्मृतिर्वेदो गृहाश्रमे।
स्मृतिर्वेदः क्रियावेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः।।

पुराणपुरूषाज्जातं यथेदं जगदभ्दुतम्।
सकतथेदं वाङ्मयं पुराणेभ्यो न संशयः।।
न वेदे ग्रहसंचारो यन शुद्धिः कालबोधिनी।
तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः।।
इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोयं कृतः पुरा।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ।।

(श्री नारद पुराण, उ०, अ०, 24)

पुराणों के माध्यम से ही ज्योतिष को अपनी दिशा प्राप्त हुई। यही कारण है कि आज भी ज्योतिष को हम हिन्दू ज्योतिष के नाम से पुकारते हैं।

इसी युग में 18 प्रवर्तक साधु ऋषियों ने तब तक उपलब्ध ज्योतिषीय ज्ञान में सुधार किया तथा इसे दूर–दूर तक प्रचारित – प्रसारित करके इसके अस्तित्व से परिचय करवाया। उनका योगदान सर्वोपरि ही नहीं जन मानस में पैठ वाला भी है। इन्होंने सिद्धान्त (खगोल शास्त्र तथा गणितीय ज्योतिष) होरा (जातक या व्यक्तिगत जन्म पत्रिका) तथा संहिता पर लेखन कार्य किया। इन प्रवर्त्तकों के नाम हम पहले ही बता चुके हैं।

यह हमारे शाश्वत महाकाव्यों रामायण तथा महाभारत का युग भी है। डा. वर्तक ने राम जन्म 7323 ई.पू. तथा महाभारत का समय 5562 ई.पू. से 3000 ई.पू. के मध्य निश्चित किया है। ये काल खण्ड स्पष्ट रूप से राजवंश शाासन के युग रहे हैं।

रामायण में ज्योतिष : ऋषि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण में भी ज्योतिष शास्त्र का वर्णन मिलता है। भगवान राम व उनके भाइयों के जन्म के समय ग्रहों व लग्न की जानकारी निम्न श्लोकों द्वारा मिलती है।

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।8।
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।9।
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याजनयद्रामं दिव्यलक्षणसयुतम्।10।
पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः।
सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते र वौ।115।

राज्ञः पुत्रा महात्मानश्चत्वारो जज्ञिरे पृथक्।
गुणवन्तोऽनुरूपाश्च रुच्या प्रोष्ठपदोपमाः।।116।।

ऋषि वाल्मिकि ने राम व उनके अन्य भाइयों के जन्म के समय ग्रहों के संबंध में लिखा है कि यज्ञ समाप्त होने पर छः ऋतुएँ और बीतीं। बारहवें महीने में भगवान श्री राम का जन्म चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में (उसे अदिति के नाम से कहा गया है) उस समय हुआ था जब पाँच ग्रह अपनी स्व/उच्चराशि में स्थित थे (मंगल मकर में, शनि तुला में, बृहस्पति और चन्द्र कर्क में और शुक्र मीन राशि में स्थित थे)। सुन्दर बुद्धि वाले भरत का जन्म लग्न मीन व नक्षत्र पुष्य था। सुमित्रा के दोनों पुत्र आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न हुए जब सूर्य कर्क लग्न में था। ये चारों बालक प्रोष्ठपद के समान कान्तिमान थे। पूर्व भाद्रपद और उत्तर भाद्रपद को मिलाकर प्रोष्ठपद कहते हैं। इन दोनों नक्षत्रों में दो–दो ताराएँ होती हैं जो आपस में मिली होती हैं। यहां भी चारों भाई वैसे ही थे।

महाभारत में ज्योतिष : अनुशासन पर्व के 64वें अध्याय में नक्षत्रों की विस्तृत सूची दी गई है तथा प्रत्येक नक्षत्र की अवधि के दौरान दिए जाने वाले दान के परिणामों का विवेचन भी है। मुहूर्त, उनके नाम, उनकी शुभ, अशुभ प्रकृति, तथा नक्षत्रों की भी शुभ अशुभ प्रवृति का वर्णन इसी खण्ड में उपलब्ध है।

महाभारत में युधिष्ठिर के जन्म समय का वर्णन करते हुए कहा गया है कि युधिष्ठिर का जन्म चन्द्रवार को चन्द्र के ज्येष्ठा नक्षत्र में गोचर के समय हुआ था। उस दिन पूर्णिमा तिथि थी तथा समय दिन का अष्टम् (अभिजित) मुहूर्त था। उस काल के ज्योतिषीय ज्ञान का पता हमें ऐसे कई श्लोकों से चलता है। उस काल में भी शनि एवं मंगल ग्रह सबसे अधिक अशुभ माने जाते थे। मंगल को लड़ाई – झगड़े, युद्ध इत्यादि का ग्रह माना जाता था।

महाभारत के उद्योग पर्व के 143 अध्याय में जब कर्ण भगवान कृष्ण से मिलते हैं तो कर्ण बताते हैं **'शनि रोहिणी नक्षत्र में गोचरस्थ हैं तथा मंगल वक्री गति से ज्येष्ठा से अनुराधा नक्षत्र में प्रवेश कर गये हैं। महापात चित्रा नक्षत्र को अशुभता के साथ प्रभावित कर रहे हैं। राहु सूर्य को संकटापन्न करने ही वाले हैं अतः यह समय अशुभता का प्रतीक है।''** यही ज्योतिषीय सिद्धान्त आज भी उतने ही सत्य व प्रमाणित हैं। उदाहरण के लिए प्रथम विश्व युद्ध, द्वितीय विश्व युद्ध, भारत–पाक युद्ध - 1971 के दौरान शनि रोहिणी नक्षत्र में गोचरस्थ था। 2001/2002 में भी रोहिणी शकट् लगा हुआ था। परिणामतः अमेरिका में 11 सितम्बर 2001 तथा भारतीय संसद पर 13 दिसम्बर 2001 को हुए विध्वंसकारी हमले अनायास नहीं हैं। इनका स्पष्ट ज्योतिषीय आधार है।

महाभारत युद्ध के समय 13 दिन का चंद्र पक्ष था तथा इसी अवधि में दो ग्रहण एक ही पखवाड़े में थे। इन तथ्यों को भयंकर युद्ध का ज्योतिषीय कारण माना जाता है। मार्च 2007 में भी होली के दिन चन्द्र ग्रहण तथा उसके ठीक पन्द्रह दिनों के बाद सूर्य ग्रहण लगे। उस समय भी भारतवर्ष की राजनीति में कई उथल–पुथल हुए। स्पष्टतः महाभारत युग में ज्योतिष पूर्णतः विकसित रूप में था। संभवतः इसी काल में लिखी गयी **नारद संहिता व गर्ग संहिता** भी ज्योतिष तथा मुहूर्त से संबधित हैं। **विष्णु पुराण और नारद पुराण** भी ज्योतिष शास्त्र के बारे में बहुत सी जानकारी उपलब्ध कराती हैं।

(3) पराशरी युग (3000 ई.पू. से 57 ई.पू.)

हमने पौराणिक युग के अठारह ऋषियों के नाम पहले बताये हैं। पराशरी युग में उन सिद्धान्तों पर विशेष कार्य हुए।

ऋषि पराशर–पराशर कलियुग की ज्योतिषीय विभूतियों में सबसे पहले माने जाते हैं। कलियुग का प्रारम्भ 3102 ई.पू. माना जाता है। ऋषि पराशर का विस्तृत ज्योतिष कार्य, वृहत् पराशर होरा शास्त्र, तो वैदिक ज्योतिष की रीढ़ है तथा हम जिस ज्योतिष शास्त्र को पढते व पढ़ाते हैं उसका बहुत बड़ा आधार भी यही ग्रन्थ है। इस युग के अन्य प्रसिद्ध ज्योतिषी है – जैमिनी, गर्ग तथा सत्याचार्य।

वृहत पराशर होरा शास्त्र वास्तव में जातक ज्योतिष पर विस्तृत ग्रन्थ है जिसमे राशि, ग्रहों, विभिन्न लग्नों, 16 वर्ग पत्रिकाओं, राशियों की दृष्टि, अरिष्ट, अरिष्ट भंग 12 भाव, उपग्रहों, कारकों, कारकांश, शुभ अशुभ योग, आयुनिर्धारण, विभिन्न प्रकार की दशाओं, अष्टकवर्ग राशिफल, 'नष्ट–जातक', अंग लक्षण, ग्रह शान्ति व अन्य ज्योतिषीय विषयों पर विस्तृत विश्लेषण है। कहा जाता है कि कलियुग में पराशर की समकक्षता किसी अन्य में नहीं है।

(4) वराहमिहिर युग (57 ई.पू. से 19 ई)

यह युग वराहमिहिर नामक ज्योतिषी व खगोलविद् का युग है जो अपने समय के महानतम ज्योतिषी थे। विक्रम संवत महाराजा विक्रमादित्य के राज्यारोहण से ही प्रारम्भ होता है। वराहमिहिर विक्रमादित्य के राज ज्योतिषी थे। अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में वराहमिहिर की 'बृहदजातक' ज्योतिषशास्त्र की द्वितीय संदर्भ पुस्तक है उन्होंने पितामह, सूर्य, वशिष्ठ, लोमश तथा रोमक सिद्धान्तों का समावेश करके 'पंच सिद्धान्तिका' का प्रतिपादन किया। 'दैवज्ञ वल्लभ' प्रश्न ज्योतिष से सम्बन्धित उनकी अनमोल रचना है। किन्तु उनकी रचना वृहतसंहिता निश्चित रूप से कालजयी है कुछ इतिहासकार वराहमिहिर के युग को पांचवीं–छठी शताब्दी में मानते हैं।

(5) उत्तर वराहमिहिर काल—वराहमिहिर के बाद भारतवर्ष में ज्योतिषशास्त्र का संक्षिप्त लेखाजोखा आगे दिया जाता है।

5.1 आर्यभट्ट—प्रथम : इनका जन्म 476 ई. में हुआ। इन्होंने 'आर्यभट्टीय' नामक पुस्तक लिखी जिसके माध्यम से इन्होंने स्पष्ट किया कि सूर्य तथा अन्य तारे स्थिर है तथा पृथ्वी सूर्य के गिर्द धूमती है जिससे दिन–रात का अनुभव होता है। ग्रहणों के वैज्ञानिक कारण तथा ग्रहों के अक्षांश गणना करने की विधियों का विवेचन भी इस पुस्तक में उपलब्ध है।

5.2 कालकाचार्य - तीसरी सदी के प्रख्यात जैन परम्परा के पुरोधा तथा निमित्त एवं संहिता ग्रथों के रचयिता।

हमारे संग्रहित रिकार्ड में सुधारात्मक प्रक्रिया जारी रही तथा आठवीं शताब्दी से घटनाक्रमों का उपलब्ध साहित्य अधिक विश्वसनीय हो गया। उस काल के कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध ज्योतिषियों तथा उनकी रचनाओं का विवरण हमने आगे दिया है।

5.3 कल्याण वर्मा (578 ई.) - अपनी रचना सारावली के लिये आज तक कल्याण वर्मा का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। सारावली में वैदिक ज्योतिषी के साथ यवन जातक का भी बड़ा सुन्दर सम्मिश्रण है।

5.4 ब्रह्मगुप्त (598 ई.) - ज्योतिष शास्त्र के लिये उपयोगी कई बीजगणितीय सूत्रों के रचनाकार, जिन्होंने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त नाम के ग्रंथ की रचना की।

5.5 उत्पल भट्ट या भट्टोत्पल (दिल्ली 880 ई.) यद्यपि इनको वराहमिहिर की रचनाओं के टीकाकार के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त हुई है, फिर भी इनकी मूल रचनाएँ विभूति और राहु निवाकरण भी अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

5.6 भाष्कराचार्य (विजयवाड़ा - 1114 ई.) - भाव चन्द्रिका तथा भाव दीपिका इनकी प्रख्यात कृतियां हैं।

5.7 वैद्यनाथ (कर्नाटक 14वीं सदी) - 'जातक परिजात' जैसी अद्भुत रचना के रचनाकार जिसमें राशियों का विस्तृत वर्णन है।

5.8 नारायण भट्ट (उडप्पी - 14वीं सदी) - इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा उपयोगी रचना है 'चमत्कार चिन्तामणि' जिसमें फलित ज्योतिष के अत्यन्त उपयोगी सूत्र संकलित किये गये हैं। अपनी तरह की यह अनूठी रचना है जिसमें प्रत्येक विषय पर विभिन्न प्रख्यात ज्योतिषियों के मत लिखने के बाद सभी का निचोड़ भी बताया गया है। यह पुस्तक एक ऐसी कृति है जो आज भी उपयोगी है।

5.9 गणेश (1517 ई.) – ग्रह लाघव नामक ग्रन्थ के यशस्वी रचयिता ने 13 वर्ष की आयु में ही यह ग्रंथ लिखा।

5.10 व्यंकटेश शर्मा (16वीं सदी - उत्तर भारत) भारतीय ज्योतिष के इतिहास में दशा फल विचार के लिये इनकी रचना सर्वार्थ चिन्तामणि आज भी प्रकाश स्तम्भ का काम करती है।

5.11 ढुंढीराज (16वीं सदी - नासिक) - यवन जातक तथा वृद्धयवन जातक पर आधारित इनकी रचना जातकाभरण् बहुत संतुलित व्याख्या है।

5.12 मन्त्रेश्वर (मद्रास - 16वीं सदी) - जातक परिजात के क्लिष्ट पक्षों को अत्यन्त सरल करने वाली मंत्रेश्वर की फलदीपिका संभवतः बृहद पराशर होरा शास्त्र के बाद सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली आर्ष पुस्तक है। इस पुस्तक में पहली बार संभवतः ग्रह गोचर को जातक की कुण्डली पर लगा कर दशा के फलादेश बताने की प्रक्रिया समझायी गयी है।

5.13 नीलकण्ठ (16वीं सदी - महाराष्ट्र) - वर्षफल की सबसे स्तरीय पुस्तक ताज़िक नीलकण्ठी सचमुच कालजयी रचना है जिसमें दिये गये सभी सूत्र आज भी सटीक बैठते हैं।

(6) मुस्लिम और मुगल काल—इस काल में फलित ज्योतिष में अनेक सुधार हुए। मुस्लिम आक्रान्ताओं के भारत आगमन तथा मुस्लिम संस्कृति के करीबीपन ने ज्योतिष को नई शाखाएँ जैसे – रमल, ताज़िक आदि विकसित करने में मदद दी। इस युग में 'प्रश्न', 'स्वर' तथा 'शकुन' ज्योतिष के क्षेत्र में अनेक नई विधाएँ व सिद्धान्त विकसित हुए।

ज्योतिषीय उत्थान में जन्तर–मन्तर का अपूर्व स्थान है। दिल्ली, जयपुर तथा वाराणसी को जयपुर नरेश महाराजा जयसिंह की यह अद्‌भुत भेंट है। प्रसिद्ध ज्योतिषी जगन्नाथ जयपुर दरबार से संबंधित थे। इसी समय अलवर दरबार में नीलाम्बर का नाम था। देश के बड़े भू–भाग पर मुस्लिम शासन के दौरान इन ज्योतिषीय प्रतिभाओं ने ज्योतिष विज्ञान को राज संरक्षण में जीवित रखने का अद्वितीय कार्य किया।

15 वीं शताब्दी से ही हमें पण्डितों के ऐसे रिकार्ड मिलते है जिनसे प्रतीत होता है कि ज्योतिष में राजवंशों तथा शासकों ने गहन रुचि लेनी आरम्भ की तथा ज्योतिष के उत्थान हेतु कार्य किये अथवा करवाये। प्रत्येक शासक का अपना राजज्योतिषी होना प्रायः आवश्यक था।

बाबर द्वारा पानीपत की पहली लड़ाई 1526 में जीतने के साथ मुगल साम्राज्य

की शुरुआत हुई। हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ व औरंगजेब के शासन काल में मुगल साम्राज्य उत्तरोत्तर प्रगति करता रहा। इन सब बादशाहों की ज्योतिष पर बहुत आस्था थी। प्रमाणित रूप से बाबर सभी बड़े युद्धों में जाने से पहले ज्योतिषीय परामर्श लेता था। हुमायूँ ने अपने राज्यकाल में बहुत उतार–चढ़ाव देखे और ज्योतिष शास्त्र में उसकी आस्था इतनी बढ़ी कि अकबर के पैदा होने पर उसने चार–चार अलग ज्योतिषियों से उसकी जन्म कुण्डली बनवाई। कहा जाता है कि हुमायूँ प्रत्येक छोटे–बड़े काम से पहले 'फाल' अर्थात् 'शकुन' निकालता था।

अकबर और जहांगीर का भी ज्योतिष में अटूट विश्वास था। नीलकन्ठ द्वारा रचित "ताज़िक नीलकन्ठी" अकबर के समय की प्रसिद्ध पुस्तक है। अकबर के नवरत्नों में रहीम और बीरबल की ज्योतिष शास्त्र पर अच्छी पकड़ थी। रहीम ने ताज़िक शास्त्र में मान्य सोलह के अतिरिक्त कई अन्य योग भी बताये हैं। शाहजहां के बाद से ज्योतिष में मुगल सम्राटों का विश्वास कम हुआ।

7.0 भक्ति काल - मुगल काल के समापन के ठीक पहले भारत में भक्ति की नयी लहर उठी।

ज्योतिष का प्रभाव इस उस काल के जनमानस पर भी साफ तौर से देखा जा सकता है। जनमानस में ज्योतिष का प्रभाव आँकने के लिए उस समय का साहित्य एक प्रामाणिक मापदण्ड है। तुलसीदासजी ने रामचरित मानस में ज्योतिष सूत्रों का प्रयोग कई स्थानों पर सहज भाव से किया है।

भक्ति काव्य में ज्योतिषीय भाषा का प्रयोग जनमानस में ज्योतिष का विश्वास दर्शाता है। कवियों ने न सिर्फ भक्ति काव्य में ही ज्योतिष का प्रयोग किया है, शृंगार रस के कवि बिहारी की 'सतसइया' में भी उपमा और उपमेय मानो किसी ज्योतिषी ने दिये हैं।

"मंगल बिन्दु सुरग, मुख ससी, केसरी आद गुरु।
इक नारी लहि संगु, रसमय किये लोचन जगत।।"

"मुख चन्द्रमा के समान श्वेत है जिस पर लाल बिंदी मंगल के रंग के समान चमक रही है। उस स्त्री का रंग बृहस्पति की तरह केसर मिश्रित पीलापन लिए हुए है। इस नारी के रस से भरे नेत्रों ने पूरे जगत को रसमय किया हुआ है।" इन पंक्तियों को पढ़ कर यह कहना कि उस समय ज्योतिष समाज के कण–कण में रचा बसा था गलत न होगा क्योंकि कवि अपनी रचना केवल उसी भाषा में लिखना चाहेगा जो भाषा उस समाज में बोली जाती हो व उस भाषा का सही अर्थ जनमानस आसानी से समझ कर आनन्द प्राप्त कर सके।

8.0 अंग्रेजी का आविर्भाव तथा ज्योतिष का संसार :-

मुगल काल का अन्त आते–आते भारत में अंग्रेजी तथा अंग्रेजों ने पांव पसारने प्रारंभ कर दिये थे। किन्तु ज्योतिष शास्त्र की इक्का–दुक्का मशालें उस समय भी जल रही थीं। इनमें से कुछ नाम नीचे दिये गये हैं–

8.1 गणेश दैवज्ञ (गुजरात-18 वीं सदी) - उस काल तक की बहुत सारी ज्योतिषीय रचनाओं का सार गणेश दैवज्ञ ने अपनी पुस्तक जातकालंकार में डाल दिया जो आज भी एक लोकप्रिय रचना है।

8.2 महादेवजी पाठक (रतलाम - 1842 ई.) अत्यन्त उपयोगी रचना, 'जातक तत्त्व', के लेखन का श्रेय आपको ही प्राप्त हैं।

8.3 बी.सूर्य नारायण राव (कर्नाटक - 1856 ई.) - आपकी मूल रचनाएँ तो बहुत प्रसिद्ध नहीं हो पाई पर पूर्वकाल की कई महान और गूढ़ रचनाओं की सरल भाषा में टीका लिखकर आप ज्योतिषाकाश के दैदीप्यमान नक्षत्रों में एक हो गये। विशेष तौर से बृहद जातक तथा जैमिनी सूत्रम् की आपकी टीकाएँ आज भी लोकप्रिय हैं।

8.4 राम दयालु (पंजाब - 1861) - 'संकेतनिधि' जैसी अनमोल पुस्तक आपकी ही रचना है।

8.5 पंडित महेश (कश्मीर - 1874 ई.) - श्री राणबीर तथा महानिर्बर्न्ध ज्योतिष आपकी दो अद्भुत पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी मानी जाती हैं।

9.0 अन्य प्राचीन सभ्यताओं में ज्योतिष :

– सुमेरियन (5000 ई.पू. - 2000 ई.पू.) इस सम्यता में नक्षत्रों का ज्ञान था तथा इनका चन्द्रमा पर आधारित कैलेण्डर भी था।

– बेबिलोनियन (3000 ई.पू. - 1000 ई.पू.)

– ऐसिरियन (1690 ई.पू. - 60 ई.पू.)

– ग्रीक (1500 ई.पू. - 200 ई.पू.)

(ग्रीक ज्योतिष मूलतः सुमेरियन ज्योतिष पर आधारित था। मज़े की बात है कि सुमेरियन ज्योतिष का आधार था वैदिक तथा बेबिलोनियन ज्योतिष)।

वर्तमान ज्योतिषीय युग

वर्तमान युग मूलतः प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार के बाद से चिह्नित किया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप लेखन कार्य सम्पूर्ण संसार में पहुँचने में सक्षम हो गया है। इसका प्रभाव ज्योतिष पर भी पड़ना निश्चित ही था।

सुप्रसिद्ध तथा विस्तृत पहुँच वाले लिखित साहित्य के जनक डा. बी.वी. रमण इसी युग की विभूति हैं। एस्ट्रोलोजिकल मैगज़ीन के माध्यम से डा. रमण वैदिक ज्योतिष में रुचि रखने वाले लगभग प्रत्येक घर में पहुँचने में सफल रहे।

पारम्परिक ज्योतिष की दो महान विभूतियाँ, जिन्होंने इस देश के लिये अपनी भूमिका निभाई है वे हैं क्रमशः सूर्य नारायण व्यास तथा हरिदेव शर्मा शास्त्री त्रिवेदी।

सूर्य नारायण व्यास : आपकी ज्योतिषीय शिक्षा–दीक्षा उज्जैन में हुई। इन्हें भारत सरकार ने पदम् विभूषण से अलंकृत किया। वे एकमात्र ऐसे ज्योतिषी हैं जिन्हें यह सम्मान प्राप्त हुआ। परन्तु विडम्बना है कि यह सम्मान उन्हें संस्कृत भाषा में उत्कृष्ट योगदान पर प्रदान किया गया न कि ज्योतिषीय विद्वत्ता पर।

हरिदेव शर्मा शास्त्री त्रिवेदी : विश्व विजय पंचांग के जनक तथा एक महान ज्योतिषीय विभूति, जिनकी बौद्धिक कुशाग्रता इस तथ्य से उजागर होती है कि उन्हें वराहमिहिर की बृहद् संहिता तथा ताज़िक नीलकण्ठी कण्ठस्थ थी। विभिन्न चक्रों के प्रयोग में वे अद्वितीय थे।

इन्हीं दोनों दिग्गजों ने भारतीय स्वतन्त्रता की उद्घोषणा के लिये 15 अगस्त 1947 के अर्ध रात्रि मुहूर्त की सलाह देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

इन दोनों के अतिरिक्त अनेक ज्योतिषीय विभूतियों ने ज्योतिष शास्त्र के विकास में चहल–पहल, प्रसिद्धि से दूर रहकर, चुपचाप निस्वार्थतापूर्वक, दिव्य कार्य किया। हम उन सभी की चर्चा स्थानाभाव के कारण नहीं कर रहे। सभी को श्रद्धापूर्वक नमन करके हम उनमें से कुछ की जानकारी अवश्य देना चाहेंगे।

सामन्त चन्द्रशेखर : उड़ीसा के यह ज्योतिष सम्राट् अद्वितीयं थे। पूर्णतः नये सिद्धान्तों का प्रयोग करके ये ग्रहों की बिल्कुल सही अक्षांश गणना करने की आकर्षक व आश्चर्य जनक क्षमता रखते थे।

वेरी राममूर्ति शास्त्री : आंध्रप्रदेश के यह दिग्गज ज्योतिषी जैमिनी ज्योतिष के विशेषज्ञ थे।

डी. वी. सुब्बा राव : आंध्रप्रदेश ने ज्योतिष को अनेक विभूतियाँ दी, उन्हीं में से एक हैं श्री राव। उदाहरण द्वारा ज्योतिषीय सिद्धान्तों को स्पष्ट करने की इनकी क्षमता अद्वितीय है। जन्म समय सुधार में ये अपना सानी नहीं रखते थे।

श्री के. एन. राव

जब कक्षा के माध्यम से आधुनिक रीति से ज्योतिषीय ज्ञान के प्रसार के प्रयास का विषय आता है तो श्री के. एन राव का ज्योतिषीय चरित्र आँखों के सामने नाच

उठता है। अपने–अपने क्षेत्रों के विद्वान, हजारों स्त्री–पुरुषों को वैज्ञानिक ढंग से ज्योतिष की शिक्षा देने के कारण ज्योतिषीय इतिहास में श्री राव का नाम उनके जीवन काल में ही अमर हो गया है। कक्षा प्रणाली के माध्यम से ज्योतिषीय ज्ञान प्रसार उन्होंने अगस्त 1987 में प्रारम्भ किया जब नई दिल्ली के भारतीय विद्या भवन में ज्योतिष प्रवीण कोर्स के लिये 10 विद्यार्थियों का अनुक्रमांकन किया गया था। आज यहां प्रत्येक वर्ष 900 छात्र, छात्राएँ ज्योतिष शिक्षा प्राप्त करते हैं।

श्री राव की बुद्धिमत्ता, विनोदी प्रकृति, सुन्दर भाषा, ज्ञान की विशालता एवं गहराई, सात्विकता से परिपूर्ण विनम्रता ने उन्हें प्रख्यात व पौराणिक बना दिया है। श्री के. एन राव अद्वितीय हैं। विभिन्न ज्योतिषीय पत्रिकाओं में लेख लिखने में अति विशिष्ट तथा अद्‌भुत वक्ता भी हैं श्री राव। वे पहले ज्योतिषी हैं जिन्होंने निरन्तर आर्ष ज्योतिषीय सिद्धान्तों को समसामयिक कसौटी पर वैज्ञानिक रूप से कसा है तथा सांख्यिकी रूप से उनकी वैधता सिद्ध की है। श्री राव ने 27 से अधिक ज्योतिषीय पुस्तकें स्वयं लिखी हैं। उनके दिशा निर्देश में अन्य अनेक ज्योतिषियों ने भी ढेर सारी स्तरीय पुस्तकें लिखी हैं।

हम भाग्यशाली हैं कि हम ऐसे समय में जी रहे हैं जब भारतीय विद्या भवन ज्योतिष के प्रचार–प्रसार में कार्यरत है तथा वहाँ स्वयं श्री के. एन. राव एवं उनका समर्पित शिक्षक दल इस कार्य को आगे बढ़ाने में तत्परता से जुटा है।

अध्याय 13

पारम्परिक पद्धति से कुण्डली बनाना

आज के कम्प्यूटर के युग में, जब बटन दबाते ही कुण्डली अपने आप, वह भी ढेर सारी सूचनाओं के साथ, तैयार हो जाती है, कुण्डली बनाने की आर्ष या पारम्परिक पद्धति संभवतः उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रही लेकिन यह भी निर्विवाद सत्य है कि काल और दूरी को एक सूत्र से जोड़ने वाली यह अद्‌भुत पद्धति आज भी श्रद्धा और विस्मय का बोध कराती है।

इससे पहले कि हम पारम्परिक विधि से कुण्डली बनाना सीखना प्रारंभ करें यह याद रखना उचित होगा कि वेदों में लग्न या राशियों की चर्चा है ही नहीं – भारत के घर–घर में प्रतिष्ठित ग्रन्थों, रामायण तथा महाभारत, में ज्योतिष शास्त्र का बहुतायत से प्रयोग हुआ है पर इन दोनों ग्रन्थों में भी ग्रहों और नक्षत्रों की ही चर्चा है, राशियों अथवा लग्न की नहीं। उपनिषदों में भी राशियों और लग्न की चर्चा नहीं है।

बाद के ग्रन्थों, विशेष कर पुराणों, में ग्रहों तथा नक्षत्रों के अतिरिक्त राशियों की बात भी कही गयी है। राशियों के नक्षत्रों से सम्बन्ध तथा राशियों के स्वामित्वों की व्याख्या की गयी है। इस क्रम में विशेष रूप से वामन पुराण तथा नारद महापुराण का उल्लेख करना उचित होगा। पहले नारद महापुराण की चर्चा करते हैं। वहां कहा गया है कि ऋषि नारद को, गंगा नदी के तट पर, उनके चार अग्रजों, (सनक, सनन्दन, सनत्‌कुमार तथा सनातन) ने वेद के छः अंगों के बारे में बताया तथा यह भी कहा कि वेदों के छः अंगों में ज्योतिष सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह वेदों का नेत्र है। ऋषि सनन्दन पहले तो ज्योतिष के तीनों स्कन्धों (गणित, जातक और संहिता) की चर्चा करते हैं। बाद में गणित स्कन्ध की व्याख्या के क्रम में वे लग्न तथा ग्रहों के रेखांश की गणना करना सिखाते हैं। यद्यपि यह विधि न तो बहुत सरल है न ही

आज के कम्प्यूटरों द्वारा की गयी गणना की भांति बिलकुल सही–सही, फिर भी इन्हीं सिद्धान्तों को आधार बना कर आजकल के पंचांगों में लग्न तथा ग्रह स्पष्ट की गणना की अपेक्षाकृत सरल और शुद्ध विधि बतायी गयी है। इन्हें हम पंचांग पर आधारित पारम्परिक विधि कहेंगे जिसे अधिकांश ज्योतिषी शुद्ध पारम्परिक विधि मान लेते हैं।

लग्न तथा ग्रह को स्पष्ट करने के लिये जिन सूचनाओं की आवश्यकता है वे हैं, क्रमशः, जन्म का काल, दिन और स्थान। इसके अतिरिक्त जिस स्थान पर जातक का जन्म हुआ है, उस क्षेत्र में व्यवहार में आने वाला जातक के जन्म के वर्ष का पंचांग।

इष्टकालः हमने पिछले ही अध्याय में देखा है कि जातक का जन्म हम उस देश या उस क्षेत्र विशेष में स्थानीय समय के आधार पर मानते हैं। हम यह भी जानते हैं कि स्थानीय समय या मानक समय के निर्धारण के लिये जिस घड़ी का उपयोग होता है, वह रात के बारह बजे के बाद से नये दिन के आगमन की घोषणा कर देती है। अर्थात् रात के बारह का घन्टा बजा नहीं कि नया दिन और नयी तारीख शुरू हो जाती है। एक प्रकार से देखें तो यह विधि बहुत सुविधाजनक है क्योंकि तब पूरे देश, या कम से कम देश के बड़े भूखण्ड, में एक ही समय होता है और एक ही तारीख भी रहती है। किन्तु जब हम इस समय को आधार मान कर कुण्डली बनाना चाहते हैं तो कई संशोधन करने पड़ते हैं। पारम्परिक पद्धति में नये दिन की गणना सूर्योदय काल से होती है। किसी घटना के घटित होने का समय (यथा बच्चे का जन्म या कोई संस्कार करने का काल) सूर्यादय के बाद से उस घटना के होने तक के समय द्वारा निरूपित किया जाता है। इसे हम उस घटना का इष्टकाल कहते हैं। यदि किसी रविवार को सूर्योदय सुबह 6:00 बजे और बच्चे का जन्म सारा दिन बीतने के बाद रात्रि के 2:00 बजे हुआ हो तो अंग्रेजी हिसाब से तारीख बदल जायेगी – दिन सोमवार हो जायेगा और जन्म का समय कहेंगे सवेरे 2:00 बजे। किन्तु पारम्परिक पद्धति में कहा जायेगा कि बच्चे का जन्म रविवार को हुआ और इष्टकाल है 20:00 घन्टे क्योंकि सूर्यादय के 20:00 घन्टों बाद बालक का जन्म हुआ है। पारम्परिक पद्धति में इष्टकाल की इकाई घटी अथवा दण्ड होती है। घटी का मूल संस्कृत शब्द घट है जिसका अर्थ घड़ा होता है। नियत आकार के घड़े की पेन्दी में नियत आकार का सुराख कर के घड़े में पानी भर दिया जाता था। जितनी देर में घड़ा खाली हो जाये उस समय को एक घटी कहा जाता था। घड़े तथा सुराख को ऐसा बनाया जाता था कि एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक वह घड़ा साठ बार खाली हो जाये। नारद संहिता के 29 वें अध्याय के श्लोक 86, 87 तथा 88 में बताया गया है कि छः अंगुल (120 मिलीमीटर) ऊँचा और 12 अंगुल विस्तार वाला दस पल (40 तोले) ताम्बे

का कपाल सरीखा पात्र बनायें जो साठ पल (240 तोले) जल से भर जाये। इसमें सोने की सलाई से उड़द के बराबर छिद्र करें। ऐसे पात्र को जल में डुबोने से अहोरात्रि में साठ बार जल में डूबेगा। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय एक सावन दिवस कहलाता है। इस प्रकार एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय का समय प्रायः 60 घटी के बराबर होता है। एक घटी एक दण्ड के बराबर होती है। 'दण्ड' का अर्थ होता है डण्डा – जो प्रायः लकड़ी का होता है। इसकी छाया की माप से समय का निर्धारण होता था जो सूर्य के आयन पर आधारित था। इस प्रकार 24 घन्टों में 60 घटी/दण्ड हुए। 1 घन्टा 2.5 घटी/दण्ड के बराबर हुआ। एक घटी में 60 पल तथा एक पल में 60 विपल होते हैं।

समय मापने की प्राचीन तथा नवीन पद्धति के सम्बन्ध नीचे सारणी–बद्ध किये गये हैं।

24 घन्टा = 60 घटी/दण्ड	1 घटी/दण्ड = 60 पल	1 पल = 60 विपल
1 घन्टा = 2.5 घटी/दण्ड	1 घटी/दण्ड = 24 मिनट	1 पल = 24 सेकेण्ड
1 मिनट = 2.5 पल	1 सेकेण्ड = 2.5 विपल	

एक बात और स्मरण रखने वाली है। सूर्य का पथ पृथ्वी की मध्याह्न रेखा के संदर्भ में झुका हुआ है। पृथ्वी की अपनी गति भी है। इसलिये किन्हीं भी दो स्थानों पर सूर्यादय एक साथ नहीं हो सकता। साथ ही एक ही स्थान पर, अलग–अलग दिनों में, सूर्योदय का समय अलग–अलग ही होगा। इस प्रकार एक सुविधा तो हुई कि जन्म का इष्टकाल पूरी तरह से स्थानीय समय हो गया जो सूर्योदय से निर्दिष्ट होता है किन्तु सूर्योदय का समय क्या माना जाये, इस पर भी बहुत प्रकार के मत मिलते हैं। बिना अधिक झमेले में पड़ते हुए हम सूर्योदय का समय वह मानेंगे जब सूर्य का केन्द्र क्षितिज पर पहुंचा हो।

सूर्योदय ज्ञात करने की विधिः पंचांग की कई विशेषताओं में एक यह भी है कि जिस भी क्षेत्र में वह प्रभावी होता है, वहां तथा कतिपय अन्य विशिष्ट स्थानों के सूर्योदय तथा सूर्यास्त के काल की जानकारी पंचांग में उपलब्ध होती हैं। पंचांग में यह भी सुविधा रहती है कि किसी भी अन्य स्थान के लिये बिना अधिक प्रयासों के सूर्योदय की गणना की जा सकती है। इसे हम एक उदाहरण के द्वारा समझेंगे जिसमें विश्व विजय पंचांग 2006–2007 का प्रयोग किया गया है। यह तो ज्ञात है ही कि किसी स्थान विशेष पर सूर्योदय का समय प्रत्येक वर्ष की किसी भी तारीख़ को प्रायः वही रहता है। साथ ही यह भी जानकारी अवश्य होगी कि विश्वविजय पंचांग दिल्ली तथा आसपास के क्षेत्र के लिये सर्वथा उचित है।

उदाहरण : 26 जनवरी 2007 को जबलपुर में सूर्योदय निकालना। इस उदाहरण के लिये हमने विश्व विजय पंचांग से आंकड़े लिये हैं जिनकी विस्तृत जानकारी नीचे की सारणी में दी गयी है। इस सारणी को आधार बनाकर हम किसी भी स्थान का सूर्योदय ज्ञात कर सकते हैं।

क्रम	विषय	विवरण	पृष्ठ	टिप्पणी
1.	दिल्ली में 26.01.2007 को सूर्योदय	7:17 AM	76	गुरुवार 07.42 तक एकादशी 17.51 तक ज्येष्ठा
2.	जबलपुर का रेखांश	79^0E58'	116	
3.	जबलपुर का अक्षांश	23^0N10'	116	
4.	जबलपुर तथा दिल्ली में समय का अन्तर	(+) $00^h11^m04^s$	116	(+) का अर्थ हुआ जबलपुर दिल्ली के पूर्व में है।
5.	सूर्य की क्रान्ति 26.01.07 को सुबह 5:30 बजे	18^0S52'	216	
6.	जबलपुर के रेखांश तथा सूर्य की क्रान्ति के आधार पर समय का संशोधन	आगे किया गया है	121	चरान्तर सारिणी में दाहिने रेखांश तथा सबसे बायें ऊपर से नीचे सूर्य की क्रान्ति दी गयी है।

1. दिल्ली और जबलपुर में समय का अन्तर 11 मिनटों और 4 सेकेण्ड का है। जबलपुर दिल्ली के पूरब में है अतः सामान्यतः वहां सूर्योदय इतना ही पहले होना चाहिये। अतः रेखांश में अन्तर होने का कारण जबलपुर में सूर्योदय काल 07:17:00 − 00:11:04 = 07:05:56 होना चाहिए।
2. अब हम पृष्ठ 121 पर दिये गये चरान्तर सारणी का प्रयोग करना सीखेंगे। यह सारणी मात्र उत्तरी गोलार्द्ध के लिये प्रयोग में लाई जा सकती है। इसमें दिये गये संशोधन मिनटों में हैं।

26.01.2007 की सुबह 5:30 सूर्य की क्रान्ति (दक्षिण) 18°S48' है। इसे हम गणना की सुविधा के लिये 19°S मान लेते हैं। सारणी में एक बात और ध्यान देने वाली है। सारणी में देखने से पता चलेगा कि यदि सूर्य की क्रान्ति दक्षिण है तो 29° अक्षांश तक के स्थान के लिये (उत्तरी गोलार्द्ध में) ऋण चिह्न (–) द्वारा संशोधन बताया गया है। किन्तु यदि अक्षांश उत्तरी गोलार्ध में 30° या अधिक हो तो संशोधन के लिये धन (+) चिह्न का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि 29° या उससे कम अक्षांश वाले क्षेत्र में यदि सूर्य की क्रान्ति दक्षिण हो तो वहां सूर्योदय पहले होगा विपरीततः यदि क्रान्ति उत्तर हो तो सूर्योदय विलम्ब से होगा। यही सिद्धान्त 30° या उससे अधिक अक्षांश वाले क्षेत्र में लगाने से पता चलता है कि यदि क्रान्ति उत्तर हो तो वहां सूर्योदय विलम्ब से होगा तथा क्रान्ति यदि दक्षिण हो तो सूर्योदय पहले

होगा। इन सूचनाओं से लैस होकर आइए अब उदाहरण की ओर चलते हैं। जबलपुर का अक्षांश है 23°N10' जो 23° उत्तर तथा 24° उत्तर अक्षांश के बीच में पड़ता है। अगर सूर्य की क्रान्ति 19° दक्षिण हो तो 23° तथा 24° अक्षांश के लिये संशोधन क्रमशः 10 मिनट और 8 मिनट हैं। अर्थात् 1° या 60' बढ़ोत्तरी होने से संशोधन में 2 मिनट या 120 सैकेण्ड की कमी हुई। अतः 10' की बढ़ोत्तरी के कारण संशोधन में 20 सेकेण्ड की कमी आयेगी। अर्थात् संशोधन (10 मिनट – 20 सेकेण्ड) = 9 मिनट 40 सेकेण्ड का हुआ। चरण–1 पर गणना किये गये सूर्योदय काल, अर्थात् 07:05:56 में हम यह संशोधन करेंगे। अर्थात् सही सूर्योदय का समय हुआ 07:05:56 – 00:09:40 = 06:56:16। इस प्रकार विश्वविजय पंचांग की सहागता से हम किसी भी स्थान के लिये, किसी भी तिथि का, सूर्योदय का समय ज्ञात कर सकते हैं। सूर्योदय का समय ज्ञात हो तो इष्टकाल आसानी से निकल आता है। इसे हम एक उदाहरण के द्वारा समझेंगे।

उदाहरण :- जबलपुर में दिनांक 26.01.2007 को सायं 5:58:00 पर जन्म हुए जातक का इष्ट काल निकालनाः-

क्रम संख्या	जबलपुर के आंकड़े	समय घन्टा मि से.
1	जन्म का समय (26.1.2007)	17: 58: 00
2	सूर्योदय (26.1.2007)	06: 56: 16
3	इष्टकाल (1-2)	11: 01: 44

इष्ट काल हुआ 11 घन्टे 09 मिनट 44 सेकेण्ड। इसे हम घटी, पल तथा विपल में बदलेंगे।

			घटी	पल	विपल
44 सेकेण्ड =	44×2.5 = 110 विपल	=	00	01	50
01 मिनट =	01 ×2.5 = 2.5 पल	=	00	02	30
11 घन्टे =	11× 2.5 = 27.50 घटी	=	27	30	00
	इष्टकाल		27	34	20

अतः जातक का इष्टकाल 27 घटी 34 पल 20 विपल हुआ।

दिये गये उदाहरण के लिये लग्न की पारम्परिक विधि से गणना करनाः-

पारम्परिक विधि से कुण्डली बनाने के क्रम में यह पड़ाव बड़ा मनोहारी है। यह हमें हर प्रकार से चमत्कृत करने में समर्थ है क्योंकि आज से कई हज़ार वर्ष पूर्व के

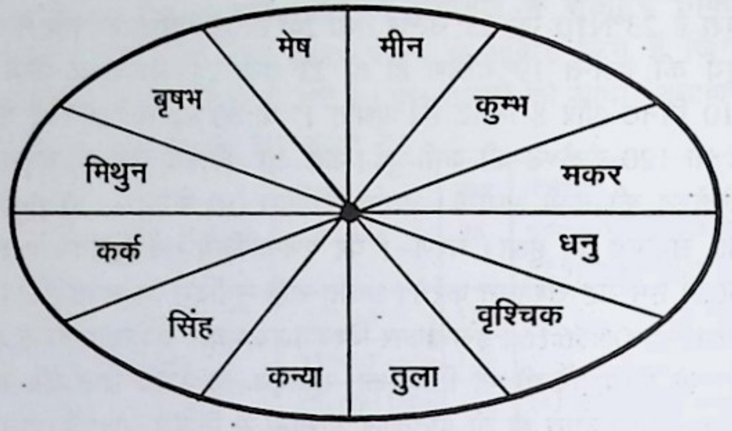

महर्षियों ने, बिना किसी अत्याधुनिक उपकरणों या दूरबीनों की सहायता से, प्रत्येक राशि के पूर्व दिशा में उदित रहने का काल सही–सही निकाल लिया था। आइये, इसे थोड़ा समझते हैं। हमें यह तो पता है कि भचक्र को 30 डिग्री के बारह बराबर खण्डों में बांटा गया है जिन्हें हम राशियों के नाम से जानते हैं। ये राशियां मेष से प्रारंभ होकर मीन में शेष होती हैं। यदि बारह राशियों की लम्बाइयाँ बराबर–बराबर हैं और सभी बारहों राशियां 24 घन्टों में उदित हो जाती हैं तो सामान्य गणित के नियमानुसार प्रत्येक राशि ठीक 2 घन्टों में पूरी तरह उदित हो जानी चाहिये लेकिन वास्तविक स्थिति ठीक ऐसी नहीं है। दरअसल कोई भी राशि पूरे दो घन्टे में उदित नहीं होती। इसका कारण पिछले पृष्ठ पर दिये गये चित्र को देखने से स्पष्ट होगा।

सबसे पहले तो चित्र देखकर यह समझना चाहिये कि भचक्र पूरी तौर पर वृत नहीं वरन् अण्डाकार है इसलिये यदि इसके बीचो–बीच से 30डिग्री के 12 टुकड़े बनाये जायें तो परिधि पर सब टुकड़े बराबर नहीं मिलेंगे। जहां गोलाकार है, वहां के टुकड़े छोटे (जैसे मीन, मेष, कन्या और तुला) और जहां यह अण्डाकार है, (जैसे मिथुन, कर्क, धनु तथा मकर) वहां के टुकड़े बड़े होंगे। दूसरी बात यह भी है कि भचक्र और भूमध्य रेखा एक दूसरे के समानान्तर नहीं हैं बल्कि इनके बीच 23° 27' का कोण बनता है। इस झुकाव के कारण ही पृथ्वी पर ऋतु परिवर्तन तथा विभिन्न ऋतुओं, दिन और रात के समय में परिवर्तन आते हैं। इसी झुकाव के कारण पृथ्वी पर कहीं से भी देखने से राशियों के पूरब में उगने का समय अलग–अलग प्रतीत होता है। चूकि राशियों के उगने के समय का मान अलग–अलग होता है अतः किसी भी राशि के पूरब के क्षितिज पर पूरी तरह से उगने के समय को राशिमान कहते हैं। राशिमान की इकाई 'असु' या 'प्राण' है। एक 'असु' या 'प्राण' दस विपल के बराबर होते हैं अतः छः 'प्राण' या 'असु' एक पल के बराबर हुए। यदि हम नारद महापुराण को खंगालें तो हमें यह जान कर सहर्ष आश्चर्य होगा कि अलग–अलग

स्थानों पर राशियों के उगने के समय में भिन्नता का कितना स्पष्ट और सही विवरण वहां उपलब्ध है।

यही नहीं, पुरातन ज्योतिष साहित्य में भूमध्य रेखा पर राशिमान की इतनी सही गणना कैसे की गयी है, यह भी एक रोचक शोध का विषय हो सकता है। धन्य हैं वे लोग ! धन्य है उनका खगोलीय गणित का ज्ञान ! भूमध्य रेखा पर राशियों के उदित होने के काल को "लंकोदय" अर्थात् लंका में उदित होने का समय कहा गया है। **एक प्राचीन विचारधारा यह भी है कि वर्तमान श्रीलंका वह नहीं जिसको आधार मान कर पूर्व काल में गणनाएँ की गयी थीं। लंका का विस्तार पहले भूमध्य रेखा तक था। इसलिये राशियों के भूमध्य रेखा पर उगने के समय को लंकोदय तथा उस लंका को निरक्ष (निर+अक्ष - जिसका कोई अक्षांश न हो) देश कहा गया। यह लंका अब समुद्र के गर्भ में समा गयी है। यह संभव भी है। सन् 2005 में दिसम्बर माह में आये समुद्री तूफान सूनामी में भारत का सबसे दक्षिणी हिस्सा, जिसे इन्दिरा गांधी पाइन्ट के नाम से जाना जाता था, समुद्र में डूब गया।** प्राचीन साहित्य में उपलब्ध लंकोदय का मान हम नीचे सारणी में दे रहे हैं।

क्रम संख्या	राशियां				लंकोदय	
					असु या प्राण	विपल
1.	मीन(-)	तुला(+)	कन्या (+)	मेष(-)	1674	279
2.	कुम्भ (-)	वृश्चिक (+)	सिंह (+)	वृषभ (-)	1795	299
3.	मकर (-)	धनु (+)	कर्क (+)	मिथुन (-)	1931	322

ऊपर की सारणी में राशियों को एक बार ध्यान से देखें। बीच के दो कालमों में (कर्क से लेकर धनु तक) धन (+) तथा पहले और अन्तिम कालमों में, अर्थात् मकर से लेकर मिथुन तक ऋण (–) चिह्न का प्रयोग किया गया है। इसका क्या अर्थ ? इसका प्रयोजन अनुभवों पर आधारित यह तथ्य है कि उत्तरी गोलार्द्ध में भूमध्य रेखा से उत्तरी ध्रुव की तरफ बढ़ने पर कर्क से धनु तक के पूरब के क्षितिज पर उगने के काल (राशिमान) में वृद्धि होती जाती है। इसी प्रकार जब हम भूमध्य रेखा से उत्तरी ध्रुव की ओर बढ़ते हैं तो मकर से मिथुन तक की राशियों के उगने का काल कम होता जाता है।

यदि उपर्युक्त सारणी का एक बार और निरीक्षण करें तो स्पष्ट होगा कि मीन तथा मेष राशियां एकदम पास–पास की राशियाँ हैं। इनका लंकोदय कन्या तथा तुला के बराबर है जो एकदम पास–पास की राशियाँ हैं तथा जो मीन/मेष जोड़ी का प्रतिबिम्ब प्रतीत होती हैं, एकदम आमने–सामने। ठीक ऐसा ही कुछ मिथुन/कर्क

तथा धनु/ मकर की जोड़ियों के बारे में दिखता है। अर्थात् दोनों जोड़ियों के लंकोदय बराबर हैं तथा ये राशियां भी साथ–साथ वाली राशियाँ हैं।

इस प्रकार कुछ स्पष्टता आने लगी है कि भूमध्य रेखा पर अगर हम मेष से प्रारंभ करें तो मेष से अधिक वृषभ तथा वृषभ से अधिक मिथुन का राशिमान है। मिथुन पार करते ही सूर्य दक्षिणायन हो जाते हैं यद्यपि तब भी सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध में ही रहते हैं। अब आगे चलें तो पता लगेगा कि मिथुन तथा कर्क के राशिमान बराबर हैं तथा कर्क से सिंह और सिंह से कन्या के राशिमान कम होते जाते हैं। सिंह तथा कन्या के राशिमान क्रमशः कुंभ तथा मीन के राशिमान के बराबर हैं। कन्या से निकलने के बाद सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में चले जाते हैं जहां यही कहानी फिर से दुहरायी जाती है। इस प्रकार भूमध्य रेखा पर तीन प्रकार के ही राशिमान संभव हैं जिन्हें हम 'लंकोदय' कहते हैं। इसका कारण हम जानते हैं कि भचक्र को भूमध्य रेखा से देखा जाये तो राशिमान में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हो रहे किन्तु जैसे जैसे हम ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं, यह परिवर्तन अधिक होते जाते हैं और राशिमान में बहुत अधिक अन्तर दिखने लगता है।

चरखण्ड – 'लंकोदय' को आधार मान कर के किसी स्थान विशेष का राशिमान निकालने के लिये जो संशोधन किये जाते हैं उन्हें 'चरखण्ड' कहा जाता है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, चरखण्ड के मूल में "चर" तथा "खण्ड" दो शब्द हैं – अर्थात् चलायमान खण्ड – जिनके आधार पर लंकोदय में संशोधन करके किसी भी स्थान विशेष का राशिमान निकाला जा सके। भूमध्य रेखा पर चरखण्ड शून्य होता है क्योंकि वहां का राशिमान लंकोदय के बराबर होता है। याद रहे, हम पिछली सारिणी में धन (+) तथा ऋण (–) के चिह्नों से उत्तरी गोलार्ध में किये जाने वाले संशोधन की चर्चा कर चुके हैं। कर्क से धनु तक लंकोदय में चरखण्ड जोड़ना है तथा मकर से मिथुन तक चरखण्ड घटाना है। लगे हाथों स्थान विशेष के लिये चरखण्ड निकालना हम सीखते हैं। इसके लिये हम नारद महापुराण की ओर एक बार फिर चलते हैं जहां चरखण्ड निकालने की विधि बताई गयी है। अगर सुधी पाठक थोड़ा ध्यान देंगे तो उन्हें इस विधि की मौलिकता पर मुग्ध हुए बिना रहा नहीं जायेगा। सबसे पहले हम एक शंकु लेंगे।

शंकु – संस्कृत में शंकु शब्द के कई अर्थ हैं किन्तु हमारे मतलब का अर्थ है बेलनाकार सूखी हुई लकड़ी या पेड़ का तना या फिर ऐसी ही कोई वस्तु। दरअसल नारद महापुराण में कहा गया है कि शंकु ठोस तथा टेढ़ी न होने वाली लकड़ी की 2 अंगुल व्यास तथा 12 अंगुल लम्बाई की बेलनाकार छड़ी होनी चाहिये। एक अंगुल अर्थात् सामान्य व्यक्ति के तर्जनी का व्यास, पुरातन काल से सर्वमान्य माप है जो

आज की गणना में प्रायः 20 मिलीमीटर या पौने इन्च के बराबर होना चाहिये। इस शंकु को सपाट पत्थर या समतल बनाई भूमि के बीच में गाड़ कर, शंकु को केंद्र मानते हुए, 12 अंगुल त्रिज्या का एक वृत बनाना चाहिये। इसे नीचे चित्र में दिखाया गया है। इस शंकु की छाया तथा वृत की सहायता से हमें कई सूचनाएँ मिलती हैं। सबसे पहले, थोड़ा विषयान्तर करते हुए, इस छोटे से आयोजन का हम एक उत्तम प्रयोग समझेंगे। हम जानते हैं कि किसी भी वस्तु की छाया सुबह और शाम सबसे लम्बी होती है। दिन चढ़ने के क्रम में छाया छोटी होती जाती है। सूर्य भगवान जब सर पर होते हैं तो यह समय स्थानीय मध्याह्न का होता है। इस समय छाया सबसे छोटी होती है। यह छाया उत्तर–दक्षिण दिशा को भी बताती है। आगे देखिये, सुबह और शाम एक–एक बार ऐसा समय अवश्य आता है जब शंकु की छाया की लम्बाई ठीक शंकु के बराबर होती है। इसका पता हमें तब चलता है जब छाया की लम्बाई शंकु के चारों ओर खींचे गये वृत को छू रही होती है। सुबह और शाम की इन परिस्थितियों को हमने नीचे दिये गये चित्र में 'अ' और 'ब' से दिखाया है। अब 'अ' तथा 'ब' से एक एक चाप काटिये जो एक दूसरे को दो स्थानों , 'क' तथा 'ख' पर काटें। हम पायेंगे कि 'क' तथा 'ख' को जोड़ने वाली सरल रेखा शंकु की जड़ को भी काटती है। यह रेखा यदि दोनों ओर आगे बढ़ा दी जाये तो यह वृत को उ तथा 'द' पर छूएगी। 'उ''द' रेखा दरअसल उस स्थान विशेष पर उत्तर दक्षिण दिशा बताती है। यही रेखा उस स्थान का यामोत्तर (मेरिडियन) भी है। यदि हम 'उ' तथा 'द' को केन्द्र मानकर बड़े चाप काटें तथा इनके कटान बिन्दुओं 'ग' तथा 'घ' को जोड़ती हुई सरल रेखा खींचें तो यह शंकु को काटेगी। यह रेखा पूरब और पश्चिम दिशा बताती हैं। शंकु की छाया जब उत्तर दक्षिण रेखा पर पड़ रही होती है तब सूर्य एकदम सर पर होते हैं। जैसा हम पहले ही जान चुके हैं, यह काल स्थानीय मध्याह्न

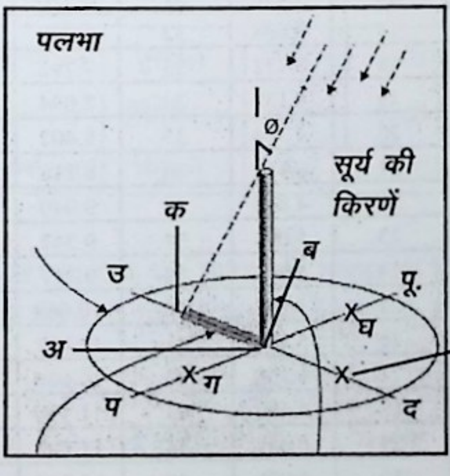

का है। मध्याह्न की छाया की लम्बाई का ही सुन्दर उपयोग चरखण्ड निकालने में किया जाता है। साल में दो दिन ऐसे आते हैं जब दिन और रात बराबर होते हैं। इन्हें क्रमशः सायन पद्धति में मेष तथा तुला संक्राति के नाम से जानते हैं। इनकी तारीखें भी प्रत्येक वर्ष क्रमश' 23 मार्च तथा 22 सितम्बर को होती हैं। इस दिन मध्याह्न की शंकु छाया का एक विशेष महत्त्व है। इसे हम उस स्थान विशेष की पलभा कहते है।

पलभाः पलभा का शब्दार्थ है 'पल' में छाया की माप। अर्थात् उन विशेष दिनों में ठीक मध्याह्न के समय छाया की लम्बाई जितने अंगुल की होती है, उस स्थान विशेष की पलभा ठीक उतने ही पलों में मानी जाती है। दूरी और समय का इतना सटीक समन्वय उस काल में कैसे किया गया था, यह बात् निश्चय ही आश्चर्य चकित करने वाली है। प्रकृति के कुछ चमत्कारिक नियमों में एक यह भी है कि संक्रान्ति के दिनों मध्याह्न के समय पड़ने वाली सूर्य की किरणें उर्ध्व रेखा से वही कोण (Ø)बनाती हैं जो उस स्थान विशेष का अक्षांश है। यह बात पिछले पृष्ठ पर दिये गये चित्र से स्पष्ट होगी। यदि किसी स्थान का अक्षांश Ø हो तो संक्रांति के मध्याह्न में शंकु की छाया = शंकु लम्बाई x tanØ होगी। हम जानते हैं कि शंकु की लम्बाई 12 अंगुल की है। अतः किसी भी स्थान पर पलभा का पलों में मान = 12 tanØ जहां Ø उस स्थान का अक्षांश है।

सारणी-क

अक्षांश डिग्री में	'पलभा' 'पल' में	अक्षांश डिग्री में	'पलभा' 'पल' में	अक्षांश डिग्री में	'पलभा' 'पल' में	अक्षांश डिग्री में	'पलभा' 'पल' में
1	0.209	16	3.440	31	7.210	46	12.426
2	0.419	17	3.668	32	7.498	47	12.868
3	0.629	18	3.732	33	7.792	48	13.327
4	0.839	19	4.132	34	8.094	49	13.804
5	1.050	20	4.334	35	8.402	50	14.301
6	1.261	21	4.439	36	8.718	51	14.819
7	1.473	22	4.848	37	9.040	52	15.329
8	1.686	23	5.094	38	9.342	53	15.924
9	1.900	24	5.342	39	9.717	54	16.517
10	2.115	25	5.595	40	10.069	55	17.138
11	2.332	26	5.852	41	10.431	56	17.790
12	2.550	27	6.100	42	10.669	57	18.478
13	2.770	28	6.480	43	11.190	58	19.204
14	2.991	29	6.652	44	11.590	59	19.971
15	3.215	30	6.928	45	12.000	60	20.785

पाठकों की सुविधा के लिये हमने विभिन्न अंक्षाशों के लिए पलभा की सारणी–क में दी है। यदि किसी स्थान की पलभा ज्ञात करनी हो तो उस स्थान का अक्षांश ज्ञात होने पर पलभा सीधे बताई जा सकती है। जिन स्थानों का अक्षांश कम है, वहां की पलमा तो सारणी से त्रैराशिक विधि से निकाली जा सकती है परन्तु अधिक अंक्षाशों वाले स्थानों के लिये पलभा की गणितीय गणना करना ही श्रेयस्कर है।

पलभा और चरखण्डः यदि स्थान विशेष की पलभा ज्ञात हो जाये तो उसमें अलग–अलग राशियों के लिये नियत गुणांक से गुणा करके प्रत्येक राशि का चरखण्ड पता चल सकता है। गुणांकों की सारणी नीचे दी गयी है।

क्रम संख्या	राशियां	गुणांक
1	(मेष, कन्या, तुला, मीन)	10
2	(वृषभ, सिंह, वृश्चिक, कुंभ)	8
3	(मिथुन, कर्क, धनु, मकर)	10/3

इस सारणी का प्रयोग हम जबलपुर के लिये चरखण्ड निकालने के लिये करेंगे जहां का अक्षांश 23°10' (उत्तर) है।

जबलपुर की पलभाः सबसे पहले पलभा की गणना करते हैं। पलभा = 12 x tanØ = 12 x tan 23°10' = 12 x 0.427912071 = 5.134944854 = 5.135 पल।

क्रम संख्या	राशियाँ				जबलपुर की पलभा	गुणांक	पलों में चरखण्ड
I	II				III	IV	V = III x IV
1.	मेष (–)	कन्या (+)	तुला(+)	मीन(–)	5.135	10	51.35=51
2.	वृषभ (–)	सिंह (+)	वृश्चिक (+)	कुम्भ (–)	5.135	8	41.08 = 41
3.	मिथुन (–)	कर्क (+)	धनु (+)	मकर (–)	5.135	10/3	17.12 = 17

जबलपुर का चरखण्डः अब चर खण्ड की गणना के लिये इसमें क्रमशः 10, 8 तथा 10/3 का गुणा करते हैं जिसे नीचे की सारणी में दिखाया गया है।

क्र.स.	राशियां	लंकोदय (पल में)	चरखण्ड (पल में)	राशिमान (पल में)	राशिमान (पल में)	कुल योग
(i)	(ii)	(iii)	(iv)	iii+iv = (v)	iii–iv = vi	v+vi = vii
1	मेष/ मीन	279	51		228	228
2	वृषभ/ कुंभ	299	41		258	258
3	मिथुन/ मकर	322	17		305	305
4	कर्क/ धनु	322	17	339		339
5	सिंह/वृश्चिक	299	41	340		340
6	कन्या/तुला	279	51	330		330
			कुल योग	1009	791	1800

जबलपुर का राशिमानः- हम पहले जान चुके हैं कि उत्तरी गोलार्द्ध में किसी स्थान विशेष पर राशिमान की गणना के लिये मकर से लेकर मिथुन तक छः राशियों के लिये लंकोदय में उस स्थान विशेष के चरखण्ड को जोड़ा जाता है तथा कर्क से लेकर धनु तक की शेष छः राशियों के लिये चरखण्ड को लंकोदय से घटाया जाता है। इन जानकारियों के आधार पर हम जबलपुर के लिये विभिन्न राशियों का राशिमान ज्ञात करते हैं जिसे नीचे दी गयी सारणी में दिखाया गया है।

इस प्रकार छः राशियों का योग 1800 पल हुआ तथा सभी बारह राशियों के राशिमानों का कुल योग 3600 पल या 60 घटी/दण्ड आया जो एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का काल है।

आइये 26 जनवरी, 2007 की शाम 17:58 बजे हम पंचांग के माध्यम से जबलपुर का लग्न निकालें। इसके लिये हम 2006–2007 का विश्वविजय पंचांग व्यवहार में लायेंगे। हम जानते हैं कि सूर्योदय के समय सूर्य का जो ग्रह स्पष्ट होता है, वही पूरब के क्षितिज पर उग रही राशि का रेखांश भी होता है। अतः सबसे पहले हमें 26.1.2007 के सूर्योदय समय का ग्रह स्पष्ट जानना होगा। हम पहले ज्ञात कर चुके हैं कि दिनांक 26.1.2007 को जबलपुर में सूर्योदय सुबह 6:56:16 बजे हुआ था। विश्व विजय पंचांग के पृष्ठ 77 का अवलोकन करें। वहां सवेरे 5:30 बजे की दो कुण्डलियां, जो क्रमशः 26.1.2007 (अष्टमी) तथा 02.02.2007 (पूर्णिमा) की हैं, सबसे नीचे दी गयी हैं। ये माघ माह के शुक्ल पक्ष की कुण्डलियां हैं। कुण्डलियों के नीचे सवेरे 5:30 बजे ग्रहों के निरयन भोगांश तथा दैनिक ग्रह चार (चाल) लिखे हुए हैं। वहा यह भी बताया गया है कि ग्रह उदित है या अस्त। उदित ग्रह के लिये 'उ' तथा अस्त ग्रह के लिए 'अ' लिखा हुआ है। इसी प्रकार वक्री ग्रह के लिये 'व' तथा

मार्गी ग्रह के लिये 'म' बताया गया है। दिनांक 26.1.2007 सवेरे 5:30 बजे का सूर्य का निरयन ग्रह स्पष्ट $9^s11°40'51"$है।

वहीं सूर्य का दैनिक चार (चाल) 60'59" सेकेण्ड बताया गया है। यह सब सूचनाएँ 26.1.2007 की सुबह 5:30 बजे की हैं। अतः हम पहले तो 26.1.2007 की सुबह 5:30 से 26.1.2007 की सुबह से लेकर सूर्योदय काल (6:56:16) तक के सूर्य चार (चाल) की गणना करेंगे। यह गणना (6:56:16-5:30) 1 घन्टा 26 मिनट 16 सेकेण्ड (1.438 घन्टे) के लिये होगी।

सूर्य की दैनिक 24 घन्टों में चार = 60' 59"

1.438 घन्टों में चार (चाल) = 1.438 x 60 ' 59"/24 =0° 3' 39"

इस प्रकार 26.1.2007 के सूर्योदय के समय का निरयन सूर्य स्पष्ट

$9^s11°40'51" + 03' 39" = 9^s 11° 44' 30"$ हुआ।

चरण 2: पहले चरण में हमने सूर्योदय काल में सूर्य का निरयन ग्रह स्पष्ट सीखा। अब इसे हमें सायन ग्रह स्पष्ट में बदलना है। याद रहे कि जहां फलित ज्योतिष पूर्णतः निरयन व्यवस्था पर निर्भर करती है वहीं खगोलीय गणना का आधार सायन है। अतः हम 26.1.2007 के चित्र पक्ष अयनांश का सूर्य के भोगांश में योग करेंगें तो हमें सूर्य का सायन भोगांश पता चलेगा। कृपया पंचांग के पृष्ठ 130 का अवलोकन करें। वहां 2007 का अयनांश 23°56'59" बताया गया है वहीं जनवरी माह की 23 तारीख की अयन गति 03" बताई गयी है। 26.1.2007 के निकटतम होने के कारण हम इसी तारीख़ का अयनांश मान लेते हैं। अतः 26.1.2007 का अयनांश हुआ 23°56'59" + 03" = 23°57'02" इसे हम सूर्य के निरयन भोगांश ($9^s11°44'30"$) में जोड़कर सूर्य का सायन भोगांश निकाल लेंगे। अतः 26.1.2007 के सूर्यादय काल का सायन भोगांश हुआ $9^s11°44'30" + 23°57'02" = 10^s05°41'32"$।

चरण 3: ऊपर की गयी गणना से स्पष्ट हुआ कि सूर्योदय काल में पूरबी क्षितिज पर कुंभ राशि थी तथा इसके 5°41'32" अंश उदित हो चुके थे। अतः कुंभ के (30°-5° 40' 32" = 24°18'28") उदित होना शेष थे। हमने राशिमान सारणी में देखा है कि जबलपुर में कुंभ का राशिमान 258 पल है। अर्थात् पूरे 30 डिग्री उदित होने के लिये कुंभ 258 पल का समय लेते हैं। अतः बचे हुए 24°18'28" (24.308°) उदित होने में लगा समय = 24.308 x 258/30 = 209 पल हुआ। अर्थात् सूर्योदय के 209 पल बाद कुंभ शेष हुआ। उसके 228 पलों के बाद मीन शेष हुई।

चरण 4: हमने पहले ही इष्टकाल (सूर्योदय से जन्म के समय तक का घटी पल में अन्तर) 27 घटी 34 पल 20 विपल निकाला है। इसे सुविधा के लिये पल में

बदलते है; 27 x 60 + 34 + 0.33 = 1654.33 या 1654 पल। अब राशिमान सारणी की सहायता से हम देखते हैं कि उस दिन सूर्योदय के बाद से 1654 पल तक पहुंचने पर कौन–कौन सी राशियां बीत चुकी होंगी तथा कौन सी राशि जन्म के समय मिलेगी ?

क्रम	राशि	राशिमान	भोगे जाने वाली राशिमान का कुल योग	1654 में शेष पल
I	II	III	IV	V
1	कुंभ	258	209	1445
2	मीन	228	437	1217
3	मेष	228	665	989
4	वृषभ	258	923	731
5	मिथुन	305	1228	426
6	कर्क	339	1567	87
7	सिंह	340	1907	

इसके लिये सबसे पहले इष्टकाल 1654 पल से भोगे जाने वाले कुंभ की राशिमान (209 पल) घटा कर अर्थात् 1445 कॉलम V में लिखेंगे। उसके बाद मीन आदि राशिंयों के राशिमान घटाते हुए हम कर्क भी पूरा भोग कर सिंह में प्रवेश करते हैं। अर्थात् इष्टकाल के समय कर्क शेष हो गये। सिंह के 1654-1567=87 पल भी निकल गये तथा सिंह के 340 में 253 पल शेष रह गये।

चरण 5: हम जानते हैं कि 340 पलों में सिंह पूरे 30 डिग्री उग जाते हैं अतः 87 पलों में सिंह 87 x 30/ 340 = 7.676471° = 7°40'35" उग चुके हैं। अतः इष्टकाल में सायन लग्न हुआ 4^{S}7°40'35" ।

चरण 6: इस सायन लग्न को निरयन लग्न में परिवर्तित करने के लिये पुनः अयनांश संशोधन करना होगा। अर्थात् 23°57'02" कम करने होंगे। इस प्रकार दिये गये जन्म समय, स्थान तथा तिथि के लिये निरयण लग्न स्पष्ट हुआ (4^{S}7°40'35" - 23°57'02") = 3^{S}13°53'33" यह लग्न आधुनिक तरीके से की गयी लग्न गणना (3^{S}14°01'53") के बहुत निकट है। लग्न स्पष्ट के बाद अन्तिम चरण में हम निरयन ग्रह स्पष्ट निकालना सीखेंगे।

चरण 7: नारद महापुराण में ग्रह स्पष्ट करने की जो विधि बताई गयी है वह सीधी नहीं है। कठिन होने के अतिरिक्त, दुर्भाग्यवश, इस विधि से प्राप्त ग्रह स्पष्ट

भी बहुत शुद्ध नहीं होते। अतः हम ऐसी विधि सीखेंगे जो पंचांग पर आधारित है और प्रायः सही परिणाम देती है।

सूर्यादि ग्रहों का भोगांशः जैसा कि हमने पंचांग के पृष्ठ 77 पर दी गयी अष्टमी तथा पूर्णिमा की कुण्डलियों के नीचे पाया है, वहां सवेरे 5:30 के ग्रह स्पष्ट के अतिरिक्त ग्रहों के दैनिक चार (चाल) भी लिखे हुए हैं। जैसे हम सूर्य का भोगांश 26.1.2007 के सूर्योदय तक निकाल चुके हैं, वैसे ही हम यह गणना इष्टकाल तक कर सकते हैं। हमने पहले देखा है कि 26.1.2007 के प्रातः 5:30 से 26.1.2007 की शाम 17:58 बजे के बीच समय का अन्तर हुआ 12 घंटा 28 मिनट (12.47 घन्टे)। अब अष्टमी को सूर्य का दैनिक चार 60'59" है। अतः 12.47 घन्टे में सूर्य चार हुआ = (12.47 x 60'59") / 24 = 0°31'41"

इस प्रकार सूर्य का निरयन भोगांश शाम के 17 बज कर 58 मिनटों पर हुआ, 9^{S}11°40'51" + 0°31'41" = 9^{S}12°12'32" । आधुनिक पद्धति से हमने इसे 9^{S}12°12'41" निकाला है। इसी प्रकार हम चन्द्रमा सहित प्रत्येक ग्रह का भोगांश सरलता से निकाल सकते हैं। लेकिन पंचांग के सहारे चन्द्रमा के भोगांश निकालने के दो अन्य सरल रास्ते भी हैं। पहला रास्ता प्रत्येक पृष्ठ पर दाहिने से दूसरे कालम (चन्द्र दर्शन) से है। इसमें बताया गया है कि चन्द्रमा किस राशि में कब प्रविष्ट हुए। आप पृष्ठ 77 पर देखेंगे कि 25.1.2007 को चन्द्रमा मेष में 08:42 बजे प्रविष्ट हुये। तब से लेकर 27.1.2007 की दोपहर 12:09 बजे तक चन्द्रमा मेष में ही रहे उसके बाद उनका बृषभ में प्रवेश हुआ। इस प्रकार 25.1.2007 की सुबह 08:42 से लेकर 27.1.2007 की दोपहर 12:09 बजे (51 घन्टे 27 मिनट या 3087 मिनट) तक चन्द्रमा मेष में रहे या इतना समय उन्हें मेष की 30° पार करने में लगा। जन्म का काल 26.1.2007 की शाम 17:58 बजे है अर्थात् चन्द्रमा के मेष राशि में प्रवेश करने के समय से जन्म काल का अन्तर हुआ 25.1.2007 की सुबह 8:42 से 26.1.12007 की शाम 19:58 बजे। यह समय हुआ 33 घन्टे 16 मिनट या 1996 मिनट।

चन्द्र संचार 3087 मिनटों में 30° हुआ है। अतः 1,996 मिनटों में चन्द्र संचार हुआ (1,996 x 30) / 3087 = 19°23'51" । अतः चन्द्रमा का भोगांश हुआ मेष में 19°23'51" = 0^{S}19°23'51"

एक दूसरा तरीका पंचांग में 204 से 207 पृष्ठों में फैली सारणी से है। 26.1. 2007 को चन्द्रमा भरिणी नक्षत्र के द्वितीय तथा तृतीय चरणों में क्रमशः 13:09 तथा 18:52 बजे गये। दिया गया समय इन दोनों के मध्य में आता है अतः चन्द्रमा मेष राशि के भरिणी नक्षत्र के द्वितीय चरण में हुए। 13:09 से इष्टकाल (17:58) का अन्तर 4 घन्टे 49 मिनट = 239 मिनटों का है। भरिणी के दूसरे चरण (3°20' =

200') का संचार करने में चन्द्रमा को 18:52 - 13:09 = 5:43 मिनट = 343 मिनट लगे। अब त्रैराशिक पद्धति से देखें कि 289 मिनटों में चन्द्र संचार हुआ (200' x 289)/ 343 = 168.51' = 2° 48' 31"। इस प्रकार चन्द्रमा का भोगांश हुआ $0^{s}13^{\circ}20'$ (अश्विनी) + 3°20' (भरिणी का पहला चरण) + 2°48'31" = $0^{s}19^{\circ}28'31''$ जो यद्यपि पहले निकाले गये भोगांश से 5' अधिक है फिर भी अधिक शुद्ध है। आधुनिक विधि से चन्द्रमा के भोगांश की गणना $0^{s}19^{\circ}27'46''$ की गयी है जो इस विधि से निकाले गये भोगांश के अधिक निकट है। इस विधि के दो स्पष्ट लाभ हैं। सबसे पहले इसमें चन्द्रमा के नक्षत्र तथा चरण का स्वतः ज्ञान हो जाता है। दूसरी बात कि यहां पर चन्द्र संचार की गणना के लिये बहुत कम समय का अन्तराल (दो चरणों के बीच संचारण का समय) देखा जाता है। अतः यहां गणना की शुद्धता अधिक होती है। इसी प्रकार हम अन्य ग्रहों का ग्रह स्पष्ट निकाल सकते हैं। इनके आधार पर बनी कुण्डली आगे दी गयी है।

अध्याय 14

आधुनिक पद्धति से कुण्डली बनाना

आधुनिक पद्धति से कुण्डली बनाने के लिए हमें दो स्रोतों की आवश्यकता होगी – पहली पुस्तक है लग्न सारणी या Table of Ascendants तथा दूसरा स्रोत है दिये गये वर्ष के लिये अंग्रेजी का पंचांग (Ephimeries)। वैसे तो पंचांग की भांति कई प्रकाशनों से ये पुस्तकें भी छपती होंगी लेकिन हमारे अनुभव से एन.सी. लाहिरी द्वारा सम्पादित पुस्तकें ठीक हैं और उदाहरण में हम उनका ही प्रयोग करेंगे।

इन पुस्तकों को ठीक से समझना होगा। दुर्भाग्य से ये पुस्तकें अब तक हिन्दी में उपलब्ध नहीं हैं फिर भी इनमें सरल अंग्रेजी का ही प्रयोग हुआ है जिसे अंग्रेजी की सामान्य जानकारी रखने वाले पाठक भी आसानी से समझ सकते हैं।

आइये, सबसे पहले यह समझें कि इन पुस्तकों में हमारे काम की कौन–कौन सी जानकारियाँ उपलब्ध हैं। सबसे पहले लग्न सारणी या Table of Ascendants देखते हैं। इस पुस्तक में उत्तरी गोलार्ध स्थित विभिन्न स्थानों के अक्षांशों (Latitudes) पर विभिन्न साम्पातिक काल (sidereal time) के अनुसार सायन लग्न तथा दशम स्पष्ट की सारणियां दी गयीं हैं। अतः इन सारणियों का प्रयोग करके हम सायन लग्न निकालते हैं जिसे संशोधित करके निरायन लग्न निकाला जाता है। लेकिन सायन लग्न निकालने के लिये हमें दिये गये समय का साम्पातिक काल (siderial time) जानना आवश्यक है। इसके लिये भी हमें लग्न सारणी से ही सहायता मिलती है। थोड़े से संशोधनों के बाद हम इन्हीं सारणियों की सहायता से विश्व के किसी भी स्थान के लिये लग्न स्पष्ट की गणना कर सकते हैं। एक बात और ध्यान रखने की है कि साम्पातिक काल निकालने के लिये स्थान विशेष के मानक समय को संशोधित करके स्थानीय समय जानना पड़ता है।

हम एक उदाहरण से अपनी बात प्रारंभ करते हैं। लग्न स्पष्ट करने के लिये हम सबसे पहले आवश्यक और उपलब्ध जानकारियों को सारणीबद्ध कर लेते हैं। पहला उदाहरण हम वही रखेंगे जिसे हमने पारम्परिक कुण्डली बनाने के लिये लिया था अर्थात् जबलपुर में 26.1.2007 को 17:58 बजे जन्मे जातक के लिये लग्न स्पष्ट निकालना।

चरण -1 : सबसे पहले हम निम्नांकित सूचनाओं की सारणी बनाते हैं।

	आवश्यक सूचना	सूचना का स्रोत
1	जन्म का स्थान	ये सूचनाएँ कुण्डली बनवाने वाले से प्राप्त होंगी।
2	जन्म की तिथि/ तारीख	
3	जन्म का मानक समय	
4	दिये गये स्थान का अक्षांश	ये सूचनाएँ लग्न सारणी तथा एफिमेरिज दोनों के अन्त में उपलब्ध हैं।
5	दिये गये स्थान का देशान्तर	
6	दिये गये मानक समय के लिये स्थानीय समय में संशोधन	
7	दिये गये स्थान के लिये साम्पातिक काल में संशोधन	
8	दिये गये वर्ष के लिये साम्पातिक काल में संशोधन	ये सूचनाएँ सिर्फ लग्न सारणी में उपलब्ध हैं।
9	दिये गये वर्ष के लिये अयनांश संशोधन	

उपर्युक्त सूचनाएँ उपलब्ध होने के बाद हम किसी भी स्थान का लग्न सरलता से निकाल सकते हैं। आइये, दिये गये उदाहरण को समझने के लिये हम पहला चरण, अर्थात् सूचनाओं की सारणी बनाने का काम, पूरा करें।

1	जन्म का स्थान	जबलपुर
2	जन्म की तिथि/ तारीख	26.1.2007
3	जन्म का मानक समय	17:58
4	जबलपुर का अक्षांश (Latitude)	23°08' उत्तर
5	जबलपुर का देशान्तर (Longitude)	79°57' पूर्व
6	जबलपुर के मानक समय के लिये स्थानीय समय संशोधन	(-) 10मि. 12से.

7	जबलपुर के लिए भारतीय साम्पातिक काल में संशोधन	(+)0मि. 02से.
8	सन् 2007 के लिये साम्पातिक काल में संशोधन	(+)0मि. 12से.
9	सन् 2006 के लिये अयनांश संशोधन	(-)58मि.

चरण - 2: अगर आपने सूचनाओं की सारणी ठीक–ठीक बना ली तो जानिये कि आधा किला फतह हो गया। अब रही बात आगे चलने की – तो जैसा हम पहले बता चुके हैं कि लग्न स्पष्ट करने के मार्ग में आखिरी पड़ाव है साम्पातिक काल का ज्ञान। साम्पातिक काल स्थानीय मध्याह्न पर आधारित है। हमें साम्पातिक काल तथा स्थानीय समय के बीच का रिश्ता समझना होगा। साम्पातिक घड़ी मध्याह्न (स्थानीय 12 बजे दोपहर) को आधार मान कर समय बताती है जबकि मानक समय या रेलवे घड़ी अर्द्धरात्रोत्तर स्टैण्डर्ड टाइम बताती है।

पहले हम यह समंझ लें कि किसी स्थान विशेष का किसी भी समय में साम्पातिक काल है क्या ? हम जानते हैं कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा रही है। किसी निश्चित तारे के सापेक्ष में पृथ्वी द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करने का समय साम्पातिक वर्ष कहा जायेगा। सामान्यतः इस गणना के लिये मेष के प्रथम कटान बिन्दु को मानक माना गया है। हम पहले जान चुके हैं कि साम्पातिक काल की गणना स्थानीय मध्याह्न से होती है अतः यदि किसी स्थान पर साम्पातिक काल $3^{घं}20^{मि}35^{से}$ बताया जाये तो जानना चाहिये कि उस स्थान विशेष के ऊपर से मेष का प्रथम कटान बिन्दु स्थानीय मध्याह्न के $3^{घं}20^{मि}35^{से}$ बाद गुज़रा। हमें तो दिये गये स्थानीय समय के लिये साम्पातिक समय निकालना है अतः यदि किसी तारीख़ को दिया गया स्थानीय समय मध्याह्न से 2 घन्टे पहले (पूर्वाह्न) हो तो लग्न सारणी में उस तारीख़ के बताये गये साम्पातिक काल (जो स्थानीय मध्याह्न के समय से मेष के प्रथम कटान बिन्दु की दूरी बताता है) में 2 घन्टे कम हो जायेंगे। इसी प्रकार यदि दिया गया स्थानीय समय दोपहर 12 बजे के 2 घन्टे बाद का हो तो लग्न सारणी में बताये गये साम्पातिक काल में 2 घन्टे जोड़ कर उस समय का साम्पातिक काल ज्ञात होगा। इसलिये सबसे आवश्यक यह जानना है कि दिया गया स्थानीय समय मध्याह्न से पहले का है या बाद का। इसे हम चरण '3' में सीखेंगे।

चरण 3: जबलपुर के लिये दिया गया मानक समय (क्रम संख्या 3)		घ. मि. से. 17 58 00
जबलपुर के लिये स्थानीय समय संशोधन (-) (क्रम संख्या 6)		00 10 12
अर्थात् स्थानीय समय हुआ		17 47 48

यह समय मध्याह्न के बाद का है। मध्याह्न से स्थानीय समय का अन्तर जानना आवश्यक है। यह अन्तर हमने नीचे निकाला है। इसे समयान्तर कहते हैं।

जबलपुर के लिये स्थानीय समय		17 47 48
इसमें से मध्याह्न् का समय घटाना है	(-)	12 00 00
समयान्तर (क)		05 47 48

यदि यह स्थानीय समय मध्याह्न (दोपहर) के पहले का होता (मान लीजिये कि जन्म का मानक समय दोपहर 11 बजे का होता) तो स्थानीय समय तथा समयान्तर जानने के लिये हम निम्नांकित गणना करते।

		घ मि से
जन्म का मानक समय		11 00 00
जबलपुर के लिये स्थानीय समय संशोधन	(–)	00 10 12
अर्थात् स्थनीय समय हुआ		10 49 48

तब समयान्तर जानने के लिए हम दोपहर 12:00:00 से यह समय घटा देते और कहते कि दोपहर बारह बजने में इतनी देरी है। इसे हमने नीचे निकाला है।

		12 00 00
	(–)	10 49 48
समयान्तर (ख)		01 10 12

हमारे उदाहरण में 'क' की आवश्यकता है अतः कहानी वहीं से आगे चलाते हैं। एक बात हमेशा ध्यान रखने की है कि हम सारी गणना साम्पातिक समय में करेंगे – इसलिये जो स्थानीय मानक समय का समयान्तर 'क' पर निकाला गया है, उसे साम्पातिक घड़ी के अनुरूप बनाना होगा। पहले स्थानीय तथा साम्पातिक घड़ी का सम्बन्ध समझना अच्छा होगा। साम्पातिक दिन किसी स्थिर तारे के सापेक्ष में निकाला जाता है जबकि स्थानीय मानक समय (जिसे हम रेलवे की घड़ी में संशोधन करके निकालते हैं) का आधार वर्ष भर के समय का औसत होता है। एक बात हम और भी जानते हैं कि पृथ्वी 24 घन्टों में अपनी धुरी पर एक चक्कर पूरा

कर लेती है परन्तु इतनी ही देर में वह सूर्य की परिक्रमा वाले पथ पर प्रायः 1 डिग्री आगे खिसक जाती है। अतः किसी निश्चित तारे के सापेक्ष में उसे पिछली वाली स्थिति में आने के लिए 1 डिग्री अधिक चक्कर लगाना पड़ता है (इस पूरे चक्कर का समय ही साम्पातिक काल कहा जाता है)। इस 1 डिग्री की दूरी तय करने में प्राय 4 मिनट (3 मिनट 57 सेकेण्ड) अधिक समय लगता है। इसका अर्थ यह हुआ कि 24 घन्टे के दिन–रात में प्रायः 4 मिनट या प्रत्येक घन्टे समय के अन्तर के लिये 4x60/24 = 10 सेकैण्ड का संशोधन करना होगा। इस संशोधन की सरल गणना लाहिरी की लग्न सारणी की सारणी संख्या IV में उपलब्ध है।

चरण - 4: अब 'क', जो रेलवे की घड़ी के अनुसार है, को साम्पातिक घड़ी के अनुरूप बनाने के लिये हम निम्नांकित कार्य करेंगे–

		घ	मि	सै
समयान्तर (क)=		05:	47:	48
सारणी 4 में 5 घन्टों के लिए संशोधन	+	00:	00:	49
सारणी 4 में 48 मिनटों के लिए संशोधन	+	00:	00:	08
साम्पातिक काल के लिए कुल संशोधित समयान्तर		05	48	45

चरण 5: अब हम लग्न सारणी के टेबिल 1 की सहायता से दिये गये स्थान के लिये, दी गयी तारीख को, स्थानीय बारह बजे मध्याह्न का साम्पातिक काल ज्ञात करेंगे। पहले टेबिल 1 समझते हैं। टेबिल 1 को साम्पातिक काल का ऐसा ढीला–ढाला लबादा मान सकते हैं जिसे थोड़ी सी रद्दोबदल या काट–छांट करके किसी भी स्थान तथा समय के लिये बनाया जा सकता है। टेबिल 1 में सन 1900 के लिये भारतीय मानक रेखा (82°E30') पर दोपहर के स्थानीय बारह बजे के लिये विभिन्न तारीखों के लिये साम्पातिक काल बताये गये हैं। इन्हें ही दिये गये वर्ष तथा स्थान के लिये संशोधित करना होगा।

उदाहरण की तारीख है 26.1.2007 तथा स्थान है जबलपुर ।

			घ	मि	सै
(i)	टेबिल 1 में देखिये, 26.1.1900 को 82°E30' पर स्थानीय दोपहर 12 बजे का साम्पातिक काल		20	20	22
(ii)	सन् 2007 के लिये संशोधन (देखें डाटा बैंक क्रम संख्या 8)	(+)		00	12
	अर्थात् 26.1.2007 की दोपहर (स्थानीय 12:00 बजे) 82°E30' पर का साम्पातिक काल हुआ।		20	20	34

(iii) जबलपुर के लिये साम्पातिक काल में संशोधन (देखें डाटा बैंक क्रम संख्या 7)	(+)	00	00	02
अर्थात् दोपहर 12:00 बजे 26.1.2007 को जबलपुर साम्पातिक काल हुआ जिसे हम 'द' कहेंगे।		20	20	36

चरण 6: हमने पहले ही देखा है कि अगर स्थानीय समय के अनुसार दोपहर के 12 बजे हों तो साम्पातिक काल 'द' होगा – लेकिन यदि चरण 4 की ओर एक बार फिर चलें तो पायेंगे कि समय अन्तराल है 'स' या जबलपुर में 5:48:45 घन्टे पहले ही अपराह्न हो चुका था – यानि जब वहां 12 बजे थे तब तो साम्पातिक काल 'द' था, अब इस घटना को बीते 5:48:45 घन्टे हो चुके तो साम्पातिक काल भी इतना ही आगे हो गया होगा। अर्थात् जन्म की तारीख को जन्म के समय जबलपुर का साम्पातिक काल होगा 'स' + 'द'।

		घ	मि	सै
		05:	48:	45
	(+)	20:	20:	36
अतः शुद्ध साम्पातिक काल हुआ	(+)	26:	09:	21
इसमें 24 घन्टे कम करें	(-)	24	00	00
		02	09	21 'प'

यह याद रखने की बात है कि यदि समयान्तर (पृष्ठ 124 के अनुसार) 'ख' होता तब हम समझते कि मध्याह्न होने में 'ख' बाकी है। 'ख' में भी साम्पातिक काल के लिये तब हम चरण – 4 के अनुसार संशोधन करते। लेकिन 'द' तो तब होता जब दोपहर के 12 बजे होते। पर अभी मध्याह्न होने में 'ख' बाकी है तो सही साम्पातिक समय पाने के लिये 'द' से हम संशोधित 'ख' घटा देते और शुद्ध साम्पातिक काल प्राप्त हो जाता।

चरण 7: शुद्ध साम्पातिक काल 'प' (2 घन्टे 09 मिनट 21 सेकेण्ड) ज्ञात करने के बाद हम एक बार फिर लग्न सारणी की सहायता लेंगे। जबलपुर का अक्षांश 23°09' उत्तर है। इससे सबसे करीब अक्षांश सारणी में पृष्ठ 37 पर उपलब्ध है। वहां जिन शहरों के नाम लिखे हैं, वहां अहमदाबाद तथा उज्जैन के अतिरिक्त जबलपुर भी है। वहां देखते हैं साम्पातिक काल 2:09:21 के पास किस समय के लिये लग्न बताया गया है ? उस सारणी से हमने निम्नाकित सूचनाएँ ली हैं–

साम्पातिक काल	सायन लग्न
$2^{\text{घ}}12^{\text{मि}}00^{\text{से}}$	$3^{S}15°45'$ (i)
$2^{\text{घ}}08^{\text{मि}}00^{\text{से}}$	$3^{S}14°41'$ (ii)
अन्तर $4^{\text{मि}}$	53'

एक बात और देखते हैं कि निकाला गया साम्पातिक काल 'प' (2घ10मि26से) 2घ08मि00से से कितना आगे है ? (02:09:21- 02:08:00) = 0घ:01मि:21से। इससे पहले हमने देखा कि साम्पातिक काल में 4 मिनट के अन्तर से लग्न में 53' का अन्तर आता है।

अतः 1 मिनट 21 सैकेण्ड के अन्तर से लग्न में अन्तर

$\frac{1\text{मि } 21\text{से} \times 53'}{4\text{मि}} = 17' 53''$ इसे हम (ii) में जोड़ देंगे।

अर्थात् 2घ10मि26से के लिये सायन लग्न हुआ $3^{S}14°41' + 17' 53'' = 3^{S}14°58'53''$

चरण 8: अब हम इसका अयनांश संस्कार करेंगे। डाटा–बैंक की क्रम संख्या '9' पर सन 2007 के लिये अयनांश शुद्धि के आगे लिखा गया है (-) 0°58' । अतः शुद्ध लग्न हुआ $3^{S}14°58'53'' - 0°58' = 3^{S}14°01'53''$ । यह पारम्परिक पद्धिति से निकाले गये लग्न (3^{S} 13° 53' 33") के बहुत निकट है।

चरण 9: ग्रह स्पष्टः अब हम दिये गये समय (अर्थात् 26.1.2007 की शाम 17:58 बजे) के लिए लाहिड़ी की वर्ष 2007 की एफिमरीज़ से ग्रह स्पष्ट निकालना सीखेंगे। यह बहुत आसान है। एफिमेरिज़ में प्रत्येक दिन के लिये भारतीय मानक समय के अनुसार सुबह 5:30 बजे सभी ग्रहों के भोगांश बताये गये हैं। जनवरी 2007 के प्रत्येक दिन के लिये सुबह 5:30 बजे के ग्रह स्पष्ट एफिमरीज़ के पृष्ठ 16 तथा 17 पर दिये हुये हैं। एफिमेरिज़ में ही राहु/केतु को छोड़ कर प्रत्येक दिन के लिये हर ग्रह के दैनिक चार (चाल) भी पृष्ठ 40 से 42 तक बताये गये हैं।

दिया गया समय 26.1.2007 को अपराह्न 17:58 बजे है। यह समय सवेरे 5:30 बजे से 12 घन्टे 28 मिनट (748 मिनट) आगे है। 24 घण्टे (1440 मिनट) के को आधार मान कर हम ग्रहों के 12घ:28मि का चार (चाल) निकालेंगे। गुणांक = 748/1440 = 0.519

किसी भी ग्रह के दैनिक चार (चाल) में गुणांक का गुणनफल हमें उस ग्रह का 748 मिनट का चार बताता है।

ग्रहों की स्थिति	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि(व)	राहू	केतु
26.1.2007 की सुबह 05.30	$9^{s}11^{\circ}41'$	$0^{s}12^{\circ}13'$	$8^{s}12^{\circ}47'$	$9^{s}24^{\circ}6'$	$7^{s}19^{\circ}0'$	$10^{s}03^{\circ}22'$	$3^{s}28^{\circ}56'$	$10^{s}22^{\circ}58'8''$	$4^{s}22^{\circ}58'8''$
24 घन्टे मे ग्रहों का चार	$61'$	$13^{\circ}57'$	$44'$	$1^{\circ}41'$	$10'$	$1^{\circ}15'$	$-5'$	$-51''$	$-51''$
748 मिनट में ग्रहों का चार = 0.519x2	$31.69'$ $31'41''$	$434.77'$ $7^{\circ}14'46''$	$22'51''$	$52'28''$	$5'$	$39'$	$(-)3'$	$(-)26''$	$(-)26''$
17.58 बजे ग्रह स्पष्ट = 1+3	$9^{s}12^{\circ}12'41''$	$0^{s}19^{\circ}27'46''$	$8^{s}13^{\circ}10'$	$9^{s}24^{\circ}58'28''$	$7^{s}19^{\circ}06'$	$10^{s}04^{\circ}11'$	$3^{s}28^{\circ}53'$	$10^{s}22^{\circ}57'$	$4^{s}22^{\circ}57'$

नोटः 1. राहु–केतु के भोगांश हमेशा सही भोगांश (true Rahu) लेने चाहिये ना कि औसत राहु (mean Rahu)

2. एफिमरीज़ में राहु–केतु के दैनिक चार अलग से नहीं बताये गये हैं। उनके दैनिक चार निकालने के लिये हम लगातार उन दो दिनों के लिये सवेरे 5:30 बजे दिये गये ग्रह स्पष्ट के अन्तर का प्रयोग करते हैं जिनके बीच में दिया गया जन्म काल होता है। दिये गये उदाहरण में राहु के 5:30 बजे के 27.1.2007 तथा 26.1.2007 के भोगांश के अन्तर से राहु का दैनिक चार निकाला गया है। उपर्युक्त गणनाओं के आधार पर बनाई गयी कुण्डली नीचे दी गयी है।

अब कुछ अन्य उदाहरण लेते हैं जिनसे निरयन कुण्डली बनाने की आधुनिक विधि और स्पष्ट हो सकेगी।

क्र.सं	जन्म स्थान	जन्म की तारीख	जन्म का समय
1	कोलकाता (अलीपुर)	18:02:2007	23:54:00
2	कनाडा (ओटावा)	09:03:2007	21:35:00
3	जोहान्सबर्ग (द.अफ्रीका)	23:03:2007	10:00:00

ऊपर के उदाहरणों में पहला तो भारत वर्ष का ही एक महानगर है। दूसरा प्रश्न विदेश से है पर वह भी, भारत वर्ष की भांति, उत्तरी गोलार्ध में ही है। तीसरा प्रश्न हमने विदेश के दक्षिणी गोलार्ध से लिया है। प्रत्येक प्रश्न के बनाने की विधि उसी क्रम से रहेगी जिसे हमने ऊपर के उदाहरण में प्रयोग किया है। यहां भी हम सीखी हुई रीति से सब काम करेंगे अर्थात् पहले हम सारणी बनाने का काम करेंगे फिर स्थानीय समय का संशोधन करेंगे।

उदाहरण 1: कोलकता में जन्मे जातक की कुण्डली बनाना

चरण 1: सारणी:

1.	जन्म का समय	23:54
2.	जन्म की तिथि	18 फरवरी 2007
3.	अक्षांश	22^0 N 32'
4.	देशान्तर	88^0 E 20'
5.	साम्पातिक काल का संशोधन	(-) 4s
6.	2007 के लिए अयनांश संशोधन	(-)58'
7.	स्थानीय समय का संशोधन	(+)23मि 20 से
8.	2007 के लिए साम्पातिक काल संशोधन	(+)12से

चरण 3

	घ	मि	से
जन्म का मानक समय	23 :	54 :	00
स्थानीय समय का संशोधन	+	23 :	20
जन्म का स्थानीय समय	24:	17:	20

अर्थात् तारीख़ बदल गयी और नयी तारीख 19. 02. 2007 हो गयी। अतः जन्म स्थानीय समय 18. 02. 2007 को 24: 17: 20 बजे अथवा 19. 02. 2007 को (24 :17 : 20 - 24:00:00) 00:17:20 हुआ।

अब इस प्रश्न को हम दो प्रकार से हल कर सकते हैं। पहला तरीका तो यह कि हम 19. 02. 2007 को दोपहर 12:00 बजे से समयान्तर निकालें।

	12 :	00:	00
	(-) 00 :	17:	20
	=11 :	42 :	40
चरण 4: साम्पातिक काल के लिए संशोधन	+0 :	1 :	48
(टेबल IV) से	+0 0:	0 :	07
	'स' 11 :	44 :	35

चरण 5:

19. 2. 1900 का स्थानीय नध्यान से	घ	मि	से
साम्पातिक काल	21	55	00
संशोधन सन् 2007 के लिए	+		12
संशोधन कोलकाता के लिए	-		04
	'द' 21 :	55 :	08

चरण 6:

दिये गये समय के लिए साम्पातिक समय			
'द' से 'स' घटाकर प्राप्त होगा	(-) 11 :	44 :	35
	'प' 10 :	10 :	33

चरण 7:

लग्न सारणी पृष्ठ सं '36' देखें। 'प' जिन दो समय के अन्तराल के बीच पड़ता है वे हैं 10: 12: 00 तथा 10: 08: 00

	लग्न			
10: 12: 00 के लिए लग्न	7^s	3^0	51'	00
10: 08: 00 के लिए लग्न	7^s	2^0	58'	00
4 मिनट के लिए अन्तर			53'	

(10:10:33 - 10:08:00) = 00^{घ}:02$^{मि}$:33$^{से}$ के लिये अन्तर =

$\frac{02.33 \times 53'}{4} = 33' 47''$

अतः सायन लग्न हुआ

$7^s 2° 58' + 33' 47'' =$	7^s	3^0	33'	11"
चरण 8: अन्त में 2007 के लिए अयनांश शुद्धि	(-)		58'	
	7^s	2^0	36'	47"

अब यही प्रश्न हम दूसरे प्रकार से देखते हैं। अब हम 18.2.2007 को आधार बनाते हैं। अतः 18.2.2007 के दोपहर 12:00 बजे से स्थानीय समय 24:17:20 बजे का अन्तर निकालते हैं। 24:17:20 - 12:00 = 12:17:20

चरण 4: साम्पातिक काल के लिए संशोधन	+ 12 :	17 :	20
(टेबल IV) से	+	01 :	58
		0 :	03
	'स' 12 :	19 :	21

चरण 5:

18. 2. 1900 का स्थानीय मध्याह्न से	घ	मि	से
साम्पातिक काल	21	51	03
संशोधन सन् 2007 के लिए	+		12
संशोधन कोलकाता के लिए	-		04
	'द' 21 :	51 :	11

चरण 6:

दिये गये समय के लिए साम्पातिक	12 :	19 :	21
समय स + द	(+) 21 :	51 :	11
	34 :	10 :	32
	(-) 24 :	00 :	00
	10 :	10 :	32

यह समय पिछली बार निकाले गये 'प' से मात्र 1 सेकेण्ड कम है। इस प्रकार किसी भी तिथि को आधार मान कर लग्न निकाला जा सकता है।

चरण 9: ग्रह स्पष्ट वैसे ही करेंगे जैसे दिल्ली के लिये किया था। यहां हम जन्म का मानक समय लेंगे 22:54:00 (18 फरवरी 2007) ना कि स्थानीय समय (अर्द्धरात्रोत्तर 00:17:20; 19 फरवरी 2007).

गुणांक निकालने के लिये सवेरे 5:30 से जन्म काल का समयान्तर देखते हैं। 23:54:00 - 5:30:00 = 18:24:00 = 1104'
अतः गुणांक हुआ 1104/ 1440 = 0.767. नीचे दी गयी सारणी में ग्रह स्पष्ट बताये गये हैं।

ग्रहों की स्थिति	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि(व)	राहू	केतु
18.2.2007 की सुबह 5:30	10^{s}4°59'4"	10^{s}9°25'02"	8^{s}29°57'	10^{s}15°1'	7^{s}22°34'	11^{s}1°55'	3^{s}27°06'	10^{s}22°11'	4^{s}22°11'
24 घन्टे में ग्रहों का चार	60.33'	14°48'03"	45'	1°42'	8'	1°15'	(-)5'	(-)16"	-16"
1104 मिनट में ग्रहों का चार = 0.7679 x 2	46'25"	10°44'37"	34'30"	1°18'12"	6'	57'30"	(-)4'	(-)12"	-12"
18/2/2007 23:54 बजे ग्रह स्पष्ट = 1+3	10^{s}5°47'	10^{s}15°43'41"	9^{s}0°31'30"	0^{s}16°19'12"	7^{s}22°30'	11^{s}2°52'	3^{s}27°2'	10^{s}22°11'	4^{s}22°11'

उदाहरण 2:

अब थोड़ी सैर विदेश की भी हो जाये। अगला उदाहरण हमने कनाडा से लिया है।

चरण 1: ओटावा जन्म का मानक समय है 21:35 तथा तारीख है 09. 03. 2007 । लग्न निकालने की विधि बिल्कुल वही है जो भारत के किसी भी स्थान के लिये है अतः फिर से वही दौर शुरू करते हैं।

चरण 2:

अक्षांश	45^0 N 24'
देशांतर	75^0 W 43'
साम्पातिक काल का संशोधन	(+)1मि44से.

वर्ष 2007 के लिए अयनांश संशोधन	(-)58'
स्थानीय संशोधन	-2मि 52 से.
वर्ष 07 का साम्पातिक काल संशोधन	+12से
भारतीय मानक समय से अन्तर	+10:30 मिनट

चरण 3

	घ	मि	से
जन्म का मानक समय	21 :	35 :	00
स्थानीय समय का संशोधन	+	2 :	52
जन्म का स्थानीय समय	21:	32:	08

यहां न तो तारीख बदली ना ही समय अपराहन् से पूर्वाह्न हुआ। यह एक सुविधा तो हुई ।

	21:	32:	08
समयान्तर – दोपहर 12:00 बजे से अन्तर	(-) 12 :	00:	00
	09 :	32:	08
चरण 4: साम्पातिक काल के लिए संशोधन	+0:	1 :	29
(टेबल IV) से	+0:	0 :	05
	'स' 09:	33 :	42

चरण 5:

	घ	मि	से
09. 3. 1900 का स्थानीय मध्याह्न से साम्पातिक काल	23	05	58
संशोधन सन् 2007 के लिए	+		12
संशोधन कनाडा 'ओटावा' के लिए	+00	07	44
	'द' 23	07	54

चरण 6:

दिये गये समय के लिए साम्पातिक समय 'द' और 'स' को जोड़कर प्राप्त होगा	(+) 09	33	42
	23	07	54
	32	41	36
	(-)24	00	00
	'प' 08	41	36

चरण 7:

लग्न सारिणी पृष्ठ सं '66' देखें। 'प' जिन दो समय के अन्तराल के बीच पड़ता है वे हैं 08: 44: 00 तथा 08: 40: 00

08: 44: 00 के लिए लग्न	6^s	8^0	02'	00
08: 40: 00 के लिए लग्न	6^s	7^0	17'	00
4 मिनट के लिए अन्तर			55'	

(08:41:36 - 08:40:00) = 00^घ^:01^मि^:36^से^ के लिये अन्तर

$$\frac{01:36 \times 55}{4} = 22'$$

अतः लग्न हुआ

$6^s\, 7^\circ\, 17' + 22' =$	6^s	7^0	39'	00"
चरण 8: अन्त में 2007 के लिए अयनांश शुद्धि	(-)		58'	
	6^s	6^0	41'	00"

चरण 9: आपने देखा कि विदेश की धरती के लिये भी लग्न स्पष्ट करना ठीक वैसे ही आसान है जैसा कि भारत के किसी नगर के लिये। लेकिन विदेश के लिये ग्रह स्पष्ट करने का तरीका थोड़ा अलग होगा क्योंकि एफिमरीज़ में ग्रह स्पष्ट भारतीय समय के अनुसार सवेरे 5:30 बजे के बताये गये हैं। इसलिये सबसे पहले विदेश का दिया गया काल भारतीय समय में परिवर्तित करना होगा। हमने सूचनाओं की सारणी (चरण २) में लिखा है कि ओटावा का मानक समय भारतीय मानक समय से 10:30 आगे है। अर्थात् भारत में सुबह पहले होगी। अतः ओटावा के मानक समय में हम 10:30 जोड़ कर वहां के समय को भारतीय समय में परिवर्त्तित कर सकते हैं। अतः ओटावा का 21:35 का अर्थ भारत में हुआ 9 मार्च 2007 की तारीख को 21:35:00 + 10:30:00 = 32:05:00 हुआ या 10 मार्च 2007 की सुबह 08:05:00 का समय हुआ। अर्थ हुआ कि हमें भारतीय एफिमेरीज़ के अनुसार ग्रह स्पष्ट 10.03.2007 की सुबह 08:05:00 के लिये निकालना होगा। अब सारा मामला पूर्ववर्ती मामलों की तरह सहज हो गया। गुणांक होगा (08:05 - 05:30) / 24 = 155/1440 = 0.108

ओटावा में 9.3.2007 की रात्रि 21:35:00 बजे ग्रह स्पष्ट।

ग्रहों की स्थिति भारत में	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि (व)	राहू	केतु
10.3.2007 की सुबह 05:30	10^s25°4'18"	7^s0°42'08"	9^s15°06'	10^s1°37'	7^s24°42'	11^s26°26'	3^s25°37'	10^s22°9'57"	4^s22°9'57"
24 घन्टे में ग्रहों का चार	59'57"	12°7'33"	46'	0°14'	5'	1°13'	(-)4'	(-)12"	(-)12"
155 मिनट में ग्रहों का चार = 0.108x2	6'28"	1°18'35"	5'	1'31"	32"	7'53"	(-)26"	0	0
10/3/2007 की सुबह 08:05 पर ग्रह स्पष्ट = 1 + 3	10^s25°10'46"	7^s2°0'43"	9^s15°11'	10^s1°35'29"	7^s24°42'32"	11^s26°3353'	3^s25°36'	10^s22°9'52"	4^s22°9'52'

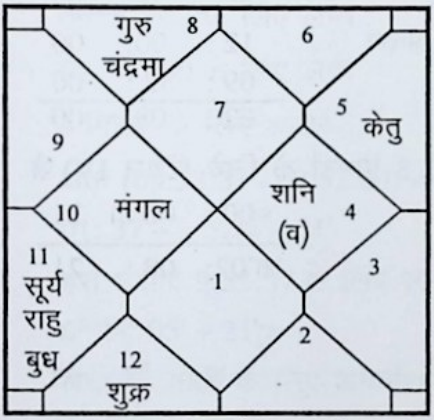

उदाहरण 2 की कुण्डली

उदाहरण 3 की कुण्डली

उदाहरण 3:

यह भी विदेश से लिया गया मामला है पर है थोड़ा फ़र्क। अब तक तो हमने जितने भी उदाहरण देखे हैं, सभी में जातक का जन्म उत्तरी गोलार्ध में हुआ है जिसके लिये लग्न सारणी में साम्पातिक काल के लिये लग्न दिये गये हैं। इस उदाहरण में हमने दक्षिणी गोलार्ध के देश दक्षिण अफ्रीका का जोहान्स्बर्ग शहर लिया है। दक्षिणी गोलार्ध के लिये लग्न निकालने के लिये प्रारंभ के कुछ चरण बिल्कुल पहले जैसे ही हैं। आइये यह उदाहरण प्रारंभ करते हैं।

चरण 1: जन्म का स्थान है जोहान्सबर्ग, मानक समय है 10:00:00 तथा तारीख है 23. 03. 2007 ।

चरण 2:

अक्षांश	26^0 S 15'
देशान्तर	28^0 E 00'
साम्पातिक काल का संशोधन	(+)36से
वर्ष 2007 के लिए अयनांश संशोधन	(–)58'
स्थानीय समय संशोधन	–8मि
वर्ष 07 का साम्पातिक काल संशोधन	+12से
भारतीय मानक समय से अन्तर	+3:30 मिनट

चरण 3: सबसे पहले हम स्थानीय समय निकालेंगे

	घ	मि	से
जन्म का समय	10 :	00 :	00
स्थानीय समय का संशोधन	–	8 :	00
जन्म का स्थानीय समय	09:	52:	00
समयान्तर – दोपहर 12:00 बजे से अन्तर	12 :	00:	00
	09 :	52 :	00
	02 :	08:	00

चरण 4: साम्पातिक काल के लिए 2 घन्टे 8 मिनटों के लिये (टेबल IV) से

संशोधन	+00 :	00 :	21
	'स'02:	08 :	21

चरण 5:

	घ	मि	से
23. 3. 1900 का स्थानीय मध्याह्न से			
सम्पातिक काल	00	01	10
संशोधन सन् 2007 के लिए	+		12
संशोधन जोहान्सबर्ग के लिए	+00	00	36
	'द' 00	01	58

अर्थात् जोहान्सबर्ग में स्थानीय समय के अनुसार 23:3:2007 के दोपहर के 12:00 बज रहे थे, तब का साम्पातिक समय था 00:01:58 लेकिन 'स' के अनुसार तो स्थानीय मध्याह्न होने में 02:08:21 बाकी हैं। अतः दिये गये समय का साम्पातिक

काल दोपहर 12:00 के साम्पातिक काल से इतना ही पीछे होना चाहिये। अतः साम्पातिक काल = (00:01:58 - 02:08:21) = (24:01:58 - 02:08:21) = 21:53:37

अब साम्पातिक काल तो पता चल गया है पर यह है दक्षिणी गोलार्ध का जबकि लग्न सारणी में हमें उत्तरी गोलार्ध के बारे में ही सूचनाएँ हैं। इसलिए हम थोड़ा घुमा–फिरा कर रास्ता निकालते हैं। उत्तरी गोलार्ध में जोहॉन्सबर्ग की छाया ढूंढिये। आप जानते हैं कि जोहान्सबर्ग का अक्षांश है 26°S15'। उत्तरी गोलार्ध में एक काल्पनिक स्थान देखिये जिसका अक्षांश है 26°N15' – यही उत्तरी गोलार्ध में जोहान्सबर्ग की छाया हुई। जोहान्सबर्ग से यह स्थान ठीक 180° पूरब या पश्चिम है। अतः जोहान्सबर्ग का जो भी साम्पातिक काल होगा उससे इस छाया स्थान का साम्पातिक काल 12 घन्टे अधिक या कम होगा। आइये इस स्थान का साम्पातिक काल भी निकाल ही लेते है जो जोहान्सबर्ग के साम्पातिक काल में ±12 घन्टे का संशोधन करने से प्राप्त होगा। छाया स्थान का साम्पातिक काल हुआ (21:53:37 - 12:00:00) = 09:53:37 अब इस साम्पातिक काल के लिये 26°N15' वाले काल्पनिक स्थान का लग्न निकालते हैं। सारणी की पृष्ठ संख्या 44 देखिये। वहां 26°N30' स्थान की सूचनाएँ हैं।

09: 56: 00 के लिए लग्न	6^S	28^0	57'	00
09: 52: 00 के लिए लग्न	6^S	28^0	05'	00
4 मिनट के लिए अन्तर			52'	

अतः (09:53:37 - 09:52:00) = 00:01:37

01: 37 ÷ x 52/4 = 21'

इस प्रकार 9:53:37 के लिए लग्न हुआ

6^S 28° 05' + 21' =	6^S	28^0	26'	00"
अन्त में 2007 के लिए अयनांश शुद्धि	(-)		58'	
करने पर काल्पनिक स्थान का लग्न हुआ	6^S	27^0	28'	00"

किन्तु यह तो उत्तरी गोलार्द्ध में लिये गये एक काल्पनिक स्थान का लग्न हुआ इसलिये अब जोहान्सबर्ग वापस चलते हैं। हम जानते हैं कि यह काल्पनिक स्थान जोहान्सबर्ग से 180° आगे या पीछे हैं। इसलिये जो राशि यहां उग रही है, उससे ±6 राशि जोहान्सबर्ग में उग रही होंगी। इस प्रकार निकाले गये लग्न में ±6 राशियों का संशोधन करने से जोहान्सबर्ग का लग्न हुआ 6^S27°28'+6^S= 0^S27°28' । यद्यपि यह लग्न भी प्रायः शुद्ध ही है फिर भी जिस स्थान के लिये

यह लग्न निकाला गया उसका अक्षांश है 26°30' जबकि जोहान्सबर्ग का अक्षांश 26°15' है। अतः अधिक शुद्धता के लिये हम एक बार फिर से चरण 5 में निकाले गये साम्पातिक काल के लिये (26°S00') के लिये) लग्न निकालते हैं। इसके लिये कृपया लग्न सारणी का पृष्ठ 43 देखें।

वहां 09: 56: 00 के लिए लग्न है	6^S	29^0	08'	00
09: 52: 00 के लिए लग्न है	6^S	28^0	16'	00
4 मिनट का अन्तर			52'	

अतः (09:53:37 - 09:52:00) = 00^घ^:01^मि^:37^से^ का अन्तर हुआ

(01: 617 ÷ 4) x 52 = 21'

अतः 9:53:37 बजे लग्न हुआ

6^S 28° 16' + 21' =	6^S	28^0	37'	00"
अन्त में 2007 के लिए अयनांश शुद्धि	(-)		58'	
अतः छैाया प्रदेश का लग्न हुआ	6^S	27^0	39'	00"

इसमें 6^S जोड़ने से लग्न हुआ 12^S 27° 39' या 0^S 27° 39' । यह लग्न 26°S 00' अक्षांश वाले स्थान का है। अब त्रैराशिक पद्धति का व्यवहार करते हैं।

26° S 00' अक्षांश का लग्न	0^S	27^0	39'	00"
26° S 30' अक्षांश का लग्न	0^S	27^0	28'	00
अतः 26° S 15' के लिये लग्न इन दोनों का औसत होगा।	0^S	27^0	33'	30

जोहान्सबर्ग का ग्रह स्पष्ट ठीक वैसे ही करेंगे जैसे ओटावा का निकाला था। वहां का मानक समय भारतीय मानक समय से 3 घन्टे 30 मिनट पीछे है। अतः' जोहान्सबर्ग में 23. 3. 2007 सुबह के जब 10: 00: 00 बज रहे थे तब भारत में समय था 23.03.2007 की दोपहर 13:30 बजे। इसी समय के लिये हमें ग्रह स्पष्ट करना है। अर्थात् सुबह के 5:30 बजे से समय का अन्तर (13:30 - 5:30) = 8 घन्टे। अतः गुणांक हुआ 8/24 = 0.333 आगे की गणना पूर्वोक्त सारणी के अनुरूप ही की गयी है।

ग्रहों की स्थिति भारतीय मानक समय के अनुसार	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि(व)	राहू	केतु
23.3.2007 की सुबह 5:30	$11^{s}8^{\circ}1'21''$	$1^{s}2^{\circ}22'12''$	$9^{s}25^{\circ}02'$	$10^{s}10^{\circ}20'$	$7^{s}25^{\circ}31'$	$01^{s}12^{\circ}10'$	$3^{s}24^{\circ}53'$	$10^{s}22^{\circ}6'49''$	$4^{s}22^{\circ}6'49''$
24 घन्टे में ग्रहों का चार	59'33"	$14^{\circ}16'36''$	44'	$1^{\circ}04'$	11'	$1^{\circ}12'$	(-)4'	(-)1'37"	(-)1'37"
480 मिनट में ग्रहों का चार = 0.333x2	19'51"	$4^{\circ}45'32''$	14'40"	21'20" _	3'40"	24'	(-)1'	0	0
23.3.07 को 13:30 बजे ग्रह स्पष्ट = 1+3	$11^{s}8^{\circ}21'12''$	$1^{s}7^{\circ}7'44''$	$9^{s}25^{\circ}16'44''$	$10^{s}10^{\circ}41'20''$	$7^{s}25^{\circ}34'$	$0^{s}12^{\circ}34'$	$3^{s}24^{\circ}52'$	$10^{s}22^{\circ}6'49''$	$4^{s}22^{\circ}6'49''$

अध्याय 15

भारतीय पञ्चांग पद्धति

आज पारम्परिक जीवन में, भारत का हर नागरिक, चाहे वह हिन्दू है या मुसलमान, जैन धर्माम्बलम्बी या सिक्ख, सूर्य तथा चन्द्रमा की गति से पर्वों और उत्सवों के माध्यम से गहरे जुड़ा हुआ है। सूर्य और चन्द्रमा की गतियों का प्रभाव क्षेत्र बहुत विशाल है जिसका एक अंश हम पंचांगों में पाते हैं। इसकी विस्तृत चर्चा हम आगे करेंगे। पंचांग के पांच महत्त्वपूर्ण अंग हुए वार, तिथि, नक्षत्र, करण तथा योग। इनके बारे में विशेष जानकारी ज्योतिषीय गणित या मुहूर्त की किसी भी पुस्तक से प्राप्त की जा सकती है। आइये, एक पंचांग उठा कर देखते हैं कि इसमें होता क्या है।

किसी पंचांग के मुखपृष्ठ पर सबसे पहले तो पंचांग का नाम लिखा होता है—और साथ में लिखा होता है राजा और मन्त्री का नाम, श्री विक्रमी संवत् तथा शक सम्वत्।

पहले हम संवतों को समझते हैं बाद में राजा मंत्री आदि की चर्चा भी करेंगे। हम अंग्रेजी वर्ष को अब अच्छी तरह जानने, समझने लगे हैं, इसे ईसवी वर्ष भी कहते हैं जो जनवरी माह से प्रारंभ होता है। ईसवी का सम्बन्ध सूर्य की दैनिक गति से तो है पर सूर्य के किसी राशि या नक्षत्र प्रवेश से इसका अब सीधा सम्बन्ध नहीं रहा। संवतों का सीधा सम्बन्ध सूर्य और चन्द्रमा की गति से है। हम पहले संवत् से प्रारंभ करते हैं अपनी यात्रा।

संवत् शब्द दरअसल संस्कृत के शब्द संवत्सर का छोटा रूप है। संवत्सर का अर्थ है वर्ष—एक वर्ष में सूर्य का चक्कर पूरा करने वाली पृथ्वी या एक वर्ष में पूरा होने वाला मार्ग ! इस प्रकार पूरा अर्थ है सूर्य का एक चक्कर पूरा होने का समय। पूर्वकाल में युधिष्ठिर, विक्रम, शालिवाहन, अकबर, शिवाजी, गुप्त आदि कई संवत्

प्रचलन में आये। जैसा नामों से स्पष्ट है, ये राजाओं के राज्यारोहण आदि से प्रारंभ किये गये होंगे किन्तु इनमें से मात्र विक्रम और शक ही प्रचलन में रह गये। विक्रम सम्वत् के बारे में आम धारणा यही है कि राजा विक्रमादित्य के काल से यह सम्वत् प्रारंभ हुआ—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को यह सम्वत् प्रारंभ होता है अर्थात चैत्र मास के शुक्ल पक्ष प्रारंभ होते ही नया विक्रमी सम्वत् शुरू हो जाता है।

विक्रमादित्य का काल ईसा पूर्व माना जाता है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा प्रायः मार्च या अप्रैल मास में आती है। ईसवी जनवरी माह में शुरू हो जाती है। ईसवी की संख्या में 57 वर्ष जोड़ देने से विक्रम संवत् का पता चलता है जो मार्च/अप्रैल माह से जानना चाहिये। अर्थात् सन् 2007 में श्री विक्रम संवत् 2007+57 = 2064 हुआ। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सन 2007 में दिनांक 19 मार्च की सुबह 8:13 बजे प्रारंभ हुई। तब तक विक्रम् सम्वत् 2063 कहा गया और फिर नया संवत्सर 2064 प्रारंभ हो गया।

शक् संवत के प्रारंभ के बारे में भी ऐसा ही कुछ कहा जाता है कि शक् वंश के राजाओं ने ही अपने नाम पर यह संवत प्रारंभ किया होगा। ज्योतिष ग्रन्थों के अतिरिक्त भारत सरकार ने भी शक संवत् को राष्ट्रीय वर्ष मान लिया है इसलिये इसका अपना ही महत्त्व है। शक् सम्वत प्रत्येक वर्ष सूर्य के सायन मेष राशि में प्रवेश अर्थात् वसंत विषुव दिवस (22 मार्च) से प्रारंभ होता है। यह दिन विक्रम सम्वत् के पहले दिन के आसपास ही होता है—वह दिन चैत्रमास की प्रतिपदा कही जाती है। इसे एक उदाहरण से समझते हैं। सन 2007 में 22 मार्च को जहां शक् चैत्र प्रतिपदा कही जायेगी वहीं 19 मार्च विक्रमी चैत्र शुक्ल प्रतिपदा ! शक सम्वत् विक्रम सम्वत् से 135 वर्ष पीछे है। इसलिये मानसागरी के प्रथम अध्याय में कहा गया हैः

''विक्रमादित्यवर्षेभ्यः परस्त्रिंशोत्तरं शतम्।
पातयित्वा भवेच्छाकं मानं तस्माच्च से स्मृताः।''

अर्थात् विक्रम संवत्सर में 135 घटाने से शालिवाहन (शाक वर्ष) का मान प्राप्त होता है। इस प्रकार विक्रम संवत 2064 में 135 घटाने से प्राप्त होता है शक संवत् 1929 जो अंग्रेजी सन् से 78 वर्ष कम है। इस प्रकार हम समझेंगे कि जो अंग्रेजी का सन् चल रहा है; उसमें 57 जोड़ने से विक्रमी सम्वत् और 78 कम करने से शक सम्वत् पता चलता है।

थोड़ी और गहराई से वर्ष और ऋतुओं पर विचार करने से इनकी प्राचीनता का पता चलेगा। ज्योतिष में वर्ष को दो बराबर भागों में बांटा जाता है। उत्तरायन और दक्षिणायन—अयन का अर्थ होता है चलना। एक अयन में तीन ऋतु कहे गये। इस

प्रकार कुल ऋतुएँ हुई छः जिनके नाम हैं क्रमशः शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत् और हेमन्त। सूर्य जब मकर राशि में प्रवेश करते हैं तो वे उत्तरायन कहे जाते हैं। इस पूरे काल को सौम्यायन भी कहा जाता है क्योंकि यह काल देवताओं का दिन कहा जाता है। अर्थात् शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म ऋतुएं सौम्यायन हुईं—शेष तीन ऋतुएँ, जब सूर्य का संचार कर्क से धनु तक होता है; याम्यायन कही जाती है, जो देवताओं की रात्रि होती है। प्रत्येक ऋतु में दो मास होते हैं।

तैत्तिरीय संहिता में ऋतुओं और मासों के नाम इस श्लोक में बताये गये हैं, **मधुश्च माधवश्च वासंतिका वृतू, शुक्रश्चशुचिश्च ग्रैष्मावृतू, नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू, इषश्चोर्जश्च शारदावृतू, सहश्च सहस्यश्च हैमंतिकावृतू, तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू।।**

अर्थात् वसंत ऋतु के दो मासों के नाम हैं मधु और माधव। ग्रीष्म के मासों के नाम हैं शुक्र और शुचि, वर्षा ऋतु के मास हुएँ नभ और नभस्थ, इष और उर्ज शरत् ऋतु के मास हैं, सह और सहस्य हेमंत के तथा तप और तपस्य शिशिर ऋतु के मास कहे गये। कालान्तर में पाया गया कि मासों को ऋतुओं से जोड़ने से कुछ भूल रह जाने की काफी संभावनाएं रह जाती थीं। यह भी देखा गया कि पूर्णिमा के समय तारों के बीच चन्द्रमा की स्थिति और ऋतु में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इसलिये तारों के हिसाब से महीनों के नाम रखे जाने लगे। सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है **''नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगत।''**

अर्थात् पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा जिस नक्षत्र में रहते हैं उसी के नाम पर मासों के नाम पड़े हैं।

इस प्रकार बारह मासों के नाम क्रमशः चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष्य, माघ और फाल्गुन रखे गये। ये मधु, माधव आदि के परिवर्तित नाम हो गये। जैसा कि नामों से स्पष्ट है, चैत्र मास का अर्थ हुआ चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में पूर्णिमा को होंगे। इसी प्रकार विशाखा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, भाद्रपद, अश्विनी, कृतिका, मृगशिरा, पौष्य, मघा और फाल्गुनी नक्षत्रों में पूर्णिमा को चन्द्रमा के होने से मासों के नाम कहे गये। यह भी पाया गया कि एक चन्द्र वर्ष सौर वर्ष से प्रायः 11 दिन कम होता है। ऋतुओं में गड़बड़ी न हो जाये इसलिये प्रायः तीसरे या चौथे वर्ष में एक मास जोड़ कर अधिक मास की अवधारणा भी प्रारंभ हो गयी। इस पद्धति में ऋतुओं और मासों में सामन्जस्य हो जाता है। ऐसे मासों को, जिसमें संक्रान्ति नहीं होती, वह अधिक या मलमास कहलाता है इसी प्रकार वैसे मास जिसमें दो संक्रान्ति हो जाती हैं उसे क्षय मास कहते हैं।

यहां तक हमने क्रमशः अयन गोल, ऋतुओं और मासों की चर्चा की है। मानसागरी में इनके फल भी बताये गये हैं।

वर्ष का राजा : लेकिन हम वर्ष के राजा आदि की बात कर रहे थे। जैसी हम पहले चर्चा कर चुके हैं, चैत्र मास शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को नये वर्ष का प्रारंभ होता है, उस वार का स्वामी वर्षेश या राजा कहा जाता है। विक्रम संवत् 2064 को नव वर्ष प्रवेश (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा) का वार था सोमवार। अतः इस वर्ष के राजा हुए चन्द्रमा। किसी ग्रह के राजा होने से फल क्या होता है यह चर्चा पंचांग में मिल जाती है। राजा के साथ–साथ मंत्री की चर्चा भी पंचांग के मुखपृष्ठ पर होती है।

वर्ष का मंत्री–सूर्य के मेष राशि में प्रवेश के दिन का स्वामी (वारेश) उस वर्ष का मंत्री होता है। संवत् 2064 में सूर्य शनिवार को मेष राशि में प्रविष्ट हुए। अतः मंत्री हुए शनि। नारद संहिता में मंत्री जैसा विशेषण नहीं आया है। वहां इन्हें सेनापति कहा गया है। राजा और मन्त्री के अतिरिक्त भी वर्ष में आठ अलग–अलग अधिकारी होते हैं जिनकी चर्चा पंचांग के अन्दर के पृष्ठों में होती है। वे हैं :

सस्येश–वर्ष में वर्षा और फसल कैसी होगी, दूध देने वाले पशुधन को चारा कैसा मिलेगा आदि बातों का पता सस्येश से चलता है। सूर्य के कर्क राशि में प्रवेश का वारेश सस्येश कहा जाता है। सम्वत 2064 में सूर्य के कर्क राशि में प्रवेश का समय है सोमवार की रात 26:44 बजे इसलिये सस्येश हुए चन्द्रमा।

दुर्गेश–सूर्य के सिंह राशि में प्रवेश का वारेश होता है दुर्गेश। दुर्ग कहते हैं किले को। प्रजा की सुरक्षा, चोरी–डाके आदि से बचाव तथा शासन की लोकप्रियता आदि का पता दुर्गेश से चलता है। सम्वत् 2064 में सूर्य सिंह राशि में 17 अगस्त शुक्रवार को प्रविष्ट होंगे इसलिये इस वर्ष के दुर्गेश शुक्र हुए।

धनेश–सूर्य की कन्या राशि में संक्रान्ति के वारेश को उस वर्ष का धनेश कहा गया। सम्वत् 2064 में यह दिन सोमवार है इसलिये धनेश हुए चन्द्रमा। धनेश से राष्ट्र की आर्थिक अवस्था का पता चलता है। व्यापार का सामान्य रुख कैसा रहेगा, पशुओं की खरीद–बिक्री कैसी होगी आदि–आदि धनेश ही बताते हैं।

रसेश–सूर्य की तुला राशि में संक्रान्ति के वारेश को रसेश कहा जाता है। सूर्य तुला के नीच के होते हैं। संभवतः उनका ताप कम रहता होगा इसलिये इस संक्रान्ति के वारेश से रसभरे पदार्थ जैसे ईख, रसीले फल और घृत का वर्ष में क्या हाल रहेगा, इसका बोध होता है। सम्वत् 2064 के रसेश हुए बुध।

धान्येश–सूर्य के धनु राशि में प्रवेश के दिन का स्वामी धान्येश कहलाता है। धान्येश वर्षा और कृषि की संभावनाओं के अतिरिक्त महंगाई, शासन की दक्षता आदि

भी बताते हैं। सम्वत् 2064 के धान्येश हुए सूर्य क्योंकि धनु में सूर्य का प्रवेश रविवार को हो रहा है।

निरसेश–सूर्य की मकर राशि में संक्रान्ति के वारेश को निरसेश कहा जाता है। निरसेश से तात्पर्य है धातु, वस्त्र, रत्न खनिज आदि रसहीन पदार्थों के स्वामी। सम्वत् 2064 में निरसेश है चन्द्रमा क्योंकि सूर्य का प्रवेश मकर राशि में सोमवार को हो रहा है।

फलेश–सूर्य के मीन राशि में प्रवेश करने वाले दिन के स्वामी को फलेश कहा जाता है। सम्वत् 2064 में फलेश हैं शुक्र। फलेश से भी वर्षा, खेती के अतिरिक्त फलों की उपज की संभावनाएं ज्ञात होती हैं।

मेघेश–सूर्य जिस वार को आर्दा नक्षत्र में प्रवेश करते हैं, उस वार का स्वामी मेघेश कहा जाता है। अब तक हम राशियों में सूर्य के प्रवेश की चर्चा करते रहे थे। मेघेश का निर्णय सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश से किया जाता है। सप्तनाड़ी चक्र में आर्द्रा को विशिष्ट स्थान प्राप्त है; उसे सौम्य या मध्य नाड़ी कहा गया है। कृतिका, रोहिणी और मृगशिरा को क्रमशः प्रचण्ड, पवन और दहन कहा गया है, साथ ही निर्जल नाड़ियां भी। सूर्य के आर्द्रा में आने वाले वार के स्वामी का महत्त्व इसी लिये बढ़ जाता है। सम्वत् 2064 में मेघेश हैं शुक्र क्योंकि सूर्य का आर्दा प्रवेश 22 जून (शुक्रवार) को हो रहा है। इस प्रकार वर्ष भर में प्राप्त होने वाले विभिन्न फलों के लिये जो संभावित मंत्रिमंडल है उसके दस विभिन्न पदाधिकारी क्रमशः राजा, मंत्री, सस्येश, दुर्गेश, धनेश, रसेश, धान्येश, निरसेश, फलेश तथा मेघेश हुए। सम्वत 2064 में जहां चन्द्रमा राजा, सस्येश, नीरसेश तथा धनेश हैं वहीं शुक्र मेघेश, फलेश तथा दुर्गेश हैं। अर्थात् इस वर्ष दो मृदु ग्रहों के पास सात महत्त्वपूर्ण भार हैं।

सम्वत्सरों के नाम :

पंचांग में सम्वत्सर का नाम भी दिया जाता है तथा सम्वत्सर के फल भी। सम्वत चाहे विक्रमी हो या शक् दोनों के नाम एक ही होते हैं, उनके सम्वत् अवश्य अलग–अलग होते हैं। उदाहरण के लिये विक्रमी 2063 या शक 1928 सम्वत का नाम था विकारी। विक्रमी 2064 या शक 1929 का नाम है शार्वरी। दरअसल संवत्सरों की गिनती साठ है। इन संवत्सरों के नाम क्रमशः 1. प्रभव 2. विभव 3. शुक्ल 4. प्रमोद 5. प्रजापति 6. अंगिरा 7. श्रीमुख 8. भाव 9. युवा 10. धाता, 11. ईश्वर, 12. बहुधान्य, 13. प्रमाथी, 14. विक्रम, 15. वृष, 16. वृषभानु, 17. सुभानु, 18. तारण, 19. पार्थिव, 20. व्यय, 21. सर्वजीत, 22. सर्वधारी, 23. विरोधी, 24. विकृति, 25. खर, 26.

नन्दन, 27. विजय, 28. जय, 29. मन्मथ, 30. दुर्मुख, 31. हेमलम्ब, 32. विलम्ब, 33. विकारी, 34. शार्वरी, 35. प्लव, 36. शुभकृत्, 37. शोभन, 38. क्रोधी, 39. विमावसु, 40. पराभव, 41. प्लवङ्ग, 42. कीलक, 43. सौम्य, 44. साधारण, 45. विरोधकृत् 46. परिधावी, 47. प्रमादी, 48. आनन्द, 49. राक्षस, 50. नल, 51. पिङ्गल, 52. कालयुक्त, 53. सिद्धार्थी, 54. रौद्र, 55. दुर्मति, 56. दुन्दुभी, 57. रुधिरोद्गारी, 58. रक्ताक्ष, 59. क्रोधान तथा 60. क्षय हैं।

एक सरल तरीका बताते हैं जिससे अंग्रेजी सन के आधार पर वर्तमान संवत्सर का नाम बताया जा सकता है। जिस सन के संवत्सर का नाम जानना हो उसमें से 53 कम करके 60 से भाग दें। जो शेष बचे, वही चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को प्रारंभ होने वाले संवत्सर का नाम है। उदाहरण के लिए सन् 2007 की चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को प्रारंभ हुए संवत्सर के लिये 2007-53=1953। 1953 में 60 से भाग देने पर भागफल हुए 32 और शेष बचे 34। 34 वें संवत्सर का नाम है शार्वरी। इससे पहले वाले संवत्सर का नाम था विकारी। शार्वरी के बाद (2008 में) प्लव नाम का संवत्सर आयेगा। सन् 2033 में इस प्रकार आयेगा 'क्षय' नाम का संवत्सर। इसके बाद फिर से प्रभव नाम का संवत्सर 2034 सन् में आयेगा। 60 वर्षों का एक नया चक्र फिर से प्रारंभ होगा। माना जाता है कि सृष्टि के आरंभ में 'विजय' नाम का ही संवत्सर था। शक् सम्वत् के प्रारंभ में 'प्रभव' नाम का संवत्सर था। इस 60 वर्ष के चक्र में 1 से 20 संवत्सरों को ब्रह्मविंशतिका, 21 से 40 तक विष्णुविशंतिका तथा 41 से 60 को रुद्र विंशतिका कहा जाता है। जैसा कि नाम से स्पष्ट हो रहा होगा, पहले 20 सम्वत्सर ब्रह्मा जी के नाम के हैं अर्थात् सृष्टि का समय है। यहां बाद के 20 संवत्सर विष्णु जी के नाम इसलिये कहे गये हैं कि इस काल में पोषण होता है। आखिरी 20 संवत्सरों में, रुद्र की प्रवृति के अनुसार, जो नश्वर है, सड़ गल रहा है, उसका नाश होता है। यह भी अकारण नहीं है कि संवत्सरों के चक्र को साठ वर्षों का बनाया गया। साठ वर्ष में गुरु और शनि पूरे भचक्र का दो बार चक्कर लगा चुके होते हैं। एक पूरी पीढ़ी बदल चुकी होती है। इसे ऐसे समझें– किसी के जन्म से लेकर पहले बीस वर्ष वह सीखता है, सृष्टि करता है। अपनी बुद्धि के बल पर वह खड़ा होता है और जीवन में प्रवेश करता है। बाद के बीस वर्ष वह पालन करता है और साठ वर्ष का होते–होते क्रियाशील जीवन से छुट्टी पा लेता है। भारतीय परम्परा में षष्ठीपूर्ति का विशेष महत्त्व है। इस आयु तक आते–आते जीवन के कर्मक्षेत्र से मुक्ति मिल जाती है।

सम्वत्सर स्वामीः 60 संवत्सरों को 12 भागों में विभाजित कर देने से प्रत्येक भाग में 5 संवत्सर हुए। पांच संवत्सर की इस अवधि को 'युग' कहते हैं जिनके स्वामी नीचे बताये गये हैं।

युगक्रम	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
स्वामी	विष्णु	बृहस्पति	इन्द्र	अग्नि	विश्वकर्मा	अहिर्बुध्न्य	पितर	विश्वदेवा	चन्द्र	इन्द्राग्नि	अश्विनी कुमार	भग

संवत्सर का फल जानने के लिये उसकी संख्या दूनी करके 3 घटा कर 7 का भाग देने से जो शेष फल आये, उसके अनुसार फल नीचे दिये गये हैं।

शेषांक	1	2	3	4	5	6	7
फल	दुर्भिक्ष	सुभिक्ष	मध्यम	दुर्भिक्ष	सुभिक्ष	मध्यम	पीड़ा

जैसे शार्वरी की संख्या 34 है।

34 x 2 - 3 = 69. इसमें 7 से भाग देने पर शेषांक हुआ 6 । जिसका फल मध्यम है।

पंचाग में लिखे शुभ योग : पंचाग में वर्ष भर के सर्वार्थ सिद्धि, अमृतसिद्धि, रवि योग, द्विपुष्कर, त्रिपुष्कर, रवि पुष्य योग तथा गुरु पुष्य लिखे होते हैं जिनका प्रयोग शुभ मुहूर्त के लिये किया जाता है। मुहूर्त अपने आप में सम्पूर्ण विषय है जिसके लिये पाठक भारतीय विद्या भवन के यशस्वी और लोकप्रिय शिक्षक श्री के.के. जोशी द्वारा रचित मुहूर्त पर अद्भुत् पुस्तक का अवलोकन कर सकते हैं। फिर भी संक्षिप्त जानकारी के लिये इन योगों को एक साथ नीचे सारणी बनाकर लिखा जा रहा है जैसे ये कब बनते हैं और इनका क्या उपयोग है। सर्वार्थ सिद्धि, अमृत सिद्धि, रवि पुष्य तथा गुरु पुष्य योग वार और नक्षत्र के योग से बनते हैं।

नीचे दी गई सारणी से पता चलेगा कि अमृतसिद्धि, रवि पुष्य तथा गुरु पुष्य योग, सर्वार्थ सिद्धि योग के ही अन्तर्गत आ जाते हैं। इनमें अमृत सिद्धि योग के कुछ अपवाद बता दिये गये हैं कि इस वार को क्या नहीं करना चाहिये। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि कुछ परिस्थितियों में ये सुन्दर योग अहितकारी योग (मधुसर्पिश) बन जाते हैं। रविवार का अमृतसिद्धि योग मधुसर्पिश योग में तब बदल जाता है यदि उस दिन शुक्ल या कृष्ण पक्ष की पंचमी भी पड़ जाये। इस प्रकार सोमवार की षष्ठी, मंगलवार की सप्तमी, बुधवार की अष्टमी, गुरुवार की नवमी, शुक्रवार की दशमी और शनिवार की एकादशी उस दिन बन रहे अमृत सिद्धि योग को मधुसर्पिश योग बना कर नष्ट कर देती है।

सर्वार्थ सिद्धि योग

क्रम वार	नक्षत्र	अन्य नाम	निषिद्ध कर्म
1. रविवार	हस्ता#, मूल, उ.फा, उ.षा, उ.भा.प. पुष्य*, अश्लेषा	#अमृत सिद्धि *रवि पुष्य	
2. सोम	श्रवण, रोहिणी, मगृशिरा#, पुष्य अनुराधा	#अमृत सिद्धि	
3. मंगल	अश्विनी#, उ.भा.प, कृतिका, अश्लेषा	#अमृत सिद्धि	#गृह निर्माण गृह प्रवेश
4. बुध	रोहिणी, अनुराधा#, हस्ता, कृतिका मृगशिरा	#अमृत सिद्धि	
5. गुरू	रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु पुष्य#*	#अमृत सिद्धि *गुरु पुष्य	#विवाह
6. शुक्र	रेवती#, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु, श्रवण	#अमृत सिद्धि	
7. शनि	श्रवण, स्वाती, रोहिणी#	#अमृत सिद्धि	#यात्रा

द्विपुष्कर/त्रिपुष्कर योग

पहले हमने देखा कि वार और नक्षत्र से बनने वाले शुभ योगों को पंचमी से एकादशी तिथि का साथ मिल जाये तो वे नष्ट होकर अशुभ योगों में बदल जाते हैं। अब हम उन शुभ योगों के बारे में जानेंगे जो अशुभ वारों, भद्रा तिथि और नक्षत्रों के योग से बनते हैं। हम जानते हैं कि नक्षत्रों को द्विपाद, त्रिपाद तथा चतुष्पाद कहा गया। जिन नक्षत्रों के दो चरण एक राशि में तथा दो चरण दूसरी राशि में पड़े उन्हें द्विपाद कहा गया। मृगशिरा, चित्रा तथा धनिष्ठा ही ऐसे नक्षत्र हैं जो आधे–आधे दो राशियों में फैले हैं। इन तीनों का स्वामित्व मंगल ग्रह का है। इसी प्रकार छः ऐसे नक्षत्र हैं जिनका एक चरण तो एक राशि में और शेष तीन चरण दूसरी राशि में हैं इन्हे त्रिपाद नक्षत्र कहा गया। सूर्य और गुरु के नक्षत्र इस श्रेणी में आते हैं। कृतिका, उत्तर आषाढ़, उत्तर फाल्गुनी, पुनर्वसु, विशाखा और पूर्वभाद्रपद–ये छः नक्षत्र त्रिपाद

वार-नक्षत्र योग

↓योग वार→	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार
उत्पात	विशाखा	पू. आषाढ़	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फाल्गुनी
मृत्यु	अनुराधा	उ. आषाढ़	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त
काण (क्लेश वृद्धि)	ज्येष्ठा	अभिजित	पू.भाद्रपद	भरिणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्ध	मूल	श्रवण	उ.भाद्रपद	कृतिका	पुर्नवसु	पू.फाल्गुनी	स्वाती
यमघंटक	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृतिका	रोहिणी	हस्त
दग्ध	भरिणी	चित्रा	उ.आषाढ़	धनिष्ठा	उ.फाल्गुनी	ज्येष्ठा	रेवती
कुयोन	कृतिका, धनिष्ठा	आद्रा, पुष्य स्वाती	अनुराधा आश्लेषा	आर्द्रा पू.फाल्गुनी	मूल, मघा, भरिणी शतभिषा, रेवती	स्वती, उ.फा. उ. भाद्रपद	शतभिषा पू.षा, उ.षा, श्रवण, मघा
प्रशस्त योग	रेवती	हस्त	पुष्य	रोहिणी	स्वाती	उ.फाल्गुनी	मूल
अमृत सिद्धि	हस्त	मृगशिरा	अश्विनी	अनुराधा	पुष्य	रेवती	रोहिणी
अमृत योग	रोहिणी, उ.भा. उ.फा, उ.षा, पुष्य, हस्त मूल, रेवती	अश्विनी, रोहिणी मृगशिरा, पू.फा. उ.फा., पू.भा. हस्त, श्रवण धनिष्ठा	कृतिका, पुष्य आश्लेषा, स्वाती उ.भा., रेवती	कृतिका, रोहिणी अनुराधा, शतभिषा	पुनर्वसु, पुष्य अनुराधा, स्वाती	अश्विनि, अनुराधा श्रवण, पू.फा, उ.फा., पू.भा., उ.भाद्रपद	रोहिणी, स्वाती
सर्वार्थसिद्धि योग	अश्वनी,आश्लेषा पुष्य, हस्त, उ.भा., उ.फा, उ.आषाढ़	रोहिणी, मृगशिरा पुष्य, अनुराधा श्रवण	अश्विनी, कृतिका आश्लेषा, उ.फा.	कृतिका, रोहिणी मृगशिरा, हस्त अनुराधा	अश्विनी, पुर्नवसु अनुराधा, रेवती पुष्य	अश्विनी, पुर्नवसु अनुराधा, रेवती श्रवण	रोहिणी, स्वाती श्रवण

वार, नक्षत्र तथा तिथि के कारण बनने वाले योग -सुधा, मधुसर्पिश एवं हलाहल

↓योग	वार→	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरूवार	शुक्रवार	शनिवार
सुधा योग	नक्षत्र	पुष्य, हस्त मूल	मृगशिरा, स्वाती श्रवण	अश्विनी, रोहिणी उ.फा., उ.षा. उ.भाद्रपद	अश्विनी, पू.फा. पू.षा, पू.भा.	पुर्नवसु, पुष्य रेवती	स्वाती, शतभिषा उ.फाल्गुनी	रोहिणी, स्वाती धनिष्ठा
	तिथि	5, 7	5, 7	5, 7	5, 7	13	1, 6, 11	2, 7, 12
मधु–सर्पिश योग	नक्षत्र	हस्त	मृगशिरा	अश्विनी	अनुराधा	पुष्य	रेवती	रोहिणी
	तिथि	5	6	7	8	9	10	11
हलाहल योग	नक्षत्र	कृतिका	चित्रा	रोहिणी	भरिणी	अनुराधा	श्रवण	रेवती
	तिथि	5	2	14	7	13	6	8

साप्ताहिक वार-तिथि योग

↓योग वार→	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरूवार	शुक्रवार	शनिवार
सिद्धि योग	–	–	3,8,13, जया	2,7,12 भद्रा	5,10,15, 30 पूर्णा	1,6,11 नन्दा	4,9,14 रिक्ता
रत्नाकर योग	3,8,13 जया	1,6,11 नन्दा	4,9,14 रिक्ता	5,10,15,30	2,7,12 भद्रा	5,10,15,30	3,8,13 जया
अमृत योग	5,10,15,30	5,10,15,30	2,7,12 भद्रा	1,6,11 नन्दा	3,8,13 जया	4,9,14 रिक्ता	1,6,11 नन्दा
मृत्यु योग	1,6,11 नन्दा	2,7,12 भद्रा	1,6,11 नन्दा	3,8,13 जया	4,9,14 रिक्ता	2,7,12 भद्रा	5,10,15,30
कुलिक योग	7	6	5	4	3	2	1
संवर्त योग	7	–	–	1	–	–	–
क्रकच योग	12	11	10	9	8	7	6
दग्ध योग	12	11	5	3	6	8	9
विष योग	4	6	7	2	8	9	7
हुताशन/अग्नि जिह्वा योग	12	6	7	8	9	10	11

सूर्य तथा चन्द्र के नक्षत्रों के बीच की दूरी के कारण बनने वाले योग					
सूर्य नक्षत्र से गणना	रवि योग	अडाल योग	विडाल योग	उपग्रह दोष	विभिन्न योग
1	–	–	–	–	–
2	–	हां	–	–	–
3	–	–	हां	–	–
4	हां	–	–	–	–
5	–	–	–	हां	विद्युत
6	हां	–	हां	–	–
7	–	हां	–	–**	भूकम्पन
8	–	–	–	हां	शूलक
9	हां	हां	–	–	–
10	हां	–	हां	–**	अश्नि
11	–	–	–	–	–
12	–	–	–	–	–
13	हां	–	हां	–	–
14	–	हां	–	हां	–
15	–	–	–	–**	दण्डक
16	–	हां	–	–	–
17	–	–	हां	–	–
18	–	–	–	हां	केतु
19	–	–	–	हां	उल्का
20	हां	–	हां	–	–
21	–	हां	–	–**	–
22	–	–	–	हां	निर्घात
23	–	हां	–	हां	कुलिश
24	–	–	हां	हां	वज्र
25	–	–	–	–**	–
26	–	–	–	–	–
27	–	–	हां	–	पतन
28	–	हां	–	–	–
अभिजित की गणना	नहीं	हां	हां	नहीं	नहीं

**कुछ के अनुसार हाँ

हुए। शेष 15 नक्षत्र चतुष्पाद इसलिये कहे गये कि इनके चारों पाद एक ही राशि में हैं। राशियों को जान लेने के बाद अब द्विपुष्कर तथा त्रिपुष्कर योगों को समझते हैं। **भद्रा तिथि हो (द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी), रवि, मंगल या शनिवार दिन हो तथा द्विपाद नक्षत्र हो तो द्विपुष्कर योग** तथा **त्रिपाद नक्षत्र हों तो त्रिपुष्कर योग बनते हैं।** इनमें किये गये काम शुभफल दायक होते हैं।

रवियोग—हमने अभी देखा कि रवि पुष्य योग सिर्फ रविवार तथा गुरु पुष्य योग सिर्फ गुरुवार को बन सकते हैं। चन्द्र और सूर्य के ग्रह स्पष्ट के योग को 27 से भाग देने पर हम उस काल के योग जान सकते हैं। सूर्य और चन्द्र की पारस्परिक दूरी पर आधारित एक अन्य योग कहा जाता है, रवि योग। सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा जब **चौथे, छठे, नवें, दसवें, तेरहवें या बीसवें नक्षत्र में आते हैं तो रवि योग बनता है।** यह योग सभी अशुभ प्रभावों को नष्ट करने की शक्ति रखता है।

पंचांग में अन्य सूचनाएं भी बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। पंचांग में सवेरे 5:30 बजे ग्रह स्पष्ट के अतिरिक्त प्रत्येक दिन के पांचों महत्त्वपूर्ण ज्योतिषीय स्तंभ अर्थात तिथि, वार, नक्षत्र, करण और योग भी लिखे होते हैं। इनकी विशेष चर्चा भी हमने आगे की है। पंचांग के एक पृष्ठ पर पूरे पक्ष का वर्णन होता है। वहां दिनमान, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्र संचार के अलावा उस तिथि से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ होती हैं। जैसे किसी तिथि को कोई पर्व, त्यौहार हो, अथवा उस तिथि को ग्रह राशि/नक्षत्र परिवर्तन करे या भद्रा लगी हो आदि–आदि। इतना ही नहीं प्रत्येक पृष्ठ पर पखवारे के मध्य (अष्टमी) तथा अन्त (अमावस्या/पूर्णिमा) को सूर्योदय काल की कुण्डली भी बनी होती है। उसमें ग्रह की दैनिक गति के अतिरिक्त लिखा होता कि ग्रह उदित (उ) है या अस्त (अ)। वक्री (व) है या मार्गी (मा)। साथ ही पूरे पखवाड़े की भविष्यवाणियां भी लिखी होती हैं। इन भविष्यवाणियों का ठोस ज्योतिषीय आधार होता है। अच्छा हो यदि ध्यानपूर्वक उन्हें पढ़ा जाये क्योंकि वहां मेदिनीय ज्योतिष के बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त लिखे होते हैं। पंचांग में चन्द्रसंचार की विशिष्ट सारिणी होती है जहां चन्द्रमा के प्रत्येक नक्षत्र के प्रत्येक चरण में प्रवेश का समय लिखा होता है। इसके अतिरिक्त कितनी ही ज्योतिषीय सूचनाएँ होती हैं जिनका ठिकाना नहीं। दुर्भाग्यवश इसका कोई मानक (Standard) नहीं होने के कारण प्रत्येक पंचांग में ये सूचनाएँ एक जैसी नहीं होती। फिर भी अवकहडा चक्र (वह चक्र जिससे जन्म नक्षत्र/राशि के आधार पर जातक के गण आदि का पता चलता है) प्रत्येक पंचांग में होता है। दशम स्पष्ट सारिणी, दशा चक्र, पूतनावास आदि भी प्रायः प्रत्येक पंचांग का अनिवार्य अंग होते हैं। यात्रा, दिकशूल आदि की चर्चा भी प्रायः प्रत्येक पंचांग में होती है। इसी प्रकार हर पंचांग में षडवर्ग सारिणी भी दी हुई होती है जिससे बिना प्रयास के कुंडली के सात महत्त्वपूर्ण वर्ग बनाये जा सकते हैं।

अध्याय 16

पञ्चांग तथा मुहूर्त्त प्रकरण

यद्यपि मानव अपने आपको प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ रचना मान कर उसका अविकल दोहन करता रहता है परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है। प्रकृति का अर्थ है मेघ, वर्षा, हवा, नदी, झरने, पेड़–पौधे, सूरज, गर्मी, ताप, अग्नि, पशु–पक्षी आदि–आदि। इनमें से किसी को भी मानव की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है किन्तु मानव जीवन इनके बिना रह ही नहीं सकता। संभवतः इनमें से प्रत्येक अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है फिर भी सत्य यही है कि इन सबों का जीवन मानव की अनधिकृत दखलअन्दाज़ी के कारण असहज और प्रदूषित हुआ है। मानव ने प्रकृति का शोषण अधिकार समझ कर किया है जिसके दुष्परिणाम सामने आने ही लगे हैं। यह ग्रीन हाऊस एफेक्ट, यह जल का संकट, यह ग्लोबल वार्मिंग, सब कुछ मानव की प्रकृति से हद से अधिक छेड़छाड़ के नतीजे ही तो हैं, किन्तु प्रकृति एक सरल हृदया माता की तरह सब कुछ सहन करती है। हमारा जीवन कैसे उत्तमोत्तम हो जाये, इसी का सतत प्रयास प्रभु/ प्रकृति की ओर से होता रहता है। भारतीय जन–जीवन इसे स्वीकारता भी है, सीधे–सीधे नहीं किन्तु सदियों से मुहूर्त्त की उपादेयता पर भरोसा करके। यदि ग्रह और दशाएँ विपरीत भी हों तो भी शुभ मुहूर्त्त का उपयोग करके कोई भी स्थिति, थोड़ी बहुत ही सही, सुधारी जा सकती है। उदाहरण के लिये यदि कुण्डली में जाड्य योग या अनपढ़ रहने का योग भी हो किन्तु बच्चे का विद्यारंभ वसंत पंचमी (सरस्वती पूजा) के दिन कराया जाये तो वह पढ़–लिख अवश्य लेगा। मुहुर्त्त का उपयोग एक बहुत अच्छा उदाहरण हम वाल्मीकीय रामायण में भी पाते हैं। भगवान श्री राम अपने अनुज के साथ, माता सीता को ढूंढ़ते हुए, मरणासन्न जटायु के पास पहुँचते हैं। रावण से सीता को छुड़ाने के क्रम में जटायु बुरी तरह क्षत–विक्षत होकर प्राण त्यागने ही वाले हैं कि भगवान राम उन्हें मिल जाते हैं। तब कई बातों के साथ–साथ जटायु यह भी बताते हैं कि जिस मुहूर्त्त में रावण ने माता

सीता का अपहरण किया था, उस काल में तो अपहरणकर्त्ता का राज्य विनाश तथा उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी थे – और ठीक वैसा ही हुआ भी। मुहूर्त्त प्रकरण अगर नजदीक से देखें तो हम अवश्य ही दाँतों तले उंगली दबाने को बाध्य हो जायेंगे। चूल्हा जलाने से लेकर बीजारोपण तक के लिये हमारे पुरखों ने पाया है कि प्रकृति कब–कब अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करने को प्रस्तुत होती है। और तो और, प्रकृति के लिये जैसे साधु वैसे चोर इसीलिये शायद देवमूर्त्ति स्थापना के मुहूर्त्त के साथ–साथ चोरी करने के लिये भी उचित मूहूर्त्त बताये गये हैं। जीवन की पूर्णता के लिये ये सभी आवश्यक हैं। मुहूर्त्त जानने के बाद ही अनुभव होता है कि प्रकृति या परमात्मा हमारे जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये कितने सचेष्ट हैं।

शुद्ध मुहूर्त्त का अर्थः पहले तो यह समझना होगा कि मूहूर्त के कई कारक होते हैं और उनमें ताल–मेल बैठाना प्रायः मेढ़क तौलने जैसा ही असंभव कार्य है। फिर भी जन्म कुण्डली तथा कार्यारंभ के लिये चुने गये समय में कुछ न कुछ सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है जिसकी परिणति शुभ प्रद होती है। यह सदा याद रखना चाहिये कि सब प्रकार से शुद्ध मुहूर्त्त प्रायः असंभव है तथा सिर्फ शुभ मुहूर्त्त ही सफलता के लिये यथेष्ट नहीं है। अतः यह सारा क्रम प्रारब्ध तथा पुरुषार्थ में समन्वय करने की प्रक्रिया है फिर भी यह समझ लेना चाहिये कि मुहूर्त्त के शुभ होने का क्या मतलब है। तथा सब प्रकार से शुभ मूहूर्त्त न होने पर वैसा मुहूर्त्त कौन सा हो सकता है जिसमें कम से कम अशुभता हो – अन्यथा अशुभ मुहूर्त्त के अपवाद एवं परिहार क्या होते हैं जिनसे उसकी अशुभता कम हो सकती है। सामान्यतः अच्छे मुहूर्त्त से तात्पर्य होता है कि (1) काल शुद्धि (2) पंचांग शुद्धि (3) त्रिबल शुद्धि (4) तारा बल तथा (5) लग्न शुद्धि के अधिकांश पहलू शुद्ध हों। इन्हें हम एक–एक करके समझते हैं।

(1) काल शुद्धिः काल शुद्धि से तात्पर्य है, वर्ष, अयन, ऋतु, सौर/ चन्द्र मास तथा पक्ष शुद्धि – ये सब पंचांग में लिखे होते हैं कि किस कार्य के लिये कौन सा ऋतु, मास, पक्ष आदि शुभ हैं तथा कौन सा काल अशुभ। इसके अतिरिक्त काल शुद्धि के अन्तर्गत कार्य विशेष के लिये वर्जित काल का भी ध्यान रखना पड़ता है। मुहूर्त्त के समय का लग्न, अन्य वर्गों में ग्रहों की स्थिति, कार्य विशेष के लिये कारक ग्रह की शक्ति आदि सारे तत्त्वों को ध्यान में रखकर ही काल शुद्धि समझी जा सकती है। सच पूछा जाये तो काल शुद्धि बड़ा वृहद् विषय है और सामान्य उपयोग के लिये पंचांग में दी गई सूचनाओं को आधार बनाना ही यथेष्ट है।

(2) पंचांग शुद्धिः हम पंचांग के महत्त्व से परिचित हैं ही, पंचांग के पांचों तत्त्वों (तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण) की शुद्धि आवश्यक है क्योंकि किसी भी मुहूर्त्त के आधारभूत तत्त्व ये ही हैं। पंचांग पर विशेष सामग्री आगे के अध्याय में दी जा रही है।

(3) त्रिबल शुद्धिः हम समझ चुके हैं कि मुहूर्त्त दरअसल किसी आने वाली घटना का शिलान्यास है। अच्छा मुहूर्त्त अर्थात् अच्छा बीजारोपण – कोई विशेष समय जहां एक जातक के जीवन में सफलताएँ ला सकता है वहीं वह समय दूसरे जातक के जीवन में कष्टकारी हो सकता है क्योंकि प्रत्येक जातक के जन्म समय में ग्रहों की स्थिति एक जैसी नहीं रहती। नौ ग्रहों में माना गया है कि सूर्य आत्मा, चन्द्रमा मानस तथा गुरु विवेक के कारक हैं। त्रिबल शुद्धि में इन्हीं तीनों की शुद्धता की परख, जन्म चन्द्रमा के आधार पर, की जाती है। इनका विशेष उपयोग विवाह तथा उपनयन में होता है। कई विद्वान मुहूर्त्त विशेष में इन ग्रहों का गोचर अष्टक वर्ग (विशेष तौर से भिन्नाष्टक की कक्षाओं) में देखने की अनुशंसा करते हैं। त्रिबल शुद्धि पर चर्चा विवाह प्रकरण में की गयी है।

(4) तारा बलः हम तारा बल पर चर्चा पहले ही कर चुके हैं कि किसी मुहूर्त्त में गोचर का चन्द्रमा जन्म कालीन चन्द्रमा से विपत, प्रतिहरि तथा वध नक्षत्र में न हो।

(5) लग्न शुद्धिः मूहूर्त्त निकालते समय उस काल विशेष की कुण्डली बनायी जाती है। ज्योतिसार नामक ग्रन्थ में चर्चा आयी है कि मुहूर्त्त कुण्डली का लग्न 'जीव' या 'प्राण' है, चन्द्रमा है मन तथा तिथि–नक्षत्र आदि मुहूर्त्त के शरीर हैं। अच्छे फल की प्राप्ति के लिये अच्छा जीव तत्त्व तो होना ही चाहिये। यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि नारद, गर्ग, कश्यप आदि अनेक ऋषियों ने लग्न शुद्धि को पंचांग के सभी अंगों से अधिक महत्त्व दिया है। यह भी सत्य है कि सभी ऋषियों ने लग्न शुद्धि तथा चन्द्रमा की शुद्धि को विशेष महत्त्व दिया है। सूक्ष्म मुहूर्त्त की गणना के लिये षड़वर्गों में भी शक्ति का होना आवश्यक है, विशेष तौर से नवांश में शुभ ग्रह शुभ भावों में तथा अशुभ ग्रहों का 6,8,12 वें भावों में होना आवश्यक माना गया है। ऐसी भी मान्यता है कि सर्वाष्टक वर्ग में जिस राशि में सर्वाधिक शुभ बिन्दु हों वह जातक के लिये सर्वाधिक शुभ होगा अर्थात् वह लग्न अच्छा होगा।

इस प्रकार मुहूर्त्त निर्धारण में इतने सारे तत्त्वों को मिला कर उनमें यथासंभव समन्वय कराना पड़ता जो प्रायः असंभव सा कार्य है। किन्तु पंचांग में जो भी मुहूर्त्त दिये जाते हैं, उनमें अधिक से अधिक तत्त्वों की शुद्धता का ध्यान रखा जाता है और जो कम से कम अशुभ/ हानिकारक समय हो तथा जिसमें परिहार या उपाय संभव हो, वही चुना जाता है। हां, लग्न शुद्धि (नवांश शुद्धि सहित) त्रिबल शुद्धि, तारा बल शुद्धि तथा पंचांग शुद्धि पर विशेष बल दिया जाता है। तब, जब हम शुभ मुहूर्त्त का निर्धारण करते होते हैं ज्योतिषी को भी इसी क्रम को ध्यान में रखना चाहिये। अर्थात् पहले ऐसी कई तिथियां निकाल लेनी चाहिये जब जन्म कालीन चन्द्रमा से गोचर के चन्द्रमा 4,8,12 में न पड़ रहे हों। इनमें से अब पंचांग के आधार पर, कार्य विशेष के लियं, अनुमोदित तिथियों को छांट लेना चाहिये। यदि इन तिथियों को अमृत सिद्धि,

सर्वार्थ सिद्धि, रवि पुष्य, गुरु पुष्य आदि जैसे योग भी बन रहे हों तो वह श्रेष्ठ जानना चाहिये। ऐसी तिथि में उचित लग्न चुनना श्रेयस्कर होगा।

जब इतने सारे तत्त्वों का ख्याल रखकर लग्न चुना जाता है तो स्वाभाविक है कि यह जानना चाहिये कि किस बात को कितना महत्त्व दिया जाये। विवाह प्रकरण अध्याय, नारद संहिता में बताया गया है :

''गोचरं व वेधजं चाष्टवर्गरुपजं बलम्।।
यथोत्तरं बलाधिक्यं स्थूलं गोचरमार्गजम्।।14।।

चन्द्र तारा बलं वक्ष्यि ग्रह पश्वांगजं बलम्।।
तिथिरेकगुणा वारो द्विगुणस्त्रिगुणं च मम्।।15।।

योगश्चतुर्गणः पंचगुणं तिथ्यर्धसंज्ञकम्।।
ततो मुहूर्त्ते बलवाँस्ततो लग्नं बलाधिकम्।।16।।

ततोऽति बलिनी होरा द्रेष्काणोतिबली ततः।।
ततो नवांशो बलवान द्वादशांशोबली ततः।।17।।

त्रिशांशो बलवांस्तस्माद्वीक्षते तद्ब्लाबलम्।।
शुभयुक्तेक्षिताः शस्ता विवाहेऽखिलराशयः।।18।।''

अर्थात् ''गोचर का बल, वेध न हो वैसी स्थिति, अष्टकवर्ग का बल, ये उत्तरोत्तर बली होते हैं। गोचर देखने का (मुहुर्त्त लग्न का) यह स्थूलबल है। चन्द्र बल, तारा बल, ग्रह बल, पशुओं के शकुन का बल तथा अंग के स्फुरण को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है क्योंकि ये मुहूर्त्त को शुभ या अशुभ बनाने में सहायक होते हैं। तिथि एक गुणा बल करते हैं (इनका उसी क्रम में महत्त्व समझना चाहिये) दो घड़िया मुहूर्त्त (इसे आगे समझाया गया है) इन सबसे बली और उससे भी बली लग्न है। लग्न से बली होरा, होरा से बली द्रेष्काण, उससे बली नवांश, नवांश से बली द्वादशांश तथा उससे बली त्रिशांश हैं। विवाह में सभी राशियां शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट होने पर शुभ होती हैं।''

इतना याद रखना कठिन नहीं परन्तु व्यवहार में, जैसा पहले बताया गया है, पंचांग शुद्धि के अतिरिक्त लग्न शुद्धि का विचार रखना ही यथेष्ठ होता है।

दो घड़िया मुहूर्त्तः हम जानते हैं कि भारतीय पद्धति में दिन का अर्थ सूर्योदय से सूर्यास्त तथा रात का अर्थ सूर्यास्त से सूर्योदय है – दिन और रात मिलकर 60 घटी होते हैं। प्रत्येक दिन या रात में प्रायः 30 घटी हुए जो बहुत स्थूल गणना हैं। इनमें दो घटियों (48 मिनट) को एक मुहूर्त्त कहा गया जिसे आगे बताया गया है। इसमें दिये गये तथ्य नारद संहिता/ नारद पुराण पर आधारित हैं।

दिन					रात्रि			
क्रम	मुहूर्त्त का नाम	स्वामी नक्षत्र	पौराणिक नाम	शुभ/ अशुभ	मुहूर्त्त का नाम	स्वामी नक्षत्र	पौराणिक नाम	शुभ/ अशुभ
1	शिव	आर्द्रा	रुद्र	अशुभ	शिव	आर्द्रा	रुद्र	अशुभ
2	सर्प/उग्र	आश्लेषा	चैत्र	अशुभ	अजैकपाद	पू.भा	गन्धर्व	अशुभ
3	मित्र	अनुराधा	सीता	शुभ	अहिरबुधन्य	उ.भा.	यक्षेश	सम
4	पितर	मघा	मैत्र	अशुभ	पूषा	रेवती	अरुण	सम
5	वसु	धनिष्ठा	सवित्र	सम	अश्विनी कुमार	अश्विनी	मारूत	सम
6	जल	पूर्वाषाढ़ा	वैराज्ञ	शुभ	यम	भरणी	अनल	सम
7	विश्वकर्मा	उ.आषाढ़ा	गन्धर्व	सम	अग्नि	कृतिका	राक्षस	अशुभ
8	ब्रह्मा/ विधाता	अभिजित	अभिजित	शुभ	ब्रह्मा/	रोहिणी	धाता	अशुभ
9	ब्रह्मा/ विधाता	रोहिणी	राहुशीष	शुभ	चन्द्र	मृगशिरा	सौम्य	शुभ
10	इन्द्र	ज्येष्ठा	बल	सम	अदिति	पुनर्वसु	पद्मजा	शुभ
11	इन्द्राग्नि	विशाखा	विजय	अशुभ	बृहस्पति	पुष्य	वाक्पति	शुभ
12	राक्षस/ नैऋति	मूला	नैभृति	अशुभ	विष्णु	श्रवण	पूषा	शुभ
13	वरुण	शतभिषा	इन्द्र	शुभ	सूर्य	हस्ता	हरि	शुभ
14	अर्यमा	उ.फा.	जलेश्वर	सम	विश्वकर्मा/ त्वष्ठा/पवन	चित्र	वायु	सम
15	भग	पू.फा.	भग	अशुभ	पवन	स्वाती	नैऋति	सम

दो घड़िया मुहूर्त्त को व्यवहार करने का तरीका बड़ा सरल है। मान लीजिये कि किसी व्यक्ति का जन्म पूर्वभाद्रपद है। उसके लिये शतभिषा अधिमित्र नक्षत्र हुआ। अब उसे ऐसा कार्य करना है (जैसे नयी गाड़ी पर पहली बार चढ़ना) जिसे चर–चल नक्षत्र में किया जा सकता है। शतभिषा इस प्रकार दोंनो दृष्टिकोणों से शुभ हुआ क्योंकि शतभिषा चर–चल नक्षत्र होने के अतिरिक्त जातक के लिये अधिमित्र भी है। संयोग से उस दिन सोमंवार भी पड़े (चर–चल वार) तो सोने पे सुहागा हो जाये परन्तु मुसीबत यह है कि शतभिषा नक्षत्र दो सप्ताह के बाद आने वाला है तब जातक क्या करे ? तब शास्त्र कहते हैं कि किसी भी दिन वह दो घड़िया मुहूर्त्त देख ले जब

शतभिषा स्वामी हो अर्थात् वरुण मुहूर्त्त का चयन सबसे अच्छा होगा। करना यह होगा कि सूर्योदय से सूर्योस्त के काल को 15 बराबर भागों में बांट कर तेरहवें अंश में यह शुभ कार्य सम्पन्न कराया जा सकेगा।

यह सब जानने के बाद थोड़ा समय लग्न शुद्धि सीखने में भी लगाते हैं।

लग्न शुद्धिः- जैसा हमने विवाह के संदर्भ में नारद संहिता के उद्धरण में देखा, लग्न शुद्धि बहुत महत्त्वपूर्ण है – यद्यपि इसकी पूरी प्रक्रिया बहुत उलझी हुई है पर इसका एक सरल स्वरूप आगे बताने का प्रयास किया जा रहा है। सबसे पहले तो यह स्पष्ट होना चाहिये कि प्रत्येक राशि का निश्चित कारकत्व होता है और कार्य विशेष के लिये निश्चित किये गये समय में चन्द्रमा का वैसी राशि में होना आवश्यक होता है। लेकिन लग्न के बारे में आम धारणा है कि :

1. लग्न शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक या कुंभ) हो तो शुभप्रद हैं।
2. लग्नेश नैसर्गिक शुभ ग्रह हों तथा शुभ वर्गों में हों तो अच्छा है।
3. लग्नेश न तो वक्री हों न अतिचारी।
4. लग्न में बली शुभ ग्रह हों, जिनपर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो और भी अच्छा है।
5. लग्न में न तो अशुभ ग्रह हों ना ही उनपर अशुभ दृष्टि हो तो उत्तम है।
6. लग्न से केन्द्रों में शुभ ग्रह हों तो अच्छा है। त्रिकोण में शुभ ग्रहों का होना भी उचित माना गया है।
7. त्रिषडाय घरों में अशुभ ग्रह ठीक रहते हैं – हां एकादश भाव में बैठे शुभ ग्रह अच्छे माने गये हैं।
8. अष्टम और द्वादश भावों में ग्रहों का ना होना ही शुभ है।
9. यदि लग्नेश पाप ग्रह होकर त्रिषडाय भावों में चले गये हों तो भी शुभ है – ये सारी अशुभता का नाश कर देते हैं।
10. लग्न में यदि उच्च के ग्रह बैठे हों तो वे भी दोषों का नाश कर देते हैं।

मुहूर्त्त निर्धारण सम्बन्ध में एक अन्य बात कही गयी है कि विवाह, यात्रा, यज्ञोपवीत, गृहारंभ, गृह प्रवेश तथा दीक्षा के समय में क्रमशः – सप्तम, अष्टम, पंचम, दशम, चतुर्थ तथा द्वादश भाव में कोई भी ग्रह न हो तो लग्न शुद्ध माना जाता है। एक सामान्य नियम यह भी है कि किसी भी शुभ कार्य में अष्टम भाव ग्रह विहीन होना चाहिये।

सामान्यतः मुहूर्त्त लग्नेश का वक्री, अस्तंगत, शत्रुक्षेत्री, ग्रह युद्ध में पराजित अथवा नीचस्थ होना मुहूर्त्त में अशुभता का परिचायक है।

इसी प्रकार लग्नेश का छिद्र ग्रहों से सम्बन्ध (अष्टमेश, चन्द्रमा से 64वें नवांश के स्वामी, 22वें द्रेष्काण के स्वामी, अष्टम में बैठे ग्रह, अष्टमेश के साथ बैठे ग्रह, अष्टम भाव पर दृष्टि डालने वाले ग्रह तथा अष्टमेश के अधिशत्रु छिद्र ग्रह कहे जाते हैं) भी मुहूर्त्त को दोष युक्त कर देता है। चन्द्रमा का 6,8 या 12वें भाव में होना भी मुहूर्त्त लग्न का सत्यानाश कर देता है। कुछ विद्वान तो चन्द्रमा का लग्न में होना भी मुहूर्त्त के लिये उचित नहीं मानते। अन्य मत से कर्क, मेष या वृषभ लग्न में बैठे

चन्द्रमा स्वीकार्य होते हैं। लग्नेश का 5,8,12वें भाव में जाना भी अशुभप्रद कहा गया है। यदि मुहूर्त्त का लग्न पापकर्त्तरी योग में पड़े तो कष्टदायक कहा गया है। मुहूर्त्त कुण्डली के नवांश को भी काफी महत्त्वपूर्ण माना गया है। ऐसा कहा गया है कि प्रायः वे सभी नियम, जो मुहूर्त्त कुण्डली के लिये मान्य हैं, उन्हें मुहूर्त्त नवांश कुण्डली में भी अवश्य लगाना चाहिये।

वार

क्रम	वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
1	स्वभाव	ध्रुव/स्थिर	चर/चल	उग्र/क्रूर	मिश्र/ साधारण	क्षिप्र/लघु	मृदु/मैत्र	तीक्ष्ण/ दारुण
2	स्वामी	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
3	देवता	शिव	दुर्गा	कार्तिकेय	विष्णु	ब्रह्मा	इन्द्र	काल/यम
4	अधिदेवता	अग्नि	जल	पृथ्वी	हरि	इन्द्र	इन्द्राणी	ब्रह्मा
5	वर्जित कार्य	उबटन लगाना	मांस भक्षण मुण्डन ऋण लेना	ऋण देना मैथुन	—	—	मांस भक्षण	
6	दिक् शूल	पश्चिम (दिन में)	पूर्व (रात में)	उत्तर (रात में)	उत्तर (दोनों में)	दक्षिण (दिन में)	पश्चिम (दिन में)	पूर्व (रात में)
7	यात्रा से पूर्व खाने की वस्तु	मक्खन	दूध	गुड	तिल	दही	जौ	उडद की दाल
8	यात्रा शुद्धि के लिये भोजन/दान	चावल, पान, सुपारी	चंदन	अन्न तथा फूल	मन्त्र जाप	शिवाराधना	सफेद वस्त्र	तैल स्नान
9	सूर्योदय के बाद अमृत घटी	40–44	56–60	48–52	50–54	53–57	55–59	35–39
10	सूर्योदय के बाद विष घटी	21–24	3–6	13–16	11–14	8–11	7–10	26–29
11	वार राहु	पश्चिम	अग्नि	वायव्य	उत्तर	दक्षिण	नैऋत्य	ईषान
12	राहु काल	8/8	2/8	7/8	5/8	6/8	4/8	3/8
13	गुलिक दिवा रात्रि	7/8 3/8	6/8 2/8	5/8 1/8	4/8 7/8	3/8 6/8	2/8 5/8	1/8 4/8
14	विभिन्न	मेष	मिथुन	मकर	कर्क	वृषभ तुला, कुंभ	वृश्चिक धनु, मीन	वृषभ सिंह,कन्या

वार का प्रभाव नक्षत्र से अधिक होने के कारण वार के देवता की पूजा का महत्त्व नक्षत्र के देवता की पूजा से अधिक है। एक बात याद रखनी चाहिये कि वार का स्वभाव तथा नक्षत्र का स्वभाव एक हो। जैसे दोनों मृदु/मैत्र – उग्र/क्रूर आदि हों तथा वार के स्वामी ग्रह मुहूर्त्त के समय शुभ राशि, शुभ भावों में हों तो अच्छा होता है। दिन में चौघड़िया/ दोघड़िया मुहूर्त्त ठीक होना चाहिये। और अन्त में, रवि, मंगल और शनिवार के दोष मध्याह्न के बाद समाप्त हो जाते हैं। वारेश पाप ग्रह होकर 6,11, या 12वें भाव में हो शुभप्रद होते हैं।

योग

पंचांग में योग दो प्रकार से बनते हैं जिन्हें क्रमशः नैसर्गिक और तात्कालिक कहा जाता है। इस समय हम 27 नैसर्गिक योगों की चर्चा कर रहे हैं जो सूर्य तथा चन्द्रमा के भोगाशों पर आधारित होते हैं।

क्रम	योग	देवता	शुभ/ अशुभ	क्रम	योग	देवता	शुभ/ अशुभ
1	विषकुंभ	यम	अशुभ	2	आयुष्यमान	विष्णु	शुभ
3	प्रीति	चन्द्रमा	शुभ	4	सौभाग्य	ब्रह्मा	शुभ
5	शोभन	बृहस्पति	शुभ	6	अतिगण्ड	चन्द्रमा	अशुभ
7	सुकर्मा	इन्द्र	शुभ	8	धृति	जल	शुभ
9	शूल	सर्प	अशुभ	10	गण्ड	अग्नि	अशुभ
11	वृद्धि	सूर्य	शुभ	12	ध्रुव	भूमि	शुभ
13	व्याघात	वायु	अशुभ	14	हर्षण	भग	शुभ
15	वज्र	वरूण	अशुभ	16	सिद्धि	गणेश	शुभ
17	व्यतिपात	रूद्र	अशुभ	18	वरियान	कुबेर	शुभ
19	परिघ	विश्वकर्मा	अशुभ	20	शिव	मित्र	शुभ
21	सिद्ध	कार्तिकेय	शुभ	22	साध्य	सावित्री	शुभ
23	शुभ	लक्ष्मी	शुभ	24	शुक्ल	लक्ष्मी	शुभ
25	ब्रह्मा	अश्विनी कुमार	शुभ	26	इन्द्र	पितर	शुभ
27	वैधृति	दिति	अशुभ				

मुहूर्त्त के चुनाव में नैसर्गिक योगों को बहुत अधिक महत्त्व देने की परिपाटी नहीं है किन्तु अशुभ योगों को त्यागने की बात बार–बार कही गयी है। 27वें तथा

17वें योग (वैधृति तथा व्यतिपात) सबसे बुरे कहे गये और इन्हें पूरी तरह त्याज्य माना गया। यहां एक बात देखने की है कि इन्हें निकालने के लिए सूर्य और चन्द्रमा के निरयन भोगांशों के योग में 13°20' से भाग देकर लब्धि को गत योग माना जाता है परन्तु पंचांग में एक अन्य चर्चा आती है, **वैधृति महापात** तथा **व्यतिपात महापात** की! ये दरअसल तब बनते हैं जब सूर्य तथा चन्द्रमा के सायन भोगांशों का योग क्रमशः 360° तथा 180° हो जाता है। इनका ऊपर क़ी सारणी में दिये गये नैसर्गिक योग से कुछ भी लेना देना नहीं होता।

वापस सारणी की ओर चलते हैं। योग संख्या 1,6,9,10,13,15 तथा 19 के क्रमशः प्रारंभ के बाद 3,6,5,6,9,3 तथा 30 घटियां त्याज्य माने गये हैं।

एक अच्छा ज्योतिषी नैसर्गिक योग का व्यवहांर चतुराई से कर पाता है। मान लीजिये कि श्रवण नक्षत्र हो (जिसके स्वामी विष्णु हैं) तथा आयुष्मान (2), शुभ (23) या शुक्ल (24) योग पड़ जाये (जिसके स्वामी क्रमशः विष्णु, लक्ष्मी तथा लक्ष्मी हैं) तो सोने में सुहागा हो जाये !

अब थोड़ा 28 तात्कालिक योग भी समझते हैं जो किसी नक्षत्र के वार विशेष में योग से बनते हैं। इन्हें आगे सारणी बद्ध किया गया है। इनमें 13 अशुभ तथा 15 शुभ कहे गये हैं। अशुभ तात्कालिक योगों में भी कालदण्ड (2), उत्पात (16), मृत्यु (17) तथा राक्षस (25) घोर अशुभ हैं। ये पूरी तरह त्याज्य है। अन्य अशुभ तात्कालिक योगों के नाम क्रमशः धूम्र (3), ध्वंसक (6), वज्र (9), मुद्गर (10), पद्म (14), लुम्ब (15), कान (18), मूसल (22) तथा अन्तक (23) हैं। धूम्र (3) की पहली घटी, ध्वंसक (6), वज्र (9) तथा मुद्गर (10) की प्रथम पांच घटी, पद्म (14) तथा लुम्ब (15) की प्रथम चार घटी, कान (18) एवं मूसल (22) की प्रथम दो घटी तथा अन्तक (23) की अंतिम सात घटी त्याज्य है। शास्त्रों में मुहूर्त्त प्रकरण में नैसर्गिक योगों को तात्कालिक योगों से बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है।

करण

तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं। जैसा कि हम जानते हैं, पूरे मास में 30 तिथियां होती हैं अतः करण 60 हुए। इनमें चार करण स्थिर होते हैं जिनके नाम हैं क्रमशः शकुनि, चतुष्पाद, नाग तथा किंस्तुघ्न। शकुनि कृष्ण पक्ष चतुर्दशी का दूसरा हिस्सा है। चतुष्पाद तथा नाग अमावस्या तिथि के ही दो करण हैं। किंस्तुघ्न शुक्ल पक्ष प्रतिपदा का पहला करण है। ये चारों करण पितृ कार्य को छोड़कर सामान्यतः प्रत्येक कार्य के लिए अशुभ माने गये । बच गये 56 करणों में सात करणों का एक चक्र अपने आपको आठ बार दुहराता है। इन सात करणों के नाम

हैं क्रमशः बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज और विष्टि। इनमें विष्टि करण को अशुभ माना गया है, शेष छः करण शुभ कहे गये। इस प्रकार एक माह में आठ बार विष्टि और चार बार स्थिर करण अर्थात् बारह बार अशुभ और अडतालीस बार शुभ करण मिलते हैं। इन करणों के स्वामियों की सारणी आगे दी गयी है।

करण ज्ञात करने का सरल तरीका है कि तिथि संख्या में एक घटा कर 2 से गुणा करके सात से भाग दें। शेष फल उस तिथि का पहला करण होगा। मसलन शुक्ल पक्ष की पंचमी देखते है। {(5-1) x 2} ÷ 7; 8÷7; शेषफल 1 है अतः पंचमी तिथि को पहला करण बव हुआ। यह नियम कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दूसरे करण से प्रारंभ करके शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के पहले करण तक नहीं लगता क्योंकि इन दिनों चार स्थिर करण होते हैं। इसी प्रकार अगर कृष्ण पक्ष की पंचमी देखनी हो तो वह तिथि हुई 20वीं। {(20-1) x 2} ÷ 7; 38÷7; शेष फल 3 बचा अर्थात् तीसरा करण हुआ कौलव। करणों की सारणी में देखेंगे कि कृष्ण पक्ष की पंचमी का पहला करण कौलव है।

मुहूर्त्त प्रकरण की चर्चा विष्टि करण के बिना अधूरी रहती है। विष्टि करण का अधिक प्रचलित नाम 'भद्रा' है। भद्रा माह में आठ बार आती है। यह सबसे अशुभ करण मानी जाती है। किन्तु भद्रा का निवास अलग–अलग लोकों में माना जाता है जो चन्द्रमा की राशि पर निर्भर करता है। इसे नीचे की सारणी में बताया गया है।

भद्रा लोक वास सारणी			
लोक वास	पाताल	स्वर्ग	पृथ्वी
चन्द्रमा की राशि	6,7,9,10	1,2,3,8	4,5,11,12
भद्रा मुख	अधोमुख	ऊर्ध्वमुख	सम्मुख

भद्रा के बारे में कहा जाता है कि उसका बुरा असर वहीं पड़ता है जहां उसका वास होता है। अर्थात् जब चन्द्रमा कर्क, सिंह, कुंभ या मीन राशि में हो तथा भद्रा लगी हो तो पृथ्वी पर उसका बुरा असर होता है। अन्यथा किसी अन्य राशि में चन्द्रमा के होने पर भद्रा लगी हो तो उसका पृथ्वी पर बुरा असर नहीं होता।

भद्रा और यात्रा– ऐसा माना जाता है कि भद्रा में सामान्यतः यात्रा वर्जित है। फिर भी यदि भद्रा के दौरान यात्रा अत्यावश्यक हो जाये तब जिस दिशा में भद्रा का वास हो, उधर की यात्रा नहीं करनी चाहिये। भद्रा का वास तिथि पर निर्भर करता है।

तालिका 1

क्रम	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
करण	बव	बालव	कौलव	तैतिल	गर	वणिज	विष्टि/भद्रा	शकुनी	चतुष्पाद	नाग	किंस्तुघ्न
स्वामी	इन्द्र	ब्रह्मा	मित्र	विश्वकर्मा	भूमि	लक्ष्मी	यम	कलि	रुद्र	सर्प	मरुत
शुक्ल पक्ष की तिथियां	5,12 पूर्वार्ध	2,9 पूर्वार्ध	6,13 पूर्वार्ध	3,10 पूर्वार्ध	7,14 पूर्वार्ध	4,11 पूर्वार्ध	8,15 पूर्वार्ध				1 पूर्वार्ध
	1,8,15 उत्तरार्ध	5,12 उत्तरार्ध	2,9 उत्तरार्ध	6,13 उत्तरार्ध	3,10 3	7,14 3	4,11 3				
कृष्ण पक्ष की तिथि	4,11 पूर्वार्ध	1,8	5,12	2,9	6,13	3,10	7,14		30 पूर्वार्ध		
		4,11	1,7,8	5,12	2,9	6,13	3,10	14 उत्तरार्ध		30 उत्तरार्ध	

भद्रा दिशा वास								
तिथि	3	4	7	8	10	11	14	15
भद्रा दिग्वास	ईशान	पश्चिम	दक्षिण	आग्नेय	वायव्य	उत्तर	पूर्व	नैऋत्य

भद्रा के बारे में एक और बात जानने योग्य है, वह है भद्रा के अंग। भद्रा यदि 30 घटी हो तो उस 30 घटी का भद्रा के अंगों में विभाजन नीचे की सारणी में बताया गया है।

घटी	5	1	11	4	6	3
भद्रांग	मुख	गर्दन	वक्षःस्थल	नाभि	कमर	पुच्छ
फल	कार्यनाश	मृत्यु	द्रव्यनाश	कलह	बुद्धिनाश	कार्यसिद्धि

कृष्ण पक्ष की भद्रा को वृश्चिक तथा शुक्ल पक्ष की भद्रा को सर्पिणी कहा जाता है। वृश्चिक की पूंछ तथा सर्प के मुंह में विष होता है। इसलिये इन्हें त्यागा जाता है। इस प्रकार कृष्ण पक्ष की भद्रिका की पूंछ तथा शुक्ल पक्ष की भद्रिका का मुख विशेष रूप से त्यागना चाहिये।

भद्रा का जन्म– ऐसा कहा जाता है कि दानवों के नाश के लिये भगवान शंकर की रौद्र दृष्टि पड़ने से देवताओं के शरीर से भद्रादेवी का जन्म हुआ। इनका वर्णन बड़ा विचित्र है। गर्दभ मुख, तीन चरण, सप्तभुजा, कृष्ण वर्ण, बड़े–बड़े दांतों वाली तथा प्रेत की सवारी करने वाली भद्रा देवी जो मुख से आग उगलती थी, उसने दानवों का नाश कर दिया। उनसे प्रसन्न होकर देवताओं ने उन्हें भद्रा देवी का नाम दिया तथा वह शंकर जी के कानों की शोभा बनकर करणों में स्थापित हो गयीं।

भद्रा में किये जाने/ न किये जाने वाले कार्य– बाँधना, कैद करना, विष देना, अग्नि लगाना, अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग, काटना, उच्चाटन आदि कार्य करने चाहिये। वैवाहिक मांगलिक कार्य, यात्रा, गृहारंभ, गृह प्रवेश, यज्ञोपवीत आदि वर्जित हैं।

नक्षत्र तालिका

नक्षत्र	शुभ/ अशुभ	आकार प्रवृति	दृष्टि	आंखें	विषघटी	स्वामी	कुल-अकुल कुलाकुल	तिथि शून्य	मास शून्य	लिंग	गोत्र	तत्व
अश्विनी	शुभद	लघु	त्रियंग्	मन्दाक्ष	51–54	अश्विनी	कुल	–	चैत्र/पौष	पुरुष	मारीची	पृथ्वी
भरणी	नाषक	उग्र	अघो	मध्याक्ष	25–28	यम	अकुल	–	फाल्गुन	स्त्री	वशिष्ठ	पृथ्वी
कृतिका	कार्य–नाश	मिश्र	अघो	सुलोचन	31–34	अग्नि	कुल	नवमी	कृतिका	पुरुष	अंगिरा	पृथ्वी
रोहिणी	सिद्धि	ध्रुव	उर्ध्व	अंधाक्ष	41–44	ब्रह्मा	अकुल	6, 11	चैत्र	पुरुष	अंगिरा	पृथ्वी
मृगशिरा	शुभ	मृदु	त्रियंग	मन्दाक्ष	15–18	चन्द्र	कुल	–	–	नपुंसक	पुलत्स्य	पृथ्वी
आर्द्रा	शुभ	तीक्ष्ण	उर्ध्व	मध्याक्ष	22–25	रुद्र	कुलाकुल	–	पौष	स्त्री	पुलष	जल
पुनर्वसु	मध्य	चर	त्रियंग	सुलोचन	31–34	अदिति	अकुल	–	–	पुरुष	कृतु	जल
पुष्य	शुभ	लघु	उर्ध्व	अंधाक्ष	21–23	गुरु	.कुल	–	ज्येष्ठा	पुरुष	मारीची	जल
आश्लेषा	शोक	तीक्ष्ण	अधो	मन्दाक्ष	33–36	र्प	अकुल	12	–	स्त्री	वशिष्ठ	जल
मघा	नाशक	उग्र	उर्ध्व	मध्याक्ष	31–34	पितर	कुल	5	कृतिका	पुरुष	अंगिरा	जल
पू.फा.	मृत्यु प्रद	उग्र	अधो	सुलोचन	21–24	भग	कुल	–	अषाढ़	स्त्री	अत्रि	जल
उ.फा.	विद्या प्रद	ध्रुव	उर्ध्व	अंधाक्ष	19–22	अर्यमा	कुल	1,3	–	स्त्री	पुलत्स्य	अग्नि
हस्ता	लक्ष्मी	लघु	त्रियंग	मन्दाक्ष	22–25	सूर्य	अकुलु	7	–	पुरुष	पुलष	अग्नि
चित्र	शुभदा	मृदु	त्रियंग	मध्याक्ष	21–24	विष्णु	कुल	13	वैशाख, मार्गशीर्ष	स्त्री	कृतु	अग्नि
स्वाती	अशुभ	चर	त्र्यिंग	सुलोचन	15–18	वायु	अकुल	13	वैशाख	स्त्री	मारीची	अग्नि

नंक्षत्र तालिका

नक्षत्र	शुभ/ अशुभ	आकार प्रवृति	दृष्टि	आंखें	विषघटी	स्वामी	कुल-अकुल कुलाकुल	तिथि शून्य	मास शून्य	लिंग	गोत्र	तत्व
विशाखा	अशुभ	मिश्रित	अधो	अंधाक्ष	15–18	इन्द्राग्नि	कुल	–	मार्गशीर्ष	स्त्री	वशिष्ठ	अग्नि
अनुराधा	सर्वसिद्धि	मृदु	त्रियंग	मन्दाक्ष	11–14	मित्र	अकुल	2	–	स्त्री	अंगिरा	वायु
ज्येष्ठा	क्षयप्रद	तीक्ष्ण	त्रियंग	मध्याक्ष	15–18	इन्द्र	कुल	–	फाल्गुन	नपुंसक	अत्रि	वायु
मूला	हानि प्रद	तीक्ष्ण	अधो	सुलोचन	57–60	राक्षस	कुलाकुल	7	माघ	स्त्री	पुलत्स्य	वायु
पू.आषाढ़	हानि	उग्र	अधो	अंधाक्ष	25–28	जल	कुल	–	–	स्त्री	पुलष	वायु
उ.आषाढ़	वृद्धि	ध्रुव	उर्ध्व	मन्दाक्ष	21–24	विश्वदेव	अकुल	3	ज्येष्ठा/श्रवण	स्त्री	कृतु	वायु
श्रवण	सुखद	चर	उर्ध्व	सुलोचन	11–14	विष्णु	कुल	–	श्रवण/मघा	नपुंसक	वशिष्ठ	वायु
धनिष्ठा	शुभदा	चर	उर्ध्व	अंधाक्ष	11–14	वसु	अकुल	–	अषाढ़	पुरुष	अंगिरा	आकाश
शतभिषां	कल्याण	चर	उर्ध्व	मन्दाक्ष	19–22	वरुण	कुलाकुल	–	भाद्रपद	पुरुष	अत्रि	आकाश
पू.भाद्रपद	मृत्युदा	उग्र	उर्ध्व	मध्याक्ष	17–20	एकपदअज	कुल	8	अश्विन	पुरुष	पुलत्स्य	आकाश
उ.भाद्रपद	लक्ष्मी	ध्रुव	उर्ध्व	सुलोचन	25–28	अहिर्बुधन्य	अकुल	3	–	पुरुष	पुलष	आकाश
रेवती	कामदा	मृदु	त्रियंग	अंधाक्ष	31–34	पूषा	अकुल	–	भाद्रपद	स्त्री	कृतु	आकाश
अभिजित	सिद्ध	लघु	उर्ध्व	मध्याक्ष	–	ब्रह्मा	कुलाकुल	–	–	–	मारीचि	–

नोटः एक पाद अज और अहिर्बुधन्य, जो क्रमशः पूर्वभाद्रपद तथा उत्तर भाद्रपद के स्वामी हैं, भगवान शंकर के नाम है।

तिथि चक्र

तिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	30
स्वभाव	वृद्धि प्रद	मंगल प्रद	बला प्रद	खल प्रद	लक्ष्मी प्रद	यष प्रद	मित्र प्रद	द्वन्द प्रद	उग्र प्रद	सौम्य प्रद	आनन्द प्रद	यश प्रद	जय प्रद	उग्र प्रद	सोम्य प्रद	मित्र प्रद
स्वामी	अग्नि	ब्रह्मा	गौरी	गणेश	नाग	कार्तिकेय	सूर्य	शिव	दुर्गा	यम	विश्वदेव	विष्णु	कामदेव	शिव	चन्द्र	पित
विष घटी	16-19	6-9	9-12	8-11	8-11	6-9	5-8	9-12	8-11	11-14	4-7	11-14	13-16	8-11	9-12	9-12
छिद्रा/पक्ष रन्ध्र तिथि	-	-	-	8	-	9	-	14	25	-	-	10	-	5	-	-
मास शून्य तिथि	भाद्रपद (दोनों पक्ष)	भाद्रपद श्रावण दोनो पक्ष	श्रावण दोनों पक्ष फाल्गुन शुक्ल	पौष फाल्गुन कृष्ण	माघ (शुक्ल) कार्तिक (कृष्ण) पौष दोनों	आषाढ़ (शुक्ल) माघ कृष्ण	आषाढ़ (कृष्ण) मार्गशीर्ष दोनों	चैत्र मास शीर्ष	चैत्र दोनों	आश्विन दोनों	आश्विन	वैषाख	ज्येष्ठ शुक्ला	ज्येष्ठ (कृष्ण) कार्तिक (शुक्ल)	–	–
अंध तिथि नित्य अंध नैमितिक अंध	शुक्ल	शुक्ल	शुक्ल	शुक्ल	–	–	–	–	–	–	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	–	कृष्ण
दग्धा तिथि/सूर्य की राशि	–	मीन(कृ) धनु(शु)	–	वृषभ (कृ) कुंभ (शु)	–	कर्क (कृ) मेष (शु)	–	कन्या(कृ) मिथुन (शुक्ल)	–	वृश्चिक (कृष्ण) सिंह (शु)	–	मकर (कृष्ण) तुला (शु)	–	–	–	–

तिथि चक्र

तिथि	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	30
तिथि शून्य-नक्षत्र निंध योग	उत्तर आषाढ़	अनुराधा	सभी उत्तरा	–	मघा	रोहिणी	हस्ता मूला	पूर्व भाद्रपद	कृतिका	–	रोहिणी	आश्लेषा	चित्र स्वाती	–	–	–
तिथि शून्य लग्न	तुला मकर	–	सिंह मकर	–	मिथुन कन्या	–	कर्क धनु	–	कर्क सिंह	–	धनु मीन	–	मीन वृषभ	–	–	–
तिथि दृष्ट लग्न	5,7, 8,10	9,12	3,6	1,4	2,11	5,7 8,10	9,12	3,6	1,4	2,11	5,7, 8,10	9,12	3,6	1,4	2,11	2,11
पर्व तिथि	–	–	–	–	–	–	–	कृष्ण	–	–	–	–	–	कृष्ण	शुक्ल	शुक्ल
गल ग्रह तिथि	कृष्ण	–	–	कृष्ण	–	–	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	–	–	–	कृष्ण	कृष्ण	–	कृष्ण
कुलाकुल तिथि	अकुल	कुला कुल	अकुल	कुल	अकुल	कुला कुल	अकुल	कुल	अकुल	कुला कुल	अकुल	कुल	अकुल	कुल	अकुल	अकुल
सोमपद तिथि	–	ज्येष्ठ शुक्ल	–	माघ उभय पक्ष	–	–	–	–	–	आषाढ़ शुक्ल	पौष शुक्ल	माघ उभय पक्ष	–	–	–	–
युगादि तिथि	–	–	वैशाख शुक्ल (त्रेता)	–	–	–	–	–	कार्तिक शुक्ल (सत)	–	–	–	श्रावण कृष्ण (कलि)	–	–	माघ (द्वापर)

अध्याय 17

तिथि-वार आदि की गणना की विशेष पद्धति

अंग्रेजी तारीख तथा वार का सम्बन्ध

आइये अब बिहार के अत्यन्त विनम्र किन्तु विख्यात ज्योतिषाचार्य पंडित भैरव झा द्वारा बताई गयी एक सरल विधि सीखते हैं जिसमें किसी भी अंग्रेजी तारीख को कौन सा वार था, आसानी से जाना जा सकता है। वर्ष कुण्डली बनाने वाले ज्योतिषियों को इससे बहुत सुविधा होगी। पहले नीचे दी जा रही सारणी का अवलोकन करें।

विभिन्न माहों के लिए ध्रुवांक की सारणी

क्रम	माह	जन	फर	मा.	अ.	म.	जू	जु	अ	सि	अ	न	दि
1	सामान्य वर्ष	1	4	4	0	2	5	0	3	6	1	4	6
2	लीप वर्ष	0	3	3	0	2	5	0	3	6	1	4	6

ऊपर दी गयी सारणी के दो हिस्से हैं यथा क्रमांक 1 सामान्य वर्ष के लिये तथा क्रमांक 2 लीप वर्षों के लिये मान्य है। पहले हम सामान्य वर्ष के लिये दी गयी तारीख का वार निकालना सीखते हैं।

मान लें 15.8.1947 का वार पता करना है। वर्ष 1947 सामान्य वर्ष था।

1. पहले सन 1947 से दहाई संख्या (47) अर्थात् सन् के आखिरी 2 अंक अलग कर लें। इसे 'क' कहेंगे। 'क' में 4 से भाग दें। भागफल को अलग रख लें। यहां 47 में 4 से भाग देने से भागफल 11 आया।

2. भागफल की संख्या को वर्ष की संख्या 'क' में जोड़ दें। अर्थात् 11 को 47 में जोड़ें। जोड़ आया 58।
3. ऊपर प्राप्त जोड़ में अंग्रेजी की तारीख जोड़ दें। तारीख थी 15। अब जोड़ प्राप्त हुआ 58+15=73
4. इसमें ऊपर की सारणी से माह के लिये निर्धारित ध्रुवांक जोड़ दें। सामान्य वर्ष के लिये अगस्त के लिये ध्रुवांक 3 है। अतः जोड़ हुआ 73+3=76।
5. इस जोड़ में 7 से भाग देकर शेष देखें। रविवार को एक मान कर आगे बढ़ने से दिन का पता चलेगा। 76 में सात का भाग देने से शेष बचा 6 । रविवार–1, सोम–2, आदि देखने से शुक्रवार 6 मिलता है। अर्थात् 15-8-1947 को दिन था शुक्रवार।

लीप ईयर के लिये ध्रुवांक में थोड़ा संशोधन करना पड़ता है। कृपया ऊपर की सारणी में क्रमांक 2 देखें। यहां जनवरी, फरवरी तथा मार्च के लिये सामान्य वर्ष की तुलना में ध्रुवांक एक–एक कम है। अप्रैल से दिसम्बर तक ध्रुवांक में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

अब पता करते हैं कि 15-3-1996 को कौन सा दिन था। सन् 1966 लीप वर्ष है।

1. 96 में 4 से भाग दिये तो भागफल मिला 21। 96 को हम 'क' कहेंगें।
2. 21 में 'क' अर्थात् 96 जोड़ें तो मिला 21+96=117।
3. 117 में तारीख जोड़ी 15 तो मिला 117+15=132।
4. इसमें मार्च के लिये लीप वर्ष का ध्रुवांक 3 जोड़ा तो मिला 135।
5. 135 में 7 से भाग दिये तो शेष मिला 2। 2 का अर्थ हुआ सोमवार।

नोट : 21 वीं सदी, अर्थात् सन् 2000 से, विधि में थोड़ा परिवर्तन होगा। सन 2000 को हम 100 कहेंगे तथा 2001 को 101 । सन् 2007 के लिये संख्या 107 ली जायेगी। आइये हम 1 जनवरी 2007 का दिन देखते हैं।

1. 107 (क) में 4 से भाग दिये तो भागफल मिला 26। इसमें 107 जोड़े तो योग हुआ 133। इसमें अंग्रेजी की तारीख 1 जोड़ने से योग फल हुआ 134 । इसमें जनवरी के लिये ध्रुवांक 1 जोड़ें तो योग हुआ 135। इसमें 7 से भाग दिये तो शेष मिला 2। अर्थात् सोमवार।

श्री भैरव झा द्वारा बताई एक और विशेष बात हम आपको बताते हैं। यदि कोई मास तथा तिथि ज्ञात हो तो उसका नक्षत्र कैसे निकाला जाये। भैरव झा जी कहते

हैं– कार्तिक मास को एक मानिये और मार्गशीर्ष को दो। इस प्रकार पौष्य, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद तथा आश्विन क्रमशः 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11 और 12 हुए। अब देखिये कि कार्तिक माह से दिये हुये मास की दूरी क्या है। मान लीजिये कि हमें 22.10.2007 का नक्षत्र निकालना है। उस तारीख को अश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा है। अश्विन मास का मतलब हुआ कार्तिक के बाद 11 वां मास। 11 में 2 से गुणा कर दें। गुणनफल मिला 22। इसमें तिथि की संख्या जोड़ दें। अर्थात् कृष्ण पक्ष प्रतिपदा को 1 मानें, अमावस्या को 15 तथा पूर्णिमा को 30। इस प्रकार शुक्ल पक्ष की एकादशी हुई 26 वीं तिथि। अब 22 में 26 जोड़ने से योग हुआ 48। इसमें 1 जोड़ दें। कुल योग हुआ 49। अगर यह योग 27 से अधिक हो तो इसमें से 27 कम कर दें। 49 में 27 कम करने से मिले 22। 22 वां नक्षत्र है श्रवण। अतः एकादशी को संभावित नक्षत्र हुआ श्रवण। अगर सम्वत् 2064 का पंचांग देखेंगे तो पायेंगे कि श्रवण नक्षत्र दशमी तिथि की सुबह 6 बजकर 6 मिनट में शेष हो गया था। एकादशी को नक्षत्र था शतभिषा। इस प्रकार कुछ घन्टों का फर्क हो गया है। इसका कारण है कि पिछले पक्ष में द्वादशी का क्षय हो गया है। इसी प्रकार कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष प्रतिपदा देखिये। कार्तिक के लिये मास संख्या हुई एक तथा प्रतिपदा के लिये एक अलग जोड़ने से कुल योग हुआ दो। अर्थात् कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा को नक्षत्र हुआ भरणी। पंचांग में देखेंगे कि 26 अक्टूबर 2007 को दोपहर 10 बज कर 22 मिनट तक पूर्णिमा थी और शाम 6 बज कर 3 मिनट से अश्विनी शेष हो कर भरणी नक्षत्र प्रारंभ हो गया। प्रतिपदा तिथि का क्षय हो गया पर नक्षत्र भरणी ही था। इस प्रकार यह एक ऐसी विधि है जिससे शुद्ध नक्षत्र का पक्का–पक्का ज्ञान तो संभव नहीं पर लगभग सही नक्षत्र का पता चल जाता है। यह विस्मय और आनन्द की बात है कि देश में इतना ज्ञान बिखरा हुआ है जिसका हमें ठीक से पता भी नहीं है। श्री के.एन. राव के नेतृत्व में इन लुप्त हो रहे ज्ञान के छोटे–छोटे प्रायद्वीपों को जोड़कर ज्योतिष शास्त्र को नया स्वरूप देने का कार्य निश्चित रूप से हर्ष की बात है।

अध्याय 18

पंचांग तथा षोड़श संस्कार

संस्कार की कई परिभाषाएँ है। श्री भट्टपाद् के अनुसार–

'योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते।'

वे क्रियाएँ जो योग्य बनाती हैं, संस्कार कहलाती हैं। एक अन्य परिभाषा कहती है, **''संस्कारो कस्यचिदर्थस्य''** अर्थात् संस्कार उसका नाम है जिसके होने से कोई पदार्थ किसी कार्य/ प्रयोजन के योग्य हो जाता है। जैमिनी सूत्र (3/1/3) में कहा गया है **''संस्कारो नाम स भवति यस्मिन्जाते पदार्थो भवति योग्यः।''** इसका भी अर्थ वही है जो ऊपर बताया गया है। हां जैमिनी सूत्र में यह बात उपनयन संस्कार के संदर्भ में कही गयी है। **''उत्कर्ष आधानम् संस्कारः''** के अनुसार संस्कार किसी भी जीवन में उत्थान लाता है। चाहे आज जो भी स्थिति हो, संस्कार के उपरान्त उसमें अवश्य ही सुधार आते हैं। आचार्य चरक कहते हैं, **'संस्कारो हि गुणान्तराध्यानमुच्यते।'** अर्थात् गुणों का आधान ही संस्कार है।

संस्कार के तीन मुख्य उद्देश्य हैं।

1. दोष मार्जन (कहीं–कहीं शास्त्रों में इसका अन्य नाम भी आया है; मलापनयन अर्थात् मल अपनयन)। **2. अतिशयाधान** और **3. हीनांग पूर्त्ति।**

1. दोष मार्जन या मलापनयन का अर्थ है प्रकृति प्रदत्त पदार्थ के दोष का निवारण। जैसे दर्पण स्वाभाविक रूप से प्रकाश का परावर्त्तन करता है। इस पर अगर धूल पड़ जाये तो प्रतिबिम्ब साफ नहीं दिखता। इस धूल का हटाया जाना दोष मार्जन है। गेहूं से कंकड़ चुनना भी दोष मार्जन है।

2. अतिशयाधान का अर्थ है प्राकृत पदार्थ के अपेक्षित गुणों का विकास करना – जैसे खान से निकले हीरे का तराशना, चमकाना आदि। गेहूं को पीस कर आटा बनाना भी अतिशयाधान का ही उदाहरण है।

3. हीनांगपूर्त्ति से तात्पर्य है प्राकृत पदार्थ के अपेक्षित गुणों के लिये उसमें जो भी त्रुटि हो,उसको पूरा करना – जैसे आटे में नमक मिला कर उसका स्वाद बढ़ाना आदि।

इसे एक अन्य उदाहरण से भी समझ सकते हैं। पत्थर के टुकड़े से अनावश्यक अंश छेनी से हटाकर मूर्त्ति बनायी जाती है। यह हुआ दोष मार्जन या मलापनयन। उसमें रंग–रोगन किया जाता है जो हुआ अतिशयाधान। बाद में वस्त्र आभूषण आदि पहना कर हीनांगपूर्त्ति की गयी और पत्थर के टुकड़े से देवता निकल आये। किसी भी संस्कार से इन तीन उद्देश्यों की पूर्त्ति होती है। वैसे तो सनातन परम्परा में न जाने कितने संस्कारों की बात की गयी है। इनमें से कुछ मुख्य की संक्षिप्त चर्चा नीचे की जा रही है। 'नारद परिव्राजकोपनिषद्' के अनुसार 44, 'गौतम धर्म सूत्र' तथा संन्यासोपनिषद् के अनुसार 40 तथा 'महर्षि अंगिरा' के अनुसार 25 संस्कार आवश्यक कहे गये। गौतम स्मृति में भी 40 संस्कारों की चर्चा है। इन सभी में परिष्कार आते गये और अब तो इन सब के प्रति जागरूकता ही शेष होने लगी है। पंचांग में गर्भाधान से मृत्यु पर्यन्त बहुत सारे संस्कार लिखे गये हैं किन्तु हम आर्ष साहित्य का सहारा लेकर ही संस्कारों पर एक नज़र डालेंगे।

व्यास स्मृति (1/13-15) के अनुसार षोड़श (सोलह) संस्कार निम्नांकित हैं– गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, वपन (चूडाकर्म), कर्णवेध, व्रतादेश (उपनयन), वेदांरभ, केशान्त, स्नान (समावर्त्तन), विवाह, विवाहाग्नि परिग्रह तथा प्रेताग्नि संग्रह।

गर्भाधान, पुंसवनं, सीमन्तो, जातकर्म च। नामक्रिया, निष्क्रमणेऽन्नाशनं, वपनक्रिया।। कर्णवेधो, व्रतादेशो, वेदांरभ क्रिया विधिः । केशान्तः, स्नानमुद्वाहो, विवाहाग्नि परिग्रहः।। त्रेताग्नि संग्रहश्चेति संस्काराः पोड़श स्मृताः ।

इन संस्कारों की व्याख्या करने से पहले अन्य सूत्रों में वर्णित षोड़श संस्कारों को भी देखना अच्छा होगा।

श्री जातूकर्ण्य और मार्कण्डेय स्मृति के अनुसार सोलह संस्कार निम्नांकित हैं– **''गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नामान्नप्राशनं चौलं मौञ्जीव्रतचतुष्टयम्। गोदानिंक तथा स्नानं विवाहः पैतृमैधिकः ।।''** अर्थात् गर्भाधान से लेकर नामकरण तक व्यास स्मृति के बताये गये प्रथम पांच संस्कार एक जैसे ही हैं – निष्क्रमण और अन्नप्राशन आगे पीछे हो गये हैं। तत्पश्चात् चूडाकरण के बाद मौञ्जी और उसके बाद चतुर्वेद·व्रत के चार संस्कार फिर केशान्त, समावर्त्तन, विवाह और अन्त में अन्त्य संस्कार माने गये। याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार सोलह संस्कार प्रायः व्यास स्मृति जैसे ही है।

''गर्भाधानं, पुंसवनं, स्पन्दनं च निमित्तकम् । जातकर्म च नाम च सूर्याविक्षणकन्तथा।। अन्नप्राशनचूडा च कर्णवेधस्तथैव च। ब्रह्मसूत्रोपनयनं व्रतविसर्जनमतः परम्।। केशान्तश्च विवाहश्च चतुर्थीकर्म एव च। अग्निसंग्रहणञ्चैव संस्काराणि च षोडश।।''

अर्थात् गर्भाधान, पुंसवन, स्पन्दन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, ब्रह्मसूत्रोपनयन, व्रत, विसर्जन, केशान्त, विवाह, चतुर्थीकर्म तथा अग्नि संग्रह – ये सोलह संस्कार हुए।

इन तीनों स्रोतों को देखने से लगेगा कि प्रायः सभी संस्कार एक जैसे ही हैं किन्तु जिस काल में संभवतः अग्नि की उपलब्धता सहज नहीं थी, तब विवाहग्नि, त्रेताग्नि आदि के संग्रह पर विशेष बल था परन्तु कालान्तर में अन्य संस्कार अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये। इस प्रकार एक बात तो स्पष्ट है कि देश और काल के अनुसार स्थापित संस्कारों में परिवर्तन आते गये तथा आज सभी सोलह संस्कार प्रासंगिक नहीं रह गये हैं।

दरअसल मानना यह चाहिये कि **संस्कार वे क्रियाएँ या रीतियां है जो योग्यता प्रदान करती हैं।** यह योग्यता दो प्रकार की होती हैं, 1. पापमोचन से उत्पन्न योग्यता तथा 2. नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता। अतः उचित संस्कारों के उचित समय पर करने से कोई कारण नहीं कि पापमोचन न हो और नवीन गुण उत्पन्न न हों। संस्कारों की आवश्यकता के बारे में भगवान शंकर माता पार्वती से कहते हैं– (महानिर्वाण तन्त्र) **''सस्कारेण विना देवि देहशुद्धि नं जायते। नासंस्कृतोऽधिकारी स्याहैवे पैत्र्ये च कर्माणि।। अतो विप्रादिभिर्वणैः स्वस्वंवर्णोक्त संस्क्रिया। कर्त्तव्या सर्वथा यत्नैरिहामुत्र हितेप्सुभिः ।।''** 'अर्थात् संस्कारों के बिना शरीर शुद्ध नहीं होता, अशुद्ध व्यक्ति देवताओं तथा पितरों के कर्म का अधिकारी नहीं होता इसलिये सभी वर्ण वाले अपने अपने वर्णों के अनुसार संस्कार कर्म सम्पादित करें।' संस्कार त्रिगुणात्मक (सात्विक, राजसिक और तामसिक) होते हैं। स्थूल शरीर में 23 विकृतियां (5 भूत + 5 तन्मात्राएँ + 5 कर्मेन्द्रियां + 5 ज्ञानेन्द्रियां + मन + अहंकार + महतत्व) होती हैं। सूक्ष्म शरीर में पांच भूत पांच तन्मात्राओं में विलीन हो जाते हैं अतः उसमें 18 विकृतियां रह जाती हैं। इस कारण शरीर में मात्र तीन विकृतियां रह जाती हैं। ये हैं मन, अहंकार और महतत्व क्योंकि तन्मात्राएँ तामस अहंकार में, कर्मेन्द्रियां राजस अहंकार में तथा ज्ञानेन्द्रियाँ मन में विलीन हो जाती हैं। ईश्वर में कोई विकृति नहीं इसलिये उनके कर्म संस्कार नहीं होते। संस्कार मात्र जीवों के होते हैं।

पंचांग में सभी सस्कारों के लिये शुभ तिथि, वार, नक्षत्र आदि बताये गये हैं। वहां यह भी बताया गया है कि ये संस्कार कब वर्जित हैं। विश्व विजय पंचांग में ये

सूचनाएँ प्रायः पृष्ठ 100 से प्रारंभ होती हैं। उनकी पुनरावृति न करते हुए, इस पुस्तक में, उन संस्कारों को समझने का प्रयास किया गया है।

1. गर्भाधान संस्कार – शुभ मुहूर्त में पवित्र मंत्रों से पवित्र होकर प्रार्थना करते हैं –

गर्भ धेहि सिनीवालि गर्भ धेहि पृथुष्टुके। गर्भ ते अश्वनौ देववाधत्तां पुष्कर स्रजौ ।।
(वृद्धद्दारण्यक 6/4/21)

अर्थात् हे सिनीवाली देवि एवं पृथुष्टुका देवि (जिनकी जंघाएँ विस्तृत हैं) आप इस स्त्री को गर्भ धारण करने की क्षमता दें और उसे पुष्ट करें। दोनों अश्विनी कुमार भी, जो कमल की मालाओं से सुशोभित हैं, इस गर्भ को पुष्ट करें। शास्त्रों में कहा गया है, "**आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च । पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थ स्यैव देहिनः।।**" अर्थात् आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु गर्भावस्था में ही सृजित हो जाती हैं। सुश्रुत संहिता में बताया गया है कि जैसे आहार, आचार और चेष्टा आदि से युक्त होकर स्त्री पुरुष समागम करते हैं, वैसी ही सन्तान होती है। "**आहाराचार चेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ। स्त्री पुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः।।**" शुभ मूहूर्त में पुरुष अपनी पत्नी से कहते हैं, "**अगांदगांत् सम्भवसि हृदयादधि जायसे। स तामअगंकषायोऽसि दिग्ध विद्धाभिव मादये माममूं भयी।**" अर्थात् अच्छी संतान की कामना से हम समागम करें। इससे पूर्व प्रातः काल ही घी का संस्कार करके चारूपाक बना कर '**अग्नये स्वाहा**', '**अनुमतये स्वाहा**' तथा '**देवाय सवित्रे सत्य प्रसवाय स्वाहा**' मन्त्रों से आहूति देनी चाहिये। होम के बाद चरू में बचा हुआ भोजन स्वयं करके पत्नी को खिलाना चाहिये। फिर जल का कलश भर कर "**उत्तिष्ठातो विश्वावसोऽन्यामिच्छ प्रपूर्व्या सं जाया पत्या सह**" मन्त्र के द्वारा पत्नी पर 3 बार छींटना चाहिये। उस रात गर्भाधान के मन्त्र पाठ के उपरान्त सन्तान प्राप्ति की विशेष संभावना हो जाती है।

2. पुंसवन संस्कार : '**गर्भाद् भवच्च पुंसूते पुंस्त्वरूपप्रतिपादनम्**' (स्मृति संग्रह) गर्भ से पुत्र उत्पन्न होने के लिये पुंसवन संस्कार किया जाता है। पुत्र वह जो पुम् नामक नर्क से रक्षा करता है (**पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः**)। इसी बात को गरुड़ पुराण के 7वें अध्याय के 9वें श्लोक में कहा गया है, "**पुन्नाम्नो न काद्य स्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वमेव स्वयम्भुवा।।**" गर्भ के तृतीय माह में पुनर्वसु नक्षत्र में पत्नी को उपवास करना चाहिये तथा अपने हाथ में चुल्लू भर दही में सेम के दो बीज (अण्डकोश के प्रतीक) तथा जौ का एक दाना डालकर पीना चाहिये। तब पति को पूछना चाहिये कि क्या पी रही है ? प्रत्युत्तर में पत्नी कहे, पुंसवन। ऐसा तीन बार करना चाहिये। इस समय का वैदिक मन्त्र है '**ऊँ हिरण्यगर्भः**

समवर्तताग्ने भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।। शुभ मुहूर्त्त में गणेशादि देवताओं की पूजा के उपरान्त गर्भिणी की दाहिनी नाक में औषधि की दो चार बूँदें टपका दी जाती हैं।

पुंसवन के लिये वट वृक्ष की जटाओं के कोमल सिरों का छोटा टुकड़ा, गिलोय (गडूँची) या ब्राह्मी, कुशाग्र भाग के थोड़े–थोड़े अंश पानी के साथ पीस कर एक कटोरी में रखे जाते हैं। इसे ही औषधि के रूप में गर्भवती की दाहिने नाक में दो चार बूँदें टपका दी जाती हैं। अन्यथा कुछ लोग इसे सिर्फ सूंघते हैं। वट वृक्ष की जटा के कोमल अंश का तात्पर्य है बुढ़ापे से धीरे–धीरे वापस बच्चे के रूप में आना, गिलोय में ऊपर चढ़ने की प्रवृत्ति है, यह कीटाणुओं का नाशक है। पीपल देव योनि के वृक्ष हैं – एक अन्य मन्त्र की चर्चा भी होती है **''ऊँ अद्म्यः सम्मृतः पृथिव्यै रसाच्च विक्ष्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदघ द्रूपमेति, तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे।''**

गर्भस्थ शिशु की रक्षा तथा असमय गर्भपात न होने देने के लिये पुंसवन संस्कार का एक उपांग "अनवलोमन" संस्कार है जिसमें जल तथा औषधियों की प्रार्थना की जाती है। भगवत पुराण में कहा गया है कि महर्षि कश्यप की आज्ञा लेकर उनकी पत्नी दिति (दैत्यों की माता) ने इन्द्र का वध कर सकने वाले पुत्र की कामना से एक वर्ष तक चलने वाला पुंसवन व्रत किया।

3. सीमन्तोन्नयन : सीमन्त शब्द का अर्थ है स्त्री की मांग जहां से वह अपने सर के केश दोनों ओर अलग करती है और विवाहिता स्त्रियां जहां सिन्दूर लगाती हैं। गर्भस्थ सन्तान का हृदय बन जाने के कारण उसमें चेतना आ जाती है तब जो संस्कार डाले जाते हैं उनका दीर्घ कालीन प्रभाव होता है। कहते हैं कि अभिमन्यु को चक्रव्यूह का ज्ञान उसके पिता द्वारा तथा भक्त प्रहलाद को, जब वह अपनी माता कयाधू के गर्भ में था नारद मुनि द्वारा आत्मज्ञान इसी काल में मिला था।

संस्कार विधि : इस दिन गर्भवती को सुपाच्य तथा पौष्टिक भोजन, विशेष रूप से चरू (खीर) खिलाने का विधान है। स्त्री की मांग को उसका पति गूलर की डंडी आदि वनस्पतियों द्वारा संवारता है – मंत्र हैं **''ऊँ भूर्विनयामि, "ऊँ भुवर्विनयामि, ऊँ स्वर्विनयामि''** – इस दिन हवन आदि करके देवदार की लकड़ी का पाटा बना कर उस पर स्त्री को बिठाया जाता है। फिर दो फल, सोने से मढ़ी गूलर की तीन शाखाएँ, कुश की तीन गण्डियां, श्वेत साही का कांटा, पीले सूत से लिपटा तगुआ तथा पीपल की लकड़ी की खूंटी को, मांग काढ़ने के बाद बालों में टाँक दिया जाता है। चरू या घी डाल कर बनायी गयी खिचड़ी खिलायी जाती है। बाद में पढ़ने वाला मन्त्र है **''येनादितेः सीमानं नयति प्रजाति र्महते सौभगाय। तेनाहमस्ये सीमानं**

नयामि प्रजामस्थै जरदृष्टिं कृणोभि।।'' अर्थात् जिस प्रकार प्रजापति ने अपनी पत्नी (देवमाता अदिति) का सीमन्तोन्नयन किया था, उसी प्रकार मैं आपका सीमन्तोन्नयन करता हूं जिससे आपका पुत्र बुढ़ापे पर्यन्त जीवित रहे''।

4. जात कर्म संस्कारः इससे बच्चे के गर्भ में रहने के काल के सारे दोष नष्ट हो जाते हैं – इसलिये उसके जन्म लेते ही, नाल छेदन से पूर्व, इसे किया जाता है। स्वर्ण शलाका अथवा दाहिने हाथ की अनामिका से असमान मात्रा में घी (कम) तथा मधु (अधिक) चटाया जाता है। स्वर्ण से त्रिदोष नाश होते हैं, घी आयुवर्धक एवं वात–पित्त नाशक है तथा शहद से कफ का नाश होता है। तीनों के प्रयोग से आयु, बल और कान्ति में वृद्धि होती है। बच्चे के पिता अथवा आचार्य उसके कान में दीर्घायु होने के लिये निम्नलिखित आठ मन्त्र श्रद्धा और गंभीरता पूर्वक पढ़ते हैं।

''अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तने त्वाऽऽयुषाऽऽ युष्मन्तं करोमि।''1
सोम आयुष्मान स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽ युष्मन्तं करोमि।''2
ॐ ब्रह्मायुष्मत् तद् ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽ युष्मन्तं करोमि।''3
ॐ देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽ युष्मन्तं करोमि।''4
ॐ ऋषय आयुष्मन्तस्त व्रतैशयुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽ युष्मन्तं करोमि।''5
ॐ पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽ युष्मन्तं करोमि।''6
ॐ यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽ युष्मन्तं करोमि।''7
ॐ समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्मां स्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽ युष्मन्तं करोमि।''8

जिस प्रकार वनस्पति द्वारा अग्नि आयुष्यमान हैं, उसी प्रकार उनके अनुग्रह से मैं तुम्हें आयुष्मान करता हूं।'' फिर चन्द्रमा औषधि, ब्रह्म ब्राह्मणों, देवता अमृत, ऋषि व्रत, पितर स्वधा, यज्ञ दक्षिणा तथा समुद्र नदियों के द्वारा आयुष्मान हैं, इनके द्वारा मैं तुम्हें आयुष्मान करता हूं। इसके बाद पिता सन्तान के दीर्घायु होने की कामना यजुर्वेद के 12वें खण्ड के ग्यारह श्लोकों (18–28) द्वारा सन्तान के हृदय आदि का स्पर्श करते हुये करते हैं। कहीं कहीं यह सूत्र भी पढ़ा जाता है। **अगांद गांत् सम्भवसि हृदयादधि जायसे। आत्मा वै पुत्रनामाऽसि सजीव शरदः शतम।।** मेरे एक–एक अंग के रस से उत्पन्न मेरी सन्तान, मेरे ही हृदयादि के संस्कार तुम्हारे जीवन में आये हैं। मेरे ही आत्मा का नाम पुत्र के रूप में रखा जा रहा है। तुम सौ वर्षों तक जीवित रहना।'' पिता यह भी कहते हैं **''अश्माभव, परशुर्भव, हिरण्यमस्त्रुतं भव।।''** अर्थात् पत्थर के समान मजबूत, परशु के समान शत्रु हंता और सोने के समान पवित्र रहो। पुत्र के जन्मोपरान्त हवनादि के बाद पिता बालक के दाहिने कान में अपना मुंह लगाकर तीन बार **वाक्। वाक्। वाक्।** कहे तथा कहे **भूस्ते दधामि। भुवस्ते दधामि। स्वस्ते दधामि, भूर्भवः स्वः सर्वं त्वयि दधामि।** तत्पश्चात् बच्चे को

मां की गोद में देकर सरस्वती से प्रार्थना करे – **'यस्ते स्तनः शशयो यो मयोमूर्यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वती तमिह घातवे करिति।।** – मां सरस्वती, आपका स्तन दूध का अक्षय भण्डार है तथा रत्नों की खान है जिसके द्वारा आप सब का पोषण करती हैं, वह मेरी भार्या में प्रविष्ट करा कर इस शिशु के मुख में दें। तत्पश्चात् वह अपनी पत्नी से कहे, तुम वीरवती तथा स्तुति के योग्य अरुन्धती (वशिष्ठ की पत्नी) हो। आपने जिस वीर पुत्र का पिता मुझे बनाया है उसे देखकर लोग कहें कि वह सचमुच अपने पिता से भी आगे निकल गया है और पितामह से भी श्रेष्ठ हुआ।

5. नामकरण संस्कार : जन्म से दस रात्रि बीतने के बाद, ग्याहरवें दिन या पारिवारिक रीतियों के अनुसार सौवें दिन या एक वर्ष बीत जाने के बाद नामकरण संस्कार करने की विधि है। **जम्यते अभिधीयते अर्थोऽनेन इति नाम।"** जिससे अर्थ पता चले वही नाम है। नामकरण संस्कार के प्रयोजन के बारे में स्मृति संग्रह नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि इससे आयु तथा तेज की वृद्धि होती है साथ ही संसार में व्यवहार में आने के लिये एक संज्ञा भी। **"आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहृतेस्तथा। नामकर्म फलं त्वेतत् समुद्दिष्टं मनीषिभिः।।"** बच्चे की मां को पंचगव्य खिलाकर पिता गोद में बच्चे को लेकर प्रारंभिक पूजा करके कांसे की थाली में फैलाये गये चावल पर स्वर्ण शलाका से चार नाम लिखें तथा उसकी प्रतिष्ठा करे। **"तथ्य नाम चतुर्विधम्। कुल देवतः सम्बद्धं मास संम्बद्धं; नक्षत्र सम्बद्धं, व्यावहारिकं चेति।"** अर्थात् बच्चे के चार नाम रखने चाहिये जो क्रमशः कुल देवता, मास, नक्षत्र के अतिरिक्त व्यवहार में लाने वाला भी हो। चैत्रादि अमावस्या में अन्त होने वाले मासों के नाम क्रमशः वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश, पुण्डरीकाक्ष, कृष्णा, अनन्त, अच्युत तथा चक्री हैं।

पूर्व की ओर मुख करके लेटे हुए बच्चे के दाहिने कान में तीन बार उसका नाम, गोत्र, कुल देवता आदि का नाम बताते हुए उनकी भक्ति करने को कहना चाहिए। बच्चे को आशीर्वाद देने के लिये "**ॐ अगांदगात्सम्भवति हृदयादधि जायसे। आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदं शतम्।**" मन्त्र का प्रयोग करते हैं।

6. निष्क्रमण संस्कार : "निष्क्रमणादायुधो वृद्धिरप्युद्दिष्टा मनीषिभिः।" विद्वानों ने इस संस्कार का फल भी आयु वृद्धि बताया है। बालक को सूर्य, चन्द्रादि देवताओं का पूजन करा के उनके दर्शन कराये जाते हैं। भगवान की मूर्ति के सामने उसे दण्डवत प्रणाम की मुद्रा में लिटाते हैं। उस समय आशीर्वाद देने का मन्त्र है **"अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवा रात्रावथापि वा। रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः।।"** एक अन्य आशीर्वचन भी आगे दिया गया है। **शिवे ते स्तांद्यावा पृथिवी असंतापे**

अभिश्रियौ। शंतेसूर्य आ तपतु शंवातो वातु ते हृदे। शिवा अभि अरन्तु तापो दिव्याः पयस्वतीः। अर्थात् आपके निष्क्रमण के समय द्युलोक तथा पृथ्वी लोक कल्याणकारी हो। सूर्य आपके लिये कल्याणकारी प्रकाश तथा वायु कल्याणकारी वायु का प्रवाह करें। दिव्य जलों वाली नदियां आपके लिये स्वच्छ जल वहन करें।

7. अन्न प्राशन : ''अन्नाशनक्न्मातृगर्भे मलाशाद्यपि शुद्धयति।'' अर्थात् मां के गर्भ में मलिन–भक्षण जन्य जो दोष आते हैं उनके नाश के लिए यह संस्कार होता है।

''शिवौ तेस्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ। एतौ यक्ष्मं विबाधते एतौ मुञ्चतो अंहसः।'' अर्थात् हे बालक जौ तथा चावल तुम्हारे लिये बल देने वाले हों क्योंकि दोनों वस्तुएँ यक्ष्मा नाशक हैं तथा देवताओं का अन्न होने के कारण पाप नाशक भी।

8. वपन क्रिया : चूडाकरण : 'चूडा यिते अस्मिन' अर्थात् वह संस्कार जिसमें बालक को शिखा (चूडा) दिया जाये। यह क्रिया या संस्कार 3,5, या 7 वें वर्ष में की जानी चाहिये। सर में सहस्रार जहां है (जहां बालों के भंवर मिलते हैं, वहीं शरीर की सारी नाड़ियां जाकर मिलती हैं) उस स्थान का नाम है अधिपति। उस मर्म स्थान को सुरक्षित रखने के लिये शिखा या चोटी रखी जाती है। इस संस्कार को कराते समय कहा जाता है कि ''आपको अन्न ग्रहण के योग्य तथा आपकी उत्पादन शक्ति, ऐश्वर्य, बल आदि की वृद्धि के लिये एवं अच्छी संतान प्राप्ति के लिये यह चूडाकरण संस्कार किया जा रहा है। **''निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रास्पोषाय सुप्रजास्तवाय सुनीर्याय'' यजु (3)(63)** एक वैज्ञानिक सोच यह है कि जब बच्चे के दांत निकल रहे होते हैं तब उसके केश कमजोर होकर झड़ने लगते हैं। चूडाकरण से वे दृढ़ हो जाते हैं। कुछ लोग ऐसा भी समझते हैं कि शिखा को छोड़कर बाकी केश हटा देने से शरीर का तापक्रम सामान्य हो जाता है।

9. चूडाकरण की विधि : हवन आदि कर के कहा जाता है, **''प्रजापतिः प्रीयताम''**। फिर बच्चे को पूरब मुंह बिठाकर सिर से दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर की ओर पहले से बाँधे गये तीन जूड़ों में सबसे पहले दक्षिण जूड़े का संस्कार करते हैं। उसे घी, दही आदि मिश्रित जल से भिगोया जाता है। तब पढ़ा जाने वाला मन्त्र है **''ऊँ सवित्र प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चस इति।''** फिर इस दक्षिण जूड़े को तीन भाग करके प्राप्त प्रत्येक भाग को फिर से साही के सफेद कांटे से तीन भाग किया जाता है। अर्थात् दक्षिण जूड़े के तीन भाग किये थे और प्रत्येक भाग को फिर से तीन भाग करने पर दक्षिण जूड़े के नौ भाग और सर के पूरे केश के 27 भाग हो गये। दक्षिण जूड़े के तीन भागों में तीन कुशा का अगला भाग यह मन्त्र पढ़कर रखा जाता है। **''ऊँ ओषधे त्रायस्व''**। फिर लोहे का छुरा हाथ में लेकर पढ़ा जाने वाला मन्त्र है **''ऊँ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा**

हिश्वंसीः''। तत्पश्चात् पढ़ा जाने वाला मंत्र है **''ॐ वर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रासस्पोषाय, सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय।।''** जिसके साथ केश में छुरा लगाया जाता है। फिर दक्षिण जूड़े का पश्चिमी एक तिहाई हिस्सा कुश सहित काटते समय यह मन्त्र पढ़ा जाता है। **''ॐ येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरूणस्य विद्वाना तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्यं जरदष्टिर्यथासद्।''** दक्षिण जूड़े के बाद क्रमशः पश्चिम और उत्तर के जूड़ों के एक तिहाई बाल इन्हीं मन्त्रों से काटे जाते हैं। उत्तर भाग के जूड़े के एक तिहाई को कुशा सहित काटने का मन्त्र थोड़ा भिन्न है। **''ॐ येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक्च पश्चाद्धि सूर्यम्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जिवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये।''** काटे गये सभी केशों को कुशा सहित गोबर पर रख कर, पूरे केश को फिर से भिगोया जाता है। तब छुरे को दक्षिणावर्ती (घड़ी की दिशा में) सर पर और सभी ओर तीन बार घुमाया जाता है। उस समय पढ़ा जाने वाला मन्त्र है। **''ॐ यत् क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा वप्त्वा वाऽऽवपति केशाञ्छिन्धि शिरो माऽस्यायुः प्रमोषीः।''** इसके बाद **'ॐ अक्षण्वन् परिवप'** मन्त्र पढ़कर नाई को छुरा दे दिया जाता है जो परिपाटी के अनुसार शिखा छोड़ कर शेष केश उतार देते हैं। इन केशों को नये वस्त्र में लपेट कर दही, दूध सहित गोबर पिण्ड पर रखा जाता है जो मां, बुआ या बहन करती है। यज्ञ समाप्ति के बाद कपड़ा सहित केशों को गोशाला, नदीतट या तालाब के किनारे गाड़ देते हैं।

शिखा के बारे में तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली के छठे अनुवाक में कहा गया है कि मुख के अन्दर, दोनों तालुओं के बीच स्तन के आकार का जो मांस लटकता है वह इन्द्रयोनि या सुषुम्ना नाड़ी है जो सर में जहां स्पर्श करती है वहां शिखा रखते हैं **''अन्तरेण तालुके। य एष स्तन इवावलम्बते। सेन्द्रयोनिः। यत्रासौ केशान्तो विवर्तते। व्यपोहय शीर्षकपाले।''** कुछ स्थानों में इसे मस्तुलिंग भी कहते हैं जो कर्म का केन्द्र है। इसे गर्मी चाहिये तथा इसको गर्म रखने के लिये शिखा रखी जाती है जिसका काला रंग सूर्य का ताप सोख कर इसे गर्म रखता है। मस्तुलिंग के ठीक सामने ब्रह्मरन्ध्र है जो ज्ञान शक्ति का केन्द्र है। इसे ठण्डक चाहिये इसलिये शिखा छोड़कर बांकी केश हटा दिये जाते हैं। ध्यान, प्राणायाम आदि करने से उत्पन्न अमृतत्व वायु वेग से मस्तुलिंग से होकर सूर्य में लीन होने के लिये शिखा की ओर दौड़ता है। शिखा खुली रहे तो यह अमृतत्व वायुमण्डल में खो जाता है। इसी लिये शिखा में गांठ लगाते हैं।

10. कर्णवेधन : शास्त्रों में कर्णवेध रहित पुरुष को श्राद्ध का अधिकारी नहीं माना जाता। पूर्ण स्त्रीत्व/ पुरुषत्व की प्राप्ति के लिये यह संस्कार आवश्यक माना जाता है। कहा जाता है कि सूर्य की किरणें कानों के छेद से गुज़र कर बच्चे को पवित्र तथा तेजस्वी बनाती हैं इसलिये इसे सूर्य के सम्मुख करना चाहिये।

''भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरगैंस्तुष्टुवाग्वँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।

कर्णभेद नक्षत्र के तीसरे नक्षत्र में (प्रायः तीन दिनों के बाद) गर्म पानी से कानों को धोना चहिये। बाद में सोने की बालियां पहननी चहिये।

11. उपनयन : उपनयन का अर्थ है **''उपनयेत् एनम्''** – तथा **''उपनीयं तु यः शिष्यं वेदमधयापयेदद्विजः।''** अर्थात् द्विज बनाने हेतु शिष्य को उप (समीप) नयेत् (ले जाना) गुरु के समीप ले जाना। पहले धागे के स्थान पर उत्तरीय वस्त्र धारण किया जाता था जिसे संभोग या श्राद्ध भोजन आदि कर्मों में आसानी से उतार दिया जाता था। बाद में सूत्र का प्रचलन हुआ। उपनयन को यज्ञोपवीत संस्कार भी कहते हैं। इसमें दो शब्द हुये यज्ञ जिसका अर्थ है साकार परमात्मा (निराकार परमात्मा को ब्रह्म कहते हैं) तथा उपवीत जिसका अर्थ है पवित्र किया गया सूत्र। यज्ञोपवीत का अर्थ है यज्ञ से पवित्र किया गया सूत्र। यह नौ तन्तुओं का होता है जिसे चार उंगलियों पर छियानवे बार लपेट कर बनाया जाता है।

अर्थववेद में कहा गया है **''आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणां कृणुते गर्भमन्तः।''** अर्थात् उपनयन के समय आचार्य ब्रह्मचारी को गर्भ के रूप में धारण करते हैं। एक अन्य उक्ति देखिये **''सहि विद्यातः तं जनयति, तदस्य श्रेष्ठं जन्म। माता पितरौ तत् शरीर मेव जनयतः।''** माता–पिता तो शरीर से जन्म देते हैं परन्तु जिसका विद्या से जन्म होता है (उपनयन संस्कार) वह श्रेष्ठ है। प्राचीन काल में यह संस्कार चार दिनों तक चलता था जिसमें यह परम्परा थी कि पहले तीन दिनों तक निरन्तर समिधा जलती रहती थी और माना जाता था कि आचार्य ब्रह्मचारी को तीन दिनों तक अपनी विद्यारूपी शरीर के गर्भ में रखकर चौथे दिन जनते थे। उस दिन को मेधा जनन माना जाता था तथा उपनयन संस्कार पूरे किये जाते थे। यज्ञोपवीत के नौ तन्तुओं के देवता क्रमशः ओंकार, अग्नि, नाग, चन्द्रमा, पितर, प्रजापति, वायु, यम तथा विश्वदेवता हैं। इसी कारण नये यज्ञोपवीत को धारण करने से पहले इन मंत्रों से अभिमंत्रित करना होता है। एक–एक करके मंत्र पढ़ा जाता है और एक फूल या अक्षत यज्ञोपवीत पर छोड़ा जाता है। **''प्रथम तन्तो ॐ ओंकारम् आवाहयामि। द्वितीय आदि नवम तन्तौ ॐ विश्वान् देवानावाहयामि।** फिर तीन गाठों के लिये मन्त्र है। **प्रथम ग्रन्थौ ॐ ब्रह्मणे नमः, ब्रह्ममणमावहायामि। द्वितीय ग्रन्थौ ॐ विष्णवे नमः, विष्णुमावहयामि। तृतीय ग्रन्थौ ॐ रूद्राय नमः;, रूद्रमावहयामि।''** इसके बाद जो मन्त्र पढ़ते हैं वह हैं, **''प्रणवाछावाहित देवताभ्यो नमः।''** तथा कहा जाता है **''यथा स्थानं न्यसामि''** फिर तन्तुओं का न्यास करके चन्दन आदि से यज्ञोपवीत की पूजा करके उसे गायत्री मन्त्र से 10 बार अभिमन्त्रित किये जाने के उपरान्त पहना जाता है। 96 की संख्या के लिये जो श्लोक बताया गया हैं, उसका अर्थ है 15 तिथियां

+ 7 वार + 27 नक्षत्र + 25 तत्व + 4 वेद + 3 गुण + 3 काल + 12 माह = 96। **''तिथिवारं च नक्षत्रं तत्ववेदगुणान्वितम्। कालत्रयं च मासाश्च्च ब्रह्मसूत्रं हि षण्णवम्''**। मनुष्य के शरीर की लम्बाई 84 से लेकर 108 अंगुल तक ही हो सकती है जिसका औसत है 96। यज्ञोपवीत को नाभि का स्पर्श करते हुए कमर की लम्बाई तक ही होना चाहिये। वह पुरुष के बाएँ कन्धे पर रहता है। इसलिये पुरुष का शरीर चाहे कैसा भी हो, 96 अंगुल का यज्ञोपवीत उसके कन्धे से झूल कर, नाभि का स्पर्श करते हुए उसकी कमर तक ही आयेगा। गायत्री मन्त्र की शिक्षा यज्ञोपवीत के समय ही देते हैं। वशिष्ठ स्मृति में कहा गया है, **''चतुर्वेदेषु गायत्री चतुर्विंशति काक्षरी। तस्माच्च्तुर्गुणं कृत्वा ब्रह्मतन्तुमुदीरयेत्।''** अर्थात् गायत्री स्वयं 24 अक्षरों की है। चारों वेदों में इस प्रकार 24 x 4 = 96 अक्षर हुए जो यज्ञोपवीत की लम्बाई है। इसी आधार पर यज्ञोपवीत संस्कार के बाद बच्चे को वेद तथा गायत्री दोनों का अधिकार प्राप्त होता है।

इस संस्कार के लिये बालक का मुण्डन करवा के शुद्ध जल से स्नान के बाद नया वस्त्र पहना कर हवन करवाते हैं। फिर उसे गायत्री का उपदेश देने के लिये विशेष कपड़े (मृगछाला, मुञ्जमेखला) और पलाश का डण्डा दिया जाता है। इसका अर्थ होता है कि बालक अपने शरीर की रक्षा करते हुए, दृढ़ निश्चय से ब्रह्मचर्य का पालन करे तथा वेद विद्या प्राप्त करे। इसके बाद आचार्य अग्नि के सम्मुख पूर्व की ओर बैठ कर बच्चे को अपने सामने बैठाते हैं। आचार्य अपने दोनों हाथों की अंजलि बनाते हैं। वैसी ही अंजलि बना कर बच्चा गुरु की अंजलि के नीचे अपनी अंजलि लाता है जिसमें गुरु अपनी अंजलि से थोड़ा–थोड़ा जल गिराते रहते हैं अर्थात् गुरु उसे ऐसे ही धीरे–धीरे शिक्षा देंगे। इसके बाद बच्चे का दाहिना हाथ पकड़ कर कहते हैं– "सविता ने तेरा हाथ पकड़ा है और अग्नि तेरे आचार्य हैं।" वे उसे सूर्य को देखने के लिए कहते हैं क्योंकि वे ज्ञान के देवता हैं। इसके बाद बच्चा अग्नि आदि देवताओं से बुद्धि, बल आदि गुणों की याचना करता है।

उपनयन संस्कार के उपरान्त गुरु बालक के कन्धों तथा हृदय का स्पर्श करके कहते हैं, **''मम व्रते ते हृदयं दधामि। मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु मम वावचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्द्वा नियुनक्तु महमम्।''** अर्थात् मैं तुम्हारे हृदय में व्रतों (वैदिक शास्त्र का ज्ञान कराने वाले वेदव्रत तथा लौकिक शास्त्र का ज्ञान कराने वाले विद्या व्रत) को स्थापित कर रहा हूं। तुम्हारा चित्त मेरे चित्त से जुड़ा रहे और बृहस्पति तुम्हें मेरी विद्याओं से परिपूर्ण करें।"

दरअसल यज्ञोपवीत को उपवस्त्र भी माना गया है। इसकी तीन गांठें रजो, तमो तथा सत्व गुण को दर्शाती हैं। कुछ इसे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ का प्रतीक कहते

हैं तो एक मत इसे ऋषि, देव तथा पितृ ऋण का द्योतक बताता है। कुछ लोग इसे ज्ञान, भक्ति तथा कर्म मानते हैं तो कुछ वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद) की गांठ कहते हैं।

यज्ञोपवीत को बदलने का क्रम प्रायः तीन मासों में सम्पन्न होना चाहिये। पुराने यज्ञोपवीत को उतारने से पहले नया यज्ञोपवीत पहनना चाहिये। यज्ञोपवीत एक–एक करके पहनने होते हैं जिसके साथ पढ़ा जाने वाला मन्त्र है **''ऊँ यज्ञोपवीतं परं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्रयं प्रतिमंच शुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।। ऊँ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीतेनोपहहृयामि।''** कुछ लोग इससे पहले विनियोग भी करते हैं **''ऊँ यज्ञोपवीतमिती मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः, लिंगोक्ता देवता, त्रिष्टुपछन्दः, यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः।''** नया यज्ञोपवीत पहनने के उपरान्त पुराने यज्ञोपवीत को बायें कन्धे से उतार कर माला की तरह पहन लेते हैं तथा सर से पीछे की ओर उतार देते हैं। **''मन्त्रेण धारणं कार्य मन्त्रेण च विसर्जनम्। कर्तव्यं च सदा सदिर्नात्र कायां विचारणा।''** फिर पुराने यज्ञोपवीत को यह मन्त्र पढ़कर उसे जल में प्रवाहित कर दिया जाता है **''एतावदिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया। जीर्णत्वात् त्वत्परित्यागो गच्छ सूत्र यथा सुखम्।''** फिर गायत्री मन्त्र का जाप करके **''ऊँ तत्सत् श्री ब्रह्मार्पणमस्तु''** कहकर उसे भगवान को अर्पित कर देते हैं।

एक बात स्मरण रखने की है कि यज्ञोपवीत संस्कार या उपनयन संस्कार स्त्रियों तथा पीपल के वृक्षों (अश्वत्थ) के भी किये जाते थे। कन्या के लिये यद्यपि इतने कठोर नियम नहीं थे, फिर भी यज्ञोपवीत संस्कार के बिना उन्हें भी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। कन्याओं के उपनयन की आयु पांच वर्ष कही गयी है (भृगु)। ब्रह्मवादिनी (पढ़ी लिखी) होने के लिये उपनयन, अग्नि सेवा तथा वेदाध्ययन आवश्यक बताये गये। कन्या अपने घर में ही उपनयन के उपरान्त पिता या चाचा से ज्ञानार्जन कर सकती थी। बाणभट्ट ने कादम्बरी में तपस्विनी महाश्वेता के बारे में कहा है कि ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) से उनकी काया पवित्र हो गयी थी। **'ब्रह्मसूत्रेणपवित्रीकृतकायाम'**।

इन संस्कारों में बच्चे को जो पाठ पढ़ाया जाता है वह चिरकाल तक सत्य है। **'सत्यं वद** (सच बोलो), **धर्मं चर** (धर्म का आचरण करो), **स्वाध्यायान्मा प्रमदः** (अध्ययन में चूक मत करो), **सत्यात्र प्रमदितव्यम्** (सत्य बोलने से जी मत चुराना), **धर्मात्र प्रमदितव्यम्** (धर्म के पालन से जी मत चुराना), **मातृ देवो भव, पित्र देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव।**

12. वेदारंभ संस्कार : कई बार वेदारंभ से पूर्व विद्यारंभ नाम के उपांग संस्कार का विधान है। कभी–कभी मेधाजनन नामक उपांग संस्कार भी वेदारंभ से पहले

करने की परिपाटी है। वेदारंभ संस्कार के बाद वेदों को गुरु मुख से सुनकर उन पर मनन करना होता है। **"विद्यया लुप्यते पापं विद्ययाऽऽयुः प्रवर्धते। विद्यया सर्वसिद्धिः स्याद्विद्याऽमृतमश्नुते।'** वेद की जानकारी से पाप का लोप हो जाता है, आयु की वृद्धि तथा सर्वसिद्धि होती है यहां तक कि उसका पाठ कानों में अमृत रस की तरह उपलब्ध हो जाता है। वेद व्रत की चर्चा उपनयन संस्कार में की जा चुकी है जिसमें महानाम्नी, (सामवेद की महानाम्नी नौ ऋचाएँ) महान, उपनिषद् तथा उपाकर्मः चार व्रत आते हैं। महान व्रत दूसरे तथा उपनिषद् व्रत तीसरे वर्ष में किये जाते हैं। मुख्य रूप से यह संस्कार ब्रह्मचर्य आश्रम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। कौपीन, कटिवस्त्र, उत्तरीय तथा दण्ड धारण करके ब्रह्मचारी गुरु के सन्मुख प्रतिज्ञा करता है कि वह क्रोध, असत्य, अतिस्नान, अतिनिद्रा, अतिजागरण, भय, शोक, लोभ तथा मोहादि से दूर रहेगा तथा गुरु से सब गुण ग्रहण करेगा। उसका सबसे बड़ा तप वेदाध्ययन ही कहा गया, **"वेदाभ्यासो ही विप्रस्य तपः पारमिहोच्यते।"** मनुस्मृति में वेदज्ञाता विद्वान को ही बड़ा कहा गया है ना कि वृद्ध को। वेदाभ्यास की समाप्ति के बाद गुरु आशीर्वाद देते हैं कि शिष्य अपने गुरु के अनिन्दित कार्यो को करे और उनके चरित्र का अनुसरण करे। **"यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि से वितत्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकग्रंसुचारितानि। तानि त्वयो पास्यानि। नो इतराणि।।"** अतः वेदारंभ से जीवन का नया अध्याय प्रारंभ होता है जिसकी सुखद परिणति अगले संस्कार (केशान्तक) में होती है।

13. समावर्तन (वेदस्नान) संस्कार : वेद की पढ़ाई पूरी होने के बाद केशान्तक करा कर ब्रह्मचारी अपने परिवार में समावर्त्तित होता (लौटता) है। इसलिये यह समावर्तन संस्कार कहलाता है। अब वह गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर सकता है। इस संस्कार में घर लौटने के उपरान्त वेद मन्त्रों से अभिमन्त्रित आठ घड़ों के जल से ब्रह्मचारी को स्न।न कराते हैं इसलिये इसे वेद स्नान भी बताते हैं। घर आने पर बालक का स्वागत मधुपर्क आदि से किया जाता है तथा उसे नवीन वस्त्राभूषण पहनाये जाते हैं। लौटने से पहले गुरुदक्षिणा देकर गुरु की अनुमति से वरुण देव से वह आज्ञा लेता है कि आप हमरे कमर तथा ऊपरी भाग में पहने गये मूंज की रस्सी से बने उपवीत, कमरबन्ध आदि हटा कर सूती वस्त्र पहनने की आज्ञा दें जिससे आगे का जीवन निर्विघ्न बीत सके। **"उदुत्तमं ममुग्धि नो वि पाशं मध्यं चृत। अवाधमानि जीवसे ।।" (ऋग्वेद 1125/21)** तत्पश्चात् गुरु से आज्ञा लेकर वह वेद विद्या व्रत स्नातक घर आता है।

14. विवाह संस्कार : इस पर विस्तृत चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। **"ब्राह्माद्युद्वाह सम्भूतः पितृणां तारकः सुतः। विवाहस्य फलं त्वेतद्व्यारक्ष्यातं परमर्षिभिः।"** अर्थात्

ब्रह्म आदि उत्तम विवाहों से उत्पन्न पुत्र पितरों को तारने वाला होता है – विवाह का यही फल बताया गया है।

15-16 विवाहाग्निपरिग्रह : – शास्त्रों में बताया गया है कि किसी बहुत पशु वाले वैश्य के घर से अग्नि लाकर उसकी स्थापना मन्त्रों द्वारा करके उसी से अग्नि लेकर लाजा होम आदि कृत्य करने चाहियें। इस अग्नि का नाम तो है आवसथ्य पर इसे विवाहाग्नि भी कहा जाता है। विवाह के उपरान्त पति–पत्नी इसी अग्नि को लाकर अपने घर में स्थापित करते हैं तथा अपनी कुल परम्परा के अनुसार उसमें प्रतिदिन होम करते हैं। सभी स्मार्त कर्म आदि इसी अग्नि से सम्पन्न होते हैं – **''कर्म स्मार्त विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यह गृही।''** याज्ञवल्क्य स्मृति विवाह के उपरान्त लायी गयी अग्नि (आवसथ्य) से अतिरिक्त तीन अग्नियों (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य तथा आहवनीय) की स्थापना की जाती है जिसे त्रेताग्नि संस्कार कहते हैं। इन अग्नियों से श्रौतकर्मादि सम्पादित किये जाते हैं।

वाल्मीकीय रामायण में कहा गया है कि पुष्पक विमान में सीता सहित लौटते हुए श्री राम मलयाचल के ऊपर से जब गुज़र रहे होते हैं तो कहते हैं कि नीचे स्थित अगस्त्य मुनि के आश्रम से त्रेताग्नि में सम्पादित यज्ञों के सुगन्धित धुएं को सूंघ कर मैं अपने को सभी पाप तापों से मुक्त अनुभव कर रहा हूं।

17. प्रेत संस्कार : मृत्यु के उपरान्त शरीर को मुखाग्नि देकर वैदिक मन्त्रों द्वारा दाह–क्रिया सम्पन्न होती है। तब से लेकर द्वादश पर्यन्त सभी कर्म इसी संस्कार के अन्तर्गत सम्पन्न होते हैं। पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच वायु, मन तथा बुद्धि, ये सत्रह वस्तुएँ जब स्थूल शरीर से निकलती हैं तो तत्काल एक वायवीय शरीर में प्रवेश कर जाती हैं और तब जीव को 'प्रेत' कहा जाता है। प्रेत का अर्थ है अधिक हल्का और अधिक चलने वाला जीव। प्रेत शरीर की विशेष प्रीति स्थूल शरीर से होती है क्योंकि वहां सत्रह तत्त्व बहुत दिनों तक वास कर चुके हैं, इसलिये उस वासना से मुक्ति के लिये हिन्दुओं में स्थूल शरीर को जला कर गंगा प्रवाह करने की प्रथा है जिससे मृतक का सम्बन्ध पूर्व शरीर से छूट जाये। श्राद्ध, तिलांजली आदि देकर उसे तृप्ति कराने का विधान भी है जिससे प्रेत शरीर भी जल्दी छूट जाये। संन्यासियों और छोटे बच्चों को स्थूल शरीर के प्रति मोह नहीं रहता इसलिये उनके शव क्रमशः गंगा में प्रवाहित करने तथा ज़मीन में गाड़ देने की व्यवस्था है। ईसाईयों तथा मुसलमानों में शव को गाड़ने से पहले कुछ क्रियाएँ करने का विधान है जिससे प्रेत का मोह स्थूल शरीर से छूट जाये। वैसे चौरासी लाख योनियों की चर्चा की जाती है जिनमें प्रेत योनि भी एक है। कई ग्रन्थों, विशेष रूप से गरुड़ पुराण, में कहा गया है कि प्रेत योनि पाप कर्म भोग के लिये बनी है। अकाल मृत्यु के बाद भी प्रेत

योनि में जाने की बात कही गयी है। एक और बात स्मरण रखनी चाहिये। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य योनियों में पंच कोशों (अन्न मय, प्राण मय, मनो मय, विज्ञान मय और आनन्द मय) का विकास अधिक नहीं होने के कारण उन योनियों के प्राणियों की आत्माओं का अपने स्थूल शरीर के प्रति इतना ममत्व नहीं होता। इसलिये वे शीघ्र ही प्रेत योनि से छुटकारा पाकर अन्य योनियों में जन्म ले लेते हैं और उनका दाह संस्कार आदि करने की आवश्यकता नहीं होती।

अध्याय 19

पञ्चांग तथा विवाह एवं संतान प्रकरण

विवाह प्रकरण जीवन का बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। इस पर विस्तृत जानकारी के लिये श्री के.के. जोशी की मुहूर्त पुस्तक का अवलोकन करें। हां, पंचांग में विवाह की जितनी चर्चा है, उसकी बात हम यहां करते हैं। यह चर्चा प्रामाणिक तो है, पर सम्पूर्ण नहीं और मात्र एक दिशा निर्देशिका के तौर पर प्रयोग की जानी चाहिये। विवाह संस्कार का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में सूर्य और सोम के विवाह के रूप में मिलता है। विवाह के बिना सूर्य वर्षा नहीं कर पाते थे तथा पृथ्वी अन्न नहीं उपजा सकती थी। पांचों प्रकार की प्रजाओं के हाहाकार करने पर विवाह हुआ **''तौ संयन्तौ एतं देव विवाह व्यवहेताम्''** – इस प्रकार दोनों की शक्तियों का विवहन (सम्मेलन) हो गया। विवाह शब्द की निरूक्ति वेद की व्याख्या करने वाले सायणाचार्य जी ने कुछ इन शब्दों में की है, **''तदिदं विपर्यासेन सम्बन्ध नयनं विवाहम्''** – विश्व कल्याण के लिये दो परस्पर विरुद्ध स्वभाव की मौलिक शक्तियों का सम्बन्ध स्थापित होना विवाह है। जिस संस्कार के बाद ही मानव वेद, लोक, प्रज्ञा और धर्म के कार्य सही प्रकार से सम्पादित करता है। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में याज्ञवल्क्य का मत है कि विवाह संस्कार के बिना मानव अर्धेन्द्र – अपूर्ण है। पति–पत्नी का सम्मिलित शब्द है दम्पति। दम– गृह; पति–स्वामी अर्थात् पति एवं पत्नी, दोनों ही सम्मिलित रूप से घर के बराबर के स्वामी हैं।

विवाह के प्रकारः- मनुस्मृति (3/21) में कहा गया है–

'ब्रह्मा दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्य स्थासुरः। गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाश्चाष्टमोऽधमः।।'

नारद पुराण के 25वें अध्याय में इनकी व्याख्या बहुत सुन्दरता से की गयी है। इस श्लोक के अनुसार उस काल में विवाह के आठ प्रचलित प्रकार थे–

1. **ब्राह्मः** कन्या के पिता वर को सपरिवार आदर सहित बुलाकर कन्यादान करते हैं।
2. **दैवः** कन्या के पिता यज्ञकर्ता पुरोहित को दक्षिणा में कन्यादान करते हैं।
3. **आर्षः** कन्या के पिता यज्ञ करने के लिये वर से गोदान लेकर कन्यादान करते हैं।
4. **प्राजापत्यः** प्रजापति (ब्रह्मा या सृष्टिकर्ता) के ऋण को उतारने के लिये सन्तानोत्पत्ति के लिये वर कन्या का हाथ मांगता है।
5. **आसुरः** मूल्य लेकर कन्यादान किया जाता है।
6. **गान्धर्वः** जब वर एवं कन्या परस्पर सहमति से विवाह करें।
7. **राक्षसः** बलपूर्वक अपहृत कन्या से किया गया विवाह।
8. **पैशाचः** सोई हुई या बेसुध कन्या के साथ बलात्कार करना, इसे सबसे अधम कहा गया।

पुराणों में अन्य सातों प्रकार के विवाहों का वर्णन है परन्तु वर्तमान समाज में मात्र ब्राह्म तथा गान्धर्व विवाह प्रचलित हैं। यद्यपि शास्त्रों में ब्राह्म को श्रेष्ठ, दैव तथा आर्ष को मध्यम एवं शेष को निंदित माना गया है।

अब देखते हैं पंचांग विवाह करने में कैसे मदद करता है। आजकल प्रायः प्रत्येक विवाह में लोग मुहूर्त्त का ध्यान रखना तो चाहते हैं, पर अपनी शर्तों पर। जब उन्हें छुट्टी हो, होटल या बैंक्वेट हॉल उपलब्ध हों, मन्त्री जी की विवाह में उपस्थित होने की स्वीकृति हो तब जाकर ज्योतिषी का ख्याल आता है कि मुहूर्त्त भी देख लिया जाये। विवाह के लिये शास्त्र में कुछ आवश्यक नियम बताये गये हैं। जैसे लड़के और लड़की की कुण्डलियां मिलती हों—उनमें मेल हो। इसके लिये दोनों पात्रों के जन्म नक्षत्र तथा नक्षत्र के चरण को जानना आवश्यक होता है। इससे दोनों की जन्म राशि का पता भी चल जाता है। दोनों कुण्डलियों में चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार ही मिलान कराये जाते हैं।

अष्टकूट मिलान– उत्तर भारत में प्रचलित कुण्डली में मेल के लिये चन्द्रमा की स्थिति पर आधारित आठ विभिन्न स्त्रोत हैं। इस कारण कुण्डली मेलापक को अष्टकूट मिलान भी कहा जाता है। ये आठ स्रोत हैं क्रमशः **(i) वर्ण (ii) वश्य (iii) तारा (iv) योनि (v) ग्रह मैत्री (vi) गण (vii) भकूट और (viii) नाड़ी**। वर्ण से प्रारंभ करके नाड़ी तक प्रत्येक मेल के लिये एक से आठ अंक दिये गये हैं।

जैसे लड़का और लड़की का वर्ण मिल जाये तो 1 अंक, वश्य मिले तो 2 आदि आदि। इसे एक सारणी में नीचे बताया गया है।

अष्टकूट मिलान सारणी

क्रम सं.	मैत्री का आधार	कारण	अधिकतम अंक
1.	वर्ण	आध्यात्मिक उन्नति, आपस में प्रेम, सुख।	1
2.	वश्य	आपसी विश्वास, एक दूसरे के वश में रहना।	2
3.	तारा	दोनों का परस्पर भाग्य में वृद्धि करना	3
4.	योनि	आपसी शारीरिक सुख देने की क्षमता	4
5.	ग्रह	मानसिक मेल, आपसी विश्वास	5
6.	गण	स्वभाव में मेल, झगड़ा आदि	6
7.	भकूट	धन, वैभव, सन्तान, परिवार की वृद्धि	7
8.	नाड़ी	आनुवंशिक दोष आदि।	8
		कुल योग	36

अष्टकूट मिलान

I पारस्परिक आध्यात्मिक उत्थान के लिये - वर्ण चक्र

कन्या का वर्ण वर के बराबर अथवा उससे नीचे हो।

राशियां

4, 8, 12 ब्राह्मण
1, 5, 9 क्षत्रिय
2, 6, 10 वैश्य
3, 7, 11 शूद्र

वर → / वधु ↓	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
ब्राह्मण	1	0	0	0
क्षत्रिय	1	1	0	0
वैश्य	1	1	1	0
शूद्र	1	1	1	1

II पारस्परिक आकर्षण के लिये - वश्य चक्र

1. जलचरों पर कीट का वश्य नहीं है।
2. कीट को छोड़ कर अन्य सभी वनचर के वश में है।
3. कीट से सभी भय खाते हैं।
4. मनुज के लिये जलचर भक्ष्य।

वर → वधु ↓	मनुज	चतुष्पद	जलचर	वनचर	कीट
मनुज	2	1	½	0	1
चतुष्पद	1	2	1	0	1
जलचर	½	1	2	1	1
वनचर	0	0	1	2	0
कीट	1	1	1	0	2

5. मनुज के वश्य में सिंह को छोड़कर अन्य सभी।

नोटः दोनों का वश्य एक हो तो 2, वर के वश्य कन्या तो 1, वर की भक्ष्य कन्या तो ½ अन्यथा 0

मिथुन, कन्या, तुला, धनु (प्रथम भाग) तथा कुंभ – मनुज
मेष, बृषभ, धनु (दूसरा भाग), मकर (प्रथम भाग) – चतुष्पद
कर्क, मकर (पहला भाग), मीन – जलचर
सिंह – वनचर
वृश्चिक – कीट

III पारस्परिक भाग्य वृद्धि की संभावनाओं के लिये - तारा

वर से वधु के नक्षत्र की दूरी में 9 से भाग दें। शेष 3, 5, 7 (विपत, प्रतिहरी, नैधन) बचे तो शून्य अन्यथा 1½ अंक दें। यही दूसरी ओर से भी करें – 3, 5, 7 शेष तो शून्य अन्यथा 1½।

IV पारस्परिक शारीरिक आकर्षण के लिये - योनि मैत्री

व्याघ्र–गौ, हस्त–सिंह, अश्व–महिष, श्वान–मृग, सर्प–नकुल, वानर–मेष, मूषक–मार्जार की योनियों में अत्यधिक वैर है।

एक ही योनि के पुरुष–स्त्री नक्षत्रों की योनि मैत्री सर्वश्रेष्ठ (4), मित्र में दोनों स्त्री तो उचित, मित्र में दोनों पुरुष–झगड़ा मित्र में (3), सम में (2), शत्रु में (1), अधिशत्रु में (0)।

वर → योनि वधु ↓	नक्षत्र		अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	कुल	सिंह
	पुरुष	स्त्री														
अश्व	अश्व.	शत.	4	2	2	3	2	2	2	1	0	1	3	3	2	1
गज	भरिणी	रेवती	2	4	3	3	2	2	2	2	3	2	2	3	3	0
मेष	पुष्य	कृतिका	2	3	4	2	1	2	1	3	3	1	2	0	3	1
सर्प	रोहिणी	मृग.	3	3	2	3	2	2	1	2	2	1	2	2	0	2
श्वान	मूल	आर्द्रा	2	2	1	2	4	2	1	2	2	1	0	2	1	1
मार्जार	आश्ले	पुर्न.	2	2	2	2	2	4	0	2	2	1	3	3	2	2
मूषक	मघा	पू.फा.	2	2	1	1	1	0	4	2	2	2	2	2	2	1
गौ	उ.फा.	उ.भा	1	2	3	2	2	2	2	4	3	0	3	2	2	1
महिष	स्वाति	हस्ता	0	3	3	2	2	2	2	3	4	1	2	2	2	1
व्याघ्र	विशाख	चित्रा	1	2	1	1	1	1	2	0	1	4	1	1	2	2
मृग	ज्येष्ठा	अनु.	3	2	2	2	0	3	2	3	2	1	4	2	2	2
वानर	पू.षा.	श्रवण	3	3	0	2	2	3	2	2	2	1	2	4	3	2
नकुल	उ.षा.	अभि.	2	3	3	0	1	2	2	2	2	2	2	3	4	2
सिंह	पू.भा.	धनिष्ठा	1	0	1	2	1	2	1	1	1	2	2	2	2	4

एक मत से योनि मिलान मात्र शूद्रों के लिये – एक मत से भकूट मैत्री हो तो योनि दोष नहीं – अन्य मत से ग्रह मैत्री हो तो योनि दोष नहीं।

V ग्रह मैत्री- पराभौतिक तथा एक दूसरे के प्रति आन्तरिक स्नेह के लिए
वर–वधु के चन्द्रमा स्थित राशियों के स्वामियों के परस्पर सम्बन्ध पर आधारित है।

दोनों ओर से मित्र 5, मित्र व सम 4, सम और सम 3, शत्रु और मित्र 1, सम और शत्रु ½, शत्रु और शत्रु 0। एक मत से ग्रह मैत्री हो तो वर्ण, वश्य, गण, योनि तथा भकूट दोष नहीं लगते। एक अन्य मत से नवांश में भी ग्रह मैत्री देखनी चाहिए।

VI स्वभाव में सामंजस्य के लिए - गण मैत्री – ग्रह मैत्री हो तो गण दोष नहीं – एक मत से यदि भकूट, योनि तथा ग्रह मैत्री हो तो राक्षस गण की कन्या का दोष नहीं।

VII भकूट मिलान - सब प्रकार से दाम्पत्य जीवन में सुख प्राप्ति

वर की राशि/ कन्या की राशि 2/12, 9/5, 6,8 हो तो बुरा –

2/12 - परस्पर मित्र (2/3, 4/5, 6/7, 8/9, 10/11, 12/1 राशियां)

5/9 - कन्या से वर 9 दूर तो बहुत बुरा, 6/8 – परस्पर शत्रु तो बहुत बुरा अन्यथा सामान्य जैसे 1/8, 3/10, 5/12, 7/2, 9/4 तथा 11/6

यदि जन्म राशि तथा नक्षत्र एक हों तथा चरण अलग अलग हों तो दोष नहीं। एक नक्षत्र तथा एक ही राशि पर चरण अलग–अलग हों तो भी दोष नहीं।

वर → वधु ↓	देव	मनुज	राक्षस
देव	6	5	1
मनुज	5	6	0
राक्षस	0	0	6

VIII नाड़ी दोष - शारीरिक एवं जैविक सामंजस्य

जन्म राशि एक किन्तु नक्षत्र भिन्न अथवा नक्षत्र एक परन्तु राशि भिन्न अथवा चरण भिन्न होने पर दोष नहीं। अलग नाड़ी होने पर 8 अंक अन्यथा 0।

नक्षत्र संख्या									नाड़ी
1	6	7	12	13	18	19	24	25	आध्य
2	5	8	11	14	17	20	23	26	मध्या
3	4	9	10	15	16	21	22	27	अन्त्या

विशेषः स्त्री दीर्घः वर का नक्षत्र कन्या के नक्षत्र से ज़ितनी दूरी पर हो उतना अच्छा। कन्या के नक्षत्र के ठीक बाद का नक्षत्र वर का हो तो अत्यन्त अशुभ।

मेलापक सारणी

वर →			मेष			वृषभ				कुम्भ			मीन			
कन्या ↓	↓चरण		4	4	1	3	4	2		2	4	3	1	4	4	
		नक्षत्र	अश्व	भर.	कृति	कृ	रो.	मृ	......	धनि	शत	पू.भा.प	पू.भा.प	उ.भा.प	रे	← नक्षत्र↓
	4	अ.	28 3	33 0	28 ||	18 || 4	21 || -4	22 || -4	......	20	15 3	16 3	14 || 34	24 || +4	26 || +4	अ.
मेष	4	भ.	34	28 3	29 01	19 041	21 || -4	14 || 34	......	10 132	20 -1	24 -2	22 || 24+	17 || +34	26 || +4	भ
	1	कृ.	27 ||	29 1	28 3	18 34	10 1340	16 || 4	......	25	27	19 1	17 || 14	19 || 14	11 || 34	कृ.
वृषभ	3	कृ.	18 || -4	20 14	19 34	28 3	20 013	26 ||	......	29 ||	31 ||	23 || 1	20 1	22 1	14 3	कृ.
	4	रो.	23 || -4	23 || 4	11 34 |	20 31	28 3	36 0	......	24 || -1	24 || -1	30 ||	27	27	19 3	रो
	2	मृ.	23 || -4	14 || 34	18 || -4	27 ||	35	28 3	......	19 3	27	29 ||	26	18 3	27	मृ.
	- - -	- - -	- - -	- - -	- - -	- - -	- - -	- - -	....	- - -	- - -	- - -	- - -	- - -	- - -	

मेलापक सारणी

कुंभ	2	ध.	20	11 132	26	30 ।।	27 1	19 3	......	28 3	33 0	28 ।। 1	18 14	7 134	14 42	ध.
	4	श.	15 3	21 1	28	32 ।।	25 ।। 1	27	......	33	28 3	19 0	811 0	17 14	16 4	श.
	3	पू.भा.	18 3	25 +2	20 -1	24 ।। -1	31 ।।	31 ।।	......	28 ।। -1	19 13	28 3	17 ।। 34	22 ।। 04	20 42	पू.भा.
	1	पू.भा.	14 ।। .34	21 ।। +24	16 ।। -14	19 1	26	26	......	17 14	7 ।। 134	16 ।। 34	28 ।। 3	33 0	30 ।। +2	पू.भा.
मीन	4	उ.भा.	24 ।। +4	16 ।। 34	18 ।। -14	21 1	26	18 3	......	6 134	16 14	21 ।। 4	33	28 3	35 0	उ.भा.
	4	रेवती	25 +4	24 ।। +4	11 ।। 34	14 3	17 3	26	......	14 42	16 4	18 42	29 ।। +2	34	28 3	रेवती
			अ.	भ.	कृ.	कृ.	रो.	मृ.		ध.	श.	पू.भा.	पू.भा.	उ.भा.	रे.	

इनमें नाड़ी, भकूट और गण मैत्री बहुत महत्त्वपूर्ण माने गये। तारा मैत्री को भी कई ज्योतिषी बहुत महत्त्व देते हैं। देखने की बात है कि अधिकतम गुण 36 मिल सकते हैं इसलिए अच्छी कुण्डली मिलान के 24 गुण तक मिल जाने चाहिये। आजकल, भागदौड़ की दुनिया में, 50% या 18 गुण मिल जाने पर पंडित कुण्डली मिल जाने की घोषणा कर देते हैं, जिसमें कोई बुराई नहीं दिखती। पंचांग से मेलापक करने पर गणना की गणित का सारा बखेड़ा ही खत्म हो जाता है। पंचांग में वर–वधु के जन्म नक्षत्र पर आधारित आठ गुणों की मेलापक सारणी बनी होती है जिसका एक अंश सारणी के रूप में पीछे दिया गया है।

इस सारणी को ध्यान से देखेंगे तो बात अपने आप स्पष्ट हो जायेगी। पहले इसे पढ़ना सीखें। आप पायेंगे कि कुछ खानों में मात्र एक ही संख्या लिखी हुई है जबकि कुछ अन्य में ऊपर और नीचे दो संख्यायें लिखी हुई हैं। इन्हें हमने पिछले पृष्ठ की सारणी में गाढ़े अक्षरों से दिखाया है। ऊपर की संख्या तो गुण मेलापक की संख्या बताती है, नीचे की संख्या मेलापक के दोष बताती है। वर के लिये बायीं से दायीं दिशा की ओर चलें। आप देखेंगे कि वर के आगे राशियों के नाम, राशियों के नीचे चरण तथा उनके नीचे नक्षत्रों के नाम लिखे हुए हैं। वर की कुण्डली से उसकी राशि और नक्षत्र देख लें। मान लें कि वर की राशि है वृषभ और नक्षत्र है कृतिका। इसी प्रकार कन्या की राशि और नक्षत्र क्रमशः कुंभ और शतभिषा मान लेते हैं। अब वर के नक्षत्र (वृषभ राशि में कृतिका) के लिये ऊपर से नीचे और कन्या के नक्षत्र (कुंभ की शतभिषा) के लिये बायें से दायें चलते हैं। दोनों ओर से जहां खाना मिलता है वहां लिखा है 32।।; अर्थात साढ़े बत्तीस गुण मिल गये हैं। **नोटः सन 1957 तक भारत में एक रुपया सोलह आने के बराबर होता था। तब एक चौथाई रुपया (चवन्नी) एक खड़ी पाई के द्वारा (।) दिखाते थे। आधा हुआ ।। (दो खड़ी पाईयों से दिखाया जाना)। तीन चौथाई के लिये तीन खड़ी पाईयों (।।।) का प्रयोग होता था। इस प्रकार 32।। का अर्थ हुआ साढ़े बत्तीस।** अर्थात् यहां साढ़े बत्तीस गुण मिल गये। यह मेलापक बहुत अच्छा कहा जायेगा।

एक अन्य उदाहरण देखते हैं। वृषभ राशि और रोहिणी नक्षत्र की कन्या हो तथा मेष राशि और कृतिका नक्षत्र का वर तो जहां ये दोनों मिलते हैं उस कोष्ठक में लिखा मिलता है 11/341 अर्थात् कुल गुण 11 मिले और दोष 3,4 तथा 1 क्रमांक वाले हुए। 3 का अर्थ है नाडी दोष, 4 का अर्थ है भकूट (द्विर्द्वादश) दोष तथा 1 का अर्थ है गण दोष। कहीं–कहीं 2, 5, और 6 भी लिखे मिलते हैं जिनके अर्थ हैं क्रमशः योनि दोष, भकूट (नवपंचक) दोष तथा भकूट (षडाष्टक) दोष। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं 0 (शून्य) का भी प्रयोग मिलता है। जैसे एक अन्य उदाहरण में वर मृगशिरा नक्षत्र के द्वितीय चरण का हो और कन्या रोहिणी नक्षत्र की तो सारणी में लिखा मिलता है 36 तथा 0। यहां यद्यपि 36 के 36 गुण मिल जाते हैं लेकिन वहां दोष

संख्या 0 लिखी है। इसका नाम है स्त्री दूर दोष। लड़की का नक्षत्र वर के नक्षत्र से ठीक पहले आता है इसलिये इसे भी महादोष माना गया है। वर का नक्षत्र कन्या के नक्षत्र से जितना दूर हो उतना ही अच्छा। यदि वर फा नक्षत्र कन्या के नक्षत्र से 9 नक्षत्रों तक दूर हो तो यह दोष गम्भीर माना जाता है। अन्त में कहीं–कहीं (+) धन और कहीं (-) ऋण का चिन्ह भी देखा जा सकता है। (+) का अर्थ है कि दोष गम्भीर है। (-) का चिन्ह बताता है कि दोष तो है पर अधिक नहीं। जैसे उ.भा.प. का वर और भरणी की कन्या के 17।।(साढ़े सत्तरह) गुण मिल तो गये पर वहां नीचे +34 लिखा है। अर्थात् नाड़ी महादोष है (+3) (दोनों की नाड़ियां मध्या है जो नहीं होनी चाहिए) तथा 4 का अर्थ हुआ भकूट द्विर्द्वादश (अर्थात् वर–वधु की राशियां एक दूसरे से दूसरे/बारहवें स्थान पर हैं) दोष है। वर की राशि है मीन और कन्या की राशि है मेष अतः द्विर्द्वादश दोष है। एक और उदाहरण से बात और अधिक स्पष्ट होगी। पुनर्वसु (3) का लड़का और पूर्व फाल्गुनी (2) की लड़की के 26।। (साढ़े छब्बीस) गुण मिलते हैं। वहां (-2) लिखा है। अर्थात् योनि वैर का दोष है पर है साधारण दोष जिसे छोड़ा जा सकता है। लड़के की योनि है मार्जार या बिल्ली और लड़की की योनि है मूषक या चूहा। इन दोनों में वैर जन्मजात है पर यह दोष क्षम्य माना गया क्योंकि लड़के की योनि लड़की की योनि पर भारी पड़ रही है। दूसरी ओर वर का नक्षत्र पूर्व फाल्गुनी और कन्या का पुनर्वसु हो तो भी 26।। गुण ही मिलते हैं और वहां भी योनि दोष ही है पर इसे गम्भीर माना गया क्योंकि लड़के की योनि मूषक और लड़की की मार्जार हो गयी। यह शायद पुरानी मानसिकता होगी जब माना गया था कि पुरुष को स्त्री से हर प्रकार से श्रेष्ठ होना चाहिए तभी जीवन की गाड़ी सही चलेगी।

ब्याह का समय निर्धारणः वर–वधु के गुण मिलाने के अलावा पंचांग की सहायता से किसी भी शुभकार्य के लिये मुहूर्त निर्धारण बहुत सरल हो जाता है। प्रत्येक वर्ष के लिये विश्वविजय पंचांग में प्रायः पृष्ठ संख्या 12 से 17 तक विभिन्न शुभ कार्यो के मुहूर्त दिये जाते है। इन्हीं में ब्याह के भी मुहूर्त्त, पूरे वर्ष भर के लिये दिये जाते हैं जिससे ब्याह की तारीख तय करना भी बहुत आसान होता है। आइये इसे समझें। पंचांग के प्रारंभ में ही शुभ कार्यो के शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकार के मुहूर्त दिये हुए होते हैं। जहां तक संभव हो अशुद्ध मुहुर्त से बचना चाहिए। मान लीजिये कि जुलाई 2007 में विवाह का शुभ मुहूर्त पता करना है। संवत्सर 2064 के विश्वविजय पंचाग के पृष्ठ 12 के दाहिने ओर के कालम में आप पायेंगे कि पूरे जुलाई माह में मात्र 1, 6, 7 और 11 जुलाई ही विवाह के लिये शुभ पाये गये। जिसके बाद अगस्त, सितम्बर तथा अक्टूबर माह में ही नहीं, बल्कि 21 नवम्बर तक कोई भी विवाह योग्य शुभ तिथि नहीं हैं।

आषाढ़ कृष्ण (प्रतिपदा) रवौ (रविवार) के आगे (1 जुलाई) लिखा है उत्तराषाढ़ा

नक्षत्र, फिर उसके बाद लिखा है । । । । । S । । । । फिर लिखा है **लग्न 12 (23/56 तक)**

विवाह मुहूर्त्त के दस दोषः इतने छोटे से वाक्य में ढेर सारी सूचनाएँ छिपी हुई हैं। पहले समझते हैं । । । । । S । । । । की पहेली। संक्षेप में यह जानना चाहये कि विवाह के लिये मुहूर्त में 10 दोष संभव हैं। इनके क्रमवार नाम हैं, (i) **लत्ता,** (ii) **पात,** (iii) **युति,** (iv) **वेध,** (v) **जामित्र,** (vi) **मृत्युवाण,** (vii) **एकार्गल,** (viii) **उपग्रह,** (ix) **क्रान्तिसाम्य** और (x) **दग्धा** तिथि। सामान्यतः प्रत्येक तिथि में एक न एक दोष होता ही है। राव साहब हंसते हुए कहते हैं कि नारद मुनि तो ज्योतिष के प्रवर्तक ही हुए–वे ऐसा मुहूर्त ढूंढते रहे जिसमें एक भी दोष न हो और वैसा मुहूर्त न मिल पाने के कारण आज तक कुंवारे हैं नारद मुनि ! यह तो हुई ठिठोली, पर सच भी यही है कि शायद ही कोई मुहूर्त सब प्रकार से शुद्ध हो। इसलिये सबसे कम दोषों वाले मुहूर्त को अच्छा माना गया। अर्थात् 10 में सात तक भी शुद्ध रहे तो मामंला ठीक है। फिर से एक बार गौर से देखें । । । । । S । । ।। की पहेली। पांच खड़ी पाई के बाद चिन्ह S एक बार आया है। जिसके बाद फिर चार खड़ी पाई आयी है। खड़ी पाई का अर्थ है दोष मुक्त–अवग्रह 'S' का अर्थ है दोष। ऊपर देखने से पता चलेगा कि उस तिथि को दस संभावित दोषों में से पहले पांच और अन्तिम चार नहीं है मात्र दोष संख्या 6 है। अर्थात उस तिथि को मात्र मृत्युवाण दोष है शेष कोई भी नहीं। इस प्रकार 6 जुलाई को (S । । । । S S । । ।) दोष संख्या 1, 6 और 7 हैं। अर्थात् उस दिन लत्ता, मृत्युवाण और एकार्गल दोष हैं शेष सात दोष नहीं। पंचांग में बताया गया है कि 6 जुलाई को 2 (बृषभ) लग्न शुभ हैं, यद्यपि बृषभ लग्न के लिये गुरु सप्तम भाव में पूज्य हैं तथा मृत्युवाण 15/06 बजे तक है। आपको स्मरण होगा कि छठा दोष (मृत्युवाण) विवाह में त्याज्य है। अतः 6 जुलाई को विवाह 15/06 के बाद ही होना चाहिये। इस प्रकार हम ब्याह के लिए सुविधानुसार तिथि चुन लेते हैं। पंचांग के माध्यम से यह तो पता चलता है ही कि किस मास में किन दिनों ब्याह किया/कराया जा सकता है परन्तु आवश्यक है कि वे दिन/तिथि वर और वध ु की राशियों के लिये भी शुभ हों। इसके लिये भी पंचांग बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। प्रचलित मान्यता है कि हरि शयन के समय ब्याह करना मना होता है। कहते हैं आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक माह की शुक्ल एकादशी (प्रायः चार माह तक) भगवान विष्णु शयन करते हैं। पंजाब, दोआब (गंगा–यमुना के बीच पड़ने वाले प्रदेश) तथा पहाड़ के कुछ स्थानों में हरि शयन काल ब्याह के लिए अशुभ नहीं मानते। इन सब बातों की विस्तृत जानकारी के लिये जोशी जी की अनमोल पुस्तक देखना श्रेयस्कर होगा। हां, चर्चा चल रही थी कि वर–वधु के लिये विशेष रूप से शुभ तिथियों का चयन कैसे किया जाये। इसके लिए शास्त्रों में त्रिबल शुद्धि पर विशेष जोर दिया गया है।

त्रिबल शुद्धिः लड़के तथा लड़की के विवाह के समय गोचर के चन्द्रमा, सूर्य तथा गुरु अशुभ स्थानों में नहीं होने चाहिये। इसको ही त्रिबल शुद्धि कहते हैं। जन्म चन्द्रमा से वर और कन्या दोनों के लिये गोचर का चन्द्र 4/8/12 वें भाव में शास्त्रों के हिसाब से वर्जित है। परंतु पंचांग में 12 वें चन्द्र को ग्राह्य मान लिया गया है क्योंकि यहां का चन्द्रमा बड़ी समस्या नहीं देता। वर के लिए जन्म चन्द्र से 4/8/12 वें भाव के गोचर के सूर्य को न्येष्ट (अहितकारी) कहा गया। इन स्थितियों में लड़के का ब्याह वर्जित है। जन्म राशि से 1, 2, 5, 7 और 9 वें भाव में सूर्य के बारे में कहा गया है कि इन दिनों सूर्य की पूजा करके ब्याह हो सकता है। इस प्रकार जन्म राशि से सूर्य 3, 6, 10 तथा 11वें भावों में होने पर ही कष्टकारी नहीं होते। कन्या के लिये यूं तो जन्म राशि से 4, 8, 12 के गुरु न्येष्ट माने गये पर आजकल अधिक आयु की कन्या का विवाह होने के कारन उन्हें भी पूज्य की श्रेणी में रखा गया है। इस प्रकार कन्या की जन्म राशि से 1, 3, 4, 6, 8, 10 तथा 12 वें भाव में गोचर के गुरु हों तो उन्हें पूजा करके शान्त किया जा सकता है। पंचांग में गणना की सारी मुसीबतों से बचा कर, साल भर के लिये, वर–वधु की जन्मराशि से चन्द, सूर्य और गुरु के गोचर के आधार पर शुभ तिथियां लिखी होती हैं। इसे उदाहरण से समझेंगे। वृषभ का वर और कुंभ की कन्या का ब्याह हम पहले तय कर आये हैं क्योंकि इनके साढ़े बत्तीस गुण मिल रहे हैं। ब्याह जुलाई 2007 में कराना है, इसके लिए हमने सपरिहार शुद्ध विवाह मुहूर्त की सारणी में पाया है कि जुलाई की शुद्ध तारीखें हैं 1, 6, 7 और 11। अब पृष्ठ 18-19 पर त्रिबल शुद्धि की सारणी देखिये। वहां वृषभ राशि वाले वर के लिये जुलाई में 1, 2, 6, 7 तथा 11 तारीखें लिखी हैं। साथ यह भी लिखा है कि 14 मई से 15 जुलाई तक सूर्य पूज्य हैं। अब कुंभ की कन्या के लिये जुलाई की शुभ तिथियां इसी त्रिबल शुद्धि सारणी से (पृष्ठ 19) देखते हैं। वहां तारीखें हैं 1, 2, 6 और 7 जुलाई। कन्या के लिये पूरे वर्ष में गुरु शुद्ध हैं। अब वर तथा कन्या के लिये तारीखों को देखेंगे तो पायेंगे कि मात्र 1, 6 तथा 7 जुलाई ऐसी तारीखें हैं जो वर और वधु दोनों के लिये हर प्रकार से शुद्ध हैं। एक बार पुनः पंचांग के पृष्ठ 12 पर विवाह की शुद्ध तिथियां देखिये। वहां मात्र 1, 6, और 7 जुलाई के दोष तो लिखे हैं पर 2 जुलाई की चर्चा भी नहीं है वहां। इस प्रकार जुलाई में मात्र तीन दिन हैं जब इन बच्चों के विवाह हो सकते हैं। इनमें भी सबसे शुद्ध 1 जुलाई है। यह है पंचांग का चमत्कार !

पंचांग में विभिन्न प्रकार के मुहूर्त दिये जाते हैं। जीवन के प्रत्येक कार्य के लिये चाहे वह सर्वदेव प्रतिष्ठा हो या दुकान खोलने/व्यापार प्रारंभ करने, शिक्षा, गृह निर्माण, चूड़ा कर्म आदि आदि। इन्हें ध्यान में रख कर किया गया कार्य जातक के जीवन में सफलता लाता है।

पञ्चांग तथा संतान चिन्ता

विवाह प्रकरण के बाद ही आम भारतीय के मन में जो उल्लास से प्रतीक्षा की जाने वाली बात होती है वह है सन्तान की ! पहले ही हम संस्कारों की चर्चा करते समय भारतीय जीवन शैली के परिपेक्ष्य में **सन्तान का महत्त्व** समझ चुके हैं। पंचांग के बारे में तो इतना ही कहा जा सकता है कि "हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता"। गागर में सागर भरने वाली बात है वहां। यद्यपि विश्व विजय पंचांग के प्रत्येक अंक में उन्हीं सूचनाओं की पुनरावृति रहती है किन्तु उन सूचनाओं में से कुछ की उपादेयता आज भी है। कृपया पृष्ठ 88 से प्रारंभ करें। वहां पितृपरोक्ष जन्म, सर या पांव से जन्म आदि बातों की जानकारी तो है ही, प्रसूति गृह आदि की भी विस्तृत चर्चा उपलब्ध है। यद्यपि शहरों में तो प्रसूति का कार्य अस्पतालों आदि में होता है, फिर भी कुछ बातें चमत्कृत करने जैसी लगती हैं। इसी प्रकार पंचांग में गंडमूल विचार, बाल कष्टावली चक्र, नक्षत्र कष्टावली चक्र, घात चक्र तथा वैर वर्ग आदि के बारे में बहुत विस्तृत रूप से बताया जाता है। यह सब वहां इतना सुस्पष्ट लिखा गया है कि पुनरावृति के दोष के भय से उन्हें नहीं लिखा जा रहा है। सुधी पाठक कृपया पंचांग से यह सब समझ लें।

किन्तु यह भी सत्य है कि आज के समाज में, जब विलम्ब से विवाह हो रहे हैं, सन्तान–चिन्ता के आयाम बदल गये हैं।

हमने पहले भी बताया था कि लग्नेश नवांश की जिस राशि में जाते हैं, वहां से दूसरे, छठे तथा आठवें भावों में बैठे ग्रह जन्म कुण्डली में जिस भी भाव के स्वामी होते हैं, वहीं से कष्ट होता है। इस सूत्र को याद रखना चाहिये। इससे सन्तान के न होने के संभावित कष्ट का भी अच्छी प्रकार से बोध हो सकता है।

जन्म कुण्डली और सन्तान सुख :

सन्तान चिन्ता के लिये पंचम भाव तथा पंचमेश का अध्ययन किये जाने का ज्ञान सभी आर्ष पुस्तकों में मिलता है।

सामान्य सूत्र के अनुसार पंचमेश शत्रु राशि में जायें, नीच, या अस्तंगत हों, ग्रह युद्ध में हार गये हों, अथवा लग्न से 6, 8, या 12वें भाव के स्वामी होकर पंचम भाव में बैठ जायें तो सन्तान का अभाव होता है। इसी प्रकार यदि कोई ग्रह नीच के हों अथवा 6, 8, 12वें भाव के स्वामी होकर पंचम भाव में बैठ जायें तो भी सन्तान का अभाव होता है। जितनी अधिक बाधाएँ होती हैं, सन्तान सुख में उतनी ही मुश्किलें आती हैं। ऐसे ग्रहों को बाधा कारक ग्रह कहते हैं। नीचे दी गयी सारणी में बाधा कारक या प्रतिबन्धक ग्रह और उसके प्रभाव बताये गये हैं–

प्रतिबंधक ग्रह	संन्तानहीनता का कारण
सूर्य	शंभु या गरुड से द्रोह/ पितृशाप
चन्द्र	भगवती/ माता/ सधवा का शाप
मंगल	स्कन्ध/ ग्राम देवता/ शत्रु/ भाई–बन्धु का शाप
बुध	बिल्ली की हत्या/ मछली या अन्य प्राणियों के अन्डे नष्ट करने / बच्चों का शाप
गुरु	गुरु द्रोह/ फलदार वृक्षों को काटने का शाप
शुक्र	गौ/ साध्वी/ यक्षिणी या फूलदार वृक्ष काटने का शाप
शनि	पिशाच/ प्रेत/ यमराज/ पीपल का पेड़ काटने का शाप
विशेषः	पंचम भाव/ पंचमेश पर राहु के प्रभाव को सर्पदोष, केतु के प्रभाव को ब्राह्मण शाप तथा मान्दी के प्रभाव को प्रेत शाप कहा जाता है।

यदि पंचम भाव पर गुरु, केतु तथा मान्दी का प्रभाव हो तो ब्राह्मण हत्या तथा शुक्र, चन्द्र एवं मान्दी का प्रभाव हो तो युवती स्त्री की हत्या का शाप सन्तान हीनता का कारण बताया जाता है।

पंचम भाव तथा अल्पसुतर्क्ष – पहले हम अल्पसुतर्क्ष शब्द का अर्थ समझ लें। अल्प अर्थात् कम, सुत अर्थात् सन्तान तथा ऋृक्ष अर्थात् राशि। वृषभ, सिंह, कन्या तथा वृश्चिक, ये चार राशियां अल्पसुतर्क्ष कही गयी हैं जिनका पंचम भाव में होना सन्तान के लिये अच्छा नहीं माना गया। हां, यदि पंचम भाव में अल्पसुतर्क्ष राशि में शुभ ग्रह बैठे हों तो सन्तान होने की संभावना हो जाती है।

पंचम भाव में विभिन्न भावों के स्वामी तथा सन्तान सुखः

पंचम भाव में	सन्तान सुख
लग्नेश	बच्चों से सामान्य सुख, प्रथम सन्तान की आयु में बाधा
द्वितीयेश	कई सन्तानें
तृतीयेश	सन्तान से सुख किन्तु सन्तान प्राप्ति में बाधा।
चतुर्थेश	अच्छी सन्तान तथा सन्तान से सुख।
पंचमेश	पंचमेश पर शुभ प्रभाव हों तो अच्छी सन्तान तथा उनसे सुख अन्यथा दुष्प्रभाव होने पर सन्तान का अभाव।

षष्ठेश	अपनी ही सन्तान का वैरी तथा बच्चों से पीड़ा हो।
सप्तमेश	पुत्र अर्थात् अपनी माता की देखभाल/ सेवा करता है।
अष्टमेश	अल्प सन्तान, सन्तान के जन्म के बाद दुःख पाये।
नवमेश	सन्तान भाग्यशाली तथा सद्कर्मी।
दशमेश	सन्तान से तथा सन्तान को सुख।
एकादशेश	गुणी सन्तान, पिता के साथ पारस्परिक सद्व्यवहार।
द्वादशेश	बच्चों पर व्यय करने के उपरान्त भी उनसे सुख नहीं।

विभिन्न भावों में पंचमेश तथा सन्तान सुखः

पंचमेश की स्थिति	सन्तान सुख
लग्न	सन्तान सुख से वंचित।
द्वितीय भाव	धनी सन्तान।
तृतीय	सन्तान प्राप्ति में अड़चनें परन्तु सन्तान जातक के भाई–बहनों की सेवा करती है।
चतुर्थ	सन्तान सुखी किन्तु जातक से दूर रहे।
पंचम	पंचमेश पर शुभ प्रभाव हों तो अच्छी सन्तान तथा उनसे सुख अन्यथा दुष्प्रभाव होने पर सन्तान का अभाव।
षष्ठम	अस्वस्थ संतान, सन्तान से विरोध।
सप्तम	सन्तान सुख ।
अष्टम	सन्तान के लिये अहितकारी।
नवम	सन्तान को उच्च पद।
दशम	सन्तान को तथा सन्तान से कष्ट।
एकादश	कई सन्तानें तथा अधिक पुत्र।
द्वादश	सन्तानहीन अथवा सन्तान से कष्ट।

पंचम भाव में विभिन्न ग्रह तथा सन्तान सुखः

ग्रह	फल
सूर्य	सन्तान सुख से वंचित (यदि कोई ग्रह साथ हो तो सूर्य के पाप प्रभाव में कमी)। सूर्य स्थिर राशि में हों तो प्रथम सन्तान को मृत्यु भय, चर राशि में हों तो नहीं तथा द्विस्वभाव में गर्भपात। सिंह राशि में पहले पुत्र के नष्ट होने की आशंका।

चन्दमा	अधिक कन्या होने का योग, चन्द्रमा क्षीण हो तो कन्याएँ चंचला होती हैं।
मंगल	स्त्री को गर्भपात, पुत्र सुखहीन, (मकर, मेष या वृश्चिक हो तब नहीं) पापग्रह की युति से पुत्र का नाश, 8वें घर का स्वामी साथ तो पोष्य पुत्र।
बुध	सामान्यतः पुत्रवान, यदि बुध अस्त/ शत्रु ग्रहों से दृष्ट हों तो पुत्रशोक।
गुरु.	पंचम भाव में अकेला गुरु निष्फल होता है। पुत्र का सुख कम होता है। यदि शुभ ग्रह का साथ हो तो अशुभता में कमी।
शुक्र	अच्छी सन्तान, सदा सुखी।
शनि	पुत्र रहित अथवा पुत्रशोक से पीड़ित, उच्च के शनि तो एक पुत्र, शत्रु राशि हो तो पुत्रों का नाश।
राहु	प्रायः निःसन्तान, हाँ पंचम भाव में यदि कर्क या सिंह हो तो सन्तान सुख अन्यथा दीन और दुःखी पुत्र की प्राप्ति।
केतु	अल्प सन्तान, ज्येष्ठ सन्तान कन्या।

सन्तान प्राप्ति के सामान्य योग–

पहले सन्तान प्राप्ति के लिये बताये गये सामान्य योगों पर एक दृष्टि डालते हैं–

– यदि पंचमेश होकर गुरु बली हों तथा उनपर बली लग्नेश की दृष्टि हो।
– यदि पंचमेश तथा लग्नेश में दृष्टि, युति अथवा परिवर्तन के कारण सम्बन्ध बने हों।
– यदि लग्नेश तथा नवमेश दोनों सप्तम भाव में तथा द्वितीयेश लग्न में हों।
– जन्म कुण्डली के सप्तमेश की नवांश कुण्डली की राशि के स्वामी को जन्म कुण्डली में देखिये। यदि इन ग्रह पर द्वितीयेश, नवमेश या लग्नेश की दृष्टि हो तो भी सन्तान सुख प्रायः सुनिश्चित होता है।
– यदि लग्नेश तथा पंचमेश केन्द्र में तथा द्वितीयेश बली हों।

भारतीय परम्परा में पुरुष को माना गया बीजारोपण करने का कारक जिससे सन्तान उत्पन्न होती है। किन्तु कितना भी अच्छा बीज चाहे क्यों न हो, अगर उसे उर्वर भूमि न मिले तो बीज व्यर्थ हो जाता है। अतः शास्त्रों में स्त्री की बीज धारण तथा पोषण की क्षमता को **क्षेत्र** कहा गया। उन्नत बीज और समुचित क्षेत्र के संयोग से उत्तम संतान अवश्यंभावी है। जब हम कुण्डली मिला रहे थे तो एक स्पष्टता मन में थी कि सन्तान में आनुवंशिक दोष न आये इसके लिये नाड़ी साम्य नहीं होना चाहिये। यह तो सन्तान के स्वस्थ रहने की बात हुई। ज्योतिष शास्त्र के संदर्भ में

सन्तान सुख समझने के लिये हम दो नयी बातें सीखेंगें। पुरुष की शक्ति का आकलन करने के लिये **बीज स्फूट** तथा स्त्री की प्रजनन क्षमता का आकलन करने के लिये **क्षेत्र स्फूट** का विचार किया जाता है। ये दोनों ही गणितीय गणना से निकाले गये संवेदनशील बिन्दु हैं जिनका कुण्डली के विभिन्न भावों में होने से उनपर पड़ने वाले प्रभावों को देखकर सन्तान प्राप्ति के आकलन में सुविधा होती है।

बीज स्फूट : पुरुषत्व के तीन तत्त्व माने गये। सूर्य, जो पिता के कारक हैं; गुरु जो सन्तान के कारक हैं तथा शुक्र जो वीर्य के कारक हैं। इन तीनों के रेखांशों के योग से जो रेखांश प्राप्त होता है, वह बीज स्फूट कहलाता है। इसके बारे में एक उदाहरण देखिये।

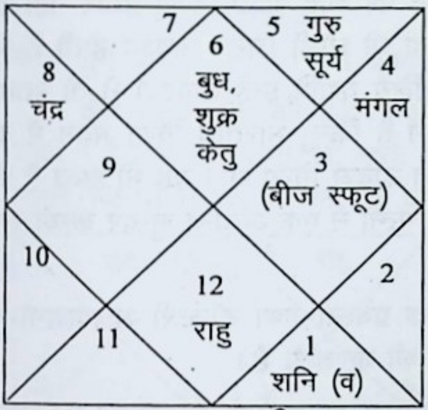

जन्म कुण्डली

सूर्य के भोगांश + गुरु के भोगांश + शुक्र के भोगांश = $4^s13°22' + 4^s20°49' + 5^s02°41' = 14^s06°52' - 12 = 2^s06°52'$. अर्थात् बीज स्फूट मिथुन में 06°52' पर हुआ। जैसे लग्न अथवा अन्य ग्रहों को हम नवांश आदि वर्गों में डालते हैं, वैसे ही बीज स्फूट को नवांश तथा सप्तांश वर्गों में देखा जाता है। हमने नीचे वही किया है।

नवांश कुण्डली

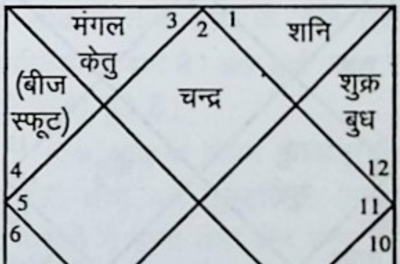

सप्तांश कुण्डली

जन्म कुण्डली में हमने देखा कि पंचम भाव पर नीच के मंगल की दृष्टि है तथा कोई शुभ प्रभाव नहीं है (सिवाय इसके कि पंचमेश शनि भी पंचम भाव को देखते हैं)।

पंचमेश स्वयं अष्टम भाव में हैं जिनपर सप्तमेश गुरु की द्वादश भाव से दृष्टि है। बीज स्फूट मिथुन राशि में पड़ा जिस पर अष्टम भाव में बैठे शनि (पंचमेश तथा षष्ठेश) की दृष्टि है। इस पर कोई शुभ प्रभाव नहीं है। चन्द्रमा से भी यह अष्टम भाव में है। अतः यहां बीज स्फूट बहुत अच्छी अवस्था में नहीं है।

नवांश में भी पंचम भाव में ही पंचमेश सूर्य बैठकर सन्तान सम्बन्धी चिन्ता दे रहे हैं। हां, नवम भावस्थ बीज स्फूट पर कोई अनिष्टकारी प्रभाव नहीं है। पर चन्द्रमा से षष्ठम भाव में होने के कारण थोड़ी चिन्ता का विषय तो है।

सप्तांश में पंचमेश बुध नीच के होकर भी उच्च के शुक्र के साथ हैं तथा पंचम भाव को देखते हैं। पंचमेश पर तो कोई पाप प्रभाव नहीं है परन्तु पंचम भाव पर मंगल की दृष्टि है। किन्तु सप्तांश में भी बीज स्फूट पर कोई अनिष्टकारी प्रभाव नहीं है। चन्द्रमा से तृतीय भाव में होने के कारण यहां भी थोड़ी चिन्ता अवश्य होती है कि सन्तान प्राप्ति में थोड़ी अड़चन आयेगी। इसलिये यद्यपि इन्हें डाक्टरों ने तो बताया था कि इन्हें सन्तान प्राप्ति की संभावना क्षीण है किन्तु भारतीय विद्या भवन में की गयी उपुर्यक्त गणना के आधार पर इन्हें बहुत ढाढ़स मिला था। यह भी सत्य है कि थोड़े दिनों के इलाज के उपरान्त जातक की पत्नी ने एक अत्यन्त सुन्दर कन्या रत्न को जन्म दिया।

एक अन्य उदाहरण देखिये जहां अनेक प्रयत्नों तथा डॉक्टरी आश्वासनों के बाद भी सन्तान नहीं हुई। यह किसी पुरुष की कुण्डली है।

आप उपर्युक्त उदाहरण में पायेंगे कि प्रत्येक कुण्डली में बीज स्फूट पर मंगल

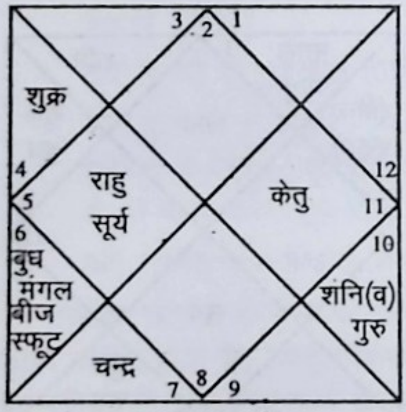

जन्म कुण्डली

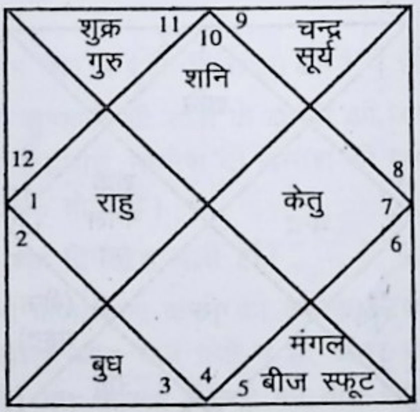

नवांश कुण्डली

सूर्य + गुरु + शुक्र के भोगांश = $4^s27°18' + 9^s4°11' + 3^s24°\ 38' = 17^s26°07' - 12 = 5^s26°07'$. अर्थात् बीज स्फूट कन्या में $26°07'$ पर हुआ।

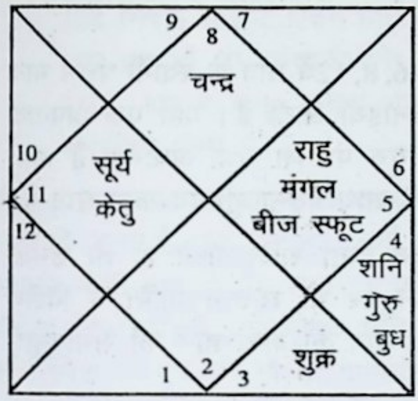

सप्तांश कुण्डली

की बड़ी बुरी पकड़ है। जन्म कुण्डली में पंचम भाव/ पंचमेश पर मंगल के अतिरिक्त शनि एवं अष्टमेश/ एकादशेश गुरु का प्रभाव है। मंगल पंचम भाव तथा पंचमेश को भी प्रभावित कर रहे हैं। नवांश में मंगल बीज स्फूट के साथ अष्टमभाव में हैं जिनपर शुक्र तथा गुरु दोनों की दृष्टि है। वहां भी पंचमेश मंगल के प्रभाव में है तथा वहां कोई शुभ असर नहीं है। सप्तांश में बीज स्फूट पर मंगल के अतिरिक्त सूर्य एवं राहु/ केतु अक्ष का प्रभाव है तथा कोई शुभ प्रभाव नहीं है। इस प्रकार जातक निसंतान रह गये।

क्षेत्र स्फूटः स्त्री की प्रजनन क्षमता के आकलन के लिये भी तीन ही तत्त्व कहे गये। वे हैं क्रमशः चन्द्रमा, जो माता के कारक हैं, गुरु, जो सन्तान के कारक हैं, तथा मंगल, जिनसे स्त्रियों का मासिक धर्म चक्र बनता है। इन तीनों के रेखांशों के योग की स्थिति क्षेत्र स्फूट कहलाती है।

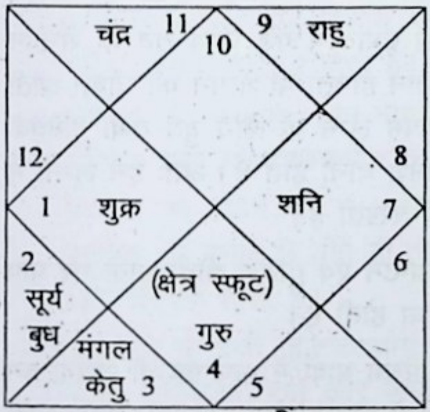

जन्म कुण्डली

इस कन्या की कुण्डली में क्षेत्र स्फूट हुआ चन्द्रमा + गुरु + मंगल के भोगांश = $10^{s}23°03' + 3^{s}01°56' + 2^{s}0°42' = 15^{s}25°41' - 12 = 3^{s}25°41'$. अर्थात् क्षेत्र स्फूट सप्तम भाव कर्क में हुआ। क्षेत्र स्फूट उच्च के गुरु के साथ है तथा उच्च के शनि (लग्नेश/ द्वितीयेश) से दृष्ट है। अतः इन्हें उत्तम सन्तान की प्राप्ति हुई है।

एक सामान्य नियम के अनुसार जन्म कुण्डली तथा वर्ग कुण्डलियों (नवांश एवं सप्तांश) में बीज स्फूट का विषम (पुरुष) राशियों में होना तथा क्षेत्र स्फूट का सम (स्त्री) राशियों में होना सन्तान सुख के लिये अच्छा माना जाता है। पहले उदाहरण में 3 में 2 कुण्डलियों में बीज स्फूट विषम राशि में है। दूसरे में भी वही स्थिति है तथा तीसरी कुण्डली में, जो स्त्री की है, सम राशि में है।

सन्तान न होने या कष्ट से होने के योग :

कुण्डली देखकर ज़्योतिषी महाराज को यह स्पष्टता होनी चाहिये कि जातक की कुण्डली में सन्तान प्रतिबन्धक योग (सन्तान होने में बाधाएँ बताने वाले योग) तो नहीं हैं। इन्हें तीन प्रकार से देखा जाता है।

प्रतिबन्धक योगः

- यदि पंचमेश 6, 8, 12वें भावों में अथवा 6, 8, 12वें भाव के स्वामी पंचम भाव में आ जायें तो सन्तान प्राप्ति में कठिनाइयाँ आती हैं। यहां एक अपवाद पहले देखते हैं। सिंह लग्न के लिये गुरु पंचमेश तथा अष्टमेश हैं अतः उनका पंचम भाव में किसी अन्य ग्रह के साथ बैठना शुभप्रद कहा गया है।

  दूसरी बात कि यदि पंचमेश तथा गुरु दोनों शक्तिशाली हों तो उनके षष्ठम, अष्टम या द्वादश भाव में जाने पर भी सन्तान प्राप्ति में विशेष बाधा नहीं आती। हाँ, सन्तान से या सन्तान को कष्ट होने की संभावनाएं बन जाती हैं।

- यदि तृतीयेश पंचम भाव में अथवा पंचमेश तृतीय भाव में चले गये हों तो भी सन्तान प्राप्ति में बाधा आती है। हां, अगर सन्तान हो जाये तो जातक तथा उसके भाई बहनों को सुख मिलता है। यहां भी एक अपवाद समझना चाहिये कि यदि पंचमेश बली हों तथा गुरु बली होकर शुभ भावों में हों तो बाधा निरस्त समझी जानी चाहिये।

- यदि द्वितीयेश तथा पंचमेश दोनों पाप प्रभाव में पड़ जायें तब भी सन्तान प्राप्ति में बाधा आती है। कई बार सन्तान हीनता भी भोगने की नौबत आती है। एक बात स्मरण रखने की है। वृषभ लग्न के लिये बुध तथा वृश्चिक लग्न के लिये गुरु द्वितीयेश तथा पंचमेश दोनों होते हैं। अतः इन लग्नों में इन ग्रहों का पीड़ित होना विशेष अर्थ रखता है।

- पंचम भाव में चन्द्रमा हों तथा लग्न, अष्टम एवं द्वादश तीनों भावों पर पाप प्रभाव हो तो भी सन्तान प्राप्ति में बाधा होती है।

- यदि लग्न, चन्द्रमा तथा गुरु तीनों से पंचम भावों में पाप ग्रह हों अथवा इन तीनों स्थानों से पंचमेश लग्न कुण्डली में षष्ठम, अष्टम अथवा द्वादश भावों में चले गये हों तो भी प्रतिबन्धक योग बनता है।

- पंचमेश से 6, 8, 11वें भावों में पाप ग्रह बैठे हों तो भी सन्तान प्राप्ति में बाधा आती है। जितने अधिक पापी प्रभाव हों, उतनी ही अधिक बाधा आती है।

- यदि चतुर्थ भाव में कई पापी ग्रह हों, सप्तम भाव में शुक्र तथा दशम में चन्द्रमा हों तो भी यह योग बनता है। अन्य मत से चतुर्थ भाव में पापग्रह हों तथा सप्तम भाव में शुक्र एवं बुध एक साथ बैठ जायें तो यह योग कष्ट देता है।

- यदि निर्बल चन्द्रमा पंचम भाव में हों एवं लग्न, अष्टम तथा द्वादश भावों में पाप ग्रह हों तो सन्तानोत्पत्ति में बाधा होती है। इसी प्रकार यदि लग्न, पंचम, अष्टम तथा द्वादश भावों में पापग्रह हों तो भी सन्तान होने में असुविधा होती है।

गर्भपात– कई बार गर्भधारण तो आसानी से हो जाता है किन्तु कई स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है, एक बार नहीं, कई बार। इसके कुछ योग नीचे दिये जा रहे हैं। दरअसल मोटी बात है कि मंगल गर्भपात सहित सन्तान सम्बन्धी कष्टों के लिये सर्वाधिक जिम्मेवार है। यदि मंगल, शनि तथा सूर्य के स्वतन्त्र या संयुक्त प्रभाव पंचम भाव, पंचमेश या गुरु पर हों तो गर्भपात का खतरा रहता है। यह तो सामान्य सूत्र हुआ। कुछ विशेष योग आगे बताये गये हैं–

- यदि शनि तथा मंगल, दोनों द्वादश भाव में हों तो गर्भपात की संभावना होती है।
- निर्बल चन्द्रमा लग्न में, अथवा दशम भाव में मंगल, अथवा द्वितीय में शुक्र के साथ–साथ पंचम में राहु हों, अथवा पंचम में अकेले सूर्य, राहु, मंगल या शनि हों अथवा राहु द्वितीय या एकादश भाव में, पापाक्रान्त हों तो भी गर्भपात होने का भय होता है।
- पंचमेश के साथ या पंचम भाव में मंगल, साथ में राहु/ केतु अक्ष हो तो गर्भपात होने की संभावना होती है।
- पंचमेश का षष्ठम भाव में अथवा षष्ठमेश का पंचम भाव में होना, साथ ही लग्नेश की मंगल से युति हो तो प्रथम सन्तान नहीं बच पाती तथा बाद में संतानहीनता होती है।
- पाराशरी के स्त्री जातकाध्याय के श्लोक संख्या 34, 38, 39, 40, 41 में बन्ध्या (संतानहीनता) और काकबन्ध्या (प्रथम सन्तान के बाद सन्तान न होने) के योग बताये गये हैं। इनका संक्षिप्त अर्थ यह है कि यदि लग्न में चन्द्रमा तथा शुक्र हों तथा इनकी युति मंगल या शनि से हो गयी हो, साथ ही पंचम भाव पर पापी प्रभाव हों तो स्त्री बन्ध्या होती है। अष्टम भाव में यदि कर्क या सिंह राशि हो तथा उसमें सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों ग्रह हों तो भी स्त्री बन्ध्या होती है। इसी प्रकार लग्न में मेष, वृश्चिक, मकर अथवा कुंभ राशि में चन्द्र एवं शुक्र एक साथ बैठे हों तथा उनपर पापी प्रभाव हों तो भी स्त्री को सन्तान नहीं होती। अष्टम भाव में बृहस्पति तथा शुक्र की मंगल से अथवा सप्तम भाव में शनि की मंगल से युति हो तो भी गर्भ नहीं ठहरता।

- यदि अष्टम भाव में मिथुन, कन्या या कर्क राशि में बुध तथा चन्द्रमा हों स्त्री काकबन्ध्या होती है।
- सप्तम में राहु के साथ सूर्य अथवा अष्टम में राहु के साथ गुरु एवं शुक्र हों या पंचम भाव पापाक्रान्त हो तो ऐसी स्त्री के मृत सन्तान पैदा होती है।

किन्तु एक बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि **सिर्फ जन्म कुण्डली में दुष्ट प्रभावों को देखकर निर्णय लेने से भूल होने की संभावना अधिक होती है। इसलिये सन्तान के बारे में किसी भी निष्कर्ष से पहले, जन्म कुण्डली की संभावनाओं की पुष्टि नवांश तथा सप्तांश में अवश्य कर लेनी चाहिए अन्यथा सही भविष्यवाणी संभव नहीं होती।** इस क्रम में श्री के.एन. राव की सन्तान सम्बन्धी पुस्तक "Planets and Children" अवश्य देखनी चाहिये।

वंशविच्छेद योग :

अब वंश आगे न चलने की संभावनाओं पर विचार करते हैं। जातकादेश मार्ग (चन्द्रिका) फलित ज्योतिष की अनुपम पुस्तक है जिसके लेखक सोमयाजी नाम के प्रसिद्ध विद्वान हुए। इस ग्रन्थ के पुत्र चिन्ता प्रकरण अध्याय के श्लोक 8 में कहा गया है कि–

- बुध और शुक्र सप्तम भाव तथा जल राशि में हों एवं बृहस्पति सप्तम में हों तथा चन्द्रमा से अष्टम में पाप ग्रह हों तो पुत्र नहीं होते।
- चतुर्थ में पाप ग्रह, चन्द्रमा तथा गुरु लग्न में एवं अष्टम में मंगल हो (तथा कोई भी शुभ ग्रह न हो) तो भी पुत्र नहीं होते।
- लग्न में पापग्रह, पंचम में बलहीन लग्नेश तथा चन्द्रमा चतुर्थ में हों तो पुत्र होने की संभावना कम होती है।
- चतुर्थ में पाप ग्रह, दशम में चन्द्रमा तथा सप्तम में शुक्र हों तो भी पुत्र नहीं होते।

दत्तक पुत्र योग– यदि पंचमेश नपुंसक ग्रह तथा पंचम भाव में नपुंसक ग्रह हों अथवा नपुंसक ग्रह पंचम भाव को देखें, तथा पंचमेश के साथ मान्दी हो किन्तु गुरु बलवान हों तो जातक के स्वयं की सन्तान नहीं होती, वह सन्तान गोद लेता है।

सन्तान बाधा और उसके शान्ति के उपाय– हम प्रतिबन्धक ग्रहों के बारे में जान चुके हैं। एक मत से बीज स्फूट या क्षेत्र स्फूट मान्दी, मंगल या शनि के साथ हों तो क्रमशः भूत प्रेत जनित, भैरव जी के कारण या चामुण्डा देवी के कारण शत्रु बाधा कहनी चाहिये। बाधा कारक देवता की पूजा अर्चना से सन्तान–बाधा से मुक्ति मिलती है।

सन्तान तिथि स्फूट - सन्तान चन्द्र तथा सन्तान रविः

सन्तान प्राप्ति में बाधा जानने का एक सरल उपाय है कि सन्तान तिथि स्फूट तथा सन्तान करण स्फूट की अच्छी प्रकार विवेचना की जाये। चन्द्रमा तथा सूर्य के रेखांशों को 5 से गुणा करने पर क्रमशः सन्तान चन्द्र तथा सन्तान रवि का पता चलता है। सन्तान चन्द्र में सन्तान रवि घटा कर 12° से भाग देने से सन्तान तिथि स्फूट तथा 6° से भाग देने से सन्तान करण स्फूट मिलते हैं।

सन्तान तिथि स्फूट शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पंचमी पड़े तो विलम्ब से सन्तान, षष्ठी से दशमी तक हो तो समय से थोड़ा विलम्ब तथा एकादशी से पूर्णिमा पड़े तो ठीक समय पर सन्तान प्राप्ति जाननी चाहिये। शुक्ल पक्ष में सन्तान तिथि स्फूट पड़े तो विष्णु जी की पूजा करनी चाहिये।

यदि सन्तान तिथि स्फूट कृष्ण पक्ष में पड़ जाये तो सन्तान प्राप्ति में विलम्ब और बाधाएँ अवश्यंभावी हैं। सामान्यतः कृष्ण पक्ष आने से शंकर जी की पूजा करने का विधान है फिर भी यदि सन्तान तिथि स्फूट प्रतिपदा से पंचमी तक पड़े तो नागराज, षष्ठी से दशमी तक पड़े तो भगवान कार्तिकेय तथा एकादशी से अमावस्या तक पड़े तो हरि भजन की संस्तुति की गयी है।

एक अन्य मत से यदि सन्तान तिथि स्फूट छिद्रा तिथि (4, 6, 8, 9, 12, 14) या अमावस्या पड़ जाये – अथवा स्थिर या विष्टि करण मिले तो उसके दोष निवारण के निम्नांकित उपाय बताये गये हैं।

तिथि	उपासना	तिथि	उपासना
चतुर्थी	गणेश/ नागराज	षष्ठी	कार्त्तिकेय
अष्टमी	श्रवण व्रत	नवमी	श्री रामायण का पाठ
द्वादशी	अन्न दान	चतुर्दशी	रुद्र पाठ
अमावस्या	पितरों के लिए दान	स्थिर/विष्टि करण	पुरुष सूक्त से श्री कृष्ण की पूजा

एक और मत से यदि सन्तान तिथि स्फूट रिक्ता तिथियों (4, 9, 14) को पड़े तो वह भी ठीक नहीं होता। यदि शुक्ल पक्ष की रिक्ता हो तो समझना चाहिये कि किसी ने हाल में ही अभिचार (जादू–टोना) कराया है। कृष्ण पक्ष की रिक्ता तिथियों का अर्थ है पहले ही किया गया अभिचार। यदि चतुर्थी तिथि पड़े तो उच्च वर्ण के अन्यथा नवमी या चतुर्दशी तिथि पड़े तो नीची जाति के मन्त्रज्ञ से शान्ति करवानी चाहिये।

इसी प्रकार अलग–अलग विष्टि करण के लिये भी बाधाओं के अलग–अलग स्त्रोत बताये गये हैं। विष्टि करण पड़ने का अर्थ है नाग द्वारा दिया गया शाप। पहले की भांति ही, कृष्ण पक्ष का अर्थ है पुराना और शुक्ल पक्ष के करण से नये शाप का बोध करना चाहिये।

प्रथम विष्टि शुक्ल (चतुर्थी – 2) या कृष्ण (तृतीया – 2) पड़े तो मानना चाहिये कि शाप किसी उच्च जाति के नाग का है तथा बलि देनी चाहिये। द्वितीय विष्टि शुक्ल (अष्टमी –1) या कृष्ण (सप्तमी–1) पड़े तो मध्यम श्रेणी के नाग का शाप समझना चाहिये तथा शान्ति के लिये बलि एवं गायन आदि करने चाहिए। तृतीय विष्टि शुक्ल (एकादशी–2) या कृष्ण (दशमी–2) पड़े तो नीच श्रेणी के नाग का तथा चतुर्थ विष्टि शुक्ल (पूर्णिमा–1) या कृष्ण (चतुर्दशी–2) पड़े तो निम्नतम कोटि के नाग का शाप समझना चाहिये। तृतीय तथा चतुर्थ विष्टि की शान्ति के वही उपाय हैं जो द्वितीय विष्टि के लिये बताये गये, अर्थात् बलि एवं गायन।

सामान्यंतः अनावश्यक झमेले में न पड़कर, सेतु स्नान (रामेश्वरम), नाग प्रतिष्ठा, सत् कथाओं का श्रवण/ कीर्तन, शंकर जी/ विष्णु जी की पूजा, व्रत, दान तथा पुरखों का श्राद्ध करने से ही दुष्ट प्रभावों का शमन हो जाता है। इसलिये निःसन्तान लोगों को बहुत निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

सन्तान प्राप्ति एवं दशा :

एक सामान्य सूत्र यह है कि (i) लग्नेश, (ii) पंचमेश, (iii) गुरु, (iv) जो ग्रह पंचम भाव में बैठे हैं अथवा (v) पंचम भाव को देखते हैं अथवा (vi) पंचमेश के साथ हैं, उनकी दशा/ अन्तर्दशा में सन्तान होती है। अब कुछ विशेष सूत्र बताते हैं।

- लग्नेश, सप्तमेश तथा पंचमेश के रेखाशों को जोड़ लें। इस रेखांश पर जो नक्षत्र आये, उसके स्वामी की महादशा तथा पंचमेश अथवा पंचम भाव में बैठे हुए अथवा पंचम भाव को देखने वाले किसी ग्रह की अन्तर्दशा में सन्तान होती है।
- इन छः ग्रहों में सबसे बलवान ग्रह देखिये। (i) पंचमेश, (ii) पंचमेश जिस राशि में हैं उसके स्वामी, (iii) पंचमेश जिस नवांश में हैं, उसके स्वामी, (iv) गुरु, (v) गुरु जिस राशि में है, उसके स्वामी तथा (vi) गुरु जिस नवांश में हैं उसके स्वामी इस बलशाली ग्रह की दशा/ अन्तर्दशा में सन्तान की प्राप्ति होती है।
- एक अन्य मत से चन्द्रमा, लग्न और बृहस्पति से पंचम तथा नवम भाव को पुत्र–पद कहा गया है। इन भावों के स्वामियों की महादशा और अन्तरदशाओं में भी सन्तान प्राप्ति होती है।

- एक सूत्र कहता है कि पंचमेश तथा सप्तमेश के रेखाशों को जोड़कर जो रेखांश मिले, उस नक्षत्र के स्वामी की दशा में भी सन्तान होती है।
- कुछ लोग यह भी देखते हैं कि पंचमेश, सप्तमेश और लग्नेश के रेखांशों को जोड़कर जो रेखांश मिले, उस नक्षत्र के स्वामी की महादशा हो तथा पंचम भाव में बैठे ग्रह, पंचम भाव पर दृष्टि डालने वाले ग्रह अथवा पंचमेश की अन्तर्दशा आये तो सन्तान की प्राप्ति होती है।

भारतीय विद्या भवन में किये गये कई शोधों के अनुसार सन्तान प्राप्ति का संभावित काल लग्न, पंचम तथा नवम भावों से सम्बन्धित ग्रहों की दशा होता है। लेकिन यह नियम बहुत सारी सीमाओं में बँधा है। मान लीजिये कि लग्न में दो ग्रह बैठे हैं, दो ग्रह पंचम भाव तथा तीन अन्य ग्रह नवम भाव को प्रभावित कर रहे हैं। इस प्रकार सात ग्रह तो यही हुए – फिर लग्नेश, पंचमेश और नवमेश भी अपनी दशा में सन्तान दे सकते हैं। इस प्रकार इतने ग्रहों की भीड़ में कोई निश्चित तरीका नहीं दिखता है।

हम आपको एक सरल तरीका बताते हैं। जन्म कुण्डली, नवांश तथा सप्तांश में इस नियम को लगाइये। सबसे पहले कुण्डलियों के लग्न, पंचम तथा नवम भावों से सम्बन्धित ग्रहों को देखिये। हम जन्म कुण्डली से प्रारंभ करते हैं। उदाहरण एक कुण्डली में लग्नेश, पंचमेश तथा नवमेश क्रमशः बुध, शनि तथा शुक्र हैं। इन भावों को प्रभावित करने वाले ग्रह हैं, केतु–राहु तथा मंगल। इस प्रकार छः ग्रह तो यही हो गये। अब नवांश में देखिये कि कौन से ग्रह नवांश कुण्डली के उपुर्यक्त भावों को प्रभावित करते हैं। ये हैं मंगल, शनि, सूर्य, बुध शुक्र तथा गुरु। जन्म कुण्डली तथा नवांश, दोनों में उपस्थित ग्रह है बुध, शुक्र, मंगल तथा शनि। अब सप्तांश में देखिये। वहां ये ग्रह हैं शुक्र, बुध, चन्द्र, मंगल, गुरु सूर्य और शनि। इस प्रकार मंगल, बुध, शुक्र और शनि ही ऐसे ग्रह हैं जो तीनों कुण्डलियों में ही लग्न, पंचम और नवम भावों में से किसी न किसी को अवश्य प्रभावित कर रहे हैं। इन ग्रहों की दशाओं में ही सर्वाधिक संभावना है कि जातक को सन्तान सुख देखने को मिले !

जातक की जन्म कालीन दशा गुरु की प्रायः पौने दो वर्षों की थी। उसके बाद शनि की उन्नीस वर्षों की दशा में सन्तान प्राप्ति की संभावना नहीं थी क्योंकि तब उसका विवाह ही नहीं हुआ था। बाद में, बुध की महादशा आयी जब जातक की आयु प्रायः 21 वर्ष की हो गयी और यह तब तक चली जब तक जातक 38 ¯र्षों का हो गया। बुध की महादशा तथा मंगल की अन्तर्दशा में संभवतः इसे सन्तान सुख नसीब हुआ। लेकिन दशाएँ अकेली ही किसी भी घटना को जन्म देने में तब तक सक्षम नहीं हो पातीं जब तक उसे गोचर का सहयोग न मिले। आइये समझ लेते हैं कि सन्तान प्राप्ति के लिये यदि सही दशा हो तो गोचर कैसे होने चाहिये ?

सन्तान प्राप्ति क लिये गोचर

- पंचमेश या यमकण्टक जिस राशि में अथवा नवांश में हों, उस राशि से त्रिकोण में जब गोचर के बृहस्पति आ जायें।
- गोचर के लग्नेश जब पंचमेश, अपनी उच्च राशि, स्वराशि, या पंचम भाव के ऊपर से गुज़रें।
- जन्म कुण्डली में बृहस्पति से पंचमेश को देखिये कि वे किन राशि तथा नवांश में हैं। गोचर वश बृहस्पति जब इन राशियों से गुज़रें।
- चन्द्रमा के नक्षत्र स्वामी तथा इस नक्षत्र से पांचवें नक्षत्र के स्वामी ग्रहों के रेखांशों को जोड़ कर जो राशि प्राप्त हो उससे त्रिकोण में गोचर के गुरु के आने से सन्तान आने की संभावनाएँ होती हैं।

ये तो पुराने सूत्र थे, परन्तु परम आदरणीय श्री के.एन. राव के दिशा निर्देश में सन्तान प्राप्ति के लिये गोचर के अमूल्य सूत्र उद्‌भाषित हुए हैं जो नीचे दिये गये हैं।

संतान प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि उचित दशा आने पर गुरु तथा शनि ने गोचर में पंचम भाव/ भावेश या नवम भाव/ भावेश में से किसी को अवश्य प्रभावित किया हो। यह गोचर का सर्वमान्य तथा सर्वाधिक प्रमाणित सूत्र है।

सन्तान संख्या : परिवार नियोजन के इस युग में सन्तान की संख्या के बारे में ज्योतिषीय भविष्यवाणी महान कष्टकारी है क्योंकि ज्योतिष शास्त्र तो संभावनाओं का शास्त्र है और आर्ष साहित्य में सन्तान की संख्या की जो संभावनाएँ बताई गयी हैं, वे आज के आधुनिक माता–पिता की आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं है। फिर भी हम जानकारी के लिये कुछ सूत्र बताते हैं।

- सारावली में बताया गया है कि पंचम भाव के नवांश के बराबर सन्तान होती है।
- एक अन्य सूत्र के अनुसार सूर्य, चन्द्र तथा बृहस्पति के रेखांशों को जोड़कर प्राप्त नवांश संख्या के बराबर सन्तान होती है।
- एक अन्य विचार से पंचमेश किसी भी राशि में जितने भी नवांश पार कर चुके हों, उतनी ही सन्तान होती है। हां, उनपर जितने दुष्ट प्रभाव हों उन्हें घटा दिया जाता है।

अध्याय 20

पञ्चांग तथा मंगल दोष

अभी हमने पंचांग द्वारा कुण्डली मेलापक की एक सहज विधि सीखी है जहां वर और वधु के जन्म नक्षत्रों के चरणों के आधार पर मेल करा कर संभावित विवाह की स्वीकृति या अस्वीकृति दे दी जाती है। एक बात ध्यान देने की है कि इस मेलापक का मात्र एक आधार होता है – वह है दोनों पक्षों का जन्म नक्षत्र। यह आधार बहुत काल से प्रचलन में है और मान्य भी परन्तु तर्क की कसौटी पर बहुत न्यायोचित नहीं प्रतीत होता। उचित मेलापक के उपरान्त भी जब दाम्पत्य सुख में अड़चन आती है, तब दैवज्ञ इसका कारण वर या वधु की कुण्डली में उपस्थित 'मंगल दोष' या 'कुज दोष' बताते हैं। प्रत्येक पंचांग में गुण–मेलापक सारिणी के ठीक बाद 'मंगल दोष' अथवा वर या वधु के मांगलिक होने पर संभावित अनिष्टकारी फलों की चर्चा की जाती है। यह परम आश्चर्य की बात है कि किसी भी स्थापित प्राचीन ग्रन्थ में न तो मंगल दोष की चर्चा है ना ही काल–सर्प योग की किन्तु व्यवहार में ये दोनों ही वर–वधु के माता पिता के लिये अत्यन्त भय और चिन्ता का विषय होते हैं। काल–सर्प योग पर तो परम श्रद्धेय श्री के.एन. राव ने एक अनूठी पुस्तक ही लिख कर इसकी अनुपयोगिता सिद्ध कर दी है। 'मंगल दोष' पर भी एक सही समझ बनना आवश्यक है। आइये, देखते हैं उपलब्ध साहित्य में दाम्पत्य जीवन पर पड़ने वाली अशुभ छायाओं के बारे में क्या कहा गया है।

बृहद् पराशर होरा शास्त्र के स्त्री जातकाध्याय के 47वें पतिहन्तृ योग की कुछ इस प्रकार चर्चा की गयी है–

"लग्ने व्यये सुखे वाऽपि सप्तमे वाऽष्टमे कुजे।
शुभदृगयोग हीने च पतिं हन्ति न संशयः।।"

अर्थात्, "किसी स्त्री की कुण्डली में लग्न, द्वादश, चतुर्थ, सप्तम या अष्टम भाव में ऐसे मंगल बैठे हों जिनपर ना तो शुभ ग्रह की दृष्टि हो ना ही शुभ ग्रह उनके साथ हों तो ऐसी स्त्री को विधवा होना पड़ता है।" इस श्लोक के बाद के दो श्लोकों (48 तथा 49) में वैधव्ययोग भंग की चर्चा भी की गयी है।

"यस्मिन् योगे समुत्पन्ना पतिं हन्ति कुमारिका।
तस्मिन् योगे समुत्पन्नो पत्नीं हन्ति नरोऽपि च।
स्त्री हन्ता परिणीता चेत् पति हन्त्री कुमारिका।
तदा वैधव्ययोगस्थ भंगो भवति निश्चयात्।।"

अर्थात्, "जिस योग में कन्या को पति हन्ति कहा गया है, वैसे ही योग होने से पुरुष स्त्री–हन्ता हो जाता है। किन्तु यदि–स्त्री हन्ता पुरुष का विवाह पति–हन्ति स्त्री से करवा दिया जाये तो वैधव्ययोग निश्चित रूप से भंग हो जाता है।"

मंगल की पाप शक्ति के बारे में बृहद पराशर होरा शास्त्र के योग कारकाध्याय के श्लोक 9 तथा 10 से स्पष्टता मिलती है।

"गुरु-शुक्रौ शुभौ प्रोक्तौ चन्द्रौ मध्यम उच्चते।
उदासीनो बुधः ख्यातः पापा रव्यार्कि भूमिजाः।।8
पूर्णेन्दुज्ञेज्यशुक्राश्च प्रबला उत्तरोत्तरम्।
क्षीणेन्दर्ग्कार्किभूपुत्राः प्रबलाश्च यथोत्तरम्।।9

अर्थात् 'गुरु और शुक्र स्वभाव से शुभ, बुध उदासीन तथा चन्द्रमा शुभ एवं अशुभ दोनों हैं। रवि, शनि और मंगल स्वभाव से पापी (अशुभ) हैं। इनमें पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र उत्तरोत्तर प्रबल (शुभ फल देने में सक्षम) तथा क्षीण चन्द्र, रवि, शनि और मंगल उत्तरोत्तर प्रबल (पाप फल देने में सक्षम) हैं।" इस प्रकार पाप फल देने में मंगल सबसे अधिक समर्थ हैं। इसलिये मंगल के प्रभाव के कारण सुख के भावों का पीड़ित होना समझ में आता है। एक बात और भी है, महर्षि पराशर पापी ग्रहों के वर्णन करते समय राहु–केतु की चर्चा नहीं करते – उन्हें भी पाप ग्रह तो माना ही जाता है – शनि की भांति वे भी विच्छेद कारक हैं। किन्तु मात्र मंगल के कारण क्या वैधव्य या विधुर हो जाने की भविष्यवाणी करना उचित होगा जबकि उनसे उन्नीस ही सही, शनि, राहु–केतु और सूर्य भी दाम्पत्य जीवन को तहस–नहस करने की क्षमता रखते हैं। एक सत्य और भी ध्यान देने योग्य है – पराशर ऋषि ने जब भी बालारिष्ट जैसे अरिष्टों की चर्चा की है, उन्होंने सीधे–सीधे यमलोक का द्वार दिखा दिया है। आज की दुनिया में वैसा नहीं हो रहा – अब कुण्डलियों में बालारिष्ट पाये जाने से मृत्युतुल्य कष्ट के मामले अधिक देखे जाते हैं और मृत्यु के बहुत कम।

इस जानकारी के आधार पर संदेह का लाभ विवाह के संदर्भ में भी दिया जा सकता है। अर्थात् पतिहन्ता योग का प्रभाव वैधव्य का कारण न होकर सम्बन्ध विच्छेद् या सम्बन्धों में दरार पड़ने जैसा कुछ होकर रह जाये। लेकिन यह जो थोड़ी सी राहत की हवा चली है, वह बड़ी अल्पकालिक है क्योंकि शास्त्रज्ञ मंगल दोष को लग्न से ही नहीं, चंद्रमा तथा शुक्र से भी देखने की अनुशंसा करते हैं। मन्त्रेश्वर की फलदीपिका के 10वें अध्याय (कलत्र भाव) के श्लोक 1,5, तथा 11वें अध्याय (स्त्री जातक) के श्लोक 3 के अध्ययन से इसकी पुष्टि होती है। सच पूछा जाये तो ऐसी कुण्डली विरले ही देखने को मिलती है जहां लग्न, चन्द्र अथवा शुक्र से देखने पर कहीं न कहीं यह दोष न मिले। और अगर इतना सब कुछ पढ़कर भी भय का अनुभव न हो रहा हो तो चलिये दक्षिण भारत की ओर जहां द्वितीय भाव में बैठे मंगल को भी मांगलीक की संज्ञा दी गयी है। एक अन्तर अवश्य है। वहां लग्न में बैठे मंगल को इतना अनिष्टकारी नहीं कहा गया है।

ज्योतिष शास्त्र की स्थापित पुस्तकों में एक महत्वपूर्ण पुस्तक है महादेव द्वारा रचित "जातक तत्व"। इसके चतुर्थ अध्याय का शीर्षक है 'स्त्री जातक तत्वम्' जिसका 51वां श्लोक निम्नांकित है :

'लग्नतुर्याष्टमान्त्यमदान्यदमे सपापारे पतित्यागान्परासक्ता।'

अर्थात् "किसी स्त्री की कुण्डली में यदि लग्न, चतुर्थ, अष्टम, सप्तम या द्वादश भाव में मंगल किसी पाप ग्रह के साथ हों तो ऐसी स्त्री का पति उसे त्याग देता है तथा वह स्त्री अन्य पुरुषों से संसर्ग करती है।" यहां पाप ग्रह के साथ होने की बात कही गयी है, पापी प्रभाव की नहीं। इस प्रकार अगर पाराशरी मत को महादेव जी की धारणा के साथ देखें तो लगेगा कि बताये गये अशुभ भावों में बैठे मंगल तब तक बहुत अनिष्ट नहीं करेंगे जब तक उनपर किसी शुभ ग्रह का असर हो तथा अनिष्ट करने के लिए उनके साथ किसी पाप ग्रह का बैठना आवश्यक है। यहां दृष्टि की चर्चा नहीं है। फिर भी हम अपने अध्ययन में मंगल पर पाप ग्रह की दृष्टि भी दुष्ट प्रभावकारी मान कर चलेंगे। एक बात समझना अच्छा होगा कि जिन भावों में बैठने से मंगल दोष की धारणा की गयी है, उन भावों में अकेले मंगल बैठकर किन–किन भावों को क्षति पहुंचा सकते हैं? याद रहे, मंगल जहां बैठते हैं उस भाव के अतिरिक्त अपनी तीन दृष्टियों से अपने स्थान से क्रमशः चतुर्थ, सप्तम और अष्टम भाव को भी प्रभावित करते हैं। इसे हमने सारिणी–1 के माध्यम से दर्शाया है।

इस सारणी के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष अथवा स्त्री की कुण्डली में मंगल यदि द्वितीय, सप्तम अथवा अष्टम भाव को प्रभावित करते हैं तो दाम्पत्य जीवन में कष्ट की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। यह प्रभाव युति से भी हो सकता

सारणी–1

मंगल की स्थिति		मंगल की चौथी दृष्टि		मंगल की सप्तम दृष्टि		मंगल की अष्टम दृष्टि	
भाव	विपरीत प्रभाव	भाव	प्रभाव	भाव	विपरीत् प्रभाव	भाव	प्रभाव
लग्न	जातक के शरीर पर	चतुर्थ	परिवार के सुख पर	सप्तम	दाम्पत्य जीवन पर	अष्टम	वैवाहिक जीवन की आयु
द्वितीय	कुटुम्ब तथा कलत्र की आयु पर	पंचम	संतान पर	अष्टम	वैवाहिक जीवन की आयु	नवम	भाग्य तथा धर्म पर
चतुर्थ·	परिवार के सुख पर	सप्तम	दाम्पत्य जीवन पर	दशम	कर्म भाव पर	एकादश	लाभ स्थान पर
सप्तम	दाम्पत्य जीवन पर	दशम	कर्म क्षेत्र पर	लग्न	जातक के स्वास्थ्य पर	द्वितीय	कुटुम्ब स्थान पर
अष्टम	वैवाहिक जीवन की आयु पर	एकादश	लाभ स्थान पर	द्वितीय	कलत्र की आयु पर	तृतीय	पराक्रम पर
द्वादश	भोग पर	तृतीय	पराक्रम पर	षष्ठम	दुर्घटना होना संभव	सप्तम	दाम्पत्य जीवन पर

है और मंगल महाराज की इन भावों पर दृष्टि से भी। द्वादश भाव पर मंगल के प्रभाव संभवतः इतने अनिष्टकारी नहीं होते हैं।

हम एक बार सुधी पाठकों का ध्यान पाराशरी के सुदर्शन चक्र फलाध्यायः के श्लोक 11,12 और 13 की ओर ले जाते हैं :

ज्ञेयं संग्रहभावस्य ग्रहयोगसमं फलम्।
अग्रहस्य तु भावस्य ग्रहदृष्टिसमं फलम् ।। 11
शुभरैवं शुभं पापैरशुभं मिश्रखेचरैः।
शुभाधिके शुभं ज्ञेयमशुभं त्वशुभाधिके।। 12
एवं भावेषु खेटानां योगं दृष्टिं विलोक्य च।
तारतम्येन वाच्यातिन फलानि द्विजसत्तम।। 13

अर्थात्, "जिस भाव में ग्रह हों उस भाव के फल उसी ग्रह के अनुसार जानना चाहिए। जिस भाव में ग्रह नहीं हैं, उसके फल उन ग्रह से मिलेंगे जिनकी उस भाव पर दृष्टि है।" इस प्रकार मंगल महाराज का किसी भाव में बैठना संभवतः अधिक कष्टकारी है बनिस्पत मंगल की किसी ऐसे भाव पर दृष्टि के जहां कोई ग्रह पहले से बैठे हों क्योंकि तब उस भाव के फल अधिक तौर से उस भाव में बैठे ग्रह से प्रभावित होंगे और मंगल की दृष्टि के फल प्रभावित हो रहे भाव को कम परेशान करने वाले होंगे। लगे हाथों हम मंगल महाराज की स्थिति पराशर ऋषि के योगकारकाध्याय के अनुसार भी देख लें तो अच्छा हो। उस अध्याय में विभिन्न लग्नों के लिये मंगल के बारे में कही गयी बातों का निचोड़ सारणी – 2 में दिया गया है।

उपर्युक्त सारणी एक मोटे तौर पर की गयी अभिव्यक्ति है। इस सारिणी की विवेचना करने पर मंगल बहुत भयावह नहीं लगते। मंगल दोष के दाम्पत्य जीवन पर प्रभावी होने के लिए आवश्यक है कि शुभ प्रभावों का सर्वथा अभाव हो तथा अन्य पापी प्रभाव भी इसकी पुष्टि कर रहे हों। उदाहरण के लिये उच्च के मंगल के स्थान पर यदि नीचस्थ मंगल लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश भावों में कहीं भी हों तो दाम्पत्य जीवन की नौका डगमगाती रहती है।

लेकिन पहले पंचांग में बताये गये मंगल दोष के नहीं लगने के योग समझ लेने चाहिये। इन्हे मंगल दोष का परिहार कहा जाता है उसमें कहा गया है–

शनि भौमोऽथवा कश्चित् पापो वा तादृदश्यो भवेत्।
तेष्वेव भवनेष्वेव भौमदोष विनाशकृत् ।।

अर्थात् "एक की कुण्डली में मंगल के कारण अगर भौम दोष आ गया हो

सारणी–2

लग्न की राशि	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुंभ	मीन
मंगल के स्वामित्व	लग्नेश अष्टमेश	सप्तमेश द्वादशेश	षष्ठेश एकादशेश	पंचमेश दशमेश	चतुर्थेश नवमेश	तृतीयेश अष्टमेश	सप्तमेश द्वितीयेश	ष्ठेश लग्नेश	पंचमेश द्वादशेश	चतुर्थेश एकादशेश	तृतीयेश दशमेश	द्वितीयेश नवमेश
फल शुभ/ अशुभ/ मारक/ मध्यम	शुभ फल देने वाले ग्रहों के सहायक अशुभ नहीं देते	मारक	पापफल प्रद	शुभप्रद एवं योगकारक	शुभप्रद	पापफल प्रद	पापफल प्रद	सम	शुभ	पापफल प्रद	पापफल प्रद	शुभ फल प्रद
कौन से भाव में बैठने से मंगल दोष अधिक	द्वितीय	लग्न	लग्न चतुर्थ सप्तम	अष्टम	कहीं नहीं	लग्न द्वितीय चतुर्थ सप्तम	लग्न द्वादश	द्वितीय अष्टम	लग्न चतुर्थ सप्तम	द्वितीयं द्वादश	लग्न द्वितीय	लग्न चतुर्थ सप्तम द्वादश

(मंगल लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम अथवा द्वादश भाव में हों) तथा इन्हीं स्थानों में, (अर्थात् जहां एक की कुण्डली में मंगल बैठे हैं) दूसरे की कुण्डली में भी कोई पाप ग्रह (मंगल, शनि, राहु, सूर्य) बैठ जायें तो मंगल दोष नष्ट हो जाता है।" यदि लड़की की कुण्डली के चौथे भाव में मंगल बैठे हों और उस कन्या की कुण्डली का लग्न मिथुन हो तो सारणी – 2 के अनुसार उसे मंगल दोष है। अब उसका विवाह यदि ऐसे लड़के से कराया जाये जिसकी कुण्डली के चौथे भाव में कोई पाप ग्रह बैठे हों तो इस श्लोक के अनुसार लड़की को भौम दोष नहीं लगता। यह भी समझ लेना चाहिये कि मंगल अकेले बहुत हानि नहीं कर सकते; हां सप्तम भाव, सप्तमेश तथा विवाह के कारक शुक्र तीनों ही जन्म कुण्डली एवं नवांश कुण्डली में एक साथ पीड़ित हों तो बात और है। तब तो मुश्किल माननी चाहये क्योंकि ऐसी परिस्थिति में विवाह होने में व्यवधान, वैवाहिक जीवन जब तक चले तब तक की खिटपिट और सम्बन्ध विच्छेद अथवा जीवन साथी की मृत्यु तक की आशंका बनी रहती है। लगे हाथों पंचांग में दिये गये अन्य श्लोकों को भी देखना उचित होगा।

''अजे लग्ने व्यये चापे पाताले वृश्चिके स्थिते।
वृषे जाये घटे रन्ध्रे भौम दोषो न विद्यते।''

अर्थात्, "मेष राशि में लग्न में, द्वादश में चाप (धनु) राशि में, पाताल (चतुर्थ) में वृश्चिक राशि में, वृष राशि में जाया (सप्तम) भाव में अथवा घट (कुंभ) राशि में रन्ध्र (अष्टम) भाव में मंगल हों तब मंगल दोष नहीं होता।" अन्य मत से यही श्लोक ऐसा भी कहा गया है।

''अजे लग्ने व्यये चापे पाताले वृश्चिके कुजे।
धूने मृगे कंकि चाष्टौ भौमदोषो न विद्यते।''

यहां पहली पंक्ति तो वही है, दूसरी पंक्ति का अर्थ कुछ बदल जाता है। उसका अर्थ है, "धूने (सप्तम) भाव में मृगे (मकर) राशि तथा कंकि (कर्क) राशि में अष्टम भाव में बैठे मंगल के होने से मंगल दोष नहीं होता।" पिछले श्लोक में सप्तम तथा अष्टम भावों की राशियां क्रमशः बृषभ तथा कुंभ थीं जो यहां क्रमशः मकर एवं कर्क हो गयी हैं। हमारे मत से दूसरा श्लोक जीवन में अधिक खरा उतरता है। अगला श्लोक देखिये।

''जामित्रे च यदा सौरिर्लग्ने वा हिबुकेऽथवा।
अष्टमे द्वादशे वापि भौमदोष विनाशकृता।''

यहां सौरि अर्थात् शनि महाराज के माहात्म्य की चर्चा की गयी है। अर्थात् "कुण्डली में जामित्र (सप्तम), लग्न, हिबुक (चतुर्थ), अष्टम या द्वादश भावों में कहीं भी शनि बैठने से भौम दोष का विनाश होता है।" इसके बाद का श्लोक देखिये।

''सबले गुरौ भृगौवा लग्ने द्यूनेऽपिवाऽथवा भौमे।
वक्रिणी नीचारिगृहे वार्क स्थेपिवा न कुज दोषः।''

अर्थात् ''बलवान गुरु अथवा शुक्र लग्न अथवा सप्तम भाव में हों अथवा स्वयं मंगल वक्री या नीच या शत्रु क्षेत्री अथवा अस्त हों तो भी कुज दोष नहीं लगता।'' अब वहां दिया गया अन्तिम श्लोक देखिये।

केन्द्रकोणे शुभाढ्ये च त्रिषडायेऽप्यद् ग्रहाः।
तदा भौमस्य दोषो न मदने मद परस्तथा।।''

अर्थात्, 'कुण्डली में यदि केन्द्रों तथा त्रिकोणों में शुभ ग्रह एवं त्रिषड्या भावों में पाप ग्रह बैठे हों तो भौमदोष नहीं मानना चाहिए।'

एक अन्य मत से :

''गुरौ केन्द्र त्रिकोणे वा लाभस्थाने यदा शनि।
रिपु स्थाने यदा राहु मंगली दोष नाश कृत।''
उक्तस्थानेषु चन्द्राच्य गणयत पाप खेचरान्।
पापाधिक्ये वरे श्रेष्ठं विवाहं प्रवदेद् बुधः।।''

अर्थात् ''यदि गुरु केन्द्र अथवा त्रिकोण में हों, या लाभ (एकादश) भाव में शनि, अथवा रिपु (षष्ठ) भाव में राहु हों तो वे मंगल दोष का नाश करते हैं।'' दूसरे श्लोक का अर्थ है, ''जिन स्थानों (लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम तथा द्वादश) में पाप ग्रह (लग्न भाव से) अनिष्टकारी कहे गये हैं, चन्द्रमा से भी उन भावों में पाप ग्रह होने के फल अच्छे नहीं होते। आगे कहा गया है, ''लग्न एवं चंद्रमा से इन स्थानों (1,2,4,7,8,12) में बैठे पाप ग्रहों की संख्या वर एवं वधु के लिये अलग अलग जोड़ लें। वर के लिये कुल पाप ग्रहों की संख्या का योग अधिक हो तो विवाह को श्रेष्ठ मानना चाहिये।'' इसे हम एक उदाहरण के द्वारा समझेंगे। नीचे एक लड़के और लड़की की कुण्डली दी गयी है।

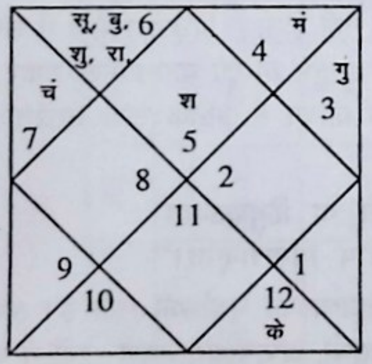

वर

वधु

उदाहरण कुण्डली में वर के लग्न में शनि, द्वितीय में सूर्य तथा राहु, चतुर्थ एवं सप्तम में कोई पाप ग्रह नहीं, अष्टम में केतु तथा द्वादश में नीच के मंगल हैं। अर्थात् लग्न से मांगलिक स्थानों में पाप ग्रहों की संख्या 5 हुई। चन्द्र लग्न से मात्र बारहवें भाव में सूर्य और राहु होने के कारण पाप ग्रह हुए 2। इस प्रकार वर के लिये पाप ग्रहों की कुल संख्या 5+2 =7 हुई।

कन्या की कुण्डली में लग्न से विवेचना करने पर लग्न में राहु, चतुर्थ में कोई ग्रह नहीं, सप्तम में केतु तथा द्वादश में शनि होने के कारण पाप प्रभाव तीन ग्रहों से प्राप्त हुए। चन्द्र लग्न से देखने पर द्वितीय में शनि, चतुर्थ में कोई ग्रह नहीं, सप्तम में भी कोई ग्रह नहीं, अष्टम में सूर्य तथा द्वादश में मंगल, अर्थात् चंद्र लग्न से भी तीन पापी प्रभाव हुए। इस प्रकार कन्या की कुण्डली में कुल पापी ग्रह तीन और तीन छः हुए। उधर वर की कुण्डली में ये प्रभाव सात थे। अर्थात् वर की कुण्डली में कन्या से अधिक पाप प्रभाव होने के कारण यह मेलापक मान्य होना चाहिए।

मंगल दोष के परिहार के कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण सूत्र नीचे लिखे गये हैं। इन्हें प्रायः सही पाया गया है। सच पूछिये तो ये सूत्र पहले बताये गये श्लोकों का ही थोड़ा परिवर्द्धित रूप हैं।

1. जगतगुरु शंकराचार्य, श्री चंद्रशेखर सरस्वती, के मतानुसार वर की 26 वर्ष की आयु के उपरान्त कुण्डली मिलान करने की आवश्यकता नहीं है। अन्य मत के अनुसार 28 वर्ष की आयु से अधिक आयु वाले पुरुष की कुण्डली में मंगल दोष नहीं लगता।
2. जन्म कुण्डली में मंगल यदि गुरु अथवा चंद्र के साथ हों तो मंगल दोष नहीं।
3. केन्द्र में राहु हों अथवा राहु मंगल की युति केन्द्र में हो तो दोष नहीं।
4. अस्त, नीचस्थ अथवा शत्रु क्षेत्री मंगल के अष्टम में होने का दोष नहीं लगता।
5. कन्या के लग्न से सप्तम भाव में लग्नेश अथवा चंद्रमा से सप्तम भाव में राशीश हों या इन स्थानों में कोई शुभ ग्रह बैठे हों तो उस कन्या के अनपत्य (अविवाहिता रहना), वैधव्य तथा विषकन्या दोष नष्ट हो जाते हैं।
6. **''राशि मैत्री यदा याति गणैक्यं वा यदा भवेत्।**
   अथवा गुण वाहुल्ये, भौमदोष न विद्यते।''

   राशि मैत्री, गण मैत्री तथा गुण 30 अथवा अधिक मिलें तो मंगल दोष विचार नहीं करना चाहिये।
7. स्वराशि, उच्चस्थ अथवा मित्र की राशि में बैठे मंगल अधिक कष्ट नहीं देते।
8. नीचस्थ मंगल भी कष्ट देने का सामर्थ्य काफी हद तक खो दते हैं।

इस प्रकार एक बात तो स्थापित हो जानी चाहिए कि सुखी दाम्पत्य जीवन पर विपरीत प्रभाव देने वाले ग्रह मंगल, शनि, राहु तथा केतु एवं सूर्य हैं। ये यदि लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम अथवा द्वादश भावों में बैठें तो दाम्पत्य जीवन को विपरीत रूप से प्रभावित कर सकते हैं। यद्यपि मंगल जैसा तीव्र प्रभाव अन्य ग्रहों से संभव नहीं होता है किन्तु इनमें से प्रत्येक ग्रह कुछ न कुछ अनिष्टकारी प्रभाव छोड़ते ही हैं इसलिये सिर्फ मंगल तक अपनी दृष्टि सीमित न रखकर कुण्डली मिलान के लिये एक व्यापक अध्ययन अधिक वैज्ञानिक लगता है। इसके लिये बहुत शोध करने की आवश्यकता नहीं है, कुछ आधारभूत तथ्यों को याद रखना ही काफी होगा। प्राचीन भारत का एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है "बेड़ा जातक"। इस ग्रन्थ के प्रति हमारी विशेष श्रद्धा है क्योंकि इसका लेखन कार्य अंग प्रदेश के राजाओं (जिनमें दानवीर कर्ण का नाम आज भी श्रद्धा से लिया जाता है) की राजधानी चम्पावती नगर में हुआ था। आज भी उस स्थान का नाम चम्पानगर है और शहर का नाम है भागलपुर। विक्रम 923 की फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी (सोमवार) को इस ग्रन्थ की रचना प्रातः स्मरणीय श्री नरचन्द्र ने पूरी की थी। 'बेडा' का अर्थ है लकड़ी के लट्ठों को रस्सियों से बाँध कर बनायी गयी नौका जिससे जातक जीवन रूपी नदी को पार करता है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि चम्पापुरी में, जो गंगा नदी के किनारे बसी है, आज भी पाल वाली बड़ी नौकाओं और स्टीमरों के बीच बेड़ा का व्यवहार नदी पार करने के लिये बहुतायत से होता है। विषयान्तर के लिये क्षमायाचना करते हुए बात आगे बढ़ाते हैं। डा. बी.वी. रमण ने अपनी पुस्तक 'Judgement of Bhavas' में इसे उद्धृत किया है किन्तु हिन्दी में सर्वप्रथम इसे प्रकाश में लाने का कार्य किया है प्रातः स्मरणीय गोपेश कुमार ओझा जी ने अपनी अद्वितीय पुस्तक त्रिफला ज्योतिष में। आइये देखते हैं बेड़ा जातक में इस विषय में क्या कहा गया है। सप्तम कल्लोल (स्त्रीजातकाध्याय) के सप्तम श्लोक की व्याख्या करते हुए ओझा जी ने दक्षिण भारत में प्रचलित कुण्डली मिलान की पद्धति समझाई है। इस सिद्धान्त के पीछे मूल धारणा बड़ी वैज्ञानिक है। पहली बात कि मंगल या पाप ग्रह की लग्न, सप्तम अथवा अष्टम की स्थिति तो हानि–कारक है किन्तु यदि ये पापी ग्रह द्वितीय, चतुर्थ अथवा द्वादश भावों में से कहीं हों तो उतने कष्ट कारक नहीं होंगे।

दूसरी बात कि ग्रह की दीप्तादि अवस्थाओं को देखें तो वे प्रत्येक अवस्था मे भिन्न फल देंगे। यह नियम पाप और शुभ ग्रह के लिये समान रूप से सत्य है। उच्च, मूल त्रिकोण, स्वगृही, अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु, अधिशत्रु तथा नीच राशि में बैठे ग्रह अलग अलग फल देंगे – यह तो निर्विवाद सत्य है।

अब तीसरी बात भी समझ लेना अच्छा होगा – मंगल पापी ग्रहों में सर्वाधिक कष्टकारी हैं किन्तु शनि, राहु, केतु, तथा सूर्य तुलनात्मक रूप में मंगल से कम दोष

रखते हैं इसलिये उच्चस्थ मंगल यदि लग्न में हो तो उनका फल लग्न में ही उच्चस्थ शनि या सूर्य से भिन्न होना ही चाहिए। इसे हम सारणी–3 (क) दे रहे हैं। जो बेडा जातक से साभार और अविकल उद्धृत की जा रही है।

इसी के नीचे हम सारणी **3** (ख) में प्रायः वैसी ही सूचना दे रहे हैं किन्तु यह सारिणी डा. रमन द्वारा प्रतिपादित है।

एक बार दोनों सारणियों का तुलनात्मक अध्ययन करना भी उचित होगा। पहली सारणी–3 (क) में तात्कालिक मैत्री तथा तात्कालिक शत्रुता भी ली गयी है अर्थात् उसका आधार पंचधा मैत्री है जबकि दूसरी सारणी–3 (ख) में यह विशेषता नहीं है।

दूसरा बड़ा अन्तर विभिन्न अवस्थाओं में पाप ग्रहों के फल की तुलनात्मक संख्याओं में है। यहां अभिप्राय यह नहीं कि लग्न में बैठे लग्न की दोष संख्या 144 तथा 50 मानी गयी है जबकि दोनों सारणियों में मंगल उच्च के हैं। हमारा तात्पर्य है कि सारणी (क) में अधिमित्र राशि में स्थित मंगल सबसे कम कष्टकारी हैं। लग्न में बैठे उच्च के मंगल की दोष संख्या 144 तथा लग्न में ही नीच के मंगल की संख्या 192 है जो 144 से मात्र 33 प्रतिशत अधिक है। किन्तु सारणी (ख) में लग्न में बैठे उच्च के मंगल को दोष संख्या 50 है तो नीच के मंगल की दोष संख्या 100 अर्थात् 100 प्रतिशत अधिक। एक और अन्तर भी दोनों सारणियों में स्पष्ट है। सारणी (क) के उच्च के शनि, राहु तथा केतु को मंगल की तुलना में दो–तिहाई दोष के अंक दिये गये हैं – उसी सारणी में सूर्य के दोष के अंक मंगल की तुलना में एक–तिहाई रह गये हैं। इसे उदाहरण से समझ सकते हैं। कृपया एक बार फिर से सारणी–3 (क) देखें। वहां बताया गया है कि उच्च के मंगल के लग्न में होने से दोष हैं 144, वहीं शनि आदि की दोष संख्या 96 हैं जो 144 का दो–तिहाई है – उन्हीं स्थितियों में उच्च के सूर्य के दोष के अंक हैं 48 जो 144 का एक–तिहाई अथवा 96 का आधा है। अब देखिये सारणी 3 (ख) में क्या बताया गया है ? वहां उच्च के मंगल के लग्न में बैठने पर 50 अंकों का दोष बताया गया है। उच्च के शनि आदि का दोष 37.50 है जो मंगल के दोष का तीन–चौथाई है। अन्त में लग्न में बैठे उच्च के सूर्य की दोष संख्या 25 बताई गयी है जो मंगल की दोष संख्या की आधी है ना कि शनि आदि के दोष संख्या की आधी जैसा सारणी 3 (क) में बताया गया है। हमारा मत है सारणी (ख) का प्रयोग प्रारंभिक विवेचना के लिये किया जाना चाहिये क्योंकि वह एक सामान्य नियम पर आधारित है कि उच्च के ग्रह कम पापी होते हैं तथा नीच के ग्रह अधिक। यदि सारणी (ख) से स्थिति स्पष्ट न हो तो सारणी (क) का प्रयोग करना चाहिये।

सारणी -3 (क) गोपेश कुमार ओझा जी द्वारा बतायी गयी दोष संख्या

क्रम संख्या	अवस्था	लग्न, सप्तम या अष्टम भाव में			द्वितीय, चतुर्थ या द्वादश भाव में		
		मंगल	शनि, राहु, केतु	सूर्य	मंगल	शनि, राहु, केतु	सूर्य
1	उच्च	144	96	48	36	24	12
2	मूल त्रिकोण	108	72	36	27	18	9
3	स्वगृही	96	64	32	24	16	8
4	अधिमित्र	36	24	12	09	6	3
5	मित्र	48	32	16	12	8	4
6	सम	96	64	32	24	16	8
7	शत्रु	168	112	56	42	28	14
8	अधिशत्रु	180	120	60	45	30	15
9	नीच	192	128	64	48	32	16

सारणी -3 (ख) डा. रमन द्वारा बतायी गयी दोष संख्या

1	उच्च	50	37.50	25	25	18.75	12.50
2	स्वगृही	60	45.00	30	30	22.50	15.00
3	मित्र	70	52.50	35	35	26.25	17.50
4	सम	80	60.00	40	40	30	20
5	शत्रु	90	67.50	45	45	33.75	22.50
6	नीच	100	75.0	50	50	37.50	25.00

इन सारणियों के प्रयोग से पहले कुछ अन्य बातें भी स्मरण रखनी चाहिये। उत्तर तथा दक्षिण भारत में सर्वमान्य है कि मंगल दोष की चर्चा मात्र लग्न से करना उचित नहीं – यह दोष क्रमशः चन्द्र लग्न तथा शुक्र लग्न से भी देखे जाने चाहिये तभी विवेचना सम्पूर्ण मानी जा सकती है। किन्तु वह ज्योतिष शास्त्र भी कैसा जहां मत भिन्नता न हो! यहां भी, विशेष तौर से सारणी (ख) के प्रयोग के बारे में, दक्षिण भारत में ही दो मत प्रचलित हैं। एक मत से लग्न, चन्द्र लग्न और शुक्र लग्न से विवेचना के क्रम में हर बार दोष संख्या वही लेनी चाहिए जो सारणी (ख) में दी गयी है। दूसरा मत, जो अधिक प्रचलित है, मानता है कि चन्द्र लग्न से देखे जाने पर सारणी (ख) में दी गयी दोष संख्याओं को आधी तथा शुक्र लग्न से देखे जाने पर एक चौथाई कर दिया जाना चाहिये। अर्थात् यदि उच्च के मंगल चन्द्र लग्न या शुक्र लग्न में बैठे हों तो दोष संख्या मात्र 25 या 12.50 माना जाना चाहिए जो 50 (यानि उच्च के मंगल के जन्म लग्न में होने वाले दोष संख्या) का क्रमशः आधा और एक चौथाई है। इस प्रकार पूरी प्रक्रिया में पहले सारणी (ख) देख कर कन्या और वर के दोष लग्न से जोड़ लेने चाहिये। तत्पश्चात् चन्द्र लग्न से देखते हुए इसी सारणी से दोष निकाल कर उसे आधा कर देना चाहिये। शुक्र लग्न से भी दोष की गणना करके उसे एक चौथाई कर देना चाहिए। अन्त में तीनों अंकों को जोड़ कर कन्या तथा वर के दोष देखने चाहिये। दोनों दोषों में जितना कम अन्तर आये उतनी ही अच्छी जोड़ी माननी चाहिये। एक मत के अनुसार दोनों के दोषों का अधिकतम अन्तर 25 प्रतिशत हो तो अच्छा, कुछ लोग इसे एक तिहाई या 33.34 प्रतिशत तक भी ठीक मानते हैं। सुरक्षात्मक दृष्टिकोण अपनायें तो 25% का अन्तर ही स्वीकृति की सीमा मानना उचित होगा। इससे पहले एक बात और जानना अच्छा होगा। सामान्यतः राहु/ केतु के उच्च स्थानों, मित्रों तथा शत्रुओं आदि की जानकारी स्पष्ट नहीं होती है। हम दो स्थापित पुस्तकों को उद्धृत करना चाहेंगे। पराशर ऋषि तथा मन्त्रेश्वर के मतानुसार निम्नांकित सारणी राहु/ केतु के लिये मान्य है।

सारणी - 4

ग्रह	उच्च राशि	मूल त्रिकोण	स्वगृह	नीच	मित्र	सम	शत्रु
राहु	वृष	कर्क	कन्या	वृश्चिक	बु, शु, श	मं	सू, चं, गु.
केतु	वृश्चिक	कुंभ	मीन	वृष	बु, शु, श	मं	सू.चं, गु.

इसे हम एक उदाहरण के माध्यम से समझेंगे।

आइये सारणी 3 (ख) का प्रयोग पहले वर की कुण्डली पर करें। यह प्रयोग लग्न, चन्द्र लग्न तथा शुक्र लग्न से एक साथ करेंगे। लग्न से तो मंगल मित्र की राशि में (किन्तु नीचस्थ) द्वादस्थ हैं अतः कम प्रभावी हैं। द्वादश भाव में मित्र राशि

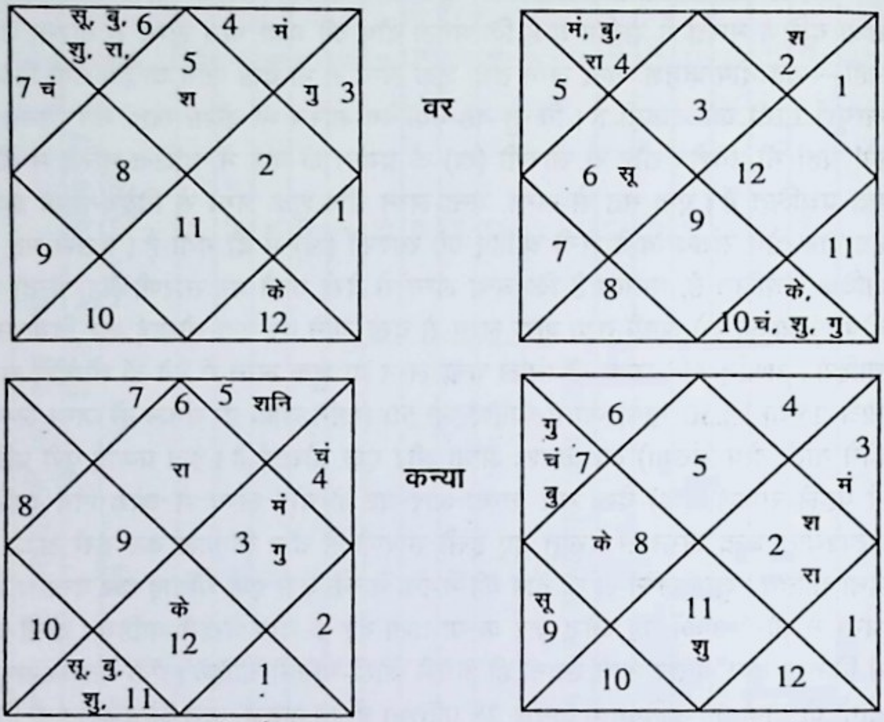

वर

कन्या

जन्म कुण्डलियां   नवांश कुण्डलियां

में बैठने के कारण दोषों की संख्या 35 हुई। किन्तु द्वादस्थ नीच के मंगल होने के कारण इनकी दोष संख्या हुई 50। चन्द्र लग्न से मंगल दशम भाव में हैं अतः मांगलिक प्रभाव होगा ही नहीं। शुक्र लग्न से भी मंगल एकादशस्थ हैं अतः यहाँ भी मांगलिक प्रभाव शून्य है। इस प्रकार सारणी देखें तो द्वादशस्थ मित्र की राशि में बैठे नीचस्थ मंगल के कुल दोष की संख्या हुई 50। इसे हम अगले पृष्ठ पर दी गयी सारणी–वर में डाल देते हैं। इस प्रकार हम सूर्य की स्थिति देखें। वे लग्न से द्वितीय भाव में कन्या राशि में बैठे हैं जिसके स्वामी बुध उनके लिये सम हैं। अतः सारणी (ख) के अनुसार दोष संख्या 20 हुई। अब चन्द्र लग्न से सूर्य को देखिये। चन्द्र लग्न से वे 12वें भाव में हैं। अतः दोषप्रद हैं। सम क्षेत्र में होने के कारण दोष 20 हुए। परन्तु चन्द्र लग्न से देखे जाने के कारण, इसका आधा अर्थात्, 10 मानना चाहिये। शुक्र लग्न से देखें तो सूर्य लग्न में हैं। लग्न में सम क्षेत्री सूर्य की दोष संख्या वैसे तो 40 है पर शुक्र लग्न से देखने के कारण, इसका एक चौथाई अर्थात्, 10 ही प्रभावी हुआ। इस प्रकार सूर्य से प्राप्त कुल दोष के अंक हुए 20+10+10=40 । इसी तरह वर के लिये पूरी सारणी बना लेनी चाहिये।

यदि हम उपर्युक्त सारणी को ध्यान से देखें तो स्पष्ट होगा कि जातक के दाम्पत्य जीवन में व्यवधान डालने वाले ग्रह शनि, केतु, राहु और सूर्य अधिक हैं और मंगल सबसे न्यून। आइये, ऐसी ही सारिणी हम कन्या के लिये भी बनाते हैं।

कन्या की सारणी भी यही कहती है कि कन्या के जीवन में दाम्पत्य सुख को कम करने में मंगल बहुत पीछे हैं – वहां कष्ट शनि, राहु, केतु से अधिक है। इस प्रकार सिर्फ मंगल के पीछे लठ्ठ लेकर पड़ जाना विशेष बुद्धिमानी नहीं है। अब देखते हैं कि इन दोष संख्याओं का कैसे उपयोग किया जाये ? सबसे पहले वर की कुल दोष संख्या देखें। वह 267 है। कन्या की कुल दोष संख्या है 230। इन दोनों का अन्तर 37 है जो 267 का 13.86 तथा 230 का 16.08 प्रतिशत है। अर्थात् कन्या की दोष संख्या वर की दोष संख्या से 25 प्रतिशत से बहुत कम है। दोष का यह अन्तर स्वीकार्य होना चाहिये। अब एक और तथ्य देखिये। जहां वर की कुण्डली के द्वादश भाव में मंगल बैठे हैं, वहीं कन्या की कुण्डली के द्वादश भाव में शनि बैठे हैं। अतः मंगल दोष निरस्त हो गये।

कई शास्त्रज्ञों के अनुसार जन्म कुण्डली के अतिरिक्त दाम्पत्य जीवन के सफल होने की आधिकारिक सूचना नवांश कुण्डली के पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन से अधिक स्पष्ट मिलती है। इस दृष्टि से नवांश कुण्डलियों की तुलना की जाये तो वर के द्वादश भाव में शनि, द्वितीय में मंगल एवं राहु, चतुर्थ में सूर्य तथा अष्टम में केतु हैं। इस प्रकार इस कुण्डली में लग्न तथा सप्तम को छोड़ कर कुज दोष देने वाले सभी भाव पीड़ित हैं। दूसरी ओर कन्या की कुण्डली में द्वादश, लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम एवं अष्टम भावों में सिर्फ चतुर्थ भाव ही केतु से पीड़ित है। इस प्रकार अगर तुलना की जाये तो लगता है वर की कुण्डली में वैवाहिक दोष की संभावनाएँ अधिक हैं।

अब एक अन्य प्रकार से भी कुण्डलियों को देखते हैं। वर की नवांश कुण्डली के सप्तमेश (गुरु) कन्या की जन्म कुण्डली के दशम भाव में बैठे हैं। यह शुभ भाव है अतः सामंजस्य के लिये अच्छी बात है। इसी प्रकार कन्या की नवांश कुण्डली के सप्तमेश (शनि) को वर की जन्म कुण्डली में देखिये। वहां ये लग्न में बैठे हैं। यह भी शक्तिशाली भाव है अतः दाम्पत्य जीवन को दृढ़ता प्रदान हो रही है। एक मत के अनुसार यदि वर के नवांश के सप्तमेश कन्या की जन्म कुण्डली के 6, 8, या 12वें भावों में हो तो विवाहोपरान्त कन्या अपने वर पर दोषारोपण करती रहती है। विपरीततः यदि कन्या के नवांश के सप्तमेश वर की जन्म कुण्डली के 6, 8, या 12वें भाव में हो तो वर हर भूल के लिये कन्या को दोषी ठहराता है।

इन सिद्धान्तों की सत्यता एक अन्य विवाहित जोड़े की कुण्डलियों पर हम परखते हैं।

सारणी 5 (क) वर की कुण्डली की दोष संख्या

क्रम संख्या	मंगल			शनि			राहु			केतु			सूर्य		
	भाव	राशि	अंक	भाव	राशि	अंक	भाव	राशि	अंक	भाव	राशि	अंक	भाव	राशि	अंक
लग्न से	12वां	कर्क नीचस्थ	50	प्रथम	सिंह शत्रु	67.50	द्वितीय	कन्या स्वगृही	22.50	अष्टम	मीन स्वगृही	45	द्वितीय	कन्या सम	20
चन्द्र से (लग्न से ½ अंक)	10वां	कर्क नीचस्थ	00	11वां	सिंह शत्रु	00	द्वादश	कन्या स्वगृही	22.50 /2 11.25	ष्टम	मीन स्वगृही	00	द्वादश	कन्या सम	20/2 =10
शुक्र से (लग्न से ¼ अंक)	11वां	कर्क नीचस्थ	00	12वां	सिंह शत्रु	33.75 /4 =8.44	लग्न	कन्या स्वगृही	45.00 /4 =11.25	सप्तम	मीन स्वगृही	45/4 =11.25	लग्न	कन्या सम	40 /4 =10
कुल योग			50			75.94			45			56.25			40

वर की कुण्डली में कुल दोष: 267.19

सारणी 5 (ख) कन्या की कुण्डली की दोष संख्या

क्रम संख्या	मंगल			शनि			राहु			केतु			सूर्य		
	भाव	राशि	अंक	भाव	राशि	अंक	भाव	राशि	अंक	भाव	राशि	अंक	भाव	राशि	अंक
लग्न से	10वां	मिथुन शत्रु	00	द्वादश	सिंह शत्रु	33.75	प्रथम	कन्या स्वगृह	45.00	सप्तम	मीन स्वगृह	45.00	ष्ठम	कुंभ शत्रु	00
चन्द्रमा से	12वां	मिथुन शत्रु	45/2 22.50	द्वितीय	सिंह शत्रु	33.75 /2 =16.87	तृतीय	कन्या स्वगृह	00	नवम	मीन स्वगृह	00	अष्ठम	कुंभ शत्रु	45/2 =22.50
शुक्र से	5वां	मिथुन शत्रु	00	सप्तम	सिंह शत्रु	67.5 /4 =16.9	अष्टम	कन्या स्वगृह	45/4 =11.25	द्वितीय	मीन स्वगृह	22.50 /4 =5.625	लग्न	कुंभ शत्रु	45/4 =11.25
कुल योग			22.50			67.49			56.25			50.625			16.87
कन्या की कुण्डली में कुल दोषः 213.742															

जन्मांग

←वर

कन्या→

नवांश

←वर

कन्या→

अगर अष्टकूट मिलान देखें तो 36 में से इनके 34 गुण मिलते हैं। दाम्पत्य जीवन अवश्य अच्छा होना चाहिये। किन्तु जब हम दोषों की गणना सारणी 3 (ख) के आधार पर करते हैं तो पता चलता है कि वर महोदय की कुण्डली में तो दोष की संख्या 217.20 है पर कन्या के लिये यह संख्या मात्र 130.94 है। यह अन्तर बहुत अधिक है। फिर दूसरी बात देखें। पत्नी के नवांश के सप्तमेश हुए मंगल जो पति की कुण्डली के बारहवें भाव में बैठ गये हैं साथ में हैं वृषभ लग्न के लिये अत्यन्त घातक बृहस्पति जो अष्टमेश और एकादशेश हैं। साथ ही इन पर शनि की दृष्टि भी है। उधर पति की नवांश कुण्डली के सप्तमेश चन्द्रमा कन्या की जन्म कुण्डली के बारहवें भाव में बैठ कर सुखी नहीं है। नीम चढ़े करेले की भांति चन्द्रमा पर राहु–केतु के अतिरिक्त मंगल की दृष्टि भी है। कुल मिलाकर स्थिति अच्छी नहीं दिखती। सच्चाई भी यही है। इनका विवाह हुए कुछ समय हुआ – कुण्डली मिलाकर ही ! फिर भी अब तक सामंजस्य नहीं हो पाया है तथा आरोपों – प्रत्यारोपों से प्रारंभ होने वाला प्रत्येक दिन अविश्वासों और मनमुटावों से ही समाप्त होता है।

अब आपको ज्योतिष शास्त्र का एक सूत्र बताते हैं। जन्म कुण्डली के लग्नेश को नवांश कुण्डली में देखिये कि वे किस भाव में बैठे हैं। अब देखिये कि नवांश कुण्डली में बैठे जन्म कुण्डली के लग्नेश किन ग्रहों से छठे, आठवें या बारहवें भाव

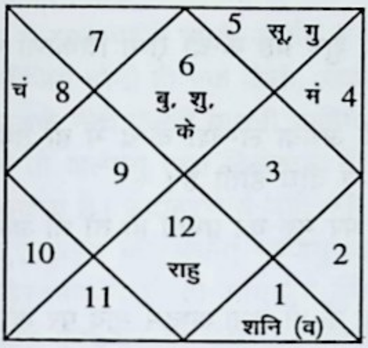

जन्म कुण्डली

नवांश कुण्डली

में बैठे हैं। अथवा उनसे आठवें, छठे या द्वितीय भावों में कौन से ग्रह बैठे हैं। बात एक ही हुई बस कान को उधर से ना छू कर इधर से छू लिया गया है। इन ग्रहों को वापस जन्म कुण्डली में देखिये। वहां ये ग्रह जिन भावों के स्वामी होते हैं, उनके कारकत्व में कष्ट होता है – इसे हम एक उदाहरण से समझते हैं।

यहां जन्म कुण्डली के लग्नेश हैं बुध जो नवांश कुण्डली में मकर राशि में दशम भाव में बैठे हैं। अब नवांश कुण्डली में बुध से गिनती करके देखें तो वहां से छठे भाव (मिथुन राशि) में कोई ग्रह नहीं हैं। आठवें भाव में सूर्य बैठे हैं तथा द्वितीय भाव में भी कोई ग्रह नहीं है। अर्थात् पीड़ा पहुंचाने वाले ग्रह हुए सूर्य। सूर्य वर्गोत्तम हैं अतः कम पीड़ा देंगे परन्तु वे जन्म कुण्डली के बारहवें भाव के स्वामी हैं अतः जातक को बारहवें भाव से सम्बन्धित विषयों में कष्ट होने की संभावना है। बारहवां भाव वैवाहिक सम्बन्ध का कारक है। जातक के जीवन में विवाह और सन्तान, दोनों का कष्ट रहा था। अब मूल विषय की ओर वापस चलते हैं। विवाह कराने के लिये कुण्डली मिलान में क्या देखना चाहिये ? इसे हम कुछ सूत्रों में बांधेंगे।

अच्छे विवाह के लिये कुछ सूत्र

सूत्र 1 :- सबसे पहले वर की कुण्डली तथा नवांश की विवेचना करनी चाहिये कि वर की आयु में कहीं दोष तो नहीं तथा यह भी सुनिश्चित करना चाहिये कि वर को विधुर योग तो नहीं। यही प्रक्रिया वधु की कुण्डली में भी लगानी चाहिये। आयु निर्धारण की विधि तथा वैधव्य/विधुर योग की चर्चा आगे की गयी है।

आयु निर्धारण के सामान्य नियम

(क) जन्म कुण्डली में यदि लग्न, लग्नेश, अष्टम भाव, अष्टमेश, तृतीय भाव, तृतीयेश तथा आयुष्कारक शनि यदि बलवान हों तो आयु दीर्घ होने की संभावना होती है।

(ख) इसके साथ पाप ग्रह 3, 6 तथा 11वें भावों एवं शुभ ग्रह केन्द्रों तथा त्रिकोणों में हो तो आयु वृद्धि होती है।

(ग) लग्नेश तथा चन्द्र लग्नेश एकादश भाव में हों अथवा लग्नेश केन्द्र में हों तथा उनपर गुरु एवं शुक्र का प्रभाव हो तो भी आयु दीर्घ होती है।

(घ) त्रिकोण में यदि एक भी शुभ ग्रह हो तथा उन पर गुरु का प्रभाव हो तो भी आयु दीर्घ होती है।

(ड.) यदि लग्नेश, अष्टमेश तथा एक अन्य ग्रह उच्च के हों तथा अष्टम भाव पर कोई अशुभ प्रभाव न हो तो पूर्णायु जाननी चाहिये।

(च) यदि शनि अथवा लग्नेश की युति किन्हीं उच्च के ग्रह से हो तो भी आयु दीर्घ होती है।

आयु निर्धारण का पराशरी सिद्धान्तः इसके लिये तीन जोड़े उपादानों की आवश्यकता होती है।

(अ) लग्नेश तथा अष्टमेश (आ) शनि तथा चन्द्रमा (ई) लग्न एवं होरा लग्न।

सबसे पहले होरा लग्न निकालना सीखते हैं।

जन्म काल से सूर्योदय काल का अन्तर घन्टों तथा मिनटों में निकाल लीजिये। मान लीजिये कि जातक का जन्म दोपहर 12:20 बजे हुआ और उस दिन सूर्योदय 6:14 बजे था तो अन्तर हुआ 7 घंटे 6 मिनट। अब घंटों को गत राशि या बीती हुई राशि समझ लीजिये। यथा 7 घंटों का अर्थ हुआ 7^s – यानि वृश्चिक। अब मिनटों में दो का भाग दीजिये। मिनट थे 6; इनमें दो का भाग दिया तो भागफल तीन प्राप्त हुए। इन्हें अंश मान लीजिये। अर्थात् प्राप्त रेखांश हुये 7^s3° । अब यदि जन्म लग्न सम है तो प्राप्त रेखांश को लग्न के रेखांश से जोड़ने से होरा लग्न प्राप्त होगा। अन्यथा (अर्थात् विषम जन्म लग्न होने से) प्राप्त रेखांश को सूर्य के रेखांश में जोड़ें तो प्राप्त फल होरा लग्न होगा।

हमें सबसे पहले अब यह देखना है कि पहले जोड़े के साथी, लग्नेश तथा अष्टमेश कैसी राशि (चर, स्थिर या द्विस्वाभाव) में हैं। यही काम हम अन्य दो जोड़ों के साथ करके उन्हें आगे दी गयी सारणी–7 में बैठायेंगे।

सारणी - 7

राशि	चर (1,4,7,10)	स्थिर (2,5,8,11)	द्विस्वभाव (3,6,9,12)
आयु	**पूर्णायु**	**अल्पायु**	**मध्यायु**

अब पहले जोड़े, अर्थात् लग्नेश और अष्टमेश, को इस सारणी में बैठाइये। मान लीजिये दोनों ही एक जैसी, अर्थात् चर, स्थिर अथवा द्विस्वभाव राशियों में हैं तो आयु उसके नीचे लिखी माननी चाहिये। अर्थात् यदि दोनों चर राशि में हो तो पूर्णायु, स्थिर में तो अल्पायु तथा द्विस्वभाव में तो मध्यायु माननी चाहिये। बहुधा ऐसा नहीं भी हो सकता है। उदाहरणार्थ यदि एक चर में और दूसरा स्थिर में पड़े तो आयु तीसरे बचे हुए खण्ड की अर्थात् मध्यायु जाननी चाहिये। इसी प्रकार एक स्थिर तथा दूसरा द्विस्वभाव में हो तो आयु बचे हुये खण्ड की अर्थात्, पूर्णायु जाननी चाहिये। या फिर यदि एक चर या दूसरा द्विस्वभाव में हो तो अल्पायु समझनी चाहिये।

इसी प्रकार तीनों जोड़ों से आयु निकाल लेनी चाहिये। यदि तीनों से एक ही फल प्राप्त हों तब तो कोई दुविधा ही नहीं है। यदि दो जोड़े भी एक जैसा फल दें तो भी वही फल मानने चाहिये। हां, यदि तीनों प्रकार से भिन्न फल प्राप्त हों तो लग्न और होरा लग्न द्वारा निर्दिष्ट फल सही जानना चाहिये। एक सूत्र के अनुसार लग्नेश यदि लग्न अथवा सप्तम भाव में हों या फिर चन्द्रमा लग्न या सप्तम भाव में हों तो शनि–चन्द्र की जोड़ी द्वारा बतायी गयी आयु माननी चाहिये।

इस सिद्धान्त को हम पिछले उदाहरण में बताये गये पहले लड़के और फिर लड़की की कुण्डली में लगाते हैं। सबसे पहले हम होरा लग्न निकालेंगे। लड़के का जन्म रात्रि के 2:30 बजे हुआ था। उस दिन, उसके जन्म स्थान में, सूर्योदय का काल था सुबह 5:40 बजे। समय का अन्तराल हुआ 20 घन्टे 50 मिनट। अतः गत राशियां हुईं 20 । इसमें से 12 कम करें तो शेष बची 8 राशियां। अर्थात् होरा लग्न निकालने के लिये हमें 8^s मानना होगा। मिनट थे 50, जिनमें 2 का भाग देने से 25 मिले। अतः कुल मिलाकर यह भोगांश हुआ 8^s25° । जातक का जन्म लग्न सिंह राशि है जो विषम है तो इस भोगांश को सूर्य के भोगांश में जोड़ेगे। सूर्य का भोगांश है $5^s26^\circ51'$ । अर्थात् होरा लग्न हुआ $8^s25^\circ + 5^s26^\circ51' = 14^s21^\circ51'$ या $2^s21^\circ51'$ अर्थात् मिथुन (द्विस्वभाव) ।

अब आगे चलें। पहली जोड़ी लग्नेश तथा अष्टमेश की होती है। लग्नेश सूर्य (कन्या राशि) द्विस्वभाव तथा अष्टमेश गुरु भी (मिथुन राशि) द्विस्वभाव में हैं। अर्थात् जातक की मध्यायु हुई।

दूसरी जोड़ी है शनि एवं चन्द्रमा की। शनि (सिंह राशि) स्थिर भाव में तथा चन्द्रमा (तुला राशि) चर भाव में होने से भी मध्यायु प्राप्त हुई।

तीसरी जोड़ी है लग्न तथा होरा लग्न की। लग्न स्थिर राशि तथा होरा लग्न द्विस्वभाव राशि होने से अल्पायु प्राप्त हुई। इनमें दो स्थानों से मध्यायु प्राप्त होने के कारण जातक की मध्यायु जाननी चाहिये।

अब कन्या की कुण्डली देखते हैं।

कन्या की जन्म कुण्डली का लग्न सम राशि (कन्या) है अतः यहां होरा लग्न निकालने के लिये हमें लग्न का भोगांश देखना होगा। लग्न है $5^s27°6'$ । कन्या का जन्म 22:05 बजे हुआ जब सूर्योदय काल था 7:05 बजे । अर्थात् समय का अन्तर पूरे 15 घंटों का हुआ। इसे राशियां मान लें तो गत राशि हो गयी $(15^s-12^s) = 3^s$। अतः रेखांश हुआ $3^s0°0'$ । इसमें लग्न जोड़ें तो होरा लग्न हुआ $3^s + 5^s27°6' = 8^s27°06'$ अर्थात् होरा लग्न धनु राशि हुई।

जोड़ी एक लग्नेश (बुध) और अष्टमेश (मंगल) क्रमशः स्थिर और द्विस्वभाव राशियों में हैं तो पूर्णायु हुई। जोड़ी दो अर्थात् शनि और चन्द्रमा क्रमशः स्थिर और चर भावों में हैं। अतः मध्यायु हुई। लग्न और होरा लग्न दोनों ही द्विस्वभाव में होने के कारण मध्यायु हुई। इस तरह दो प्रकार से मध्यायु प्राप्त हुई। दोनों जातकों की आयु मध्यायु है। अतः इनका दाम्पत्य जीवन अकाल मृत्यु को नहीं प्राप्त होगा।

आइये विधुर और वैधव्य योग भी जल्दी–जल्दी देख लेते हैं।

विधुर योग : यद्यपि यह अपने आप में सम्पूर्ण विषय है फिर भी कुछ मोटे–मोटे सूत्रों का जानना ही हमारे काम के लिये यथेष्ट होना चाहिये।

(क) यदि सप्तम भाव, और सप्तमेश दोनों पापाक्रान्त हों, सप्तमेश बलहीन अथवा नीचस्थ होकर 6, 8 या 12वें भाव में चले जायें तो पुरुष की जीवन संगिनी उसका साथ पहले छोड़ सकती है।

(ख) यदि लग्न से 6, 7 तथा 8वें भावों में क्रमशः मंगल, राहु तथा शनि बैठे हों तो भी विधुर योग की संभावना होती है।

(ग) यदि 5, 7 या 9वें भाव में से किसी एक में शुक्र किसी पापी ग्रह के साथ बैठे हों तब भी यह योग बनता है।

(घ) सप्तम भाव में वृषभ में बुध अथवा मीन में मंगल या शनि अथवा वृश्चिक में शुक्र बैठे हों, तब भी यह संभावना होती है।

यह आवश्यक है कि इन सूत्रों की पुष्टि नवांश में भी हो।

वर की कुण्डली में इनमें से कोई दोष नहीं है।

वैधव्य योग :

(क) स्त्री जातक की कुण्डली में यदि सप्तम, अष्टम, द्वितीय तथा द्वादश भाव एवं इन भावों के स्वामी पीड़ित हों, साथ–साथ शुक्र एवं गुरु दोनों पापी प्रभावों

में हों तथा नवांश में भी यह सब दिखे तो स्त्री का पति उससे पहले परलोकगामी हो सकता है।

(ख) यदि सप्तम भावस्थ मंगल या शनि की राशि में स्वयं शनि महाराज, पापी प्रभावों सहित, विराजमान हों तो भी वैधव्य योग बनता है।

(ग) पुनः यदि अष्टम भाव में कोई पापी ग्रह पापी प्रभावों में पड़कर बैठे हों तब भी स्त्री के सौभाग्य में कमी आती है। यदि ऐसी स्थिति में अष्टम भाव पर कोई शुभ प्रभाव न हो तो वैधव्य की संभावना बलवती हो जाती है।

(घ) एक अन्य प्रकार से वैधव्य योग की चर्चा में बताया गया है कि यदि लग्न और सप्तम मंगल, राहु/केतु के प्रभाव में हों, द्वितीय/ अष्टम अक्ष भी पापाक्रान्त हो तो अनिष्ट समझना चाहिये।

(च) एक अन्य मत के अनुसार षष्ठम या अष्टम भाव में बैठे पापी चन्द्रमा की दृष्टि शुक्र अथवा सप्तमेश पर पड़े तो भी वैधव्य योग बनता है।

(छ) यदि सप्तमेश तथा अष्टमेश का परिवर्तन योग हो तथा इस योग पर पापी प्रभाव हो अथवा आठवें भाव में सूर्य नीचस्थ, शत्रुक्षेत्री या शत्रु वर्गों में हो तो भी वैधव्य की संभावना बनती है।

(ज) 'बेड़ा जातक' में एक महत्त्वपूर्ण सूचना दी गयी है। किसी स्त्री जातक की कुण्डली में यदि अष्टम स्थान प्रबल रूप से पापाक्रान्त हो तो देखिये कि जन्म कुण्डली के अष्टमेश नवांश कुण्डली में किसी ग्रह की राशि में हैं। इस नवांशनाथ ग्रह की अन्तर्दशा में वैधव्य की बात कही गयी है। उसी श्लोक में आगे कहा गया है कि यदि नवांशनाथ क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र अथवा शनि हों तो दाम्पत्य जीवन की आयु की संभावना क्रमशः 20, 1, 2 , 9, 18, 20 तथा 50 वर्षों की होती है।

कन्या की कुण्डली में ऐसा कोई भी दोष नहीं है। इस प्रकार इनके सुखी दाम्पत्य की घोषणा की जा सकती है।

सूत्र 2 : वर तथा कन्या की कुण्डलियों के लग्न, चतुर्थ, सप्तम, पंचम, द्वितीय तथा द्वादश भावों को अलग–अलग देखना चाहिये क्योंकि इन भावों की शक्ति ही वैवाहिक जीवन को सुदृढ़ आधार दे सकती है। जातक के दाम्पत्य जीवन के सुखी होने में इन भावों के महत्त्व पर अलग से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। फिर जातक की कुण्डली में सप्तम भाव को लग्न मानकर इन्हीं भावों को देखना चाहिये। जन्म कुण्डली का अष्टम भाव सप्तम भाव से द्वितीय हुआ – इसी प्रकार इन भावों

की शक्ति में वृद्धि हुई या ह्रास, यह पता चल जाने से एक स्पष्टता आयेगी कि विवाह के बाद जातक के जीवन में कैसे परिवर्तन आयेंगे।

सूत्र 3 : वर या वधु को अपने चारित्रिक दोषों या गुणों का भी बोध हो तो अच्छा है। इसके लिये हम त्रिशांश कुण्डली का प्रयोग समझेंगें। वृद्धयवन जातक तथा बेडा जातक में दिये गये सूत्रों को मिलाकर सारणी–8 आगे दी गयी है। इसमें मात्र दाम्पत्य जीवन को प्रभावित करने वाले तत्त्वों की चर्चा की गयी है। पहले देखिये कि जन्म कुण्डली में लग्न अथवा चन्द्र राशि में अधिक बलवान कौन है।

सारिणी - 8

लग्न या चन्द्र लग्न की राशि	त्रिशांश की राशि के फल				
	मंगल	शनि	गुरु	बुध	शुक्र
मंगल	पर पुरुष गामिनी	दासों में अनुरक्त	सती	मायावी	दुःशीला
शुक्र	पर पुरुष गामिनी	रखैल	दक्ष, निपुण	इष्टा, जिसकी सब इच्छा करें	धनिक
बुध	कपटी	सन्तानहीन	अभिष्टा, जिसे सब चाहे	गुणवती	पर पुरुष गामिनी
चन्द्र	असती	पति की मृत्यु का कारण	गुणवती	शिल्पिनी	दुष्टा
सूर्य	बहुत बोलने वाली	निन्दिता	रानी के समान	पुरुषोचित गुणवाली	व्यभिचार में लिप्त
गुरु	बहुगुण सम्पन्ना	अल्पकामेक्षा	पति प्रिया	शिल्पिनी	दुष्टा
शनि	दासी	नीचे मनोवृति	इष्टा या पति प्रिया	व्यभिचार में लिप्त	सन्तानहीन

उनमें जो भी बली है, उस राशि के स्वामी त्रिशांश में जिस राशि में गये हों उसके फल आगे दिये गये हैं। पहले सारणी देखते हैं। यद्यपि ये फल मूल रूप से स्त्री जातक के लिये लिखे गये हैं पर ये पुरुषों पर भी मान्य होने चाहिये।

ये मनोवृत्तियां हैं। यदि जातक को विवाह से पहले यह ज्ञात हो कि उसकी स्वयं मनोवृति बुरी है तो वह उस पर संयम रखकर अपना दाम्पत्य जीवन सुधारेगा और अगर मनोवृति अच्छी है तो मनोनुकूल जीवन साथी ढूंढेगा जिससे उसका दाम्पत्य जीवन सुन्दर बीते। उदाहरण वाली वर की कुण्डली में जन्म लग्न चन्द्र लग्न से बलशाली है क्योंकि लग्नेश उच्च के ग्रह बुध तथा नीच के ग्रह शुक्र के साथ सम ग्रह की राशि में बैठे हैं किन्तु चन्द्र लग्न के स्वामी शुक्र नीच के हैं। लग्न विषम राशि के तीसरे त्रिशांश (12°13') होने के कारण गुरु के त्रिशांश में गये जिसका फल बताया गया 'राज्ञी' या रानी के समान। यह अत्यन्त शुभ फल हुआ। कन्या की कुण्डली में चन्द्र लग्न अधिक बलवान है (स्वामी वहीं बैठे हैं तथा दुरूधरा योग बन रहा है)। यहां चन्द्रमा ही चन्द्र लग्न के स्वामी हैं। वे सम भाव में बैठने के कारण दूसरे त्रिशांश (बुध) में हैं। सारणी–8 में देखें तो चन्द्रमा के बुध के त्रिशांश में होने का फल 'शिल्पिनी' बताया गया है। अर्थात् मामला दोनों ओर से उत्तम है।

सूत्र 4: संन्यास या प्रव्रज्या योगः दाम्पत्य जीवन में धर्म तथा प्रव्रज्या का सामंजस्य या संन्यास योग का बड़ा महत्त्व है। अच्छा गार्हस्थ्य जीवन बीत जाये तो वानप्रस्थ और संन्यास की ओर प्रवृति अपने आप आनी चाहिये। यदि दोनों की कुण्डली में परिव्राजक योग हो तो इससे उत्तम बात हो ही नहीं सकती। स्त्री जातक के लिये पराशर ऋषि कहते हैं – **''क्रूरे सप्तमगे कश्चित् खेचरो नवमे यदि। सा प्रव्रज्यां''** अर्थात् ''सप्तम भाव में पाप ग्रह तथा नवम भाव में कोई भी ग्रह हो तो स्त्री संन्यासिनी होती है।''

पुरूष की कुण्डली में प्रव्रज्या की चर्चा कई अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त मंत्रेश्वर की फलदीपिका में की गयी है। इस महान ग्रन्थ के सत्ताईसवें अध्याय में वे बताते हैं–

''ग्रहैश्चतुर्भिः सहिते खनाथे, त्रिकोणगैः केन्द्रगतैस्तु मुक्तः।
लग्ने गृहान्ते संति सौम्य भागे, केन्द्रे गुरौ कोणगते च मुक्तः।''

अर्थात् ''यदि केन्द्र अथवा त्रिकोण में, दशमेश सहित, चार ग्रह बैठे हों तो जातक मुक्त हो जाएगा। इनमें किसी एक ग्रह का बली होना आवश्यक है।'' उन्हीं के द्वारा बताये एक अन्य सूत्र के अनुसार यदि चन्द्रमा शनि के द्रेष्कोण में हों तथा उन पर मंगल और शनि की दृष्टि हो, अथवा चन्द्रमा मंगल के नवांश में हों तथा उन पर शनि की दृष्टि हो तो जातक तपस्वी होगा।

एक अन्य मत से यदि चन्द्र लग्न के स्वामी पर मात्र शनि का प्रभाव हो तथा किन्हीं अन्य ग्रह का प्रभाव न हो तो जातक की दीक्षा अवश्य होती है। एक सामान्य सूत्र यह भी है कि यदि अन्य प्रभावों से रहित शनि की दृष्टि या शनि का सम्बन्ध किसी प्रकार से पंचम एवं नवम दोनों भावों से बन जाये तो जातक की धार्मिक अभिरुचियाँ निश्चय ही प्रबल होती हैं। या तो वह कठोर तपस्वी हो जाता है अथवा घोर नास्तिक। शनि पर गुरु के प्रभाव इस परिस्थिति में जातक को सत्य के अनुसंधान की ओर ले जाते हैं। दिये गये उदाहरण में पुरुष या स्त्री किसी भी कुण्डली में ये योग स्पष्ट नहीं है। यदि किन्हीं एक की कुण्डली में होता और दूसरे की कुण्डली में नहीं, तो जीवन यात्रा कठिन हो सकती थी पर दोनों ही सांसारिक दिखते हैं अतः मात्र किसी एक के संयासी होने से दूसरे की जीवन यात्रा कठिन होने की संभावना नहीं है।

सूत्र-5 : इष्ट देवताओं का पारस्परिक सम्बन्ध

दाम्पत्य जीवन में खटपट का एक आधार होता है ईष्ट देवताओं का एक न होना। इसलिये यह देख लेना भी अच्छा होता है कि पंचम भाव पर कौन से ग्रह का सर्वाधिक प्रभाव है। सामान्यतः कुण्डली में कोई भी जातक पंचम भाव पर सूर्य के प्रभाव से सूर्य की आराधना, चन्द्रमा के प्रभाव से गौरी मां की पूजा, मंगल के प्रभाव से कार्तिकेय, बुध के प्रभाव से श्री विष्णु, गुरु के प्रभाव से श्रीशंकर भगवान, शुक्र के प्रभाव से इन्द्र तथा शनि के प्रभाव से अन्य देवताओं की पूजा करता है। दिये गये उदाहरण एक में वर की कुण्डली में पंचम भाव पर गुरु तथा कन्या की कुण्डली में चन्द्रमा का प्रभाव है। अर्थात् वर शंकर जी तथा कन्या माता गौरी की आराधना करते होंगे। यह भी बड़ा अच्छा योग है।

सूत्र 6 : जीवन साथी का चयन

एक सर्वविदित नियम है कि सप्तम भाव तथा सप्तमेश से जीवन साथी का निरूपण होता है। इसे सूत्र बनाकर समझते हैं।

- जातक की कुण्डली के सप्तमेश की राशि अथवा उसके उच्च की राशि या फिर उसके नीच की राशि यदि उसके कलत्र की जन्म राशि या लग्न राशि हो तो उत्तम है। एक कुण्डली में शुक्र जिस राशि में हैं, वही यदि दूसरी कुण्डली का लग्न अथवा चन्द्र लग्न की राशि हो तब भी दाम्पत्य जीवन सुखी रहता है।

- एक अन्य मत से वर के चन्द्र लग्न से सप्तम भाव की राशि यदि कन्या का जन्म लग्न हो तो भी विवाह शुभ होता है। इसी प्रकार वर के चन्द्र लग्न से सप्तम

भाव पर जिन ग्रहों की दृष्टि हो या जो ग्रह वहां बैठे हों, उनका सम्बन्ध कन्या के लग्न या चन्द्र लग्न से हो जाये तो दाम्पत्य जीवन में हमेशा परस्पर विश्वास और प्रेम की फुहारें पड़ती ही रहती हैं।

दाम्पत्य जीवन के लिये भारतीय परम्परा का आधार हम पहले ही समझ चुके हैं। वहां यह भी प्रार्थना है:

''पत्नीं मनोरमां देहि, मनोवृतानुसारिणीं;
तारिणीं दुर्ग संसार सागरस्य कुलोद्भवाम्''।

अर्थात्, ''जीवन साथी सुन्दर हो जो मनोनुकूल चले तथा जिसके साथ संसार का सागर सहजता से पार हो जाये और जिसके कारण कुल भी अच्छा रहे।''

अध्याय 21

ज्योतिष और वर्षा विज्ञान

ज्योतिष और वर्षा विज्ञान

मौसम और ऋतुओं के सम्यक् अध्ययन का नाम है मौसम विज्ञान। सामान्यतः ताप, वायु, हवा का दवाब, बादल, आर्द्रता, वृष्टि आदि की जानकारी हमें मौसम विज्ञान के माध्यम से मिलती है – किन्तु आधुनिक विज्ञान अपनी समुन्नत तकनीकों, आकाश में छोड़े गये सैकड़ों उपग्रहों से एकत्रित किये गये भारी भरकम आँकड़ों को विशालकाय कम्प्यूटरों में मथ कर भी मौसम का सही–सही पूर्वानुमान लगाने में बहुत समर्थ नहीं हो पा रहा है जबकि ज्योतिष शास्त्र के कतिपय पुरातन सूत्रों के माध्यम से, मौसम के बारे में, विशेष तौर से वर्षा की संभावनाओं पर, सफल भविष्यवाणी करना संभव है। कुछ तो लोकोक्तियों में परिवर्तित होकर सामान्य जन–जीवन का स्थाई अंग बन गये हैं।

पंचांग में ही आप पायेंगे कि वर्षा की संभावनाओं के लिये कई अन्य प्रकार के स्रोतों का सहारा लिया गया है। इन्हें हम एक–एक करके समझते हैं।

आपने पंचांग में देखा होगा कि प्रत्येक वर्ष के लिये मौसम, विशेष तौर पर वर्षा के बारे में भविष्यवाणियां की गयी होती हैं। हमें जानना होगा कि इनका आधार क्या है और इनकी विश्वसनीयता कितनी है ?

सबसे पहले तो हम आपको इसी पुस्तक के पृष्ठ 155-156 पर ले चलते हैं जहां हमने वर्ष के मन्त्रिमंडल दस पदाधिकारियों में से एक मेघेश (बादलों के स्वामी) की चर्चा की है और बताया है कि 2064 सम्वत्सर के लिये मेघेश शुक्र हैं जिसका कारण वर्षा पर्याप्त होगी। नीचे की सारणी में हमने विभिन्न ग्रहों के मेघेश बनने पर वर्षा की संभावनाएँ लिखी हैं।

मेघेश और उसके फल

मेघेश - सूर्य

श्लोक - जलदपो यदि वासरपे तदा सरसि वै रमते जनतारसम् ।
यव चणेक्षु निवारसुशालिभिः सुखचयं सुलभं भुवि वर्तते ।।

फल - मेघेश सूर्य के होने से सुख शान्ति का संचार होगा। जौ, चना, चावल, ईख आदि की पैदावार श्रेष्ठ होगी ।

मेघेश - चन्द्र

श्लोक - शकशिनितोयदपे यदि गोमहिष्य जखरादिषु दुग्ध रसंतदा ।
फलवती धन धान्यवती धरा विविध भोगवती ननु भामिनी ।।

फल - वर्षा अच्छी होने से कुआं, बावड़ी, तालाब जल से पूर्ण होंगे। जनता में सुख शांति रहेगी। अनाज का उत्पादन भी अच्छा हो। वृक्षों में फल एवं बेलों में फूल अधिक लगेंगे। उद्योग धन्धों का विस्तार होगा। गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं में दुग्ध की मात्रा बढ़ेगी।

मेघेश - मंगल

श्लोक - अवनिजे जलदस्य पतौ भुवि श्रुति विचार विहीन धरा भवाः ।
क्वचिदपि प्रचुरं जलमल्पकं क्वचिदपि प्रचुरं बहुतापदम् ।।

फल - मंगल के वर्षापति मेघेश होने से शास्त्रों का पालन नहीं होगा तथा वर्षा कहीं बहुत कम तथा कहीं बहुत अधिक होगी प्राकृतिक प्रकोपों से लोग पीड़ित होंगे।

मेघेश - बुध

श्लोक - अमृत रश्मि सुते यदि वारिपे बहुजलं तुषधान्य रसादिकम् ।
द्विजवरा यजनोत्सुक चेतसो विविध सौख्ययुता धरणी तदा ।।

फल - गेहूं, चना, जौ, और रस पदार्थों का उत्पादन बढ़ेगा। वर्षा उत्तम होगी। उत्तम द्विज यज्ञादि उत्सवों में लगे रहेंगे। पृथ्वी पर सुख–शांति की वृद्धि होगी। जनता में भेदभाव की भावना कम होगी।

मेघेश - गुरु

श्लोक - गुरु रवि प्रिय वृष्टिकरः सदाखिल विलासवती धरणी तदा ।
श्रुति विचार परा नरपालका रस समृद्धि युताऽखिल भानवाः ।।

फल - गुरु के मेघेश होने से वर्षा ठीक होगी, लोग धन धान्य युक्त होंगे जिससे उनका जीवन स्तर ऊँचा होगा। राष्ट्रनायक वेद शास्त्रों के प्रति निष्ठावान होंगे। जनता में धार्मिक भावना जाग्रत होगी।

मेघेश - **शुक्र**

श्लोक - भृगुसुतो जलदस्य पतिर्यदा जलमुचो जलदादि विशोभनाः।
धन–निधानयुता द्विजपालका' नृपतयो जनता सुखदायकाः ।।

फल - शुक्र मेघेश हो तो मेघ पर्याप्त वर्षा करते हैं। शासक वर्ग विप्रों और विद्वानों की सेवा करें तथा धर्मपरायण होकर जनता की सुख समृद्धि की बढ़ोतरी करें।

मेघेश - **शनि**

अब्देश्वरश्चमूपो वा सस्येशो वार्कनन्दनः। अन्नकश्चौरखहन्यं बुधान्यभूपभयप्रदः।।

फल - यदि शनि मेघेश हों तो अकाला, चोर, अग्नि, बाढ़ धान्य और राजा का भय हो।

यह तो हुआ एक सामान्य सूत्र। किन्तु वर्षा की संभावनाओं की जानकारी के लिये ज्योतिषी की पोटली में बहुत सारी पुड़ियां होती हैं जिनसे क्रमशः दीर्घ–कालीन, मध्यकालीन और अल्प कालीन भविष्यवाणियां संभव होती हैं। आइये इन्हें समझें।

दूरगामी भविष्यवाणी :

इसके लिए सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश काल की कुण्डली बनाई जाती है, जिसके बारे में आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

मध्य दूरी की मानसून भविष्यवाणीः

यह भविष्यवाणी 195 दिन (करीब 6½ महीना) पूर्व के मौसमी अनुभव के आधार पर दी जाती है। मानसून (जून–सितम्बर) में बादलों का घनत्व, वायु की दिशा और वर्षा का अनुमान पिछले वर्ष नवम्बर–दिसम्बर से मार्च–अप्रैल तक के प्राकृतिक लक्षणों एवं चन्द्रमा के विभिन्न तिथियों में नक्षत्रों में प्रवेश को देखकर लगाया जाता है, जो मानसून के दौरान वर्षा के बारे में भविष्यवाणी में सहायक होते हैं। इसे भी आगे बताया गया है।

अल्पकालीन भविष्यवाणी :

इसका पता रोहिणी योग से लगाया जाता है। इसका आधार आषाढ़ कृष्ण पक्ष (आर्द्रा प्रवेश के 10-12 ± दिन के भीतर) की उस तिथि का मौसम, बादल का धनत्व आदि होता है जब चंद्रमा रोहिणी नक्षत्र में प्रवेश करते हैं। इसमें सप्त नाड़ी चक्र का भी सहयोग लिया जाता है जिसकी चर्चा विस्तार से आगे की गई है। पंचाग में विभिन्न ग्रहों के चाल, मंडल, द्वार और चक्र आदि के द्वारा वर्षा का अनुमान लगाया जाता है। इनकी भी आगे विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है।

आर्द्रा प्रवेश - एक दूरगामी भविष्यवाणी

इस भविष्यवाणी का आधार आर्द्रा प्रवेश कुण्डली होती है, जब हर साल करीब 21 जून के आसपास सूर्य आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश करते हैं (मिथुन 6°40') ।

वराहमिहिर ने अपनी बृहत संहिता के अध्याय 28, लोक संख्या में 20 में कहा है कि वर्षा जब होती है जब ग्रह अस्त या उदय हो रहें हो अथवा चंद्रमा के साथ युति कर रहे हों अथवा मंडल में प्रवेश कर रहें हों अथवा पखवाड़े का अंत हो और हमेशा सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश करने के समय तो वर्षा होती ही है। बुध–शुक्र, बुध–गुरु, शुक्र–गुरु की युति भी वर्षा लाती है।

यह अनुभव में आया है कि जिस समय सूर्य का आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश होता है उस समय वर्षा काल का जन्म होता है। उस समय की कुण्डली का लग्न उस साल की वर्षा की संभावना को दर्शाता है। अन्य ध्यान देने योग्य बातें नीचे दी गई हैं।

(अ) बारह राशियों में पानी का स्तर

100%	- कर्क, मकर और मीन
50%	- वृषभ, धनु और कुम्भ
25%	- मेष, तुला और वृश्चिक
0%	- मिथुन, सिंह और कन्या

(ब) ग्रहों में पानी बरसाने की क्षमता और उनका स्वभाव

ग्रह	**तत्त्व**	**स्वभाव**
सूर्य	अग्नि	गर्म और सूखा, आंधी और तूफान का सहायक और वर्षा अवरोधक
चन्द्र	जल	जलीय, वर्षा का कारक
मंगल	अग्नि	गर्म, तूफानी और सूखा, वर्षा अवरोधक
बुध	पृथ्वी	जलीय ग्रह के साथ जलीय, और सूखे ग्रह के साथ सूखा
गुरु	आकाश	जलीय ग्रह के लिए सहायक, मौसमों में सौम्यता लाते हैं। बुरे मौसम पर नियंत्रण रखता है, शुभता में वृद्धि करते हैं।
शुक्र	जल	वर्षा का कारक
शनि	वायु	सूखा और ठंडा

नोटः सूर्य और मंगल यद्यपि वर्षा में रुकावट पैदा करते है फिर भी ये आंधी और समुद्री तूफान को बढ़ावा देते हैं। शनि ठंडे मौसम सी हालात पैदा करते हैं बुध अपने स्वभाव के अनुरूप साथ वाले ग्रह के सहायक बनते हैं। चंद्रमा और शुक्र निश्चित रूप से वर्षा लाते है।

आर्द्रा ही क्यों ?

आर्द्रा शब्द का अर्थ होता है 'गीला'। आमतौर पर इसे भावुकता से नम हुए आंखों तथा भावुक हृदय के संदर्भ में व्यवहार में लाया जाता है। भारत में वर्षा का काल सूर्य के आर्द्रा प्रवेश से लेकर स्वाती नक्षत्र से निकलने तक होता है। एक प्रचलित मान्यता के अनुसार ये नक्षत्र स्त्री तत्त्व के होते हैं, जो सूर्य के तेज़ को नहीं सह पाते और सूर्य की आंच के कारण आँसू बहाते हैं। ये आंसू ही वर्षा का रूप धारण करते हैं।

आर्द्रा प्रवेश 2001

वर्ष 2001 में सूर्य 22 जून को सुबह 02.42 को (यानी 21 की रात) को प्रवेश हुआ। उस समय दिल्ली क्षेत्र के ग्रहों की स्थिति इस प्रकार थी :

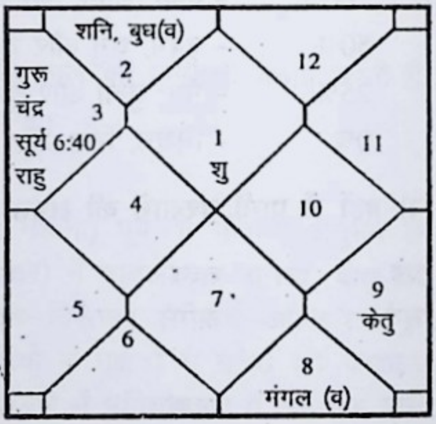

किसी भी कुण्डली में क्रमशः लग्न पूर्व, सप्तम भाव पश्चिम, दशम भाव दक्षिण और चतुर्थ भाव उत्तर की ओर संकेत करते हैं। इसको अगर भारत के नक्शे पर देखें तो जिस प्रकार राज्यों का विभाजन होगा, उसे चित्र 'क' में दिखाया गया है।

अब ऊपर दी गयी आर्द्रा प्रवेश की कुण्डली का विवेचन करते है। मेष राशि का लग्न उदित उदय हुआ है। मेष राशि में 25 प्रतिशत पानी होता है और लग्न में शुक्र बैठे हैं। लग्नेश मंगल 100 प्रतिशत पानी की राशि वृश्चिक में बैठे हैं, इसलिए अच्छी वर्षा होने की संभावना बहुत बढ़ जाती है। शुक्र जलीय ग्रह हैं और अपने ही राशि तुला को देखते हैं। मेष की ही भांति तुला भी 25 प्रतिशत पानी का तत्त्व है। यदि जलीय ग्रह 25 प्रतिशत पानी की राशि को प्रभावित करें तो एक अच्छी और औसत बारिश की संभावना पूर्वोत्तर और पश्चिम राज्यों में बनती है। पूर्व में वर्षा में सहायक के तौर पर मंगल अपने ही राशि मेष में बैठे हैं।

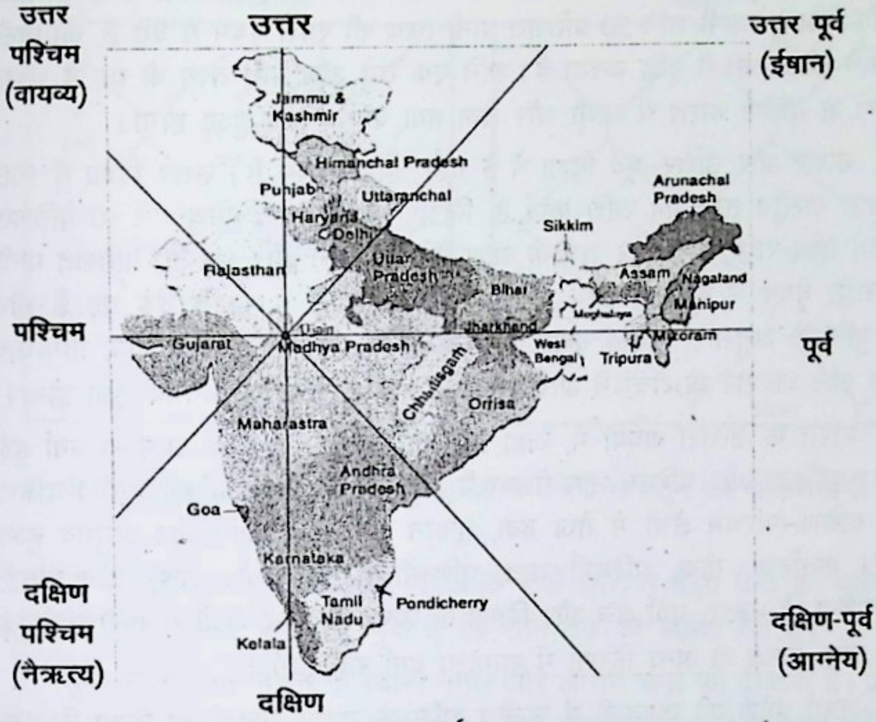
उत्तर
उत्तर पश्चिम (वायव्य)
उत्तर पूर्व (ईषान)
पश्चिम
पूर्व
दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य)
दक्षिण-पूर्व (आग्नेय)
दक्षिण
Jammu & Kashmir
Himanchal Pradesh
Punjab
Uttaranchal
Haryana
Delhi
Arunachal Pradesh
Sikkim
Rajasthan
Uttar Pradesh
Bihar
Assam
Nagaland
Manipur
Jharkhand
Mizoram
Gujarat
Madhya Pradesh
West Bengal
Tripura
Orissa
Maharastra
Andhra Pradesh
Goa
Karnataka
Tamil Nadu
Pondicherry
Kelala

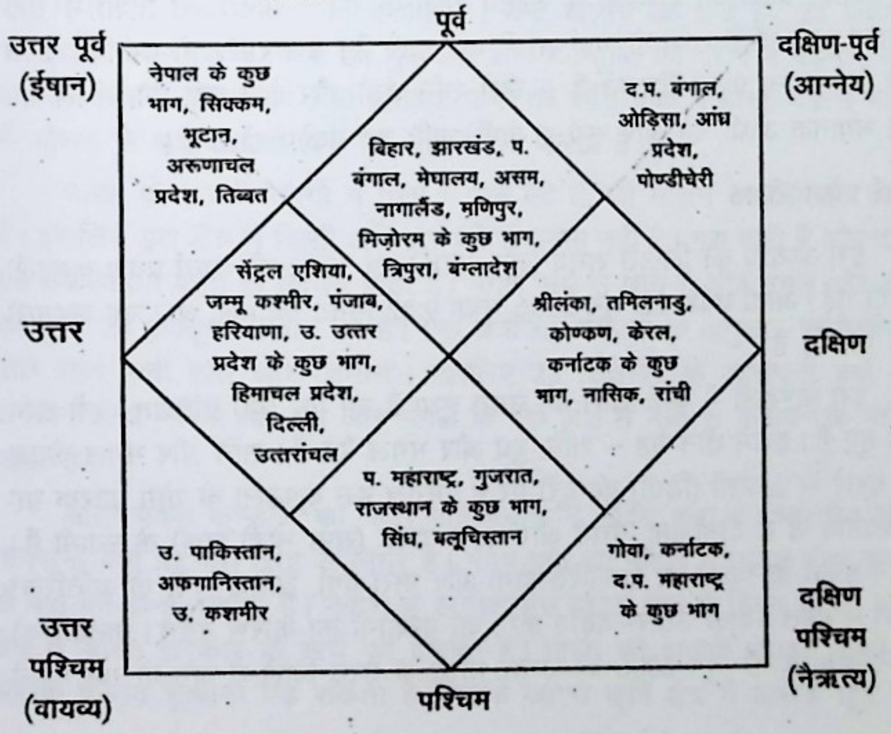
पूर्व
उत्तर पूर्व (ईषान)
दक्षिण-पूर्व (आग्नेय)
नेपाल के कुछ भाग, सिक्कम, भूटान, अरूणाचल प्रदेश, तिब्बत
द.प. बंगाल, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश, पोण्डीचेरी
बिहार, झारखंड, प. बंगाल, मेघालय, असम, नागालैंड, मणिपुर, मिज़ोरम के कुछ भाग, त्रिपुरा, बंग्लादेश
सेंट्रल एशिया, जम्मू कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, उ. उत्तर प्रदेश के कुछ भाग, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तरांचल
श्रीलंका, तमिलनाडु, कोण्कण, केरल, कर्नाटक के कुछ भाग, नासिक, रांची
उत्तर
दक्षिण
प. महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान के कुछ भाग, सिंध, बलूचिस्तान
उ. पाकिस्तान, अफगानिस्तान, उ. कशमीर
गोवा, कर्नाटक, द.प. महाराष्ट्र के कुछ भाग
उत्तर पश्चिम (वायव्य)
दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य)
पश्चिम

दक्षिण यानी दशम भाव में राशि मकर है, जिसमें 100 प्रतिशत पानी का तत्त्व है और उसके स्वामी शनि 50 प्रतिशत पानी तत्त्व की राशि वृषम में बैठे हैं, जो पानी बरसाने की क्षमता में वृद्धि करता है। शनि एक ठंडे और वायु तत्त्व के ग्रह हैं, जिस कारण से दक्षिण भारत में आंधी और तेज हवा का अनुभव हुआ होगा।

उत्तर और उत्तर–पूर्व दिशा में 5 ग्रहों का समागम है। उत्तर दिशा में 100 प्रतिशत जलीय तत्त्व की राशि कर्क है, जिसके स्वामी चन्द्र मिथुन में (0 प्रतिशत जलीय तत्त्व राशि) गुरु और सूर्य के साथ बैठे हैं। शनि और बुध 50 प्रतिशत पानी की राशि वृषभ में बैठे हैं। वृषभ के स्वामी शुक्र मेष में हैं। शनि ठंडे ग्रह हैं और बुध युति के अनुसार बरताव करते हैं, जिसके कारण हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और कश्मीर के क्षेत्रों में औसत वर्षा में ठंडे मौसम का अनुभव हुआ होगा।

भारत के उत्तरी राज्यों में, जहां ग्रहों का जमघट है, वहां सामान्य वर्षा हुई होगी। पूर्वोत्तर और पश्चिम भाग में अच्छी और लाभदायक वर्षा हुई होगी। दक्षिण और दक्षिण–पश्चिम क्षेत्रों में तेज़ हवा, तूफान और ठंडे मौसम का अनुभव हुआ होगा। कर्नाटक, गोवा, पश्चिमी घाट, पश्चिमी तट (मैंगलोर क्षेत्र) और तराई, उत्तरांचल के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र और बिहार के उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों में भारी वर्षा हुई होगी तथा भारत के अन्य हिस्सों में सामान्य वर्षा रही होगी।

आर्द्रा प्रवेश की कुण्डली में जलीय राशि के स्थान और जिस दिशा में 100 प्रतिशत पानी वाली राशि हो, वहां अच्छी वर्षा होती है। उस राशि को प्रभावित करने वाले ग्रह अपना प्रभाव दिखाते हैं – जैसे शनि ठंडी और तेज हवा को, मंगल गर्म और भयानक आंधी को और सूर्य से गर्मी आदि का प्रकोप होता है।

आर्द्रा प्रवेश 2006

इस अध्याय को लिखते समय (जून 2006) वर्ष 2006 की आर्द्रा प्रवेश कुण्डली बनायी गई। आर्द्रा प्रवेश 22 जून 2006 सुबह 9:22 मिनट को हुआ था। यह कुण्डली नीचे दी गई है।

इस कुण्डली में कर्क राशि का उदय हुआ है जो कि 100 प्रतिशत पानी तत्त्व लिये हुए है। इसमें तीन ग्रह – शनि, बुध और मंगल बैठे हैं। शनि और मंगल केवल एक दूसरे से 2 अंशों (डिग्री) की दूरी पर हैं। मंगल इस कुण्डली के योग कारक ग्रह हैं। स्वभाव से ये दोनों ग्रह 'प्रचंड और दहन नाड़ी' (सप्त नाड़ी चक्र) के स्वामी हैं। मौसम इनके कारकत्व पर आधारित होगा और भारी वर्षा, अधिक गर्मी के अतिरिक्त मौसम में बहुत ज्यादा उतार–चढ़ाव होंगे, जो परेशानी का कारण बनेंगे। पाठकों को स्मरण होगा कि 9 जून 2006 को उत्तर भारत के मेरठ जिले में जून के गर्म महीने

राशि

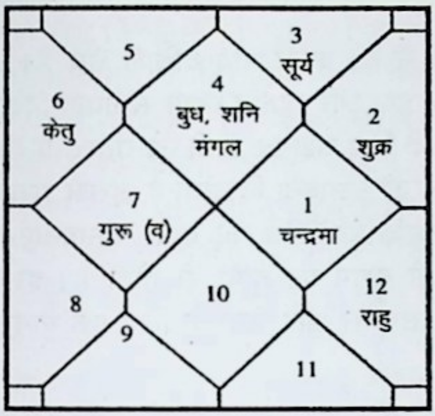

नवांश

आर्द्रा प्रवेश कुण्डली द्वारा सन् 2006 के लिये मानसून की भविष्यवाणी

में धुंध छाई हुई थी! यह शनि और मंगल के कर्क राशि में बहुत पास की युति का असर था। हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि शनि ठंड को बढ़ावा देते हैं।

तुला के गुरु पर दशम के स्वामी मंगल और लग्नेश चन्द्र की दृष्टियाँ हैं। दशम भाव भारत के दक्षिणी क्षेत्र को दर्शाता है। चन्द्र जलीय ग्रह होते हुए 25 प्रतिशत पानी वाले मेष राशि में स्थित हैं। गुरु और शनि की दृष्टि का दशम में पड़ना , और दशम के स्वामी मंगल का 100 प्रतिशत पानी की राशि कर्क में होना, दक्षिण भारत में औसत से अधिक वर्षा होने की ओर संकेत करता है।

भारत के उत्तरी राज्यों में तुला में गुरु बैठे हैं, जो मौसम पर नियंत्रण रखते हैं। इसलिये इस क्षेत्र में किसी अधिकता की संभावना नहीं है। गुरु वक्री हैं और वक्री ग्रह का स्वभाव बहुत ही विचित्र होता है। मंगल सूर्य से आगे हैं और मंगल और सूर्य की युति 23 अक्तूबर 2006 को है। एक प्रचलित कहावत के अनुसार 'आगे मंगल पीछे भान, वर्षा होत ओस समान'। इसलिए 23 सितम्बर के आसपास वर्षा का समापन होगा – जो कि सूर्य और मंगल के एक अंश में युति से करीब एक महीने पहले है।

आर्द्रा प्रवेश कुण्डली का नवम भाव नवांश में उदित हुआ है। भारतीय कृषि मानसूनी वर्षा पर पूरी तरह से निर्भर है। नवम भाव का नवांश में उदित होना समय से वर्षा का होना दर्शाता है। नवांश के लग्नेश गुरु द्वादश भाव में स्थित हैं, जो कृषि क्षेत्र में भारत सरकार के खर्चे को दर्शाता है। भारत को अनाज आयात करने में अधिक कीमत चुकानी पड़ सकती है जिसके कारण कृषि क्षेत्र में अधिक छूट की

आवश्यकता पड़ सकती है। गुरु का वक्री रहना जुलाई 2006 तक मानसून में एक–रूपता नहीं दिखाता ।

नवांश में सूर्य और मंगल दशम भाव में हैं। दशम भाव दक्षिणी क्षेत्र है। धनु जन्म कुण्डली का छठा भाव है। वर्षा में तेज़ हवा और तूफान जैसी संभावना दिखती है (प्रचंड और पवन)। यह मानसून घुसपैठियों के लिए सहायक होगी जो उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों से होते हुए दक्षिण भारत की ओर बढ़ने की संभावना दिखाता है, इससे सरकार (सूर्य) और सेना (मंगल) के लिए कठिन स्थिति पैदा होने की प्रबल संभावनाएं हैं। इसकी पुष्टि नवांश में राहु की छठे भाव से दशम पर दृष्टि से होती है। इसका मतलब यह भी निकलता है कि इन क्षेत्रों में सरकार और सेना के लिए इस मानूसन में कठिन समय होगा।

देश के पश्चिमी भाग (5 से अष्टम भाव) में कोई भी ग्रह नहीं है। मगर इस क्षेत्र में शुक्र की वृश्चिक पर और गुरु की कुम्भ पर दृष्टि है। इसलिए यह क्षेत्र वर्षा से वंचित नहीं है। इस क्षेत्र में सामान्य से कम वर्षा होने का अंदेशा है।

विशेष टिप्पणी : मुम्बई, गोवा और गुजरात–शनि सप्तमेश हैं, जो 100 प्रतिशत जलीय राशि कर्क में स्थित होकर अपनी ही राशि को देखते हैं। शनि अष्टम के स्वामी भी हैं। इसलिए जितना भी अच्छा करें, उसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। मुम्बई नगर पालिका पहले से ही समय से पहले हुई वर्षा से परेशान है। महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान में वर्षा का प्रकोप रहेगा।

वर्षा की मध्यमकालीन भविष्यवाणी–195 दिन का रहस्य

मध्यम दूरी के वर्षा की संभावना की भविष्यवाणी उस समय शुरू होती है जब चंद्रमा मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में पूर्व आषाढ नक्षत्र में प्रवेश करते हैं। अमूमन यह तारीख नवम्बर के अंत या दिसम्बर के शुरुआती दिनों में आती है। अवलोकन के दौरान (नवम्बर/ दिसम्बर से मार्च /अप्रैल तक) जिस नक्षत्र पर बादल और पानी के होने का पता चलता है उन्हीं नक्षत्रों पर जब चंद्रमा जून से सितम्बर/अक्तूबर में होते हैं तो वर्षा होने की संभावना होती है। अवलोकन और मानसून के बीच में करीब 195 दिनों (13 पखवाड़े) की दूरी होती है। इसका विवरण नीचे दिया गया है।

अवलोकन (अ)	वर्षा काल (ब)	ख पक्ष में वर्षा होने की संभावना (दिनों में)
पौष्य शुक्ल पक्ष	श्रावण कृष्ण पक्ष	6 दिन
माघ कृष्ण पक्ष	श्रावण शुक्ल पक्ष	16 दिन

माघ शुक्ल पक्ष	भाद्रपद कृष्ण पक्ष	16 दिन
फाल्गुन कृष्ण पक्ष	भाद्रपद शुक्ल पक्ष	24 दिन
फाल्गुन शुक्ल पक्ष	आश्विन कृष्ण पक्ष	24 दिन
चैत्र कृष्ण पक्ष	आश्विन शुक्ल पक्ष	20 दिन
चैत्र शुक्ल पक्ष	कार्तिक कृष्ण पक्ष	20 दिन

दरअसल अवलोकन तो मार्गशीर्ष माह से ही प्रारंभ हो जाता है परन्तु मार्गशीर्ष का पूरा पखवारा अवलोकन में नहीं आता। अन्त के कुछ दिनों में मौसम में यदि हवा का दवाब बने, आर्द्रता हो, वर्षा की संभावनाएँ प्रतीत हों अथवा बादल छायें तो उसके 195 दिनों बाद, अर्थात आषाढ़ माह के अन्त तथा श्रावण के प्रारंभ में, प्रायः 8 दिनों बरसात होने की संभावना रहती है। यह वर्षा आवश्यक नहीं कि लगातार आठ दिनों तक हो जाये। किन्तु यह निश्चित प्रायः है कि आषाढ़ और श्रावण कृष्ण पक्ष में आठ दिन बरसात होगी।

हमारे ऋषियों ने इस बात पर जोर दिया है कि हर 10 'योजन' पर इसका अवलोकन करना चाहिए। एक 'योजन' करीब 14 किलोमीटर के बराबर होता है यानी कि करीब 140 किलोमीटर पर इसका अवलोकन करना चाहिए।

पूर्व आषाढ़ नक्षत्र के स्वामी 'आप' कहलाते हैं – आप यानी पानी, इसे 'अम्बु' के नाम से भी जाना जाता है। इसलिए पूर्व आषाढ नक्षत्र के साथ वर्षा का संबंध न्यायसंगत प्रतीत होता है। अन्य नक्षत्र, जिनमें बादलों द्वारा पानी बरसाने की क्षमता होती है, वे हैं – क्रमशः पूर्व भाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी और उत्तराषाढ। इन पांच नक्षत्रों को 'बहुतोयद' कहते है – **यानी बहुत पानी बरसाने वाले।**

शतभिषज, अश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती और मघा में भी बादलों में पानी को जमा करने और उसे 195 दिन बाद बरसाने की क्षमता है। इन दस नक्षत्रों में चंद्रमा के होने पर बादल या वर्षा जैसी स्थिति का अनुभव होना, तथा 195 दिनों बाद अच्छी वर्षा होने का संकेत देते है।

रोहिणी योग - कम दूरी की वर्षा भविष्यवाणी

चन्द्रमा के आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष में रोहिणी नक्षत्र में प्रवेश करने को रोहिणी योग कहते है। सन् 2006 में रोहिणी योग 23 जून को 15–19 मिनट पर था। सन् 2007 में यह योंग 12 जुलाई को बन रहा है।

संभावित वर्षा के आकलन के लिये यह महत्त्वपूर्ण दिन होता है। इस एक दिन के अवलोकन से हमें अगले 4 महीनों के मौसम की जानकारी मिल जाती है। जिस

दिन आषाढ़ के महीने में चंद्रमा रोहिणी नक्षत्र में प्रवेश करते हैं, उस दिन वायु की दिशा, गति, आर्द्रता और वायु के दवाब में बदलाव का अवलोकन कर अगले 4 महीने में किस दिन कितनी वर्षा होगी इसकी भविष्यवाणी की जाती है। उस दिन बादलों का रूप, रंग और उनकी जल क्षमता को आँका जाता है। यह अवलोकन केवल दिन में ही किया जाता है। दिन को (सूर्योदय से सूर्यास्त) करीब तीन–तीन घंटे के चार हिस्सों (चार प्रहर) में बांटा जाता है। पहले प्रहर से श्रावण, दूसरे से भाद्रपद, तीसरे से अश्विन और चौथे प्रहर से कार्तिक महीने की मौसम की भविष्यवाणी की जाती है। अगर वायु में ताज़गी हो, वह धींरे धीरे बढ़ रही हो और अच्छे बादल दिखें तो ये अच्छी वर्षा का संकेत है। पूर्व से पश्चिम की ओर हवा का रुख़ आगे आने वाले समय में अच्छी वर्षा का संकेत देते हैं। अगर वायु दक्षिण अथवा दक्षिण पूर्व की ओर से चल रही हो तो ये वर्षा में रुकावट पैदा करती है। उत्तर और उत्तर पूर्व से चलने वाली वायु वर्षा के लिए अच्छी मानी जाती है। सिर्फ दक्षिण और दक्षिण पूर्व को छोड़कर, अन्य दिशाओं से चलने वाली वायु वर्षा में सहायक होती है। रोहिणी योग का अवलोकन केवल 10 'योजन' के दायरे पर ही लागू होते हैं।

रोहिणी योग के इस खास दिन बीजों को 'अभिमंत्रित' मिट्टी के बर्तनों में बोया जाता है। उनका खिलना, आकार, रंग आदि उस बीज की क्षमता और गुणवत्ता को उस क्षेत्र के लिये अनुकूल या प्रतिकूल बताने में सहायक सिद्ध होते हैं।

इस पर हमें श्री चिदम्बर अय्यर की टिप्पणी का ध्यान रखना चाहिए जो श्री रामकृष्ण भट्ट की अनुवादित बृहत संहिता में दी गई है– 'भारत के किसान इस एक दिन के मौसम के आधार पर मिट्टी के उत्पाद की क्षमता का सटीक आकलन कर लेते हैं। पश्चिम के वैज्ञानिकों की अनुभवी आंखें इस दिन को सामान्य दिनों की तरह से देखती हैं, क्योंकि उनका आधुनिक विज्ञान आज भी प्राकृतिक नियमों की जादुई दुनिया में अज्ञान के परदों से लिपटा खड़ा है।

ज्योतिषीय मौसम विज्ञान के अन्य पहलू

मंडल :

सूर्य के किसी भी राशि में प्रवेश को संक्राति कहते हैं। संक्राति के समय चंद्रमा का नक्षत्र उस महीने के मौसम की गतिविधियों को दर्शाता है। मौसम सम्बन्धी जानकारी की सुविधा के लिये नक्षत्रों का वर्गीकरण मण्डल के आधार पर किया है। मंडल चार प्रकार के होते हैं – अग्नि, वायु, वरुण और महेन्द्र। इन मंडलों के नक्षत्र निम्नलिखित हैं–

मंडल	नक्षत्र
अग्नि	भरणी, कृतिका, पुष्य, मघा, पूर्व फाल्गुनी, पूर्व भाद्रपद और विशाखा
वायु	अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तर फाल्गुणी, हस्ता, चित्रा और स्वाति
वरुण	आर्द्रा, अश्लेषा, मूल, पूर्वाषाढ़, शतभिषा, उत्तर भाद्रपद और रेवती
महेन्द्र	रोहिणी, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तर आषाढ़, अभिजीत, श्रवण और धनिष्ठा

संक्राति के समय चंद्रमा नक्षत्र के अनुसार जिस मंडल में स्थित होते हैं, वह मंडल मौसम को प्रभावित करता है।

वरुण और महेन्द्र मंडल वर्षा में सहायक होते हैं। जहां अग्नि मण्डल के नक्षत्र वर्षा को रोकते हैं वहीं वायु मण्डल के नक्षत्र तूफानी हालात पैदा करते हैं।

मेघद्वार :

बरसात के दिनों में चन्द्रमा की विभिन्न नक्षत्रों की संक्रान्ति को पांच प्रकार के द्वारों का नाम दिया गया है जो निम्नलिखित हैः

मेघद्वार : भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा

वायुद्वार : मघा, पूर्व फाल्गुनी, उत्तर फाल्गुनी, हस्ता और चित्रा

धर्मद्वार : स्वाति, विशाखा और अनुराधा

रेतद्वार :ज्येष्ठा, मूल, पूर्व आषाढ़, उत्तर आषाढ़, अभिजित और श्रवण

हेमद्वार : धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, रेवती और अश्विनी

मेघद्वार बहुत ही अच्छी और लाभदायक वर्षा बताता है।
वायुद्वार में अच्छे बादल जरूर होते हैं, मगर वर्षा गायब रहती है।
धर्मद्वार भारी वर्षा का संकेत देते हैं।
रेतद्वार में बहरूपीय बादल होते हैं और बारिश का पता भी नहीं होता।
हेमद्वार बहुत ही लाभदायक और पर्याप्त मात्रा में वर्षा का संकेत देते हैं।

वर्षा और ग्रह :

ग्रहों के बारे में मौसम सम्बन्धी कतिपय तथ्य और उनका वर्षा पर प्रभावः

1. मंगल के स्वाति, पूर्व आषाढ़, उत्तर आषाढ, अर्द्रा, रोहिणी और उत्तर फाल्गुनी नक्षत्रों में होने से वर्षा रुक जाती है ।
2. बृहस्पति यदि सूर्य और शुक्र के आगे हों तो मौसम अत्यंत ठंडा होता है।

3. चंद्र अगर कर्क, मकर और मीन में हो तो वर्षा ऋतु में अच्छी वर्षा होती है।
4. मंगल, बुध तथा शनि अगर शुक्र के आगे हों तो बहुत तेज़ हवाएँ चलती हैं, मगर बारिश नहीं होती।
5. चंद्र–शुक्र की युति या सम–सप्तक होना वर्षा का सूचक है।
6. शनि से अगर 5,7 अथवा 9वें भाव में चंद्रमा हो तो बारिश होती है।
7. सूर्य के आगे मंगल हों तो वर्षा में अवरोध होता है।
8. ग्रहों के राशि परिवर्तन से वर्षा होती है।
9. ग्रहों के वक्री होने पर भी बारिश होती है।
10. ग्रहों के उदय और अस्त (सूर्य और चंद्र को छोड़कर) होने से वर्षा होती है।

सप्त नाड़ी चक्र

यह एक तरह से प्रतिदिन या सप्ताह में होनी वाली वर्षा की डायरी है। 'सप्त' का मतलब है सात और 'नाड़ी' वह माध्यम है जिनसे हमें कई सूचनाएँ मिलती है। ये सात नाड़ियाँ क्रमश **प्रचण्ड, पवन, दहन, सौम्य, नीर, जल और अमृत** के नाम से जानी जाती हैं। इनके नाम के अनुरूप ही इनके फल हैं। 28 नक्षत्र इन नाड़ियों में विभाजित हैं, जो कृतिका नक्षत्र से प्रारंभ होते है। अभिजित 22वें नक्षत्र के रूप में उत्तर आषाढ़ और श्रवण के मध्य में आता है। इन नाड़ियों और नक्षत्रों में ग्रहों के प्रवेश से वर्षा के घनत्व और मौसम के प्रकार का पता चलता है। इनके लिखने की विधि इस प्रकार है।

नाड़ी–प्रचंड स्वामी–शनि प्रभाव–भयानक	पवन सूर्य हवादार	दहन मंगल गर्म	सौम्य गुरु बदलाव	नीर शुक्र बारिश	जल बुध अच्छी वर्षा	अमृत चंद्रमा उत्तम वर्षा
कृतिका 3	रोहिणी 4	मृग. 5	आर्द्रा 6	पुनर्वसु 7	पुष्य 8	अश्लेषा 9
विशाखा 16	स्वाति 15	चित्र 14	हस्त 13	उ. फा. 12	पू.फा. 11	मघा 10
अनुराधा 17	ज्येष्ठा 18	मूला 19	पू. आ. 20	उ. आ. 21	अभिजीत 22	श्रवण 23
भरणी 2	अशविनी 1	रेवती 28	उ. भा. 27	पू. भा. 26	शत. 25	धनिष्ठा 24

मानसून या वर्षा का काल सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश करने से प्रारंभ होकर सूर्य के स्वाति नक्षत्र से निकलने तक माना जाता है। ये दोनों नक्षत्र राहु के हैं। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि आर्द्रा (6) से स्वाति (15) तक के ये नक्षत्र सौम्य या स्त्रियोचित प्रवृति के हैं, जो सूर्य के ताप/ गरमी को सहन नहीं कर पाते और उनके आँसू वर्षा का रूप धारण करते हैं। 16 वें और 17 वें नक्षत्र बांझ हैं। 18 वें से 5वें तक के नक्षत्र क्रूर (पुरुषगुणात्मक) नक्षत्र कहे गये हैं।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि दक्षिण–पश्चिमी मानसून से भारत में कुल वर्षा का 70 प्रतिशत वर्षा होती है और बाकी के 30 प्रतिशत उत्तर–पूर्वी मानसून द्वारा पूरे होते हैं, जिनको दक्षिणी प्रांतों में सर्दियों की बारिश के रूप में जाना जाता है।

सप्त नाड़ी चक्र निम्न प्रकार से वर्षा को प्रभावित करता है:

1. ग्रहों का गोचर प्रत्येक नाड़ी के नक्षत्र में आते ही उस नाड़ी को प्रभावित करता है।
2. किसी भी ग्रह का प्रचंड नाड़ी में गोचर का मतलब उस ग्रह का कृतिका, विशाखा, अनुराधा या भरणी नक्षत्र में होना है जिससे समुद्री तूफान या तूफानी मौसम जैसे हालात पैदा होते हैं। अगर दो यो दो से अधिक ग्रह प्रचंड नाड़ी में हों तो ऐसे हालात का होना तय है।
3. अन्य नाड़ी के नक्षत्रों में ग्रहों का गोचर निम्न परिणाम देते हैं–

नाड़ी	परिणाम
पवन	तेज़ हवाएं, आंधी–तूफान
दहन	गर्म
सौम्य	शांत, ठंडा और बादलों का छाना
नीर	अच्छी बारिश
जल	फायदेमंद, अनुकूल और हल्की बारिश
अमृत	सबसे अच्छी वर्षा

4. मंगल अकेले ऐसे ग्रह हैं जो किसी भी नाड़ी में होने से उस नाड़ी के फल दे सकते हैं। अन्य ग्रहों को दूसरे ग्रहों की सहायता की आवश्यकता होती है।
5. अगर किसी राशि में दो या तीन ग्रह हों तो जिस दिन चंद्रमा उस राशि में गोचर करेंगे, उस दिन वर्षा होगी।
6. बुध, शुक्र, बृहस्पति और चंद्रमा अधिक मात्रा में बरसात कराते हैं।
7. मौसम में बदलाव तब होता है जब :
   (i) शनि, बृहस्पति, मंगल या राहु अपनी राशि परिवर्तन करते हैं।
   (ii) कोई ग्रह अस्त, उदित, वक्री या मार्गी हुए हों। मौसम में बदलाव इस बात पर निर्भर करते हैं कि ग्रहों की अवस्था में परिवर्तन किस राशि तथा किस नक्षत्र में हुआ है तथा उस समय चन्द्रमा की स्थिति कैसी है।

(iii) मानूसन काल में बुध अकेले ही राशि परिवर्तन, अस्त या उदित, वक्री या मार्गी होकर वर्षा कराने में सक्षम हैं।

(iv) यदि कोई ग्रह अपनी ही नाड़ी में हो तथा चंद्रमा उस नाड़ी के चारों में से किसी भी एक नक्षत्र में आये तो मौसम में बदलाव आता है।

8. अगर अधिकतम 5 ग्रह नीर नाड़ी में हों और चंद्रमा भी उस नाड़ी में प्रवेश करें तो वह बारिश 6 दिनों तक चलेगी। यही स्थिति अगर जल नाड़ी में उत्पन्न हो जाए तो 12 दिनों और अमृत नाड़ी में हो तो 24 दिनों तक वर्षा होती है।
9. क्रूर ग्रह (सूर्य, शनि और मंगल) बादल तो बनाते हैं पर वर्षा नहीं होने देते।
10. चंद्रमा, मंगल और बृहस्पति अगर एक नाड़ी में हों तो वर्षा बहुतायत से होती है।

26 जुलाई 2005

इस दिन दिल्ली में बहुत तेज़ बारिश हुई। आइये देखते हैं कि उस दिन ग्रहों की स्थिति क्या थी ।

सूर्य	पुष्य (जल नाड़ी) कर्क राशि 100 प्रतिशत पानी
चंद्रमा	उत्तर भाद्रपद (सौम्य नाड़ी) मीन राशि 100 प्रतिशत पानी
मंगल	अश्विनी (पवन नाड़ी) मेष राशि 25 प्रतिशत पानी
बुध	आश्लेषा (अमृत नाड़ी) कर्क राशि 100 प्रतिशत पानी
बृहस्पति	हस्त (सौम्य नाड़ी) कन्या राशि 0 प्रतिशत पानी
शुक्र	मघा (अमृत नाड़ी) सिंह राशि 0 प्रतिशत पानी
शनि	पुष्य (जल नाड़ी) कर्क राशि 100 प्रतिशत पानी

1. सूर्य–शनि की अशांत्मक युति 23 जुलाई को जल नाड़ी के शत प्रतिशत पानी वाली राशि में हुई।
2. 23 जुलाई को और 25 जुलाई को वक्री होकर बुध अस्त हुए।
3. 4 ग्रह 100 प्रतिशत पानी की राशियों में तथा मंगल को छोड़ कर अन्य सारे ग्रह वर्षा के लिये उपयुक्त नाड़ियों में थे अतः मूसलाधार वर्षा अवश्यंभावी थी।

14 सितम्बर 2006

इस दिन वर्षा तो हुई पर थोड़ी देर में ही रुक गयी। ग्रहों की स्थिति इस प्रकार थी।

सूर्य	उत्तर फाल्गुनी (नीर नाड़ी) सिंह राशि 0 प्रतिशत पानी
चंद्रमा	रोहिणी (पवन नाड़ी) वृषभ राशि 50 प्रतिशत पानी
मंगल	उत्तर फाल्गुनी (नीर नाड़ी) कन्या राशि 0 प्रतिशत पानी
बुध	उत्तर फाल्गुनी (नीर नाड़ी) कन्या राशि 0 प्रतिशत पानी
बृहस्पति	विशाखा (प्रचंड नाड़ी) वृश्चिक राशि 25 प्रतिशत पानी
शुक्र	पूर्व फाल्गुनी (जल नाड़ी) सिंह राशि 0 प्रतिशत पानी
शनि	आश्लेषा (अमृत नाड़ी) कर्क राशि 100 प्रतिशत पानी

1. 5 ग्रह नीर, जल और अमृत नाड़ियों में थे। अतः वर्षा हुई।
2. उपर्युक्त 5 ग्रहों में से 4 ग्रह सिंह और कन्या राशि में थे। ये राशियां 0 प्रतिशत पानी वाली है। अतः वर्षा थोड़ी देर ही चली।

पंचाग में वर्षा की संभावनाओं के अन्य संकेत स्रोतः

सुधी पाठकों को हम पुनः विश्वविजय पंचाग 2064 विक्रमी, 2007-2008 के पृष्ठ 28 की ओर ले चलते है जहां वृष्टि की संभावनाओं के अन्य स्रोतों की चर्चा की गयी है।

चतुर्मेघ

गणना की इस विधि में चार प्रकार के मेघ कहे गये जिनके नाम क्रमशः **आवर्तक, संवर्तक, पुष्कर** तथा **द्रोण** हैं। इन्हें ज्ञात करने की विधि बहुत सरल है। वर्तमान शक् सम्वत (1929) में 1509 घटा कर 4 से भाग दें। शेष फल मेघ बताता है। जैसे इस वर्ष मेघ की गणना के लिये 1929-1509 = 420 इसमें 4 से भाग देने से शेष फल शून्य या चार आया। अर्थात् चतुर्मेघ का नाम है द्रोण। चारों प्रकार के मेघों में वर्षा की संभावना की सारणी नीचे दी गयी है।

क्रम संख्या	चतुर्मेघ	संभावित वर्षा
1	आवर्तक	छिन्न वृष्टि–कम वर्षा
2	संवर्तक	अधिक वायु, अल्प वर्षा
3	पुष्कर	बहुलम तोयम – अत्यधिक वृष्टि
4	द्रोण	वर्षति सर्वदा – सारी वर्षा ऋतु में बरसात होगी

नवमेघ

एक अन्य प्रकार से चतुर्मेघ के स्थान पर नौ प्रकार के मेघों का आकलन किया जाता है। वर्तमान शक् x 8 ÷ 9; शेष फल मेघ के नाम होते हैं। जिनके नाम और फल नीचे सारणी में दिये गये हैं।

क्रम संख्या	चतुर्मेघ	संभावित वर्षा	गणना
1	आवर्त्त	जल कम बरसे	शक संवत के लिये गणना हैं। 1929 x 8 ÷ 9 ; लब्धि 1714 और शेष फल = 6; अर्थात् नवमेघों में मेघ का नाम हुआ 'नील'। इस वर्ष अच्छी वर्षा की अपेक्षा की जा सकती है।
2	संवर्त्त	वर्षा हो, पूर्वी वायु चले।	
3	पुष्कर	वर्षा कम हो	
4	द्रोण	उत्तम वर्षा हो	
5	काल	कम वर्षा हो	
6	नील	अच्छी वर्षा हो	
7	वरुण	अच्छी वर्षा हो	
8	वायु	बहुत कम वर्षा हो	
9	तम	जल की कमी रहे	

द्वादश नाग :

चतुर्मेघ तथा नवमेघ की भांति हमारी शास्त्रीय परिकल्पना में वर्षा के आकलन के लिये द्वादश नागों की चर्चा की गयी है जो नीचे सारणीबद्ध किये गये हैं।

क्रम	नाग	फल	क्रम	नाग	फल
1	सुबुध्न	मध्यम वर्षा	7	केवल	कम जल
2	नन्दसारी	भारी वर्षा	8	अश्वतर	जल नहीं, अनावृष्टि
3	कर्कोटक	वर्षा न हो	9	हेममाली	प्रचुर वर्षा
4	पृथुश्रव	कम वर्षा	10	नरेन्द्र	उत्तम वर्षा
5	वासुकी	उत्तम वर्षा	11	वज्रदंष्ट	अल्प वर्षा
6	तक्षक	मध्यम वर्षा	12	वृष	अल्प वर्षा

यह गणना भी बहुत सरल है, (शक् + 2) ÷ 12 के बाद जो शेष बचे, वही नाग जानना चाहिये। यथा शक् 1929 की गणना करते हैं। (1929+2) ÷ 12 = (1931÷12) = 160 लब्धि तथा 11 शेष बचे। इसका अर्थ हुआ वज्रदंष्ट नामक नाग। अर्थात् नाग की गणना के अनुसार इस वर्ष वृष्टि अधिक होने की संभावना नहीं है।

रोहिणी निवास तथा समय निवास

रोहिणी निवास की परिकल्पना मेष राशि में सूर्य की संक्रान्ति के नक्षत्र की रोहिणी से दूरी पर आधारित होती है। इस गणना में सभी 27 नक्षत्रों को संज्ञान में लिया जाता है।

क्रम	रोहिणी निवास	फल	समय निवास	फल	गणना सूर्य की मेष संक्राति के समय के नक्षत्र की रोहिणी से दूरी
1	तट	सामान्य वर्षा	रजक	सभी ओर जल	1, 3, 7, 10, 14, 21, 24
2	समुद्र	अत्याधिक वर्षा	माली	सभी ओर जल	2, 9, 16, 23
3	संधि	खण्ड वर्षा	वैश्य	अल्प जल	4, 6, 11, 13, 18, 20, 25, 27
4	पर्वत	अल्प वर्षा	कुम्हार	अल्प जल	5, 12, 19, 26

समय वाहन

चैत्र शुक्ल तृतीया को जो वार पड़े, उसके अनुरूप समय के सात वाहन बताये गये हैं।

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
वाहन	अश्व	मृग	वृषभ	सिंह	चातक	दादुर	भैंसा

नोटः चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के वार के स्वामी के अनुरूप उस वर्ष के राजा के वाहन भी यही होते हैं।

वर्ष चर्तुस्तंभ

प्रत्येक वर्ष के प्रारंभ में चार स्तम्भों की गणना की जाती है जिनके नाम हैं क्रमशः जल स्तम्भ, तृण स्तम्भ, वायु स्तम्भ तथा अन्न स्तम्भ। इनकी गणना करने के लिये वर्ष की चार महत्त्वपूर्ण तिथियों को चार नक्षत्रों की स्थिति देखी जाती है। यथा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को रेवती नक्षत्र की स्थिति जल स्तम्भ का परिमाण बताती है। इसी प्रकार वैशाख शुक्ल प्रतिपदा को भरणी की स्थिति तृण स्तम्भ के लिये, ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा को मृगशिरा की स्थिति वायु स्तम्भ के लिये तथा आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को पुनर्वसु नक्षत्र की स्थिति अन्न स्तम्भ की शक्ति बताती है। जल स्तम्भ जल की पूर्णता अथवा अभाव दर्शाता है। तृण स्तम्भ से पशुधन के पालन में चारे की स्थिति का आकलन होता है। वायु स्तम्भ से मेघ संचार और वर्षा की व्यापकता पता चलती है। अन्न स्तम्भ से अन्न की पैदावार का पता चलता है। अब इसकी गणना का तरीका समझते हैं। एक बात स्पष्ट होनी चाहिये कि उपर्युक्त तिथियों को चन्द्रमा

उन्हीं नक्षत्रों में, या उनके बहुत आस–पास होते हैं जिनसे हम वर्ष चतुस्तम्भ की गणना करते हैं। जैसे सम्वत 2064 की वैशाख शुक्ल प्रतिपदा गुरुवार की रात्रि 25:14 बजे से प्रारंभ होकर शुक्रवार को 22:51 बजे शेष हुई तथा उस दिन भरणी नक्षत्र गुरुवार की रात्रि 25:01 बजे प्रारंभ होकर शुक्रवार की रात्रि 23:25 बजे शेष हुआ। इस प्रकार भरणी नक्षत्र वैशाख शुक्ल प्रतिपदा के प्रारंभ होने से पहले ही शुरू हो गया था तथा प्रतिपदा के शेष होने के बाद तक बना रहा। अर्थात् भरणी का प्रभाव पूरी प्रतिपदा पर (100%) रहा। इसलिये तृण स्तम्भ 100% कहा गया। चारे की पैदावार पूरी होगी।

इसी प्रकार वायु स्तम्भ के लिये हम ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा देखते हैं जो शनिवार को 10:56 से प्रारंभ होकर रविवार को 9:43 में शेष हुई अर्थात् कुल 23घ 47 मि (1367 मिनट) रही। मृगशिरा नक्षत्र रविवार को 7:10 बजे प्रारंभ हुआ। अतः ज्येष्ठ प्रतिपदा के शेष होने तक मृगशिरा का प्रभाव मात्र (9:43 - 7:10) = 2घ 33मि (153 मिनट) का हुआ। 153 मिनट 1367 मिनट का प्रायः 11% है इसलिये वायु स्तम्भ 11% बताया गया। वर्षा कुछ स्थानों पर अधिक और कुछ स्थानों पर कम होगी। मेघ संचार कम होगा।

इसी प्रकार 2063 में अन्न स्तम्भ गणना के लिये आषाढ़ शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा देखते हैं जो रविवार को 21:35 बजे प्रारंभ होकर सोमवार को 21:45 बजे शेष हुई। अर्थात् इसका कुल समय रहा 24घ 10मि या 1450 मिनट। पुनर्वसु नक्षत्र सोमवार की दोपहर 16:09 से प्रारंभ हुआ। अतः पुनर्वसु का प्रभाव प्रतिपदा पर (21:45 - 16:09) = 5घ 36मि = 336 मिनट का हुआ। 336 मिनट 1450 मिनटों का 23% है, इस प्रकार 2063 में अन्न स्तम्भ 23% बताया गया है। यह अन्न की पैदावार का संकेत करता है।

अब चलिये 2064 सम्वत में। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का क्षय हुआ है। परन्तु यह तिथि सोमवार को 8:13 बजे प्रारंभ हुई। रेवती नक्षत्र का आरंभ सोमवार को 28:08 बजे से हुआ। ये सूचनाएँ सम्वत 2063 के पंचांग से लेनी पड़ी हैं। अब 2064 का पंचांग देखिये। प्रतिपदा सोमवार को 28:32 में शेष हुई। अर्थात् प्रतिपदा तिथि का कुल समय हुआ (28:32 - 8:13) = 20घ 19मि = 1219 मिनट। इसमें रेवती का सहयोग मात्र (28:32-28:08) = 24 मिनटों का मिला जो कुल प्रतिपदा का प्रायः 2% है। अर्थात् जल स्तम्भ बलशाली नहीं है। जल का अभाव रहने की आशंका है।

वर्षा आदि के विश्वामान

प्रत्येक वर्ष के लिये 50 विभिन्न मानक होते हैं जिनसे उस वर्ष के बारे में सामान्य जानकारी मिलती है। ये मानक इनके नाम के अनुरूप ही फल देते हैं। अर्थात् (20) रसोत्तपत्ति का अर्थ है इस वर्ष रसीले पदार्थों की क्या अवस्था रहेगी ? अर्थात्

रसदार फल अथवा गन्ने की खेती कैसी होगी। यह संख्या 20 में कितनी हुई, यह बताती है इसलिये इसे विंशोपक कहते हैं। यदि विंशोपक 10 या अधिक हो तो वह मानक सबल माना जाता है। उदाहरण के लिये क्षुधा (10) को देखें जिसका विश्वामान 7 है। अर्थात् क्षुधा कम रहेगी। इसी प्रकार अनाचार (29) का विश्वामान 11 तथा आचार (28) का विश्वामान 7 है। इस प्रकार वर्ष में अनाचार अधिक होने की संभावना है।

सम्वत का विंशोपक विचार - उदाहरण के लिये शक् सम्वत 1929 देखते हैं।

1. वर्षा = शक् x 3 ÷ 7 = 1929 x 3 ÷ 7 = 5787÷7 = 826 लब्धि; शेष = 51
   शेष x 2 + 5 = 5 x 2 + 5 = 15 अर्थात् वर्षा का विश्वामान 15 हुआ।
2. धान्य = ऊपर की लब्धि x 3 ÷7= 826 x 3 ÷ 7 = 2478÷7 = 354 लब्धि; शेष = 0
   शेष x 2 + 5 = 0 x 2 + 5 = 5 अर्थात् धान्य का विश्वामान 5 हुआ।
3. तृण = ऊपर की लब्धि x 3 ÷ 7 = 354 x 3 ÷ 7 = 1062÷7 = 151 लब्धि; शेष = 5
   शेष x 2 + 5 = 5 x 2 + 5 = 15 अर्थात् तृण का विश्वामान 15 हुआ।
4. शीत = ऊपर की लब्धि x3 ÷ 7 = 151 x 3 ÷ 7 = 453÷7 = 64 लब्धि; शेष = 5
   शेष x 2 + 5 = 5 x 2 + 5 = 15 अर्थात् शीत का विश्वामान 15 हुआ।
5. तेज = ऊपर की लब्धि x 3 ÷ 7 = 64 x 3 ÷ 7 = 192÷7 = 27 लब्धि; शेष = 3
   शेष x 2 + 5 = 3 x 2 + 5 = 11 अर्थात् तेज का विश्वामान 11 हुआ।
6. वायु = ऊपर की लब्धि x 3 ÷ 7 = 27 x 3 ÷ 7 = 81÷7 = 11 लब्धि; शेष = 4
   शेष x 2 + 5 = 4 x 2 + 5 = 13 अर्थात् वायु का विश्वामान 13 हुआ।
7. वृद्धि = ऊपर की लब्धिx 3 ÷ 7 = 11 x 3 ÷ 7 = 33÷7 = 4 लब्धि; शेष = 5
   शेष x 2 + 5 = 5 x 2 + 5 = 15 अर्थात् वृद्धि का विश्वामान 15 हुआ।
8. क्षय = ऊपर की लब्धि x 3 ÷ 7 = 4 x 3 ÷ 7 = 12÷7 = 1 लब्धि; शेष = 5
   शेष x 2 + 5 = 5 x 2 + 5 = 15 अर्थात् क्षय का विश्वामान 15 हुआ।
9. विग्रह = ऊपर की लब्धि x 3 ÷ 7 = 1 x 3 ÷ 7 = 3÷7 = शेष = 3
   शेष x 2 + 5 = 3 x 2 + 5 = 11 अर्थात् विग्रह का विश्वामान 11 हुआ।
10. क्षुधा = शक् x 4 ÷ 7 = 1929 x 4 ÷ 7 = 7716÷7 = 1102 लब्धि; शेष = 2
    शेष x 2 + 3 = 2 x 2 + 3 = 7 अर्थात् क्षुधा का विश्वामान 7 हुआ।
11. तृषा = ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7 = 1102 x 4 ÷ 7 = 4408÷7 = 629 लब्धि; शेष = 5
    शेष x 2 + 3 = 5 x 2 + 3 = 13 अर्थात् तृषा का विश्वामान 13 हुआ।
12. निद्रा = ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7 = 629 x 4 ÷ 7 = 2516÷7 = 359 लब्धि; शेष = 3
    शेष x 2 + 3 = 3 x 2 + 3 = 9 अर्थात् निद्रा का विश्वामान 9 हुआ।
13. आलस्य = ऊपर की लब्धिx 4 ÷ 7 = 359 x 4 ÷ 7 = 1436÷7 = 205 लब्धि; शेष = 1
    शेष x 2 + 3 = 1 x 2 + 3 = 5 अर्थात् आलस्य का विश्वामान 5 हुआ।
14. उद्यम = ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7 = 205 x 4 ÷ 7 = 820÷7 = 117 लब्धि; शेष = 1
    शेष x 2 + 3 = 1 x 2 + 3 = 5 अर्थात् उद्यम का विश्वामान 5 हुआ।

15. शान्ति=ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7=117 x 4 ÷ 7 = 468÷7 = 66 लब्धि; शेष = 6
शेष x 2 + 3 = 6 x 2 + 3 = 15 अर्थात् शान्ति का विश्वामान 15 हुआ।
16. क्रोध= ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7=66 x 4 ÷ 7 = 264÷7 = 37 लब्धि; शेष = 5
शेष x 2 + 3 = 5 x 2 + 3 = 13 अर्थात् क्रोध का विश्वामान 13 हुआ।
17. दंभ = ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7=37 x 4 ÷ 7 = 148÷7 = 21 लब्धि; शेष = 1
शेष x 2 + 3 = 1 x 2 + 3 = 5 अर्थात् दंभ का विश्वामान 5 हुआ।
18. लोभ= ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7=21 x 4 ÷ 7 = 84÷7 = 12 लब्धि; शेष = 0
शेष x 2 + 3 = 0 x 2 + 3 = 3 अर्थात् लोभ का विश्वामान 3 हुआ।
19. मैथुन= ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7=12 x 4 ÷ 7 = 48÷7 = 6 लब्धि; शेष = 6
शेष x 2 + 3 = 6 x 2 + 3 = 15 अर्थात् मैथुन का विश्वामान 15 हुआ।
20. रसोत्तपति=ऊपर की लब्धिx4÷ 7=6 x 4 ÷ 7 = 24÷7 = 3 लब्धि; शेष = 3
शेष x 2 + 3 = 3 x 2 + 3 = 9 अर्थात् रसोत्तपति का विश्वामान 9 हुआ।
21. फल = ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7=3 x 4 ÷ 7 = 12÷7 = 1 लब्धि; शेष = 5
शेष x 2 + 3 = 5 x 2 + 3 = 13 अर्थात् फल का विश्वामान 13 हुआ।
22. उत्साह=ऊपर की लब्धि x 4 ÷ 7=1 x 4 ÷ 7 = 4÷7 = शेष = 4
शेष x 2 + 3 = 4 x 2 + 3 = 11 अर्थात् उत्साह का विश्वामान 11 हुआ।
23. उग्र = शक् x 8 ÷ 9 = 1929 x 8 ÷ 9 = 15432÷9 = 1714 लब्धि; शेष = 6
शेष x 2 + 1 = 6 x 2 + 1 = 13 अर्थात् उग्र का विश्वामान 13 हुआ।
24. पाप=ऊपर की लब्धिx8÷9= 1714 x 8 ÷ 9 = 13712 ÷ 9 = 1523 लब्धि; शेष = 5
शेष x 2 + 1 = 5 x 2 + 1 = 11 अर्थात् पाप का विश्वामान 11 हुआ।
25. पुण्य=ऊपर की लब्धिx8÷9= 1523 x 8 ÷ 9 = 12184 ÷ 9 = 1353 लब्धि; शेष = 7
शेष x 2 + 1 = 7 x 2 + 1 = 15 अर्थात् पुण्य का विश्वामान 15 हुआ।
26. व्याधि=ऊपर की लब्धिx8÷9=1353x 8 ÷ 9 = 10824 ÷ 9 = 1202 लब्धि; शेष = 6
शेष x 2 + 1 = 6 x 2 + 1 = 13 अर्थात् व्याधि का विश्वामान 13 हुआ।
27. व्याधिनाश=ऊपर की लब्धिx8÷9= 1202 x 8 ÷ 9= 9616÷ 9=1068 लब्धि; शेष = 4
शेष x 2 + 1 = 4 x 2 + 1 = 9 अर्थात् व्याधिनाश का विश्वामान 9 हुआ।
28. आचार=ऊपर की लब्धिx8÷9=1068x8 ÷ 9 = 8544 ÷ 9 = 949 लब्धि; शेष = 3
शेष x 2 + 1 = 3 x 2 + 1 = 7 अर्थात् आचार का विश्वामान 7 हुआ।
29. अनाचार=ऊपर की लब्धिx8÷9= 949 x 8 ÷ 9 = 7592 ÷ 9 = 843 लब्धि; शेष = 5
शेष x 2 + 1 = 5 x 2 + 1 = 11 अर्थात् अनाचार का विश्वामान 11 हुआ।
30. मृत्यु=ऊपर की लब्धिx8÷9= 843 x 8 ÷ 9 = 6744 ÷ 9 = 749 लब्धि; शेष = 3
शेष x 2 + 1 = 3 x 2 + 1 = 7 अर्थात् मृत्यु का विश्वामान 7 हुआ।
31. जन्म=ऊपर की लब्धिx8÷9=749 x 8 ÷ 9 = 5922 ÷ 9 = 665 लब्धि; शेष = 7
शेष x 2 + 1 = 7 x 2 + 1 = 15 अर्थात् जन्म का विश्वामान 15 हुआ।
32. देशोपद्रव=ऊपर की लब्धिx8÷9=665x8÷9 = 5320 ÷ 9 = 591 लब्धि; शेष = 1
शेष x 2 + 1 = 1 x 2 + 1 = 3 अर्थात् देशोपद्रव का विश्वामान 3 हुआ।

33. देश स्वास्थ्य = ऊपर की लब्धिx8÷9= 591x8÷ 9=4728÷9 =525 लब्धि; शेष = 3
शेष x 2 + 1 = 3 x 2 + 1 = 7 अर्थात् देश स्वास्थ्य का विश्वामान 7 हुआ।
34. चौर = ऊपर की लब्धिx8÷9= 525 x 8 ÷ 9 = 4200 ÷ 9 = 466 लब्धि; शेष = 6
शेष x 2 + 1 = 6 x 2 + 1 = 13 अर्थात् चौर का विश्वामान 13 हुआ।
35. चौर नाश = ऊपर की लब्धिx8÷9=466x 8÷ 9=3728÷ 9 = 414 लब्धि; शेष = 2
शेष x 2 + 1 = 2 x 2 + 1 = 5 अर्थात् चौर नाश का विश्वामान 5 हुआ।
36. अग्नि = ऊपर की लब्धिx8÷9 = 414 x 8 ÷ 9=3312 ÷ 9 = 368 लब्धि; शेष = 0
शेष x 2 + 1 = 0 x 2 + 1 = 1 अर्थात् अग्नि का विश्वामान 1 हुआ।
37. अग्निशान्ति = ऊपर की लब्धि x 8 ÷ 9 = 368x8÷ 9=2944÷9 = 327 लब्धि; शेष = 1
शेष x 2 + 1 = 1 x 2 + 1 = 3 अर्थात् अग्निशान्ति का विश्वामान 3 हुआ।

नीचे चार प्रकार की उत्पत्ति के नियम अलग हैं।

38. उद्‌भिज = शक् x 5 ÷ 7=1929x 5 ÷ 7 = 9645÷7 = 1377 लब्धि; शेष = 6
शेष x 2 + 3 = 6 x 2 + 3 = 15 अर्थात् उद्‌भिज का विश्वामान 15 हुआ।
39. जरायुज = शक् x 7 ÷ 7=1929x 7 ÷ 7 = 1929 लब्धि; शेष = 0
शेष x 2 + 3 = 0 x 2 + 3 = 3 अर्थात् जरायुज का विश्वामान 3 हुआ।
40. अंडज = शक् x 9 ÷ 7=1929x 9 ÷ 7 = 2480 लब्धि; शेष = 1
शेष x 2 + 3 = 1 x 2 + 3 = 5 अर्थात् अंडज का विश्वामान 5 हुआ।
41. श्वेदज = शक् x 11 ÷ 7=1929x 11 ÷ 7 = 3031 लब्धि; शेष = 2
शेष x 2 + 3 = 2 x 2 + 3 = 7 अर्थात् श्वेदज का विश्वामान 7 हुआ।
42. टिड्‌डी = शक् x 7 ÷ 9 = 1929 x 7 ÷ 9 = 13503÷9 = 1500 लब्धि; शेष = 3
शेष x 2 + 3 = 3 x 2 + 3 = 9 अर्थात् टिड्‌डी का विश्वामान 9 हुआ।
43. शुक् = ऊपर की लब्धिx7÷9=1500x7÷ 9=10500÷9 = 1166 लब्धि; शेष = 6
शेष x 2 + 3 = 6 x 2 + 3 = 15 अर्थात् शुक् का विश्वामान 15 हुआ।
44. मूषक = ऊपर की लब्धिx7÷9=1166x7÷ 9=8162÷9 = 906 लब्धि; शेष = 8
शेष x 2 + 3 = 8 x 2 + 3 = 19 अर्थात् मूषक का विश्वामान 19 हुआ।
45. स्वर्ण = ऊपर की लब्धिx7÷9=906x7÷ 9=6342÷9 = 704 लब्धि; शेष = 6
शेष x 2 + 3 = 6 x 2 + 3 = 15 अर्थात् स्वर्ण का विश्वामान 15 हुआ।
46. ताम्र = ऊपर की लब्धिx7÷9=704x7÷ 9=4928÷9 = 547 लब्धि; शेष = 5
शेष x 2 + 3 = 5 x 2 + 3 = 13 अर्थात् ताम्र का विश्वामान 13 हुआ।
47. स्वचक्र = ऊपर की लब्धिx7÷9=547x7÷ 9=3829÷9 = 425 लब्धि; शेष = 4
शेष x 2 + 3 = 4 x 2 + 3 = 11 अर्थात् स्वचक्र का विश्वामान 11 हुआ।
48. परचक्र = ऊपर की लब्धिx7÷9=425x7÷ 9=2975÷9 = 330 लब्धि; शेष = 5
शेष x 2 + 3 = 5 x 2 + 3 = 13 अर्थात् परचक्र का विश्वामान 13 हुआ।
49. वृष्टि = ऊपर की लब्धिx7÷9=330x7÷ 9=2310÷9 = 256 लब्धि; शेष = 6
शेष x 2 + 3 = 6 x 2 + 3 = 15 अर्थात् वृष्टि का विश्वामान 15 हुआ।

50. वृष्टिनाश = ऊपर की लब्धि x 7÷9 = 256 x 7 ÷ 9 = 1792 ÷ 9 = 199 लब्धि; शेष=1
शेष x 2 + 3 = 1 x 2 + 3 = 5 अर्थात् वृष्टिनाश का विश्वामान 5 हुआ।

वर्षा का सूचक

सूर्योदय काल में सूर्य भगवान के दर्शन करना बहुत ही लाभदायक और सुखप्रद होता है आंखों की बीमारी/परेशानियां दूर हो जाती हैं। अगर कुछ घंटों में बारिश होने वाली हो तो सूर्योदय पर सूर्य बहुत ज्यादा चमकेंगे, जिनको आंखों से नहीं देखा जा सकता। इसके लिए वराह मिहिर की बृहत संहिता में अद्भुत शब्द "दुर्निरीक्षयो" आया है। यहां पर उचित होगा कि कुछ श्लोक वराह मिहिर रचित बृहत संहिता से प्रस्तुत किये जाएँ।

बृहत संहिता, अध्याय 28 - लक्षणों द्वारा वर्षा ज्ञान

श्लोक 3:

उदयशिखरिसंस्था दुर्निरीक्ष्योऽतिदीप्त्या, द्रुतकनकनिकाशः स्निग्धवैदूर्यकान्तिः।
तदहनि कुरुतेऽम्भस्तोयकाले विवस्वान्, प्रतपति यदि चोच्चैः खं गतोऽतीव तीक्ष्णम्।।3

भावार्थः सूर्य उदय के समय ही इतना तेज हो कि देखा न जा सके। गलाए गए सोने के समान रंग वाले हों अथवा वैदूर्य मणि (बहुत प्रकाश देने वाला मणि) के समान हो तो वर्षाकाल में उसी दिन वर्षा का योग बनता हैं। इसी तरह दोपहर में आकाश के मध्य में स्थित सूर्य बहुत तेज चमकते हों और तपें तो भी उसी दिन वर्षा होती है।

श्लोक 4:

विरसमुदकं गोनेत्राभं वियद्विमला दिशो, लवणविक ति: काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः।
पवनविगमः पोप्यूयन्ते झषा स्थलगमिनो, रसनमसक न्मण्डूकानां जलागमहेतवः।।4

अर्थात – पानी का स्वाद बदल जाना, गाय की आंखों के समान मटमैला आकाश, साफ दिशाएं, नमक का पसीजना, आकाश की रंगत कौए के अण्डे के समान सलेटी होना, हवा का बिल्कुल न चलना, मछलियों का पानी से बाहर निकल कर सूखे में चलने का प्रयत्न करना व मेंढ़कों का रह–रह कर टर्राना आदि लक्षण शीघ्र वर्षा होने की सूचना देते है।

श्लोक 5 :

मार्जारा भ शमवनिं नखैर्लिखन्तो लोहानां मलनिचयः सविस्रगन्धः ।
रथ्यायां शिशुरचिताश्च सेतुबन्धाः सम्प्राप्तः जलमचिरान्निवेदयन्ति।। 5

अर्थात – बिल्ली अपने पंजों से धरती को नोंचे। लोहे या कांसे के बर्तनों पर कालापन आ जाए, इन बर्तनों में से कुछ अलग प्रकार की गन्ध आने लगे। बच्चे

गलियों में पुल, पानी आदि का खेल खेलें अथवा बालकों द्वारा बनाए गए पानी से सम्बन्धित पदार्थ गलियों में दिखें तो शीघ्र ही वर्षा होती है।

श्लोक 6 :

गिरयोऽञ्जनचूर्णसन्निभा यदि वा बाष्पनिरुद्धकन्दराः।
क कवाकुविलोचनोपमाः परिवेषाः शशिनश्च व ष्टिदाः।। 6

अर्थात – पहाड़ों का रंग दूर से काला दिखे, पहाड़ों पर भाप सी उठती दिखे। चन्द्रमा के चारों ओर परिवेष (कुण्डल) दिखे व कुण्डल का रंग लाल हो। ये सब लक्षण व शकुन शीघ्र ही वर्षा का संकेत देते हैं।

श्लोक 7 :

विनोपघातेन पिपीलिकानामण्डोपसंक्रान्तिरहिव्यवायः।
द्रुमावरोहश्च भुजडंगमानां व ष्टेर्निमित्तानि गवां प्लुतं च। 7

अर्थात – चींटियां बिना किसी उपद्रव के अपने अण्डे लेकर दूसरे स्थान पर जाने लगें। सांप पेड़ पर चढ़ने लगे व गायें बिना कारण के ही उछलने लगें तो शीघ्र वर्षा का शकुन होता है।

श्लोक 8 :

तरुशिखरोपगताः क कलासा गगनतलस्थितद ष्टिनिपाताः ।
यदि च गवां रविवीक्षणमूर्ध्वं निपतति वारि तदा न चिरेण । 8

अर्थात – गिरगिट पेड़ों की चोटियों तक पहुंच जाएँ और आकाश की ओर देखें। गाय या बैल सूर्य की ओर देखें तो शीघ्र ही वर्षा होती है।

श्लोक 9 :

नेच्छन्ति विनिर्गमं ग हाद्धुन्वन्ति श्रवणान् खुरानपि।
पशवः पशुवच्च कुक्कुरा यद्यम्भः पततीति निर्दिशेत् । 9

अर्थात् – यदि पालतू पशु (गाय आदि) घर से बाहर जाने में आना कानी करें, बिना कारण ही पैरों को हिलाएं व कानों को फड़फ़डाएँ और कुत्ते भी इसी तरह कान फड़फड़ाएँ, पैर नचाएं व घर से बाहर न निकलें तो शीघ्र वर्षा का शकुन होता है।

श्लोक 10 :

यदा स्थिता ग हपटलेषु कुक्कुरा रुदन्नि वा यदि विततं वियन्मुखाः ।
दिवा तडिद्यदि च पिनाकिदिग्भवा तदा क्षमा भवति समैव वारिणा। 10

अर्थात – यदि कुत्ते घर की छतों पर चढ़ जाएं अथवा आकाश की ओर खुले मुंह से देखें या आकाश की ओर मुंह करके रोएं, यदि दिन में ईशान कोण में बिजली चमके तो भी उत्तम वर्षा की पूर्व सूचना समझनी चाहिए।

श्लोक 11 :

शुककपोतविलोचनसन्निभो मधुनिभश्च यदा हिमदीधितिः ।
प्रतिशशी च चदा दिवि राजते पतति वारि तदा न चिरेण च। 11

अर्थात – यदि आसमान में तोते व कबूतर की आंखों के समान लाल बादल हों, चन्द्रमा का रंग शहद के समान दिखे, आकाश में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब (प्रतिशशि) दिखे तो शीघ्र ही वर्षा होती है।

श्लोक 12 :

स्तनितः निशि विद्युतो दिवा रुधिरनिभ्झा यदि दण्डवत्स्थिताः ।
पवनः पुरतश्च शीतलो यदि सलिलस्य तदाऽऽगमो भवेत् । 12

अर्थात – रात में बादल गरजें, दिन में लम्बवत अर्थात् सीधे आकाश से धरती की ओर बिजली चमके, और ठंडी पुरवैया हवा चले तो शीघ्र वर्षा होती है।

श्लोक 13 :

वल्लीनां गगनतलोन्मुखाः प्रवालाः स्नायन्ते यदि जलपांशुभिर्विहङगः ।
सेवन्ते यदि च सरीस पास्त णाग्राण्यासन्नो भवति तदा जलस्य पातः । 13

अर्थात् – लताओं व पत्तों की नोंक आकाश की ओर उठ जाए, पक्षी धूल में स्नान करने लगें, पत्तियों पर सरकने वाले कीड़े रेंगने लगें तो शीघ्र ही वर्षा होती है।

श्लोक 14:

मयूरशुकचाषचातकसमानवर्णा यदा, जपाकुसमपङकजद्युतिमुषश्च सन्ध्याघनाः ।
जलोर्मिनगनक्त्रकच्छपवराहमीनोपमाः, प्रभूतपुटसंचया न तु चिरेण यच्छन्त्यपः । 14

अर्थात – मोर, चातक व तोते के रंग के बादल सायंकाल में छा जाएं तो शीघ्र वर्षा होती है। जवा कुसुम (गुडहल) के फूल बहुत लाल हों, बादल घने हों तथा बादलों की आकृति सूअर, पानी की भंवर, लहर, कछुआ अथवा मछली के समान हो तो ये शीघ्र वर्षा के लक्षण होते हैं।

श्लोक 15:

पर्यन्तेषु सुधाशशाङ्कधवला मध्येऽञ्जनालित्विषः, स्निग्धा नैकपुटाः
क्षरज्जलकणाः सोपानविच्छेदिनः ।
माहेन्द्रीप्रभवाः प्रयान्त्यपरतः प्राग् वाम्बुपाशोदभ्वा, ये ते वारिमुचस्त्यजन्ति न
चिरादमभः प्रभूतः भुविं । 15

अर्थात् – बादलों का रंग सब तरफ से भूरा हो तथा बीच में गहरा रंग दिखे, बादलों की कई परतें हों, चिकनापन हो, सीढ़ीनुमा बादल हों, पानी की बूंदें टपकें और पूर्व से पश्चिम अथवा पश्चिम से चलकर पूर्व की ओर जा रहे हों तो शीघ्र वर्षा देते हैं।

श्लोक 16:

शक्त्रचापपरिघप्रतिसूर्या रोहितोऽथ तडितः परिवेषः ।
उदगमास्तसमये यदि भानोरादिशेत् प्रचुरमम्बु तदाशु । 16

अर्थात् – सूर्योदय या सूर्यास्त के समय इन्द्रधनुष, प्रतिसूर्य, परिघ (आकाश में डण्डे की तरह लम्बी रेखा), बिजली, रोहित (इन्द्र धनुष का टुकड़ा), सूर्य अथवा चन्द्रमा का परिवेष दिखे तो शीघ्र ही वर्षा होती है।

घाघ और भड्डरी

हमारे पारंपरिक समाज में बड़ी से बड़ी बात छोटी–छोटी कहावतों के माध्यम से कहने की परम्परा रही है। वर्षा सम्बन्धी ऐसी कई कहावतों का श्रेय घाघ और भड्डरी को दिया जाता है। हिन्दी में अत्यन्त चतुर व्यक्ति को घाघ तथा भण्डार रखने वाली स्त्री को भड्डरी कहते हैं। हो सकता है घाघ तथा भड्डरी अलग–अलग काल खण्डों में अलग–अलग लोगों के नाम हों। पर इनकी उक्तियां बहुत सटीक और सरल हैं। पति और पत्नी की इस जोड़ी को आज तक उनके छोटे, तीक्ष्ण, अदभुत और सही प्राकृतिक भविष्यवाणियों के लिए जाना जाता है। वर्षा की भविष्यवाणी के लिए आज़ भी भारत के गांव के लोग इन कहावतों का सहारा लेते हैं और पूरी तरह से अविश्वसनीय मौसम विभाग की भविष्यवाणी को नकारते हैं। इन कहावतों का सही आनंद तो इनकी मूल भाषा में ही है, अनुवाद इन उक्तियों को बेस्वाद कर देते हैं। आइये कुछ इन्हीं कहावतों को जानें:.

- **'वायु चलेगी उत्तरा, मांड पियेंगे कुत्तरा'** – वर्षा काल में अगर उत्तर की दिशा से हवा चलें, तो वर्षा इतनी अच्छी होती है कि आवारा कुत्तों को भी खाने को मांड मिल जाते हैं। यानी फसलों के लिए बहुत अच्छी वर्षा होती है।

- **'माघ पूस जो दक्खिन चलें, तो सावन के लच्छन भलें'** – अगर माघ और पूस के महीनों में हवा दक्षिणी हों तो सावन (जुलाई–अगस्त) में अच्छी वर्षा होती है।
- **'दक्खिनी कुलक्खिनी, माघ पूस सुलक्खिनी'** – सिवाए माघ और पूस (जनवरी और फरवरी) के दक्षिणी हवाएं खराब होती हैं।
- **'उत्तर चमके बिजूरी, पूर्व बहती वायु, घाघ कहें सुन भड्डरी बरधा भीतर लाऊं'** – घाघ भड्डरी से कहते हैं कि उत्तर में बिजली चमकती है और हवाएँ पूर्व से चल रही हैं, तो अवश्य वर्षा होने वाली है, क्या मैं अपने बैलों को अन्दर ले आऊँ ?
- **'उगे अगस्ता फूले बनकांस, अब छोडो बरखा की आस'** – 'अगस्त' नक्षत्र उग गया है और जंगल में उगी काँस (एक जंगली घास) में फूल आ गये है। अब तो वर्षा की आस छोड़ देनी चाहिए। यह 'अगस्त' दक्षिणी तारा है जो करीब 10 सितम्बर के आसपास उगता है। इसका सम्बन्ध वर्षा से एक जानारुपहचाना लक्षण है। श्री राम चरित मानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी लिखा है 'उदित अगस्ता पंथ जल सोखा' – अगस्त का उदय हो चुका है अब तो रास्ते का जल सूख जाएगा।
- **'पूस अंधेरी सप्तमी जो पानी नहीं देई, तो अर्द्रा बरसे सही जल थल एक करेई'** पूस दिसम्बर को दर्शाता है। अगर कृष्ण पक्ष की सप्तमी को बारिश नहीं हुई तो जून के अंत में बहुत वर्षा होगी। यह कहावत 195 दिन गणना को भी सही साबित करती है।
- **'आगे मंगल पीछे भान, वर्षा होवे ओस समान'** – अगर वर्षा काल में मंगल सूर्य के आगे हों तो वह वर्षा में अवरोधक साबित होते हैं। यह कहावत कई बार सही साबित हुई है, जो हमारे महान ऋषियों और संतों के गहरे ज्ञान को दर्शाती है।
- **''आखै तीज रोहिणी न होई। पूस अमावस मूल न जोई।।**
  राखी श्रवणो हीन विचारो। कातिक पूनो कृतिका टारो ।।
  महि माँहि खल बलहिं प्रकासै। कहत भड्डरी सालि बिनासै।।''

  अर्थात् यदि अक्षय तृतीया को रोहिणी, पूस की अमावस को मूल, रक्षा बन्धन के दिन श्रवण तथा कार्तिक पूर्णिमा के दिन कृतिका न हो तो पृथ्वी पर दुष्टों का बल बढ़ता है तथा धान की फसल नष्ट होती है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार उक्त संदर्भों और गणनाओं को ध्यान में रखते हुए अगर सही तरीके से भविष्यवाणी की जाए तो ज्योतिष शास्त्र की मदद से हर साल होने वाले जानोमाल की हानि को रोका जा सकता है। मानसून के आने से पहले ही हम ज्योतिष शास्त्र की मदद से यह देख सकते हैं कि वर्षा से कौन–कौन से क्षेत्र प्रभावित हो रहे हैं और कौन कौन से नहीं। इनको ध्यान में रखकर हर साल सम्बन्धित राज्य सरकार आने वाले खतरे के अनुसार अपनी–अपनी तैयारियां कर संभावित हानि को बहुत हद तक कम सकती है।

एल नीनो

सूर्य की गर्मी के कारण धरती का तापमान भूमध्य रेखा के पास सबसे अधिक होता है। सागर इस तापमान से गर्माए हुए पानी को धुवों की ओर ले जाता है। गर्म पानी का दक्षिणी ध्रुव की ओर जाने के कारण आस्ट्रेलिया के डारविन शहर और हवाई द्वीप समूह के ताहिटी शहर के बीच हवा के दवाब का एक ऐसा सिलसिला बन जाता है जो कभी डारविन में अधिक दवाब बनाता है तो कभी ताहिटी में। जब डारविन में दवाब ज्यादा होता है तो "एल नीनो" पैदा होता है और जब ताहिटी में हवा का दवाब ज्यादा होता है तो "एल नीना" पैदा होती है। नीनो और नीना स्पेनी शब्द हैं जो क्रमशः छोटे बच्चे और छोटी बच्ची के लिये प्रयुक्त होते हैं। एल नीनो से पूरे विश्व का मौसम प्रभावित होता है।

एल नीनो का मौसम पर प्रभाव होता है यह तो पता चल चुका है पर यह किस प्रकार से होता है इसका आकलन अभी चल ही रहा है अैर मौसम विशेषज्ञों की दुनिया में यह सबसे ज्यादा चर्चित विषय हो गया है।

यह वर्षा विज्ञान का एक लघु परिचय है। इस विद्या के सबसे गणमान्य जानकार श्री के.एन. राव के लेख और टीवी पर वक्तव्य वर्षा विज्ञान के मापदंड हैं और उनसे ही इस विषय की सबसे सही जानकारी प्राप्त होती है।

अध्याय 22

दैनिक लग्न सारणी

पंचांग का सर्वप्रिय भाग है दैनिक लग्न सारणी। जो विश्वविजय पंचांग में प्रत्येक वर्ष लगभग पृष्ठ संख्या 82 से 87 तक प्रकाशित होता है।

यहां एक बात समझने की है। हम जानते हैं कि किसी भी स्थान पर राशियों के उगने का काल निश्चित होता है जिसे हम राशिमान कहते हैं। यद्यपि 12 राशियों के उगने का पूरा काल 24 घन्टे रहता है इसलिये स्थूल गणना के लिये एक राशि को उगने का औसत समय दो घन्टे मान लिया जाता है। यह पूरी तरह से अशुद्ध है क्योंकि भूमध्य रेखा पर ही पूरब दिशा में उगने में मेष, कन्या, तुला और मीन राशियां करीब–करीब 279 पल (1 घन्टा 51 मिनट 56 सेकेण्ड), वृषभ, सिंह, वृश्चिक तथा कुंभ राशियां करीब 299 पल (1 घन्टा, 59 मिनट 38.4 सेकेण्ड) तथा मिथुन, कर्क, धनु और मकर राशियां 232 पल (2 घन्टे, 8 मिनट तथा 48 सेकेण्ड) समय लेती हैं। ये राशियां होती तो 30° की ही हैं पर पृथ्वी के अक्ष के झुकाव के कारण इनके उगने का समय अलग हो जाता है। जैसे–जैसे हम ध्रुवों की ओर बढ़ते जाते हैं, राशियों के उगने के काल में अन्तर आता जाता है। उत्तरी गोलार्ध में उत्तर ध्रुव की ओर बढ़ने से क्रमशः मकर, कुंभ, मीन, मेष, वृषभ और मिथुन राशियों के उगने का काल कम होता जाता है। यह कमी यहां तक हो जाती है कि 60° उत्तर शर या विक्षेप (Latitude) हो जाने से मेष तथा मीन प्रायः 28 मिनटों में ही पूरब में उदित हो जाते हैं। वृषभ और कुंभ के लिये यह समय 53 मिनटों से थोड़ा सा ही अधिक रहता है तथा मिथुन और मकर 1 घन्टे 41 मिनटों में उग जाते हैं। दूसरी ओर उत्तरी गोलार्ध में 60° शर पर कर्क और धनु को 2 घन्टे 36 मिनटों से अधिक, सिंह तथा वृश्चिक को तीन घन्टे 6 मिनटों से भी अधिक तथा कन्या और तुला को प्रायः सवा तीन घन्टे तक पूरब में उगने में समय लगता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तरी

ध्रुव के करीब रहने वाले लोगों में मेष, मीन आदि लग्न में उत्पन्न लोग कम पाये जाते हैं तथा सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक लग्न के अधिक। पंचांग में उस स्थान विशेष के लिये, जहां के लिये पंचांग बनाया गया है, राशियों के उगने का समय दिया होता है। ये काल कभी नहीं बदलते अर्थात् यदि दिल्ली में मेष के उदित होने का समय 1 घन्टा 36 मिनट है तो हर साल, हर दिन मेष को पूरब में उगने में 1 घन्टा 36 मिनट ही लगेगा। हां, मेष राशि सुबह में उगेगी या रात में, यह इस बात पर निर्भर करेगी कि सूर्य किस राशि में हैं अथवा अंग्रेजी ईसवी का कौन सा महीना चल रहा है। जैसे अप्रैल महीने में 14/15 के आसपास सूर्य मेष राशि में प्रवेश करते हैं। उन दिनों सूर्योदय के समय मेष राशि पूरब दिशा में होगी। इसी प्रकार सूर्य अक्टूबर माह की 14/15 ता. के आसपास जब तुला में प्रवेश करेंगें तो मेष राशि प्रायः आधी रात को उगेगी। लेकिन उसे उस समय भी उगने में 1 घन्टा 36 मिनट ही लगेंगे। एक बात और भी तय है कि प्रत्येक वर्ष सूर्य का विभिन्न राशियों का प्रवेश काल प्रायः निश्चित होता है जैसे 14 जनवरी को सूर्य मकर में प्रवेश करते हैं। इसी प्रकार 14/15 अप्रैल को सूर्य का मेष राशि में प्रवेश निश्चित है। इसलिये अंग्रेजी तारीख के हिसाब से प्रत्येक वर्ष उस तारीख को राशियों के पूरब दिशा में उगने का समय प्रायः एक जैसा होगा। जैसे 1 जनवरी 2001 को यदि दिल्ली में मेष राशि 12:45 बजे से लेकर 14:21 (1 घन्टे 36 मिनट) पूरब में रही तो 1 जनवरी 2006, 1 जनवरी 2007 (12:46 से 14:22 तक) तथा 1 जनवरी 2008 को भी प्रायः इसी समय (दोपहर 12:46 से 14:22 तक) मेष राशि दिल्ली कू पूरबी क्षितिज पर रहेगी। इसकी सम्पुष्टि विभिन्न वर्षों के लिये प्रकाशित विश्वविजय पंचांग के पृष्ठ 86 से की जा सकती है। पृथ्वी की डगमगाती हुई गति के कारण इसमें प्रत्येक वर्ष प्रायः एक मिनट की शुद्धि करने की आवश्यकता होती है। हां परेशानी होती है लीप ईयर में, जब फरवरी माह 29 दिनों का हो जाता है। 29 फरवरी की बजाय तब हम पहली मार्च की सारणी देख सकते हैं। मार्च माह में उस वर्ष सूर्य का मिथुन में प्रवेश एक दिन पहले हो जायेगा। उस दिन दिल्ली में सूर्योदय काल देखने से मिथुन का प्रारंभ काल पता चल जायेगा। इस प्रकार बिना किसी श्रम के हम दिल्ली में लग्न का पता साथ दी गयी सारणी से लगा लेते हैं। अब प्रश्न उठता है कि क्या इसी लग्न सारणी का प्रयोग अन्य स्थानों के लिये भी किया जा सकता है ? तो उत्तर है हां—यह थोड़े से श्रम से संभव है। विश्वविजय पंचांग में, दिल्ली से प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण स्थान का देशान्तर (difference of longitude) मिनट तथा सेकेण्ड में दिया होता है। यदि स्थान दिल्ली से पूरब हो तो राशियां वहां पहले उदित हो चुकी होंगी। इसलिये दिल्ली के राशि के उदय के समय में देशान्तर जोड़ने से उस स्थान पर राशि के उगने का अशुद्ध समय पता चल जायेगा। इसे अशुद्ध समय सारणी इसलिये कहा गया क्योंकि इस समय में कुछ

शुद्धि करने की आवश्यकता होती है। हम पहले समझ चुके हैं कि राशियों के उगने के काल में स्थान का अक्षांश या शर (Latitude) बहुत महत्त्व रखता है। पंचांग में विभिन्न अक्षांशों के लिये शुद्धि बताने वाली सारणी दी गयी होती है। इस सारणी से शुद्धि करके शुद्ध लग्न बताया जा सकता है। हमने पहले देखा कि उत्तर की ओर बढ़ने से मकर से लेकर मिथुन राशियों के पूरबी क्षितिज पर रहने के समय में कमी आती जाती है। चूंकि दिल्ली के पंचांग में दिल्ली के काल दिये रहते हैं इसलिये दिल्ली से जब हम दक्षिण की ओर चलेंगे तो इन राशियों को पूरब दिशा में उगे रहने के काल में वृद्धि होगी। इसके लिये किसी भी स्थान पर लग्न निकालने की पारम्परिक पद्धति हमने पहले बताई है। इन संबमें फिर भी थोड़ा श्रम लगता है। इसलिये पाठकों की सुविधा के लिये हमने दिल्ली की लग्न उदय की सारणी के अतिरिक्त भारत के कई प्रमुख नगरों के लिये लग्न परिवर्तन की सारणियां भी इस पुस्तक के अन्त में दे दी हैं जिससे पाठक तत्क्षण ही, किसी भी तिथि को भारतवर्ष के किसी भी स्थान के लिये राशि के उगने का काल निकाल सकते हैं। इसे हम उदाहरण से समझेंगे। मान लीजिये कि हमें दिल्ली में 28 अक्टूबर को सुबह नौ बजे का लग्न ज्ञात करना है। हम अक्टूबर माह की लग्न सारणी देखेंगे। 28 अक्टूबर को वृश्चिक सुबह 8:04 से लेकर 10:22 तक पूरब में है। इसलिये नौ बजे का लग्न हुआ वृश्चिक। इस प्रकार अगर उसी तारीख को सुबह नौ बजे अहमदाबाद का लग्न जानना हो तो हम अगली सारणी से अहमदाबाद देखेंगे। वहां वृश्चिक के लिये +9 मिनट की शुद्धि बतायी गयी है। अर्थात् वहां वृश्चिक लग्न सुबह 8:13 से लेकर 10:31 तक उगेगा। इस प्रकार वहां का लग्न भी वृश्चिक होगा।

संलग्नक - 1

व्रत, पर्व तथा उत्सव

भारतीय परम्परा में सच पूछा जाये तो प्रत्येक दिन कोई न कोई व्रत/ उत्सव/ पर्व लगा ही रहता है जिससे उल्लास, पूजा और आराधना से जीवन का प्रत्येक पल जीवन्त रहता है। इस अध्याय में हम वर्ष भर में होने वाले कुछ मुख्य पर्वादि के बारे में जानेंगे – उनका आधार और उन्हें मनाने की संक्षिप्त विधि की हम आगे चर्चा करेंगे। व्रत, पर्व और उत्सव में अन्तर समझना अच्छा होगा।

व्रत : व्रत का अर्थ है किसी वचन या काम का सब प्रकार से निर्वाह करना। यजुर्वेद में कहा गया है–

> **''व्रतेनदीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।**
> **दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।''**

अर्थात् व्रत से दीक्षा (दिशा) प्राप्त होती है। दीक्षा से व्रत निर्वाह में दक्षता आती है जिसे दाक्षिण्य कहा जाता है। दाक्षिण्य से श्रद्धा बढ़ती है और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। सत्य अर्थात् परमात्मा समझना चाहिये। अतः परमात्मा की अविरल कृपा की आधारशिला है व्रत या संकल्प। सामान्यतः व्रत के तीन प्रकार कहे गये – नित्य, नैमित्तिक और काम्य। कर्म के भी ये तीन प्रकार माने जाते हैं। जैसे नित्य कर्म का अर्थ है सन्ध्या, माता–पिता की सेवा आदि जिन्हें नहीं करने से पाप लगता है पर करने पर पुण्य नहीं होता। नैमित्तिक कर्म (सूर्य ग्रहण आदि पर स्नान करना) नहीं करने से पाप और करने से पुण्य प्राप्त होता है। किन्तु व्रत चाहे नित्य हो या नैमित्तिक अथवा काम्य (जैसे एकादशी, चतुर्दशी आदि नित्य, चन्द्रायण आदि पाप क्षय करने के लिये नैमित्तिक अथवा वट सावित्री, पुत्रंजीविका जैसे काम्य) सदा पुण्य प्रद होते हैं। एक बात और भी कही गयी है कि नित्य, नैमित्तिक या काम्य व्रत अगर

बिना किसी फल प्राप्ति की इच्छा के किये जायें तो वे निष्काम व्रत में परिवर्तित होकर मोक्षदायक हो जाते हैं। एक अन्य प्रकार से ऐसे व्रत को हरितोषण, अर्थात् मात्र भगवान की प्रसन्नता के लिये किया गया व्रत कहा जाता है। व्रत करने के कुछ प्रचलित प्रकार निम्नांकित हैं–

1) **एक भुक्त** –'अर्थात् दिन–रात मिलाकर एक बार भोजन किया जाये।
2) **नक्त व्रत** – रात में एक बार खाने को नक्त कहते हैं। विधवा तथा संन्यासी के लिये सूर्यास्त से पहले तथा गृहस्थों के लिये तारों के निकलने के बाद भोजन करने का नियम है।
3) **अयाचित** – दिन रात में एक बार, वह भी बिना माँगे जितना मिल जाये, वह खाना अयाचित कहलाता है।
4) **मितभुग** – दिन रात में सिर्फ एक बार, वह भी दस ग्रास या निश्चित मात्रा में भोजन करना मितभुग कहलाता है।

पर्व भी व्रत की भांति होते हैं किन्तु इस शब्द का अर्थ होता है पूर्ण या भरा हुआ। एक अन्य प्रकार से पर्व का अर्थ है पूर्णता की ओर ले जाना। जैसे दिन और रात का मिलना, सूर्योदय और सूर्यास्त, दैनिक पर्व हुए। अमावस्या, शुक्लाष्टमी, पूर्णिमा तथा कृष्णाष्टमी चन्द्रमा के चार पर्व हुए। सूर्य की बारह संक्रान्तियाँ सूर्य के बारह पर्व कहे गये। व्यक्ति का जन्म भूसंक्रान्ति तथा उसकी मृत्यु ऊर्ध्व संक्रान्ति पर्व कहे गये। हमारा जीवन जन्म से मृत्यु तक सुख और दुःख के धागों से बनी एक गाँठ है जिसे खोल कर जीवन के रहस्य को जानना जीवन को अनवरत चलने वाला पर्व बना देता है।

उत्सव : उत्सव का अर्थ है आमोद–प्रमोद, त्योहार, आनन्द अदि। इस प्रकार सारे पर्व उत्सव ही तो हैं। 12 सूर्य संक्रान्ति, 12 पूर्णिमा तथा 12 अमावस्या, 12 शुक्ल एवं 12 कृष्णाष्टमी मिलकर साठ सार्वजनिक उत्सव होते हैं। प्रभु ने जब–जब पृथ्वी पर अवतरित होकर दुष्टों का वध किया है, वे सभी तिथियाँ भी उत्सव हैं जैसे रावण–वध का दिन अर्थात् दशहरा एक प्रमुख उत्सव माना गया है। व्रत तथा पर्व को मनाया जाना ही उत्सव है। व्रत में ब्रह्मचर्य, शुचिता, सत्यभाषण और निरामिष भोजन आवश्यक माने गये हैं।

नित्य व्रतों में एकादशी (शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष) सबसे महत्वपूर्ण है और कहा गया है कि इनके न करने से पाप होता है। पहले संक्षेप में एकादशी कथा समझ लेते हैं कि ये देवी आखिर हैं कौन ? पद्मपुराण में नारदजी को यह ज्ञान शिवजी ने युधिष्ठिर तथा कृष्ण संवाद के रूप में दिया है। कृष्ण जी बताते हैं कि सतयुग में

ब्रह्माजी के कुल में उत्पन्न तालजंघ नामक असुर के पुत्र मुर नामक दैंत्य से पराजित देवता इन्द्र के नेतृत्व में शंकर जी के पास गये जिन्होंने देवताओं को क्षीर सागर में शयन कर रहे विष्णु भगवान के पास भेजा। देवताओं की स्तुति से श्री विष्णु भगवान जगे अैर मुर की नगरी चन्द्रावती में जाकर उसकी सेना को तहस–नहस करने के उपरान्त बदरिकाश्रम में सिंहावती नामक गुफा में विश्राम करने लगे। अपनी सेना नष्ट हो जाने के उपरान्त भी मुर उनका पीछा करते हुए सिंहावती में घुसा और निद्रालीन विष्णु को मारने को तैयार हुआ। उसके ऐसा सोचते ही भगवान विष्णु के शरीर से एक सुन्दर कन्या निकली जो दिव्य अस्त्र–शस्त्रों से युक्त थी। इस कन्या के हुंकार मात्र से ही वह असुर राख का ढेर हो गया। उसकी मृत्यु के बाद भगवान जगे और उस कन्या से पूछने पर जाना कि उस राक्षस का वध उसी कन्या (एकादशी) ने किया था। श्री भगवान विष्णु के वरदान के कारण एकादशी सभी तीर्थों में प्रधान, समस्त विघ्नों का नाश करने वाली तथा सब प्रकार की सिद्धि दायिनी हुई। भगवान विष्णु के आशीर्वाद स्वरूप जो लोग इस दिन जनार्दन (विष्णु भगवान) का ध्यान रखते हुए उपवास, नक्त अथवा एक भुक्त होकर एकादशी व्रत का पालन करते हैं उन्हें लक्ष्मी, धर्म तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

व्रत की विधि :

जो नित्य व्रत के रूप में एकादशी प्रारंभ करना चाहते हैं अर्थात् निष्काम भाव से यह व्रत करना चाहते हैं, उनके लिये कोई नियम नहीं है किन्तु काम्य व्रत के रूप में एकादशी के लिये मलमास, गुरु/शुक्रस्त, चन्द्र/सूर्य ग्रहण आदि का ध्यान रखा जाता है। सामान्यः गुरु तथा शुक्र अस्त न हों तब चैत्र, वैशाख या फिर माघ या मार्गशीर्ष की एकादशी से यह व्रत आरंभ किया जाता है। एकादशी के प्रकार की तो बाद में चर्चा की गयी है परन्तु त्रिस्पर्शा एकादशी का विशेष महत्व है। अर्थात् यदि सूर्योदय काल में एकादशी रहे उसके बाद द्वादशी प्रारंभ हो जाये तथा अगले सूर्योदय को त्रयोदशी हो जाये तो इसे त्रिस्पर्शा कहते हैं (जिसमें द्वादशी तिथि का क्षय हो जाता है।)

यह व्रत दशमी को प्रारंभ होकर द्वादशी को शेष होता है। इन तीनों दिनों में काँसे के पात्र में भोजन करना, मसूर, चना, तेल, शाक, शहद, जुआ खेलना, मैथुन आदि वर्जित हैं।

दशमी को जौ, गेहूँ, काली मिर्च, गोघृत, शर्करा आदि से बना भोजन एक बार किया जाता है। उस रात एकादशी व्रत का स्मरण करते हैं। एकादशी की प्रातः स्नानादि से निवृत होकर संकल्प किया जाता है, "**ममकायिकवाचिक**

मानसिकसांसर्गिकपातकोपपातक- दुरितक्षयपूर्वकश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्तये श्रीपरमेश्वरप्रीतिकामनया एकादशीव्रतमहं करिष्ये" यह संकल्प हुआ। तत्पश्चात् षोडशोपचार पूजन करके उस एकादशी विशेष की कथा सुनी जाती है। फिर जप, हवन पाठ आदि करके आरती और प्रदक्षिणा करते हैं। भगवान का नाम, कीर्त्तन, स्रोत पाठ आदि करते हुए जागरण करते हैं और द्वादशी की प्रातः पूजन करके पारण करते हैं। द्वादशी को भी दशमी की ,भांति वर्जनाओं का ख्याल रखा जाता है तथा हविष्य का एक बार ही भोजन किया जाता है। एक मत से अस्सी वर्ष की आयु तक एकादशी व्रत करना चाहिये किन्तु अगर संभव न हो तो इसका उद्यापन पहले भी विधि पूर्वक करते हैं जिसके लिये सर्वतोभद्र चक्र पर कलश स्थापित करके उस पर श्री नारायण की स्वर्णमयी मूर्त्ति रखकर उसका शास्त्रोक्त विधि से पूजन करते हैं तथा हवन करने के उपरान्त रात भर प्रभु स्मरण में बिता कर द्वादशी को ब्राह्मणों को शय्यादान, गोदान, अन्नदान आदि करते हैं। इस दिन छब्बीस ब्राह्मण दम्पतियों को भोजन कराने के उपरान्त प्रत्येक को एक कलश, वस्त्राभूषण आदि दान में दिया जाता है।

सामान्य वर्ष में 24, तथा जिस वर्ष में पुरुषोत्तम मास हो उसमें 26 एकादशी आती हैं। सबों के नाम नीचे लिखे गये हैं।

मास	पक्ष तथा नाम	
	कृष्ण	शुक्ल
मार्गशीष	उत्पन्ना	मोक्षदा
पौष	सफला	पुत्रदा
माघ	षट्तिला	जया
फाल्गुन	विजया	आमलकी
चैत्र	पापमोचनी	कामदा
वैशाख	वरुथिनी	मोहिनी
ज्येष्ठ	अपरा	निर्जला
आषाढ़	योगिनी	शयनी
श्रावण	कामिका	पुत्रदा
भाद्रपद	अजा	पद्मा
अश्विन	इन्दिरा	पापांकशा
कार्तिक	रमा	प्रबोधिनी
पुरुषोत्तम	कमला	कामदा

यह तो पता ही है कि सनातन परम्परा में नववर्ष का शुभारंभ चैत्र शुक्ल

प्रतिपदा से होता है। चैत्र मास का कृष्ण पक्ष पिछले वर्ष का आखिरी पखवाड़ा होता है इसलिये हम चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नये वर्ष का प्रारंभ मानते हुए अपने पर्वों की पहली पिटारी वहीं खोलेंगे।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा- (संवत्सरारंभ : वासन्तिक नवरात्र, कुमारी पूजन)

यह तिथि किसी भी ज्योतिष शास्त्र प्रेमी के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि आज ही उन्हें नव वर्ष के पंचांग का श्रवण करना चाहिये। एक कथा के अनुसार पितामह ब्रह्मा ने सृष्टि निर्माण कार्य आज ही प्रारंभ किया था – **"चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि७। शुक्ल पक्षे समग्रे तु तदा सूर्योदये सति।।"**

एक अन्य कथा के अनुसार श्री नारायण प्रभु का पहला अवतरण इस पृथ्वी पर मत्स्य अवतार के रूप में आज की तिथि को ही हुआ था जब नक्षत्र था रेवती।

ब्रह्मा जी की पूजा हमेशा और प्रत्येक स्थान पर नहीं होती पर आज के दिन उनको विशेष रूप से प्रतिष्ठित करने का प्रावधान है। तैल उबटन लगाकर स्नान करके शुद्ध तथा पवित्र होकर गणेशादि की पूजा करके चौकी पर ब्रह्मा जी की सुवर्ण की मूर्त्ति स्थापित करके संकल्प लेने का मन्त्र है–

"मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य, स्वजनपरिजन सहितस्य वा आयुरारोग्यैश्वर्यादि पूजनमहं सकलशुभफलोत्तेरोत्तराभिवृद्ध्यर्थ ब्रह्मादि संवत्सरदेवतानां करिष्ये।"

इसके बाद ब्रह्माजी का आह्वान तथा षोडशोपचार आदि पूजन करने का विधान है। अन्त में वर्ष के शुभ होने के लिये किये जाने वाली प्रार्थना है–

"भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्ष क्षेममिहास्तु मे। संवत्सरोपसर्गा मे विलयंयान्त्वशेषतः।।"

इसके उपरान्त ब्राह्मणों आदि को भोजन करा कर नये वर्ष के पंचांग का पूजन करके उससे वर्ष के राजा, मंत्री, आदि दस अधिकारियों के फल सुनने चाहिये। कुछ लोग आज नया पंचांग भी दान में देते हैं। आयुर्वेद के मतानुसार आज के दिन नीम के किसलय (नयी पत्तियां) तथा नीम के फूल के साथ काली मिर्च, अजवाईन, हींग, सेंधा नमक, भुना जीरा और मिश्री पीस कर खाने से रक्त शुद्ध होता है तथा गर्मी में फोड़े, फुन्सियों से बचाव रहता है – चेचकादि जैसी बीमारियों से भी सुरक्षा रहती है।

(2) वासन्तिक नवरात्र : नववर्ष का प्रारंभ बहुत उल्लास से माँ शक्ति की आराधना के साथ किया जाता है। वर्ष में चार बार नवरात्र का उत्सव मनाने की परिपाटी है जिनमें दो प्रत्यक्ष (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तथा आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को प्रारंभ होने वाली) तथा दो गोपनीय (आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा तथा माघ शुक्ल प्रतिपदा

को प्रारंभ होने वाली) कहे गये हैं। नववर्ष में प्रारंभ होने वाले नवरात्र के आयोजन को वासन्तिक नवरात्र भी कहते हैं। स्थानाभाव के कारण इस उपासना की विधि समझने के लिये गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित दुर्गा सप्तशती को देखने की संस्तुति की जाती है।

कुमारी पूजन : यद्यपि आद्या शक्ति का पूजन नौ दिनों तक करने का विधान है किन्तु उत्तर भारत में कुछ लोग अष्टमी की सुबह कुँवारी कन्याओं को भोजन कराकर व्रत या पर्व का पारायण कर लेते हैं। यहाँ दो बातें स्पष्ट करना उचित होगा। पहली बात तो यह कि अष्टमी की पूजा में कोई दोष नहीं है परन्तु नवदुर्गा का पूजन करने वालों को नौ पाठ पूरे करने के बाद न सिर्फ कन्याओं, बल्कि बटुकों (छोटे ब्रह्मचारी लड़कों) को भी एक साथ पंक्ति में बैठाकर भोजन कराना चाहिये। इनके साथ श्री गणेश जी के लिये एक पत्तल लगानी चाहिये और उपस्थित बटुकों में किसी एक को श्री गणेश जी का स्वरूप मान कर वहाँ बैठाकर भोजन कराना चाहिये। तब के मन्त्र हैं, "**ऊँ गं गणपतये नमः, ऊँ वं वटुकाय नमः तथा ऊँ कुमार्यै नमः**" – इन मन्त्रों से पंचोपचार पूजा करके कुमारियों के आगे हाथ जोड़कर पढ़े जाने वाले मन्त्र हैं;

"मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम् !
नवादुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम्।।
जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्ति स्वरूपिणि।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते।।"

2. चैत्र शुक्ल नवमी (श्री राम नवमी) : शास्त्रों में कहा गया है कि मर्यादा पुरुषोत्तम दशरथ नंदन श्री राम का आज की तिथि को ही इस धरा पर आगमन हुआ। सुधी जन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को प्रारंभ करके आज मध्याह्न से पहले श्री राम चरित मानस अथवा वाल्मीकि रामायण या फिर आध्यात्म रामायण का पाठ नौ दिनों में पूरा करते हैं। कुछ लोग प्रत्येक दिन मात्र सुंदर काण्ड का पाठ ही करते हैं। राम नवमी के पूजन की संक्षिप्त व्यवस्था निम्नांकित है। नवमी तिथि को प्रातः काल ही उत्तर दिशा में चार द्वारों का मण्डप बनाना चाहिये जिसके पूर्व द्वार पर श्री हनुमान जी, शंख तथा चक्र; दक्षिण द्वार पर श्री गरुड़जी, वाण तथा धनुष, पच्छिम द्वार पर श्री अंगद जी, गदा और खड्ग तथा उत्तर द्वार पर श्री नील जी, पद्म (कमल) तथा स्वस्तिक की स्थापना करके (इनके चित्र लगाये जा सकते हैं) बीच में चार हाथ लम्बी और चार हाथ चौड़ी वेदी पर सर्वतोभद्र चक्र बनाने के बाद श्री राम दरबार लगाकर षोडशोपचार पूजन करना चाहिये। श्री राम चरित मानस में वर्णित "भये प्रकट कृपाला.." का पाठ स्थानीय मध्याह्न में करना चाहिये। कई स्थानों पर इस

मण्डप के पास वेद पाठादि भी किये जाते हैं। यदि नवमी को पुनर्वसु नक्षत्र पड़े तो अत्युत्तम कहा जाता है। नवरात्रि के नौ दिनों तक कई लोग प्रत्येक दिन नौ बार "श्री राम रक्षा स्तोत्र" का पाठ करते हैं। कहीं–कहीं रोज 'विष्णु सहस्त्रनाम' का पाठ भी किया जाता है। नववर्ष के प्रथम नौ दिन पूजन और भगवत् स्मरण में व्यतीत करना निश्चित रूप से अत्यन्त स्वस्थ्य परम्परा है।

3. अनंगत्रयोदशी : वर्ष के पहले प्रदोषव्रत का दिन होता है यह (भौम प्रदोष ऋण से छूटने के लिये, शनि प्रदोष सन्तान के लिये, सोम प्रदोष शान्ति के लिये और आयु/आरोग्य के लिये रवि प्रदोष की मान्यता है) जब अनंग (कामदेव), उनकी पत्नी रति तथा वसन्त की पूजा करके दम्पति सुख–सौभाग्य और सन्तान की प्राप्ति करते हैं। प्रदोष व्रत वर्ष भर, दोनों पक्षों में, पुरुष तथा स्त्री दोनों के द्वारा किया जाने वाला व्रत है। आज सवेरे सीता अशोक के दातुन से दाँत साफ करने चाहिये। अशोक में अद्भुत औषधीय गुण हैं जो सन्तानोत्पति में बहुत सहायक होते हैं अतः दोपहर में मदन देव की पूजा अशोक के फूलों से की जाती है। दाम्पत्य प्रेम्र के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण भगवान शंकर तथा माता पार्वती हैं। अतः शाम में व्रत का पारायण करना हो तो रुद्र पाठ अथवा रुद्राभिषेक करते है।

चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (श्री हनुमान जयन्ती) : हनुमान जी के जन्म के बारे में दो तिथियों की मान्यता है चैत्र शुक्ल पूर्णिमा तथा कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी। दक्षिण भारत में आज के दिन ही श्री हनुमान जी की जयन्ती मनाई जाती है। उत्तर भारत में भी कई हनुमान मंदिरों में आज के दिन ही रंगरोगन करके नयी पताका सजाई जाती है। श्री हनुमान जी पर सिन्दूर लेपन किया जाता है और उनका श्रृंगार करके सारा दिन उनकी स्तुति गायी जाती है। पूर्व रात्रि को ब्रह्मचर्य पालन करते हुए पृथ्वी पर शयन किया जाता है। ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर श्री राम–जानकी तथा हनुमान जी का ध्यान करना चाहिये। हनुमान जी की पूजा "**ऊँ हुनमंते नमः**" मन्त्र से भी की जाती है। वाल्मीकि रामायण में श्री हनुमान जी की बड़ी सुन्दर स्तुति है–

"जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राधवेणाभिपालितः।।
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमांशत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मनः।।
न रावणसहस्त्रं मे युद्ध प्रतिबलं भवेत्।
शिलामिश्चप्रहरतः पादयैश्रच सहस्त्रशा।।
अर्दयित्वा पुरीं लंकामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गभिष्यामि भिपतां सर्वरक्षासाम्।।

आम धारणा है कि इसी तिथि को श्री हनुमान जी लंका दहन करके वापस आये थे जिसके उपलक्ष्य में वानरों ने यह पर्व मनाया था अन्यथा हनुमान जी का जन्म कार्तिक कृष्ण चतुदर्शी को मानना चाहिये।

चैत्र शुक्ल तृतीया (सौभाग्यशयन-व्रत) : दक्ष प्रजापति की पुत्री सती (जिनका एक नाम ललिता देवी भी है) से इस तिथि को ही शंकर जी का विवाह हुआ था। सौभाग्य प्राप्ति के लिये शास्त्रों में बताया गया है कि आज दम्पति या व्रती को प्रातः तिल मिश्रित जल से स्वयं स्नान करके सती तथा भगवान शंकर को पंचगव्य (गाय का घी, दूध, दही, मूत्र तथा गोबर) एवं चंदन मिश्रित जल से स्नान कराके षोडशोपचार पूजन कराना चाहिये। इसके बाद दोनों के नाम मन्त्रों से सभी अंगों का पूजन करना चाहिये। इसके उपरान्त शिव तथा पार्वती जी के आगे सौभाग्याष्टक रखना चाहिये। सौभाग्याष्टक का अर्थ है निम्नांकित आठ पदार्थ – ईख, पारा, सेम की फली, शालि या अगहनी, जीरा तथा नमक। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि विष्णु के वक्षस्थल में समस्त प्राणियों का सौभाग्य शयन कर रहा था और जब वह गल कर गिर रहा था तभी सती के पिता दक्ष प्रजापति ने आकाश में ही रोक कर उसे पी लिया। जो बचा हुआ अंश पृथ्वी पर गिरा वह आठ भागों में बंट कर सौभाग्याष्टक कहलाया। सौभाग्य रस पीने से ही सती का जन्म हुआ था। राजस्थान में यह उत्सव गणगौर के नाम से भी मनाते हैं।

वैशाख मास में कई व्रतों का चलन है पर उनमे से कुछ सर्वाधिक लोकप्रिय व्रतों की चर्चा की जा रही है।

वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) : भारतीय परम्परा में चार तिथियाँ स्वयंसिद्ध मानी जाती हैं। वे हैं क्रमशः चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, अक्षय तृतीया, दशहरा और दीपावली के पूर्व की प्रदोष तिथि।

अक्षय तृतीया को दिये गये दान तथा किये गये स्नान, होम, जप, पूजन, पाठ आदि का फल अनन्त होता है। इसी तिथि को त्रेतायुग आरंभ हुआ था – इसी तिथि को नर–नारायण, हयग्रीव तथा परशुराम का अवतार भी हुआ था। इसलिये इस दिन तीनों जयंतियाँ मनाई जाती हैं। सवेरे स्नानादि करके **''ममाखिलपापक्षयपूर्वक सकलशुभफलप्राप्तये भगवत्प्रीतिकामनया देवत्रयपूजनमहं करिष्ये''** मंत्र पढें।

इसके बाद तीनों देवताओं के लिये षोडशोपचार करके नर–नारायण के लिये भुने जौ या गेहूँ का सत्तू, श्री भगवान परशुराम के निमित्त ककड़ी तथा हयग्रीव भगवान के लिये भीगी हुई चने की दाल का प्रसाद चढ़ाते हैं। वर्षा विज्ञान अध्याय में हमने देखा कि इसी दिन मौसम तथा धन धान्यादि का परीक्षण करके वर्षा ऋतु

आदि का आकलन किया जाता है। इस दिन समुद्र स्नान या गंगा स्नान करने से अनन्त स्नान का फल मिलता है। शास्त्रों के अुनसार इस दिन कई प्रकार के रस, ग्रीष्म ऋतु के उपयोग की वस्तुएँ आदि दान करना चाहिये तथा पितृश्राद्ध और ब्राह्मण भोजन भी।

वैशाख शुक्ल सप्तमी (निम्ब सप्तमी, कमल सप्तमी, शर्करा सप्तमी): वैशाख शुक्ल तृतीया की भांति वैशाख शुक्ल सप्तमी को भी तीन–तीन पर्व मनाने का विधान है। जैसा कि नामों से स्पष्ट है, निम्ब सप्तमी के दिन अक्रोध और जितेन्द्रिय रहकर नीम के पत्ते खाये जाते हैं जिसका मन्त्र है "**निम्बपल्लव भद्रं ते सुभद्रं तेऽस्तु वै सदा। ममापि कुरु भद्रं वै प्राशनाद् रोगहा भव।।**" यह स्वास्थ्यवर्द्धक माना जाता है। इस तिथि को सुवर्ण कमल पर सुवर्ण की सूर्य भगवान की मूर्ति स्थापित करके उनके पूजन का विधान भी शास्त्रों में बताया गया है जिसका मन्त्र है, "**नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे। दिवाकर नमस्तुभयं प्रभाकर नमोऽस्तुते।**" इस प्रकार प्रार्थना करके सूर्यास्त के समय एक जल का घड़ा, एक गौ, कमल आदि ब्राह्मण को दान किया जाता है। ऐसा प्रत्येक माह शुक्ल सप्तमी को वर्ष भर करने से सब प्रकार का सुख प्राप्त होता है।

आयु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये आज के दिन सफेद तिल मिश्रित जल से स्नान करके सफेद वस्त्र पहन कर एक वेदी पर कुंकुम से अष्ट दल बनाकर उसका पूजन '**ॐ नमः सावित्रे**' मन्त्र से किया जाता है। इसके ऊपर खाण्ड से भरा सुवर्ण युक्त कोरा घड़ा रखकर उसे सफेद वस्त्र से ढक कर पूजा करने का मन्त्र है "**विश्वदेवमयो यस्माद्वेदवादीति पठ्यसे। त्वमतेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सनातन।।**"

वैशाख शुक्ल नवमी (श्री जानकी नवमी) : ऐसी मान्यता है कि आज की तिथि को, मंगलवार के दिन, मध्याह्न काल, पुष्य नक्षत्र में माता जानकी का जन्म हुआ था। आज श्री जनक जी, श्री सुनयना जी (श्री सीता जी की माता) उनके कुल गुरु श्री शतानन्द जी, श्री हल (जिससे जमीन जोती जाती है तथा जिसका एक नाम सीता भी है) तथा पृथ्वी की पूजा करने का विधान है। सीता जी की पूजा तो विशेष रूप से की ही जाती है।

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी (श्री नृसिंह चतुर्दशी) : इस तिथि को प्रह्लाद को सुरक्षा देने भगवान का अवतार नृसिंह के रूप में हुआ था इसलिये उनकी विशेष पूजा का विधान है।

ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या (वट सावित्री व्रत) : आज के दिन सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने सौभाग्य की रक्षा के लिये वट वृक्ष की पूजा करती हैं। त्रयोदशी के दिन स्त्रियाँ

वट वृक्ष के नीचे संकल्प करती हैं, **''मम वैधव्यादिसकलदोषपरिहारार्थ ब्रह्म सावित्री प्रीत्यर्थं सत्यवत्सावित्री प्रीत्यर्थं च वटसावित्री व्रतमहं करिष्ये।''** फिर यथा–शक्ति उपवास करके अमावस्या के दिन बाँस की टोकरी में सत्यवान तथा सावित्री की प्रतिमा स्थापित करके वट वृक्ष के नीचे इनकी, यमराज तथा ब्रह्मा जी की (ब्रह्म सावित्री सहित) पूजा करते हैं। वट वृक्ष की परिक्रमा करते समय 108 बार सूत लपेटा जाता है। तब पढ़ा जाने वाला मन्त्र है ''**नमो वैवस्तताय**'' तथा अन्त में देवी सावित्री को ''**अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते। पुत्रान् पौत्रांश्च सौख्यं च गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते।**'' मन्त्र से अर्घ्य दिया जाता है। इसके बाद वट वृक्ष की जड़ों में पानी डालने का विधान है जिसका मन्त्र है **''यथा शाखाप्रशाखाभिर्वृद्धोऽसि त्वं मही तले। तथा पुत्रैश्च पौत्रैच सम्पन्नं कुरु मां सदा।''** कथा बहुत संक्षेप में है कि राजा अश्वपति की पुत्री सावित्री ने राज द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान का वरण किया था जिसकी मृत्यु विवाह के एक वर्ष बाद होनी थी। निश्चित समय में जब यमराज सत्यवान का सूक्ष्म शरीर लेकर चले तो सावित्री भी उनके साथ चली और अपनी दृढ़ता के कारण यमराज को प्रसन्न करके उसने अपने अंधे सास–ससुर की दृष्टि, पति का जीवन और अपने लिये सौ पुत्र प्राप्त किये।

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी (श्री गंगा दशहरा) : आज के दिन सर्व पाप विमोचिनी माँ गंगा का पृथ्वी पर अवतरण राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को मुक्ति दिलाने के लिये हुआ था। संक्षिप्त कथा है कि भगवान राम के पूर्वज, राजा सगर की दो पत्नियों क्रमशः केशिनी को असमंजस नाम का एक तथा सुमति को साठ हजार उद्दण्ड पुत्र थे। असमंजस का पुत्र अंशुमान धार्मिक था। राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा इन्द्र ने चुरा कर पाताल लोक में स्थित कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया जहां जाकर सगर के साठ हजार पुत्रों ने कपिल मुनि की हत्या का प्रयास किया परन्तु ऋषि के तेज से राख हो गये। सगर के ही पौत्र अंशुमान् घोड़ा लेकर वापस गये, यज्ञ पूरा किया और अपने पुत्र दिलीप को राज्य देकर स्वयं पितरों की मुक्ति की प्रार्थना करते–करते मर गये। दिलीप ने भी अपने लड़के भगीरथ को राज्य सौंप कर वैसा ही किया। भगीरथ की तपस्या से ब्रह्माजी ने गंगा को पृथ्वी पर आने का आशीर्वाद दिया। शिवजी की जटाओं से उतरने के बाद जह्नु ऋषि के कान से निकल कर गंगा जी ने सगर के पुत्रों को मुक्ति दी। आज के दिन यदि दस ज्योतिषीय योग (1 ज्येष्ठ मास, 2 शुक्ल पक्ष, 3 दशमी तिथि, 4 बुध या सोमवार, 5 हस्त नक्षत्र, 6 व्यतिपात योग, 7 गर करण, 8 आनन्द योग, 9 वृषभ में सूर्य तथा 10 कन्या में चन्द्रमा हो तो अपूर्व योग बन जाता है। यदि ज्येष्ठ अधिक मास हो, तो मलमास की शुक्ल दशमी को इस पर्व को मनाना अधिक श्रेष्ठ माना गया है। 26 मई 2007 को ऐसा ही समय था। **''ऊँ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै नमः।''**

मन्त्र से आह्वान पूजन करके इसी मन्त्र से (नमः के बदले स्वाहा बोलकर) हवन करना चाहिये। फिर आखिरी पाँच आहुतियों से पुष्पांजली देने का मन्त्र है, **''ऊँ नमो भगवति ऐं ह्रीं श्रीं हिलि हिलि मिलि मिलि गंगे मां पावय पावय स्वाहा।''** बाद में भगीरथ और हिमालय की पूजा करके दस फल, दस दीपक और दस सेर तिल का दान **''गंगायै नमः''** कहकर करना चाहिये जिससे तीन प्रकार के कायिक, तीन प्रकार के मानसिक और चार प्रकार के वाचिक (कुल दस) पापों का नाश होता है।

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी (निर्जला - भीमसैनी एकादशी) : मलमास को जोड़कर वर्ष के छब्बीस एकादशियों में पचीस नहीं करने पर भी यह एक एकादशी व्रत करने से शेष सभी एकादशियों के फल प्राप्त हो जाते हैं। भूख के कारण भीम से व्रत उपवास नहीं हो पाते थे। व्यास जी ने उन्हें इसी एक व्रत को करने को कहा इसलिये इसे भीमसैनी एकादशी भी कहा जाता है। इस व्रत में निर्जल रहने का विधान है।

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया (श्री जगन्नाथ की रथ यात्रा) : आज के दिन भगवान जगन्नाथ जी, बलभद्र जी और सुभद्रा जी की रथ यात्रा निकाली जाती है।

आषाढ़ शुक्ल एकादशी (हरि शयनी एकादशी) : आज के दिन से चार मास पर्यन्त भगवान सोते हैं, इसलिये आज का नाम हरि शयनी या देवशयनी एकादशी हैं। इन चार मासों में प्रत्येक दिन 'पुरुष सूक्त' का जप करना चाहिये। कोई इच्छित वस्तु का त्याग करना भी इन चार मासों में श्रेष्ठ माना जाता है। कुछ लोग इन चार मास में नमक का प्रयोग छोड़ देते हैं। चातुर्मास में विष्णु सूक्त के मंत्रों से प्रत्येक दिन तिल और चावल की आहुति देने का विधान भी है। ऐसो मान्यता है कि भगवान का सोना रात्रि में, करवट बदलना संधि में तथा जगना दिन में होता है। आषाढ़ में अनुराधा नक्षत्र के पहले तिहाई हिस्से में (उस दिन एकादशी होती है) शयन, भाद्रपद की एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र के बीच वाले तिहाई हिस्से में करवट बदलना तथा कार्तिक की शुक्ल पक्ष एकादशी के दिन रेवती नक्षत्र के अन्तिम तिहाई हिस्से में भगवान का जागना होता है। उस समय ही पारायण करना चाहिये।

आषाढ़ शुक्ल द्वादशी (श्री वामन द्वादशी) : महाभारत के आख्यान के अनुसार आज शालिग्राम जी का पूजन पुरुष सूक्त के मंत्रों से करने से वामन भगवान प्रसन्न होते हैं। पूजा षोडशोपचार से की जाती है।

आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा (गुरु पूर्णिमा, व्यास पूर्णिमा, वायु धारिणी पूर्णिमा, शिवशयन व्रत, कोकिला व्रत) : यह तिथि अनेकानेक व्रतों, उत्सवों वाली है। ऋषि पराशर के पुत्र व्यास जी का जन्म आज ही हुआ माना जाता है। आज ही गुरु परम्परा की पूजा भी की जाती है। शिष्यों के लिये यह परम पावन तिथि है।

ज्योतिषियों के लिए मेदनीय भविष्यवाणी की बहुत सारी सूचनाएँ आज की सन्ध्या के वायु संचार तथा अलग–अलग धान्यों के वजन में बढ़ोत्तरी, कमी से प्राप्त होती हैं। अक्षय तृतीया की भांति यह तिथि भी मौसम की भविष्यवाणी में बहुत सहायक होती है। वामन पुराण के अनुसार आज के दिन शिवजी सिंह के चर्म पर शयन करते हैं अतः शिवपूजन करके रुद्राभिषेक भी करने का चलन देखा गया है। कोकिला व्रत आषाढ़ पूर्णिमा से प्रारंभ होकर श्रावण पूर्णिमा तक चलता है जिसमें स्त्रियों के स्वास्थ्य की रक्षा का विशेष विधान है। इस दिन स्त्रियाँ सन्ध्या में किसी नदी या तालाब के किनारे संकल्प करती हैं, **''मम धनधान्यादिसहितसौभाग्यप्राप्तये शिवतुष्टये च कोकिला व्रतमहं करिष्ये।''** इसमें पहले आठ दिनों में भीगे और पिसे हुए आँवलों में सुगन्ध युक्त तिल तेल मिलाकर उसे शरीर में लेपकर नहाया जाता है। अगले आठ दिनों तक भिगो कर पिसी हुई मुरामांसी और वच–कुष्टादि दस औषधियों को शरीर में लेपकर स्नान किया जाता है। बाद में आठ दिनों तक गीले पिसे हुए वच के जल से और अन्तिम छः दिनों में पिसे हुए तिल–आँवला और सर्वोषधि से स्नान करते हैं। इस क्रम में रोज पीठे के बने कोयल की पूजा की जाती है। कोयल गौरी का प्रतीक है।

श्रावण शुक्ल पंचमी (नाग पंचमी) : आज के दिन नागों के देवता वासुकि की पूजा की जाती है। कई स्थानों में घर के द्वार के दोनों ओर गोबर का सर्प बनाकर उनका दही, दूर्वा, कुश, अक्षत, पुष्प, गन्ध, जूआ और लड्डू से पूजन करने का विधान भी है।

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा (श्रवण पूर्णिमा, रक्षाबन्धन, हयग्रीव एवं अगस्त्य अवतरण तिथि तथा ऋषितर्पण) : आज के दिन ही मातृ–पितृ भक्त श्रवण कुमार की अज्ञानवश हत्या करने के उपरान्त राजा दशरथ जी ने प्रायश्चित स्वरूप श्रावण पूर्णिमा को व्रत किया था जिससे उनके दुःख कम हुए थे। एक बार देवतागण बारह वर्षों तक युद्ध करके भी दानवों को पराजित नहीं कर सके। तब आज के दिन इन्द्राणी ने इन्द्र को रक्षा सूत्र बाँध कर युद्ध के लिये भेजा। इन्द्र विजयी हुए। तब से रेशम के कपड़े में सरसों, सोना, केसर, चन्दन, अक्षत और दूर्वा रखकर उसे रंगीन सूत के डोर में बाँधा जाता है जिसे रक्षा कहते हैं। इसकी पूजा करके इसे राजा, मंत्री, शिष्यादि की दाहिनी कलाई में बाँधा जाता है। **''येन बद्धो बली राजा, दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामनुबन्धामि रक्षे मा चल मा चल।''** वर्तमान युग में यह रक्षा बहनों द्वारा भाइयों को बाँधी जाती है तथा भाई बहनों की रक्षा का वचन देते हैं।

वेदाभ्यासी छात्रों के लिये आज का दिन वेदपारायण का शुभारंभ तथा ऋषियों के लिये तर्पण करने का होता है। आज ही अगले वर्ष के अध्ययन क्रम की रूपरेखा बनाई जाती है। यह पर्व मुख्य रूप से ब्राह्मणों का होता है। पूर्व काल में, आज से

प्रारंभ करके साढ़े चार मास तक नित्य वेदपारायण का विधान था। अब यह संभव नहीं रहता तो वैसे सभी जाति के लोग, जिन्हें संस्कारों में आस्था है, छात्र तथा ब्राह्मण गण गंगा जी अथवा किसी तीर्थ स्थल पर जाकर सामूहिक रूप से पंचगव्य खाकर प्रायश्चित (वेद न पढ़ने के कारण हुए पाप का) करते हैं। तत्पश्चात् संकल्प, मन्त्रपाठ, शुद्धि स्नान आदि के उपरान्त सप्तऋषियों का पूजन उनकी पत्नियों सहित, सूर्य की उपासना, ऋषि तर्पण आदि करते हैं। फिर नये यज्ञोपवीत का पूजन करते हैं तथा पितरों एवं गुरुजनों को यज्ञोपवीत दान करके स्वयं नया यज्ञोपवीत पहनते हैं। आज नये यज्ञोपवीत पहने जाते हैं। आज ही हयग्रीव तथा अगस्त्य ऋषि के अवतरण की भी चर्चा आती है जिनको प्रातः काल में स्मरण करना अच्छा मानते हैं।

भाद्रपद कृष्ण षष्ठी (हल षष्ठी) : आज श्री बलराम जी के जन्मोत्सव के रूप में हल की पूजा की जाती है।

भाद्रपद कृष्ण अष्टमी (श्री जन्माष्टमी, कालाष्टमी, उमा महेश्वर व्रत) : इस दिन भगवान कृष्ण का जन्म दिन माना जाता है। सवेरे संकल्प लेकर (**"ममाखिलपापप्रशमनपूर्वकसर्वाभीष्टसिद्धये श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतमहं करिष्ये"**) दोपहर में काले तिलों के जल से स्नान करके देवकी जी के लिये प्रसूति गृह बनाते हैं। षोडशोपचार से देवकी, वासुदेव, वसुदेव, बलदेव, नन्द, यशोदा तथा लक्ष्मी जी का पूजन किया जाता है। सारा दिन उपवास के बाद उचित समय पर "**प्रणमे देवजननीं त्वया जातस्तु वामनः। वसुदेवात् तथा कृष्णो नमस्तुभ्यं नमो नमः। सुपुत्रार्घ्यं प्रदत्तं मे गृहाणेमं नमोऽस्तु ते।**" से देवकी को अर्घ्य देते हैं, बाद में "**धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्म सम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।**" मंत्र से श्री कृष्ण ज़ी को पुष्पांजली अर्पित करते हैं। इसके बाद जातकर्म, नालच्छेदन, षष्ठीपूजन एव नामकरण तथा अन्न प्राशन तक के संस्कार किये जाते हैं। उसके बाद एक शंख में जल, कुशा, फूल, गन्ध, अक्षत तथा फल डालकर चन्द्रमा की पूजा की जाती है। "**सोमाय सोमेश्वराय सोमपतये सोमसम्भवाय सोमाय नमो नमः।**" तथा शंख के जल से चन्द्रमा को अर्घ्य देते हैं – **क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्र समुद्भ्व। गृहाणार्घ्यं शशांकेमं रोहिण्या सहितो मम। ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते। नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम्।।** इस प्रकार रात भर भजन कीर्त्तन करके सवेरे अष्टमी तिथि बीत जाने के बाद पारायण करने का विधान है। यह व्रत सबों को करना चाहिये। उमा महेश्वर तथा कालाष्टमीः ये दोनों एक ही व्रत हैं जो भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी को किये जाते हैं। इस दिन उमा महेश्वर की पूजा शाम में की जाती है। हाँ, यदि उस तिथि को मृगशिरा नक्षत्र हो तो शिवपूजन का विशेष महत्व हो जाता है, तब इसे कालाष्टमी कहते हैं।

भाद्रपद कृष्ण अमावास्या (कुश ग्रहणी अथवा कुशोत्पाटिनी): आज के दिन वर्ष भर के लिये कुशा इकट्ठा करने का प्रावधान है। कुशा सर्वधा पवित्र मानी जाती है तथा इसका प्रयोग देव एवं पितृ दोनों कर्मों में होता है। अमावास्या को पूरब या उत्तर मुख बैठकर दाहिने हाथ से जड़ सहित कुशा उखाड़नी चाहिये जिसका मन्त्र है, "**विरंचिना सहोत्पन्न परमेष्ठिन्निसर्गज। नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव।। हुं फट्।**' कुशा के दस प्रकार बताये गये हैं। "**कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुन्दकाः। गोधूमा ब्राह्मयो मौञ्जा दश दर्भाः सबल्वजाः।।**"

भाद्रपद शुक्ल पक्ष तृतीया (हरि तालिका व्रत) : स्त्रियों द्वारा उमा महेश्वर की पूजा के हेतु किया ज़ाने वाला यह व्रत चौबीस घन्टों से अधिक लम्बा होता है इस पर विस्तार से चर्चा संभव नहीं है। व्रत के विधान के लिये कृपया हरि–तालिका व्रत की पुस्तक देखें।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष चतुर्थी (कलंक चतुर्थी) : यह कोई व्रत की तिथि नहीं किन्तु यह एक विशेष तिथि है। आज चन्द्रमा देखना मना होता है। कहते हैं आज के दिन चन्द्रमा दर्शन करने से श्री कृष्ण तक को कलंक लगा था इसलिये आज की तिथि का नाम कलंक चतुर्थी भी है।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी (राधाष्टमी) : आज के दिन श्री राधाजी के जन्म का उत्सव मनाते हैं। (श्री कृष्ण का जन्म भाद्रपद कृष्णाष्टमी को हुआ था) इस व्रत को करने से मनुष्य राधाजी के सानिध्य को पाता है तथा व्रज के रहस्य को समझ लेता है। सवेरे पाँच रंगों के चूर्ण से सोलह दल का कमल मण्डप के भीतर बनाकर उस पर ताम्बे या मिट्टी का कलश स्थापित करके उस पर ताम्बे का पात्र रख कर उसके ऊपर, दो वस्त्रों से ढकी हुई, राधा जी की प्रतिमा स्थापित करते हैं। इसके बाद षोडशोपचार पूजन आदि ठीक दोहपर में (जब राधाजी का जन्म हुआ था) करते हैं। आज सारा दिन उपवास रखकर अगली सुबह भक्तिपूर्वक स्त्रियों को भोजन कराते हैं तथा आचार्य को प्रतिमा दान कर देते हैं।

भाद्रपद शुक्ल दशमी (दशावतार व्रत) : आज के दिन स्नानादि के उपरान्त देव तथा पितरों का तर्पण करके दशावतारों की मूर्तियों का विधिवत पूजन किया जाता है। उन्हें तीस पूओं का भोग लगाया जाता है (देवता, ब्राह्मण तथा व्रती प्रत्येक के लिये दस।) यह व्रत दस वर्षों तक किया जाता है जिससे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है।

भाद्रपद शुक्ल एकादशी (कटिपरिवर्तन) : आज शयन में लीन भगवान को करवट बदलाया जाता है। भगवान की मूर्ति को जुलूस बना कर तालाब तक ले जाते

हैं। गायन, नृत्य, वादन चलते ही रहते हैं। उन्हें झूला झुलाया जाता है फिर वापस घर ले आते हैं। शाम में पूजा और आरती की जाती है। रात में उन्हें दाहिने करवट लिटाया जाता है तथा स्वयं जागरण करते हैं। अगले दिन, सवेरे उनकी आराधना का मन्त्र है– **''वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव। पार्श्वेन परिवर्त्तस्व सुखं स्वपिहि माधव।।''**

भाद्रपद शुक्ल द्वादशी (वामन जयन्ती) : अदित के गर्भ से हुए वामनावतार के समय श्रवण नक्षत्र तथा अभिजित् मुहूर्त्त था। आज मध्याह्न के समय वामन भगवान का षोडशोपचार पूजन करके उनकी कथा सुनी जाती है। मिट्टी के पात्र में ब्राह्मण को दही, चावल (कहीं कहीं चूड़ा भी) तथा शक्कर का दान दिया जाता है। इस दिन फलाहार करके अगले दिन पारायण करते हैं।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष चतुर्दशी (श्री अनन्त चतुर्दशी) : यह व्रत भी बहुत सुन्दर है। सवेरे स्नान करके संकल्प किया जाता है जिसका मन्त्र है– **''ममखिलपापक्षयपूर्वकशुभफलवृद्धये श्रीमदनन्तप्रीति कामनया अनन्तव्रतमहं करिष्ये।''** श्री अनन्त भगवान शेषनाग के प्रतीक हैं। एक चौकी या मण्डप बनाकर सात फणों वाली शेष नाग जैसी श्री अनन्त भगवान की मूर्ति की पूजा की जाती है। इसमें चौदह गाँठों वाली डोरी रखी जाती है जिसे अनन्त कहते हैं। इन डोरियों का पूजन किया जाता है तथा अनन्त भगवान की कथा पढ़ी जाती है। **''नमस्ते देव देवेश नमस्ते धरणी धर। नमस्ते सर्व नागेन्द्र नमस्ते पुरूषोत्तम।।''** इस मन्त्र से प्रार्थना करके **''न्यूनातिरिक्तानि परिस्फुटानि यानीह कर्माणि मया कृतानि। सर्वाणि चैतानि मम क्षमस्व प्रयाहि तुष्टः पुनरागमाय।''** आज नमक रहित भोजन करने का विधान है। इस व्रत को चौदह वर्षों तक प्रत्येक वर्ष किया जाता है। इसके उद्यापन में सर्वतोभद्र चक्र बनाते हैं जिसपर कलश स्थापना करके अनन्त भगवान की मूर्ति या चौदह गाँठों वाली डोर स्थापित करते हैं। इनका वेद मन्त्रों से पूजन करके हवन किया जाता है। हवन के बाद गौदान, शय्यादान, अन्नदान करके चौदह जोड़े (पति–पत्नी) ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

आश्विन कृष्ण पक्ष (पितृ पक्ष या श्राद्ध पक्ष) : कुछ लोग इस पक्ष को महालय पक्ष भी कहते हैं। इस पक्ष में देवताओं, ऋषियों तथा पितरों को प्रतिदिन जलांजलि देने तथा अपने पितरों का श्राद्ध करने का विधान है। भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा से प्रारंभ करके आश्विन कृष्ण अमावस्या तक सोलह दिनों में अपने परिजन की मृत्यु की तिथि को (चाहे वह किसी भी मास के किसी भी पक्ष की क्यों न हो) श्राद्ध, तर्पण, गोग्रास तथा ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। पितर इससे प्रसन्न होते हैं। श्राद्ध संस्कार किसी श्रेष्ठ या ज्ञानी पंडित की देखरेख में कराया जाना चाहिये। इसमें कोई विशेष खर्च

नहीं आता क्योंकि इसमें तिल, जल, जौ, पुष्प और कुशा का प्रयोग किया जाता है। मात्र श्रद्धा की आवश्यकता होती है। इनमें मुख्य तिथियाँ नवमी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावस्या हैं जिन्हें क्रमशः सौभाग्यवती, संन्यासी, पितृ, दुर्मरण (अकाल मृत्यु) तथा मातामह श्राद्ध के नाम से जाना जाता है जब नामों के अनुरूप श्राद्ध कर्म किये जाते हैं।

आश्विन शुक्ल पक्ष प्रतिपदा (नवरात्रव्रतारंभ, अशोक व्रत) : आज शारदीय नवरात्र प्रारंभ होते हैं। जैसे पहले कहा गया है, इस पूजन के लिये गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित दुर्गा सप्तशती का अवलोकन करना श्रेष्ठ है।

आज के दिन सीताजी ने अशोक वाटिका में यह व्रत अशोक वृक्ष के नीचे किया था जिससे उनके सभी शोक नष्ट हो गये थे। इसलिये आज नये पत्तों वाले अशोक वृक्ष (अशोक वृक्ष की पत्तियाँ तथा छाल बहुत उत्तम औषधि का कार्य करते हैं। विशेष रूप से स्त्री रोगों में तो ये रामबाण कहे जाते हैं) की पूजा की जाती है तथा **''अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले''** अर्थात् हे अशोक, समस्त कुल में कभी शोक न हो, कह कर अशोक वृक्ष को अर्घ्य दिया जाता है।

आश्विन शुक्ल सप्तमी (सरस्वती शयन सप्तमी) : आज से नवमी पर्यन्त देवी सरस्वती जी को शयन कराया जाता है। इन दिनों पुस्तकों तथा कलम आदि लेखन सामग्री की पूजा की जाती है तथा दशमी के प्रातः तक लिखना–पढ़ना बन्द रखा जाता है।

आश्विन शुक्ल पूर्णिमा (शरत्पूर्णिमा, वाल्मीकि जयन्ती, कार्त्तिक स्नानारंभ) : आज की मध्य रात्रि में पूर्ण चन्द्रमा को गाय के दूध में बनी खीर में घी तथा खाण्ड मिलाकर अर्पण किया जाता है। रात भर इस प्रकार ठण्डी की गयी खीर सवेरे खायी जाती है। आज ही ऋषि वाल्मीकि की जयन्ती मनाई जाती है तथा आज से कार्त्तिक मास का स्नान प्रारंभ होता है।

कार्त्तिक कृष्ण चतुर्थी (करवा चौथ, दशरथ पूजा) : इस तिथि को विवाहिता, नवविवाहिता स्त्री का सर्वाधिक लोकप्रिय व्रत करवा चौथ मनाया जाता है जो पति की सुरक्षा के लिये चन्द्रोदय तक निर्जला रहकर किया जाता है। सवेरे संकल्प करके ''**मम सुखसौभाग्यपुत्रपौत्रादिसुस्थिरश्रीप्राप्तये करकचतुर्थीव्रतमहं करिष्ये।**'' वेदी बनाकर उसपर सौभाग्य सूचक पीपल के वृक्ष की आकृति उकेरी जाती है तथा वहाँ शिव–पार्वती तथा उनके पुत्र कार्त्तिकेय (षण्मुख भगवान) की मूर्ति रखकर षोडशोपचार पूजन किया जाता है। शिवा (पार्वती) का मन्त्र है ''**नमः शिवायै शर्वाण्यै सौभाग्यं संततिं शुभाम्। प्रयच्छ भक्तियुक्तानां नारीणां हर वल्लभे।**'' शिवजी तथा कार्त्तिकेय जी का षोडशोपचार से पूजन करके **''नमः शिवाय''** तथा **''षण्मुखाय**

नमः" मंत्रों से पूजन किया जाता है। शाम में चन्द्रमा को अर्घ्य देकर व्रत तोड़ा जाता है। आज ही दशरथ जी का पूजन करने का विधान भी है।

कार्त्तिक कृष्ण द्वादशी (गोवत्सद्वादशी; नीराजन द्वादशी) : आज शाम में लौटकर आयी गायों तथा बछड़ों का पूजन पुष्प, गन्ध आदि से करके उन्हें अर्घ्य दिया जाता है जिसका मंत्र है, "**क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते। सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते।**" दरअसल यह क्षीर सागर मंथन के दौरान निकली कामधेनु गाय की आराधना का मन्त्र है। अगला मंत्र उनकी पुत्री नन्दिनी गौ के लिये है जो वशिष्ठ ऋषि के पास थी। फिर प्रार्थना में कहा जाता है, "**सर्व देवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते। मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि।**" उस दिन गाय के दूध के बने पदार्थों का भोजन नहीं किया जाता है।

नीराजन का अर्थ है आरती। आज के दिन से लेकर पाँच दिनों तक देवता, ब्राह्मण, बड़े–बूढे, माता आदि की आरती उतारनी चाहिये।

कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी (यम दीपदान, धनतेरस, धनवंतरी जयन्ती) : आज की सन्ध्या में दीपकों का पूजन किया जाता है। इन में तिल का तेल भरकर रूई की बाती रखकर इन्हें जला कर दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके यम से याचना की जाती है "**मृत्युना दण्डपाशाभ्यां कालेन श्यामया सह। त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतां मम।**" इन दीपों का दान किया जाता है।

धनतेरस का अर्थ है धन–धान्य का त्रयोदशी को पूजन; इसलिये आज के दिन घर के द्वार पर अन्न की ढेरी रखकर उस पर तैल पूरित दीपक रख दिया जाता है जिसे रात भर जलते रहना चाहिये। आज ही वैद्यराज धनवंतरी की उपासना भी की जाती है। कहा जाता है कि समुद्र मन्थन के समय अमृत कलश हाथों में लेकर धनवंतरी ही समुद्र से निकले थे।

कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी (हनुमज्जन्म-महोत्सव, यम तर्पण, नरक चतुर्दशी, दीपदान) : हनुमान जयंती आज क्यों मनाई जाती है यह हम चैत्र पूर्णिमा के वर्णन में बता चुके हैं। एक अन्य कथा के अनुसार लंका विजय के उपरान्त अयोध्या में राम–राज्य की स्थापना हुई और माता सीता ने हनुमान जी को अपने गले की माला पारितोषिक स्वरूप दी पर उसमें राम नाम ढूँढने के लिये हनुमान जी ने मोतियों को अपने दाँतों से तोड़ डाला। तब सीता जी ने अपना सौभाग्य सूचक सिन्दूर उन्हें दिया जो श्री राम की रक्षा के लिए था। हनुमान जी ने उसे धारण कर लिया – सारे शरीर पर पोत लिया। इसलिये हनुमान जी के शरीर पर सिन्दूर और तैल पोतते हैं। आज की सन्ध्या दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके यमराज के चौदह नामों का उच्चारण किया जाता है – **यमाय नमः, धर्मराजाय नमः, मृत्यवे नमः, अनन्ताय नमः,**

वैवस्वताय नमः, कालाय नमः, सर्वभूतक्षयाय नमः, औदुम्बराय नमः, दघ्नाय नमः, नीलाय नमः, परमेष्ठिने नमः, वृकोदराय नमः, चित्राय नमः तथा चित्रगुप्ताय नमः। इस समय सफेद तिल (देवताओं के लिये) तथा काले तिल (पितरों के लिये) सहित जल से अंजली दी जाती है। यज्ञोपवीत को कण्ठी की तरह रखना पड़ता है। यम में (धर्मराज होने के कारण) देवता के तत्त्व तथा (मृत्यु के स्वामी होने के कारण) पितरों के तत्त्व भी होते हैं। इसलिये सफेद और काले, दोनों प्रकार के तिलों का प्रयोग किया जाता है।

नरक चतुर्दशी भी आज ही होती है जिसके लिये चौमुखी तेल का दीपक पूरब की ओर मुँह करके खड़े होकर जलाया जाता है फिर इसे दान में दे दिया जाता है। मन्त्र है **"दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीयते मया। चतुर्वर्ति समायुक्तः सर्वपापापनुत्तये।"** नरक चतुर्दशी को ऐसे लोगों की सद्गति की प्रार्थना की जाती है जो उल्का (आकाश से गिरी अग्नि) या अग्नि से जलकर मरे होते हैं। इसके लिये आतिशबाजी आदि क़ी बनी हुई उल्का का दान करते हैं। **"अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। उज्जवलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम्।।"** फिर दीपदान का विधान भी आज ही होता है। आज तिल तेल से भरे हुये चौदह दीपक दान में दिये जाते हैं। **"यममार्गान्धकारनिवारणार्थे चतुर्दशदीपानां दानं करिष्ये।"** इसके बाद मंदिर से प्रारंभ करके बाग, बगीचे, गली आदि सूने स्थानों में यमराज के मार्ग को प्रकाशित करने के लिये दीपक जलाये जाते हैं।

कार्त्तिकी अमावस्या (दीपावली, कौमुदी महोत्सव, लक्ष्मीपूजन, कुबेर पूजन): यह बड़ा महत्त्वपूर्ण दिन होता है। घर में सफाई करके दिन में देवताओं, पितरों की पूजा की जाती है, प्रदोष के समय दीपावली सजाई जाती है। एकादशी से अमावास्या तक प्रतिदिन दीपक जलाना कौमुदी उत्सव है। आधी रात के बाद सूप और डमरू आदि बजाकर अलक्ष्मी को भगाने का काम किया जाता है। लक्ष्मी पूजन करने के लिये सवेरे ही संकल्प करते हैं **"मम सर्वापच्छन्तिपूर्वकदीर्घायुष्यबलपुष्टिनैरुज्यादि सकलशुभफल प्राप्त्यर्थं गजतुरंगरथराज्यैश्वर्यादिसकलसम्पदामुत्तरोत्तराभिवृद्धयर्थम् इन्द्र कुबेरसहितलक्ष्मीपूजनंकरिष्ये।"** सन्ध्या में दीपावली आदि जलाकर पहले लक्ष्मी जी, फिर इन्द्र जी और अन्त में कुबेर की पूजा करते हैं। लक्ष्मी जी का मन्त्र है, **"नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरेः प्रिया। या गतिस्त्वत्प्रपनान्नां सा मे भूयात्त्वदर्चनात्।।"** इन्द्र का मन्त्र है— **"ऐरावतसमारुढो वजहस्तो महाबलः। शतयज्ञाधियो। देवस्तस्मा इन्द्राय ते नमः।"** कुबेर की प्रार्थना के लिये **"धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च। भवन्तु त्वत्प्रसादान्मे धनधान्यादिसम्पदः।"** इन मन्त्रों से पूजा करना श्रेयस्कर है।

कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा (गोवर्धन पूजा, अन्नकूट, मार्गपाली व्रत): आज प्रातः गाय के गोबर से घर के दरवाजे पर गोवर्धन पर्वत की आकृति बनाकर पंचोपचार से उसकी पूजा करते हैं। "**गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक । विष्णुबाहु कृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव।**" शाम में गौ की पूजा करके उन्हीं के चरणों से इसे तोड़ा जाता है। "**लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता। घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु।**" दोपहर में भगवान के लिये छप्पन प्रकार के भोग बनाने का विधान है। दरअसल यह गोवर्धन की ही पूजा है। शाम में मूंज, कुशा या काँस का लम्बा मजबूत रस्सा बनाकर उसे गाँव, नगर के प्रवेश मार्ग या किसी बड़ी सड़क के दोनों ओर स्तम्भ खड़े करके बाँध दिया जाता है। इसे अशोक के पत्तों के बन्दनवार से सजाते हैं जिसे मार्गपाली कहा जाता है। इसकी पंचोपचार से पूजा करते हैं "**मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्वलोकसुख प्रदे। विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे।**" राजा बलि को वामन अवतार के रूप में भगवान ने आज के दिन ही पूजे जाने का आशीर्वाद दिया था। मार्गपालि के नीचे से गाँव के प्रधान पुरुष के पीछे–पीछे नगर के नर–नारी, हाथी, घोड़ों का जुलूस निकालना अच्छा माना जाता है। कहते हैं मार्गपालि बन्दनवार के नीचे से निकलने से वर्ष भर की सारी बलायें, रोग आदि टल जाते हैं तथा सुख शान्ति रहती है। रात में बलिराजा की पूजा का मन्त्र है "**बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो। भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम।।**"

कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया (यम द्वितीया - भाई दूज - चित्रगुप्त पूजा) : आज यम तथा यमुना की पूजां की जाती है। सवेरे गणेशादि की पूजा करके स्त्रियाँ संकल्प करती हैं, "**मम यमराजप्रीतये यमपूजनम् भ्रातुरायुष्वृद्धये मम सौभाग्यवृद्धये च भ्रातृपूजनं च करिष्ये।**" इसके बाद धर्मराज की पूजा की जाती है, "**धर्मराज नमस्तुभ्यं नमस्ते यमुनाग्रज। पाहि मां किंकरैः सार्धं सूर्यपुत्र नमोऽस्तुते।।**" फिर यमुना जी की पूजा का मन्त्र है "**यमस्वसर्नमस्तेऽस्तु यमुने लोकपूजिते। वरदा भव मे नित्यं सूर्यपुत्रि नमोऽस्तु ते।।**" कई स्थानों पर गोबर से यमराज की अनुकृति बनाकर बहनें पहले अपने भाई के प्रति अनादर प्रकट करती हैं बाद में अपने अपराध के लिये जिह्वा पर काँटे चुभोती हैं और यम को कूटती हैं। फिर वे अपने भाई के लिये विभिन्न पकवान बनाती हैं। भाई उनके घर आकर भोजन करते हैं तथा यथासामर्थ्य उन्हें आभूषण आदि देते हैं। मान्यता है कि यदि आज के दिन बहन यमुनाजी के तट पर भोजन बना कर भाई को खिलाये तो भाई की आयु की वृद्धि होती है तथा बहन का सौभाग्य बढ़ता है।

आज ही व्यवसायी लोग चित्रगुप्त महाराज की पूजा करते हैं जिसमें कलम–दवात सोने की मुहर आदि की पूजा की जाती है।

कार्त्तिक शुक्ल पंचमी (जया पंचमी, सौभाग्य पंचमी, पांडव पंचमी, श्री ज्ञान पंचमी): इस तिथि के बहुतेरे नाम हैं परन्तु इस दिन किये गये किसी भी व्रत का फल एक ही है – इससे ब्रह्म हत्या जैसे पाप से भी निवृत्ति हो जाती है। सवेरे भगवान विष्णु की स्थापना करके उनके वाम भाग में देवी के 'जया' स्वरूप की स्थापना की जाती है। फिर विष्णु जी के प्रत्येक अंग का पूजन करके "**जयाय जयरूपाय जय गोविन्दरूपिणे। जय दामोदरायेति जय सर्व नमोऽस्तुते।**" अर्घ्य दिया जाता है। सप्तधान्यों का दान किया जाता है तथा एक लाल वस्त्र में पुष्प, दूर्वा, अक्षत, चन्दन और सरसों रखकर 'रक्षा' बनाया जाता है। इसे "येन बद्धो बली राजा...." मन्त्र से बाँधा जाता है।

कार्त्तिक शुक्ल पक्ष अष्टमी (श्री गोपाष्टमी) : आज के दिन सवेरे गायों को स्नान कराया जाता है, उनकी पूजा की जाती है तथा उनका श्रृंगार किया जाता है। गृहस्थ लोग उनको चराने वालों की भी पूजा करते हैं तथा थोड़ी दूर उनके साथ चलते हैं। गायों को भोजन कराया जाता है तथा शाम में जब गायें घर आ जाती हैं तब उनकी पंचोपचार पूजा कराके उन्हें भोग लगाया जाता है एवं उनके पाँव की मिट्टी से तिलक किया जाता है। यह सौभाग्यवर्द्धक कहलाता है।

कार्त्तिक शुक्ल नवमी (अक्षय नवमी, धात्री नवमी, कूष्माण्डा नवमी): आज के दिन भी किया गया पूजा–पाठ, दान आदि अक्षय हो जाता है इसलिये इसे अक्षय नवमी कहते हैं। वस्तुतः आज धात्री वृक्ष (आँवले के वृक्ष) की पूजा की जाती है। सवेरे आँवले के वृक्ष के नीचे पूर्वाभिमुख होकर "**ऊँ धात्रयै नमः**" मन्त्र से आवाहन करके षोडशोपचार पूजा की जाती है। "**पिता पितामहाश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः। ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः।। आ ब्रह्मस्तम्ब पर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः। ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः।।**" फिर आँवले के वृक्ष की जड के दूध की धारा से सिंचन किया जाता है। उसके ऊपर कच्चा धागा लपेटने का मन्त्र है, "**दामोदरनिवासायै धात्रयै देव्यै नमो नमः। सूत्रणानेन बन्धामि धात्रि देवि नमोऽस्तुते।।**" फिर आरती करते हैं तथा "**यानि कानि च पापानि**" मंत्र पढ़ते हुए वृक्ष की परिक्रमा करते हैं। फिर एक पके हुए कूष्माण्डा (सीता फल, कुम्हडा या कद्दू के नाम वाली सब्जी) के अन्दर द्रव्य रखकर उसका पंचोपचार से पूजन करते हैं "**कूष्माण्डं बहुबीजाढयं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। दास्यामि विष्णवे तुभ्यं पितृणां तारणाय च।।**" इस कूष्माण्डा को फिर ब्राह्मण को दान में दिया जाता है। "**ममाखिलपापक्षयपूर्वक सुखसौभाग्यादीनामुत्तरोत्तराभिवृद्धये कूष्माण्डादानं करिष्ये।**"

कार्त्तिक शुक्ल एकादशी (प्रबोधैकादशी, भीष्म पंचक, तुलसी विवाह): आज भगवान श्री हरि के जगने की परिकल्पना है। आज सवेरे से पूजा–पाठ, भजन,

कीर्त्तन आदि किये जाते हैं। भगवान को जगाने की पूरी प्रक्रिया लम्बी है। वामनावतार में राजा बलि ने वामन भगवान को रथ में बिठाकर उसे स्वयं खींचा था। आज भगवान की शोभा यात्रा निकलने पर श्रद्धालु स्वयं रथ खींचते हैं।

भीष्म पंचक एकादशी को प्रारंभ होकर पूर्णिमा को समाप्त होने वाला पाँच दिनों का व्रत है। इसमें ब्रह्मचर्य का धारण करके प्रतिदिन "**ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय**" का पाठ किया जाता है। पहले दिन भगवान के विग्रह के हृदय का पूजन कमल के पुष्पों से, दूसरे दिन कटिप्रदेश का पूजन बेल पत्रों से, तीसरे दिन केवडे के पुष्पों से घुटनों की, चौथे दिन चमेली के पुष्पों से पाँवों की पूजा तथा पाँचवे दिन तुलसी की मंजरियों से पूरे शरीर का पूजन किया जाता है। इस एकादशी को एक अन्य महत्वपूर्ण पर्व है तुलसी विवाह। इसके लिये ईख का मण्डप बनाकर तुलसी जी के गमले को सजाकर इसके नीचे रखा जाता है। मण्डप के ऊपर चुनरी या ओढ़नी रखते हैं जो सुहाग का प्रतीक है। गमले तथा तुलसी जी का साड़ी, चूड़ी, आदि से श्रृंगार करके श्री शालिग्राम जी तथा तुलसी जी की षोडशोपचार पूजा करके भगवान शालिग्राम जी के विग्रह को सिंहासन सहित, तुलसी जी के सात फेरे दिलवाये जाते हैं। फिर आरती आदि तथा ब्याह के मंगलगीत आदि गाये जाते हैं।

कार्त्तिक शुक्ल चतुर्दशी (बैकुण्ठ चतुर्दशी) : यह दिन शिव तथा विष्णु की एकता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। आज सवेरे से व्रत करके रात में कमल के पुष्पों से विष्णु भगवान की पूजा करके फिर शिवजी की पूजा करनी चाहिए। अगली सुबह फिर शिवजी की पूजा करके व्रत का पारायण होता है। कथा है कि वाराणसी में शंकर जी पूजा करते समय विष्णु जी को एक हजार में से एक स्वर्ण कमल कम पड़ गया। तब उन्होंने अपनी कमल सदृश्य आँख चढ़ाने का निर्णय लिया। इससे प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें वरदान दिया कि इस दिन को वैकुण्ठ चतुर्दशी के नाम से जाना जायेगा। तथा जो आपकी पूजा पहले करके मेरी पूजा करेगा उसे वैकुण्ठलोक प्राप्त होगा। इसी दिन भगवान विष्णु को सुदर्शन चक्र दिया गया था।

कार्त्तिक पूर्णिमा (कार्त्तिकी मत्स्यावतार) : यह महान तिथि है जिसे महापुनीत पर्व माना जाता है। आज यदि कृतिका नक्षत्र हो तो महाकार्त्तिकी कहलाती है, भरणी हो तो विशेष फल और रोहिणी नक्षत्र हो तो यह तिथि विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है। अगर आज चन्द्रमा कृतिका पर बृहस्पति के साथ हो तो इसे महापूर्णिमा कहते हैं। यदि कृतिका पर चन्द्रमा तथा विशाखा पर सूर्य हो तो 'पद्मक' योग बनता है। आज प्रायः श्री सत्यनारायणव्रत की कथा सुनी जाती है। शाम में मन्दिरों, गलियों, चौराहों, पीपल के वृक्ष तथा तुलसी के पौधों के पास दीपक जलाया जाता है। आज दीपदान करने से पुनर्जन्मादि का कष्ट नहीं होता। आज चन्द्रोदय के समय शिवा, सम्भूति,

प्रीति, संतति, अनुसूया तथा क्षमा (छः तपस्विनियाँ जो स्वामी कार्त्तिक की माता हैं) की पूजा करनी चाहिये तथा रात्रि प्रारंभ होने पर कार्त्तिकेय, शिवा, वरुण, हुताशन और बाली युक्त धान की पूजा करने से शौर्य, वीर्य और धैर्य आदि बढ़ते है। आज की सन्ध्या में ही मत्स्यावतार भी हुआ था।

मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी (कालभैरवाष्टमी) : आज के दिन भगवान शिव ने भैरव के रूप में अवतार लिया था जो उनका अत्यन्त भयानक या रौद्र रूप है तथा यह अवतार दुष्टों का नाश करने के लिये हुआ था। भैरव जी का वाहन कुत्ता है अतः आज कुत्ते को मिठाई आदि भी खिलाई जाती है। भैरवाष्टमी यदि मंगल या रविवार को पड़े तो उसका विशेष महत्व है। आज उपवास करके प्रत्येक प्रहर में भैरव जी को तीन मन्त्रों से तीन बार अर्घ्य देने का विधान है। इनके मन्त्र हैं,

''भैरवार्घ्यं गृहाणेश भीमरूपाव्ययनघ। अनेनार्घ्यं प्रदानेन तुष्टो भव शिवप्रिय।
सहास्त्ताक्षिशिरोबाहो सहस्रचरणाजर। गृहाणार्घ्यं भैरवेदं सपुष्पं परमेश्वर।।
पुष्पांजलिं गृहाणेश वरदो भव भैरव। पुनरर्घ्यं सपुष्पं यातना पह।।''

मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष अमावस्या (गौरी तप व्रत): यह एक तपस्या जैसा व्रत है जो सोलह वर्षों तक (प्रत्येक वर्ष में एक बार) किया जाता है। आज के दिन श्री गौरी की सन्तुष्टि के लिये इस व्रत को स्त्रियाँ आरंभ करती हैं। सवेरे स्नानादि के उपरान्त हाथ में चन्दन, पुष्प, अक्षत, दूर्वा तथा जल लेकर संकल्प करते हैं ''**ईशार्द्धांगहरे देवि करिष्येऽहं व्रतं तव। पतिपुत्रसुखावाप्तिं देहि देवि नमोऽस्तुते।**'' अर्थात् पति और सन्तान के सुख के लिये यह व्रत किया जाता है। दोपहर (मध्याह्न) में सूर्य को अर्घ्य देकर फिर देवि से आज्ञा माँगी जाती है, जिसका मन्त्र है ''**अहं देवि व्रतमिदं कर्त्तुमिच्छामि शाश्वतम्। तवाज्ञया महादेवि निर्विघ्नं कुरु तत्र वै।**'' इसके उपरान्त गौरी जी का षोडशोपचार से पूजन करने का विधान है। पहले छः उपचारों को करने के बाद देवि के निम्नांकित ग्यारह नामों से ग्यारह अंगों की पूजा की जाती है। ''**पार्वत्यै नमः** (पादौ), **हैमवत्यै नमः** (जानुनी), **अम्बिकायै नमः** (जंघे), **गिरिशवल्लभायै नमः** (गुह्या), **गम्भीरनाभ्यै नमः** (नाभि), **अपर्णायै नमः** (उदर), **महादैव्यै नमः** (हृदय), **कण्ठकामिन्यै नमः** (कण्ठ), **षण्मुखायै नमः** (मुख), **लोकमोहिन्यै नमः** (ललाट) तथा **मेनका कुक्षिरत्नायै नमः** (शिर)। इसे पढ़ने का तरीका है ''**पार्वत्यै नमः पादौ पूजयामि**'' आदि–आदि। षोडशोपचार के छः उपचारों से तो पूजा हो चुकी होती है, अंग पूजन के बाद शेष दश उपचारों (गन्ध, पुष्पादि) से पूजा की जाती है। तत्पश्चात् सन्ध्या में अष्टमुखी ताम्बे अथवा मिट्टी के दीपक में गाय के घी से आठ बत्तियों को रात भर जला कर रखते हैं। शुक्ल प्रतिपदा के ब्राह्म मुहूर्त्त में स्नानादि करके ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी को पूज कर तीन धातुओं (ताँबा, पीतल और शीशा) के पात्रों में गुड़,

हलवा, पूरी, पूआ, तिल, चावल आदि रखकर उनपर उपर्युक्त दीपक रखकर स्त्री सब कुछ घर से बाहर रखकर बैठती है। उसे तब तक बैठना होता है जबतक कौए आदि पक्षिगण आकर सब खा न जायें। इसके बाद व्रत शेष होता है। अगले वर्ष यही व्रत शुक्ल प्रतिपदा को, उसके अगले वर्ष द्वितीया को आदि आदि करते हुए सोलहवें वर्ष पूर्णिमा के दिन किया जाता है। समापन के समय दोपहर में चन्द्रमा तथा शिवजी की पूजा की जाती है तथा आठ पदार्थों का भोग लगा कर इन्हें आठ जोड़ी ब्राह्मण ब्राह्मणी को खिलाया जाता है।

मार्गशीर्ष शुक्लपंचमी (श्रीपंचमी विवाह, पंचमी-श्रीरामजानकी विवाह) : आज की तिथि में मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम का विवाह माता जानकी से सम्पन्न हुआ था इसलिये श्री अयोध्या जी तथा श्री जनकपुरी आदि कई स्थानों में यह पूरी लीला सोल्लास मनायी जाती है। आज का व्रत रखने से स्त्रियों को श्री राम जैसे यशस्वी पति और पुरुषों को माता सीता जैसी आज्ञाकारिणी पत्नी की प्राप्ति होती है। श्रीपंचमी सन्तान सुख, सौभाग्य तथा अचल लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला व्रत है जो साल भर चलता है। आज की तिथि से इसे प्रारंभ करते हैं। सवेरे लक्ष्मी जी की मूर्ति का ध्यान करते हैं जिसमें माता लक्ष्मी कमल के आसन पर हाथ में कमल लिये विराजमान हैं तथा उन्हें दो हाथी दुग्ध या जल से स्नान करा रहे हैं। तत्पश्चात् संकल्प करके तीन प्रहर बीत जाने के बाद गंगा या शुद्ध जल से स्नान करके देवि की मूत्ति को कलश पर स्थापित करते हैं। फिर गणेशादि पूजन करके मातृका पूजा, नान्दी श्राद्ध आदि करते हैं। फिर लक्ष्मी जी के आठ नामों के आठ अंगों का पूजन किया जाता है। चंचला–पाद, चपला–जंघा, ख्याति–नाभि, मन्मथा–स्तन, ललिता–भुजा, उत्कण्ठिता–कण्ठ, माधवी–मुख और श्री–मस्तक नामों से अंगों की पूजा की जाती है। फिर नैवेद्य आदि अर्पण करके किसी सौभाग्यवती स्त्री को तिलक लगाकर मिठाई खिलाते हैं तथा उनके वर को चावल और घी की दक्षिणा दी जाती है तब व्रत का पारायण होता है। इस प्रकार प्रत्येक माह में शुक्ल पंचमी को माता लक्ष्मी के अलग–अलग रूपों की अर्चना होती है। यथा मार्गशीर्ष में श्री, पौष में लक्ष्मी, माघ में कमला, फाल्गुन में सम्पत, चैत्र में पद्मा, वैशाख में नारायणी, ज्येष्ठ में धृति, आषाढ़ में स्मृति, श्रावण में पुष्टि, भाद्रपद में तुष्टि, आश्विन में सिद्धि और कार्त्तिक में क्षमता के नाम से पूजा की जाती है। पूजा का विधान वही रहता है अर्थात् प्रातः ध्यान तथा संकल्प, तीसरे पहर के बाद स्नान, पूजन, अंग पूजन तथा सौभाग्यवती स्त्री का तिलक एवं दान। यह वर्ष भर चलने वाला व्रत है।

मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी (दशादित्य व्रत) : दुर्दशा नाश के लिये राजा नल तथा पाण्डवों ने भी यही व्रत किया था। दुर्दशा के कई कारण बताये गये हैं, किन्तु

सर्वाधिक महत्वपूर्ण है संकट के समय माता, पिता या स्वामी को छोड़ देना, अपने परम्परागत धर्म–कर्म से हटना तथा सदाचार का त्याग कर देना। इस व्रत में सूर्य भगवान का बड़ा महत्व होता है इसलिये किसी भी शुक्ल दशमी को जब इतवार पड़े तो यह व्रत किया जा सकता है परन्तु मार्गशीर्ष, माघ या वैशाख की शुक्ल दशमी को यह व्रत आरंभ हो तो बहुत अच्छे फल प्राप्त होते हैं। आज सवेरे संकल्प तथा स्नानादि करके पुरुष मध्याह्न में, जब सूर्य सर पर हों, तो पुनः स्नान करके देवता पितरों आदि की पूजा करके एक वेदी पर बारह दलों का कमल बनाकर उसके बीच में सूर्य भगवान की मूर्ति रखकर उनका सूर्य के मन्त्रों से आह्वान आदि षोडशोपचार से पूजन करते हैं। फिर एक अन्य वेदी बनाकर उसपर गोबर पोत कर, उसपर काले रंग से दुर्दशा करने वाली दस देवियों के नाम लिखे जाते हैं। ये नाम है क्रमशः दुर्मुखी, दीनवदना, मलिना, सत्यनाशिनी, बुद्धिनाशिनी, हिंसा, दुष्टा, मित्रविरोधिनी, उच्चाटनकारिणी तथा दुश्चिन्ताप्रदा। इनकी पुतलियाँ भी बनायी जाती हैं जिनकी नाम मंत्रों से पूजा की जाती है। फिर इनसे प्रार्थना की जाती है, **''नित्यं पापकरे पापे देवद्विजविरोधिनी। गच्छ त्वं दुर्दशे देवि नित्यं शास्त्रविरोधिनि।''** इस मन्त्र से प्रार्थना करके इन दसों देवियों की पुतलियों का विसर्जन किया जाता है। जिस प्रकार से अनन्त की डोरी बनाते हैं, वैसे ही रेशम या सूत के दस धागे लेकर उसमें दस गाँठें बाँध कर उसकी षोडशोपचार से पूजा की जाती है। फिर सूर्य भगवान की पूजा की जाती है। दक्षिणा सहित दस फल लेकर सूर्य भगवान का स्मरण करते हुए दान करने का मन्त्र है ''**भास्करो बुद्धिदाता च द्रव्यस्थो भास्करः स्वयम्। भास्करस्तारकोभाभ्यां भास्कराय नमोऽस्तु ते।।**'' इसके बाद उसी वेदी की सफाई करके उसी स्थान में दस दुर्दशा दूर करने वाली देवियों की चन्दन की पुतली स्थापित की जाती है जिनके नाम हैं, सुबुद्धिदा, सुख–कारिणी, सर्व सम्पत्तिदा, इष्टभोगदा, लक्ष्मी, कान्तिदा, दुःखविनाशिनी, पुत्रप्रदा, विजया और धर्मधारिणी। इनकी भी नाममंत्रों से षोडशोपचार पूजा के बाद इनकी प्रार्थना की जाती है जिसका मन्त्र है ''**विशुद्धवसनां देवीं सर्वाभरणभूषिताम्। ध्यायेद् दशदशां देवीं वरदभयदायिनीम्।।**'' इसके बाद भोजन करने का विधान है। यह पूजा बहुत शक्तिशाली है और शीघ्र फलदायिनी है।

मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी (श्री गीता जयन्ती) : कहा जाता है कि आज के दिन ही भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था अतः आज के दिन श्री गीता जी की पूजा करने का विशेष फल माना गया। आज श्री व्यास जी, श्री कृष्ण तथा गीता जी की पूजा एवं गीता पाठ, गीता की व्याख्या आदि का विधान है।

मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी (श्रीद्वादशादित्यव्रत) : आज की तिथि से प्रारंभ करके बारह शुक्ल द्वादशी को सूर्य भगवान की, अलग–अलग नाम से, व्रत तथा पूजा करने

से सभी प्रकार की विपत्तियों का नाश तथा सुख की वृद्धि होती है। ये नाम हैं – मार्गशीर्ष में धाता, पौष में मित्र, माघ में अर्यमा, फाल्गुन में पूषा, चैत्र में शक्र, वैशाख में अंशुमान, ज्येष्ठ में वरुण, आषाढ़ में भग, श्रावण में त्वष्टा, भाद्रपद में विवस्वान्, आश्विन में सविता तथा कार्त्तिक में विष्णु। पूजा करने का विधान विशेष नहीं होता। स्नानादि के बाद नाम विशेष की पूजा का संकल्प तथा षोडशोपचार, आदित्य हृदय का पाठ तथा हवन एवं आरती का विधान है।

मार्गशीर्ष पूर्णिमा (श्री दत्तात्रेय जयन्ती, शाकम्भरी जयन्ती) : आज भगवान दत्तात्रेय की जयन्ती मनाते हैं। अत्रि ऋषि ने अपनी पत्नी अनुसूया की इच्छा जानकर पुत्र प्राप्ति के लिये तप किया था तब भगवान विष्णु ने कहा था, "**दत्तोमयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः**" अर्थात् मैं अपने–आपको ही तुम्हें देता हूँ, इसलिये वे दत्त कहलाये। अत्रि के पुत्र होने के कारण उनका नाम पड़ा आत्रेय। इसलिये इन्हें दत्तात्रेय के नाम से जाना जाता है। कहा जाता है कि इन्हें चौबीस गुरुओं ने शिक्षा दी थी तथा ये स्मरण करते ही भक्त के पास पहुँच जाते हैं अतः इन्हें स्मृतिमात्र अनुगन्ता कहा गया है। आज ही शाकम्भरी जयन्ती भी मनाई जाती है। दुर्गासप्तशती में माँ शाकम्भरी के आदुर्भाव की विस्तृत चर्चा है। प्रायः पौष मास में सूर्य भगवान धनु राशि में प्रवेश करते हैं और जब तक सूर्य धनु अथवा मीन राशियों में रहते हैं तब तक खरमास माना जाता है।

पौष कृष्ण अष्टमी (कालाष्टमी - रुक्मिणी अष्टमी) : आज के दिन विभिन्न प्रकार के व्रतों का विधान है। जो लोग कालाष्टमी मनाते हैं वे आज के दिन व्रत करके सारी रात्रि जागरण करते हैं जब वे भगवान शिव का पूजन ध्यान करते हैं। कुछ लोग आज के दिन भी श्राद्ध करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं। कुछ लोग रुक्मिणी जी की प्रसन्नता के लिये आज के दिन श्री कृष्ण, रुक्मिणी और प्रद्युम्न की मूर्तियों की पूजा करते हैं तथा आठ सौभाग्यवती स्त्रियों को भोजन कराकर दक्षिणा देते हैं।

पौष कृष्ण द्वादशी (सुरूप द्वादशी) : मुख्य रूप से गुजरात में प्रचलित यह व्रत स्त्रियों द्वारा सौन्दर्य, सुख, सन्तान, सौभाग्य आदि की प्राप्ति के लिये किया जाता है। यदि इसमें पुष्य नक्षत्र हो तो विशेष फलदायी होता है। इसके लिये सफेद गौ के गोबर से छत पर सुखाकर उपले बनाये जाते हैं जो पहले ही करना होता है ताकि उमसें कोई अपवित्रता न रहे। फिर इसे जलाकर धृत, जौ आदि मिला कर तिलों से एक सौ आठ बार आहुति दी जाती है। यह एकादशी की सन्ध्या को किया जाता है। द्वादशी को स्नान करके भगवान विष्णु की सोने की मूर्ति को तिल से भरे पात्र में रखकर उनकी षोडशोपचार पूजा होती है। उन्हें अर्घ्य देने का मन्त्र है "**नमः**

परमशान्ताय विरूपाक्ष नमोऽस्तुते।" बाद मे यह मूर्ति ब्राह्मण को दान में दे दी जाती है।

पौष शुक्ल द्वितीया (आरोग्यव्रत) : आज के दिन का व्रत रोगों से छुट्टी पाने तथा स्वास्थ्य की वृद्धि के लिये किया जाता है। यह भी पूरे साल किया जाने वाला व्रत है। आज के दिन गाय के सींगों को धोकर लिये गये जल से स्नान करके सफेद वस्त्र धारण किया जाता है। शाम में द्वितीया के चन्द्रमा (बालेन्दु) की षोडशोपचार पूजा की जाती है। जब तक चन्द्रमा अस्त न हो जाये तब तक ब्राह्मणों को गुड़, दही, खीर (परमान्न) और लवण आदि भेंट किया जाता है तथा स्वयं सिर्फ छाछ पीकर जमीन पर सोने का विधान है। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को चन्द्रमा की पूजा करके बारहवें महीने (मार्गशीर्ष) की शुक्ल पक्ष की द्वितीया को ईख के रस का घड़ा, सोना और वस्त्र ब्राह्मणों को दान किया जाता है।

पौष शुक्ल सप्तमी (मार्तण्ड सप्तमी तथा उभय सप्तमी) : निरोग रहने के लिये आज भगवान सूर्य के पूजन का विधान है। इसके बाद गोदान करने की परिपाटी भी है। इसे वर्ष भर, प्रत्येक शुक्ल सप्तमी को, करने की परम्परा है। उभय सप्तमी का अर्थ है सारा दिन उपवास करके प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल की संधियों में तीन बार गन्ध, पुष्प, धृतादि से सूर्य भगवान का पूजन किया जाता है तथा क्षार सिद्ध लड्डू भगवान सूर्य को अर्पित किया जाता है। क्षार सिद्ध का तात्पर्य है कि पहले पकते हुए घी में नमक डाल कर नमक को निकाल लिया जाता है फिर उसमें आटा भून कर लड्डू बनाये जाते हैं और उसे भगवान सूर्य को चढ़ाया जाता है।

पौष शुक्ल त्रयोदशी (धृतदान) : आज के दिन भगवान का षोडशोपचार पूजन करके ब्राह्मण को घी का दान किया जाता है। इससे सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं।

पौष शुक्ल चतुर्दशी (ईशान व्रत) : यह व्रत पाँच वर्षों तक चलता है। आज के दिन वेदी बनाकर उस पर सफेद वस्त्र बिछाते हैं तथा उसपर चारों दिशाओं में अक्षत की ढेरी रखते हैं। पूर्व वाली ढेरी पर विष्णु जी, दक्षिण वाली ढेरी पर सूर्य भगवान, उत्तर वाली ढेरी पर रुद्र भगवान तथा पश्चिम वाली ढेरी पर ब्रह्माजी स्थापित किये जाते हैं। इन सबों के बीच में ईशान की स्थापना की जाती है। इनकी षोडशोपचार से पूजा करके आरती करने के बाद एक गाय तथा बैल दान में दिये जाते हैं। उस दिन गौ मूत्र पीकर ही रहने का विधान है। अगले वर्ष इसी दिन तथा इसी प्रकार से सारी पूजा करके दो गौ एक बैल का दान, तत्पश्चात् अगले वर्षों में क्रमशः तीन गौ तथा एक बैल, चार गौ तथा एक बैल और अन्त में पाँच गौ तथा एक

बैल का दान किया जाता है। यह लक्ष्मी वृद्धि के लिये किया जाता है। पौष माह के प्रायः सभी व्रतों में गाय का उपयोग होता ही है।

पौष शुक्ल पूर्णिमा (माघ स्नानारंभ) : आज से ही माघ स्नान प्रारंभ होता है। सिर्फ आज का स्नान ही वैभव तथा दिव्य लोक प्रदान करने वाला होता है। आज के दिन ही भगवान मधुसूदन को स्नान कराया जाता है तथा उपवास रखा जाता है।

माघ, कार्त्तिक और वैशाख बड़े पुनीत माह कहे जाते हैं। इनमें तीर्थ स्थानों में जाकर रोज़ स्नान/ दान का बड़ा महत्व होता है। विशेष तौर से संगम तीर्थ (प्रयाग राज) तथा काशी में स्नान करने का उत्तम फल कहा गया है। सूर्योदय के समय स्नान श्रेष्ठ बताया गया है। कुछ आख्यानों में कहा गया है कि यदि तीर्थ में जाकर स्नान करना संभव न हो तो या तो रात भर छत पर रखे घड़े के जल से, अथवा दिन भर सूर्य की किरणों से तपे जल से स्नान करें। स्नान करने से पहले जल तथा ईश्वर की प्रार्थना क्रमशः इन मन्त्रों से की जाती है। "**आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च। पापं नाशय मे देव वांगमनः कर्मभिः कृतम्।।**" तथा "**दुःखदारिद्रयनाशाय श्री विष्णोस्तोषणाय च। प्रातः स्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशम्।**" तत्पश्चात् स्नान किया जाता है। स्नान करते समय विभिन्न नदियों के आह्वान करने के मन्त्र हैं, "**पुष्करादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा। आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदामम।। हरिद्वारे कुशावते बिल्वके नीलपर्वते। स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते।। अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।। पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्ष दायिकाः।। गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन संनिधिं कुरु।।**" स्नान के बाद सूर्य को अर्घ्य देने का मन्त्र है "**सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम। त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्त्रधा।।**" इसके बाद भगवान हरि का स्मरण/ पूजन करते हैं। इस पूरे माह में यथासंभव मौन रहना, एक समय ही भोजन करना, सिर्फ दूर्ध पीकर रहना, फलाहार करना, शाकाहार करना अथवा उपवास करना अच्छा माना गया है।

माघ कृष्ण एकादशी (षट्तिला एकादशी) : इन दिन तिल का छः प्रकार से प्रयोग किया जाता है। तिल के जल से स्नान, तिल का उबटन, तिल से हवन, तिल मिले जल का पान, तिल का भोजन तथा तिल का दान किया जाता है। प्रातः स्नानादि करके श्री कृष्ण के नाम का जाप करते हैं। सारा दिन उपवास, रात्रि जागरण तथा तिल से हवन के बाद भगवान का पूजन करके अर्घ्य दिया जाता है जिसका मन्त्र है, "**सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरूषपूर्वज गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते।।**" ब्राह्मणों को आज के दिन दान में काला तिल तथा काली गाय देने की परम्परा है।

माघ अमावस्या (माघी अमा, मौनी अमावस्या) : यदि आज के दिन रविवार पड़े तथा श्रवण नक्षत्र एवं व्यतिपात योग हो तो इसका नाम अर्धोदय होता है। इस योग में किसी भी स्थान का जल गंगाजल के समान हो जाता है अतः इस काल में किया गया दान/ स्नान का फल अतुलनीय होता है। सामान्यतः आज के दिन स्नान/ दान के बाद एक वेदी बनाकर उस पर वस्त्र बिछाते हैं तथा वेद, वेदांग सहित ब्रह्माजी तथा गायत्री माता का पूजन करते हैं। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को यथाशक्ति गौ सहित कई वस्तुएँ दान में देते हैं। यह पितरों के लिये किया जाता है **"स्थानं स्वर्गेऽथ पाताले यन्मर्त्ये किंचिदुत्तमम्। तदवापोन्त्यसंदिग्धं पद्मयोनेः प्रसादतः।।"** ब्राह्मणों को दान देने के बाद भगवान से कहते हैं **"यत्किचिंद् वाचिकं पापं मानसं कायिकं तथा। तत सर्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात्।।"** ऐसी मान्यता है कि मौनी अमावस्या के दिन प्रयागराज में तीन करोड़ दस हज़ार अन्य तीर्थों का समागम होता है।

माघ मास में ही मकर संक्रान्ति होती है जिस दिन, एक धारणा के अनुसार, संगम तीर्थ (प्रयाग राज) में वेश बदल कर सभी देवी देवता स्नान करने के लिये आते हैं। मकर संक्रान्ति देवताओं के दिन के प्रारंभ का सूचक भी है। देश में इसे खिचड़ी, पोंगल, लोढ़ी आदि कई नामों से मनाते हैं। गंगा सागर तीर्थ स्थल पर भी यह पर्व बहुत विस्तार से मनाया जाता है।

माघ शुक्ल चतुर्थी (श्रीगौरी व्रत, श्रीकुण्ड चतुर्थी, श्रीढुण्ढि पूजन, श्रीगणेश व्रत, श्रीशान्ति चतुर्थी, श्रीसुख चतुर्थी, श्रीअंगारक चतुर्थी, श्रीयम व्रत) : यह दिन और आगे आने वाले दिन मानों व्रतों की पिटारियाँ लेकर आते हैं। आज उमा स्वरूपा पार्वती की पूजा पंचोपचार से करके गुड़, अदरख, लवण, पालक तथा खीर की बलि देकर ब्राह्मण को भोजन कराते हैं। आज देवी की पूजा का एक अन्य विधान है जिसमें उपवास करके देवी का पूजन किसी भी रूप में करते हैं। सूप या मिट्टी के पात्र में रखकर देवी को अनेक प्रकार के गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, फल, पत्र, धान्य, बीज आदि का नैवेद्य चढ़ा कर ब्राह्मण को दान देते हैं जिससे सन्तान तथा सौभाग्य की प्राप्ति होती है। आज काशी में स्थित ढुण्ढिराज की पूजा सफेद तिल और चीनी के लड्डुओं से होती है। आज उनकी पूजा के लिये एक शाम भोजन करके सारी रात्रि जागरण, भजन/ पूजन का विधान है। आज गणेश जी के पूजन के कई स्वरूप हैं। आज सवेरे गणेश जी के पूजन का संकल्प करके वेदी पर लाल वस्त्र बिछा कर लाल अक्षत से आठ दल का कमल बनाकर सिन्दूर से रंगे गणेश जी की मूर्ति स्थापित करके स्वयं लाल धोती पहनकर लाल फूल से षोडशोपचार पूजन किया जाता है। नैवेद्य के लिये भिगो कर छीली हुई हल्दी, गुड़, शक्कर और घी चढ़ाते हैं।

सिर्फ रात्रि में भोजन करने का विधान है। यह हुआ गणेश व्रत। अगर आज गणेशजी का पूजन करके घी और गुड़ का बना पूआ और नमकीन पदार्थ अर्पण किया जाये तथा अपने गुरु की भी पूजा की जाये तो सब प्रकार से शान्ति मिलती है। यदि इस चतुर्थी को मंगलवार हो तो लाल रंग के चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य से गणेश पूजन क्रमशः माघ, वैशाख, भाद्रपद और पौष (चार माहों के अन्तराल पर) करते हैं। यह आवश्यक है कि हर चतुर्थी को मंगलवार हो। यह सुख चतुर्थी हुई। अंगारक भी मंगल को ही कहते हैं। अगर चतुर्थी को मंगलवार पड़े तो उस दिन शरीर में मिट्टी लगाकर स्नान करते हैं तथा लाल कपड़े पहन कर गणेश जी की पूजा करते हैं। वेदी पर चार दिशाओं में भोजन तथा धन/ धान्य एवं चावल आदि रखकर उनकी पंचोपचार से पूजा करते हैं। वेदी को पहले गोबर से लीपा जाता है तथा लाल चन्दन से अष्ट कमल बनाकर उस पर ये सामान रखे जाते हैं। पूजन के बाद इन सामग्रियों के साथ कपिला गाय तथा धुरंधर बैल एवं शय्या दान करने से हज़ारों गुणा फल प्राप्त होते हैं। यदि यह चतुर्थी शनिवार को पड़े तथा भरणी नक्षत्र हो तो उस दिन यम का पूजन तथा व्रत किया जाता है। इससे मृत्यु का भय नहीं होता।

माघ शुक्ल पंचमी (श्रीपंचमी–वसन्तपंचमी-सरस्वती पूजन) : यह तिथि बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि गृहस्थों के जीवन में आज रति और कामदेव के पूजन का विधान है। विद्यार्थियों के लिये आज विद्यादायिनी मां सरस्वती के पूज़न का आलौकिक अवसर है। कामदेव और रति के पूजन के लिये वेदी बनाकर उस पर वस्त्र बिछाया जाता है तथा उस पर अष्टदल कमल उकेरा जाता है। इसके सामने वाले हिस्से में गणेश जी की स्थापना की जाती है। इस कमल के पीछे वाले हिस्से में जौ और गेहूं की डण्ठल सहित बाली को जल से भरे कलश में रखते हैं जिस पर अबीर आदि के छींटे डाल कर वसन्त की अनुभूति करते हैं। पहले षोडशोपचार से गणेश जी का पूजन होता है फिर रति और कामदेव का। पहले रति की आराधना करते हुए कहा जाता है, "**शुभा रतिः प्रकर्त्तव्या वसन्तोज्जवलभूषणा। नृत्यमाना शुभा देवी समस्ताभरणैर्युता।। वीणावादनशीला च मदकर्पूर चर्चिता।**" तत्पश्चात् कामदेव की स्तुति की जाती है, "**कामदेवस्तु कर्त्तव्यो रूपेणाप्रतिमो भुवि। अष्टबाहुः स कर्त्तव्यः शंखपद्म विभूषणः।। चापवाणकरश्चैव मदादचिंत लोचनः। रतिः प्रीतिस्तथा शक्तिर्मदशक्तिस्तथोज्ज्वला। चतस्त्रस्तस्य कर्त्तव्याः पत्न्यो रूप मनोहराः। चत्वारश्चकरास्तस्य कार्या भार्यास्तनोपगाः।। केतुश्च मकरः कार्यः पंचबागमुखो महान्।।**" इन मन्त्रों से ध्यान करके रति तथा कामदेव की पूजा करने से गार्हस्थ्य जीवन सुखी बीतता है।

आज सरस्वती जी की विशेष पूजा करने का विधान है – कहते हैं कि यदि

किसी की कुण्डली में महामूर्ख रहने का भी योग हो तो भी यदि आज उसका विद्यारंभ संस्कार किया जाये तो वह पढ़ लिख लेता है। यह है सरस्वती मां की कृपा का चमत्कार। श्री दुर्गासप्तशती के अनुसार आद्याशक्ति के सत्वगुणी स्वरूप का नाम महासरस्वती, रजोगुणी का महालक्ष्मी तथा तमोगुणी का महाकाली है। मां सरस्वती की आराधना में अधिकांश श्वेत वस्तुओं का प्रयोग होता है। जैसे दूध–दही, मक्खन के अतिरिक्त सफेद तिल के व्यंजन, श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र, श्वेत अलंकार तथा नारियल आदि से पूजन किया जाता है। एक मत के अनुसार आज के दिन माता सरस्वती को बदरी (बेर) के फल अर्पित करके ही उन्हें खाया जाता है। सरस्वती पूजन से पहले बेर खाना निषिद्ध है। सरस्वती पूजन के लिये चतुर्थी से ही तैयारियाँ प्रारंभ होती हैं। उस दिन एकभुक्त रहना अच्छा होता है। उस दिन वाक् संयम रखना चाहिये। पंचमी को स्नानादि करके पहले गणेशादि, नवग्रहादि, दशदिक्पालादि, पंचदेवतादि की पूजा करके घट स्थापना किया जाता है। तत्पश्चात माँ सरस्वती पूजन का संकल्प करने का विधान है, **"यथोपलब्धपूजनसामग्रीभिः भगवत्याः सरस्वत्याः पूजनमहं करिष्ये।"** सरस्वती माता के ध्यान के मन्त्र हैं, **"सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुभनोहराम, कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम्।। वह्निशुद्धां शुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम्। रत्नसारेन्द्रनिर्माण नवभूषणभूषितां। सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः।। वन्दे भक्त्या वन्दितां च मुनीन्द्रमनु मानवैः।"** माँ सरस्वती के ध्यान के लिये निम्नांकित मंत्र भी बड़े प्रभावशाली हैं– **"या कुन्देन्दुतुषारहार धवला या शुभ्रवस्त्रावृताः; या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना। य ब्रह्माच्युत शंकर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता; सा मा पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा।।"** दूसरा मंत्र है **"शुक्लां ब्रह्म विचारस्पर परमामाद्यां जगद्वापिनीं; वीणापुस्तक धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहम्। हस्ते स्फटिकमालिकां विदधतीं पद्मासन संस्थितां, वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।"**

माँ सरस्वती की फिर कई प्रकार से पूजा की जाती है। इनमें सबसे सरल मंत्र है **"श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा।"** एक मत के अनुसार इस अष्टाक्षरी मंत्र का चार लाख बार जाप करने से यह मंत्र सिद्ध हो जाता है। इसी मन्त्र का पाठ करते हुए देवी को विभिन्न सामग्रियाँ अर्पित करते हैं। षोडशोपचार पूजन तो किया ही जाता है। माता सरस्वती के कुछ अन्य सिद्ध मंत्र जो सर्व विद्या प्रदायक हैं **"ऐं वाग्वादिनि वद वद स्वाहा।"** तथा **"ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा।"** एक बात तो सत्य है कि माँ सरस्वती की आराधना के फल अनन्त हैं। मन्त्र जाप तथा हवन के बाद आरती की जाती है। फिर प्रसाद ग्रहण किया जाता है। सरस्वती जी ज्ञान की देवी हैं अतः उनके सामने पुस्तकों और कलमों को रखकर माँ के आशीर्वाद की कामना की जाती है। उस दिन संस्कारों को छोड़कर, पुस्तक तथा कलम का प्रयोग

नहीं किया जाता। सारी रात्रि माँ के आगे गीत–संगीत का कार्यक्रम होता है तथा अगले दिन माँ का विसर्जन समारोह सम्पन्न होता है। एक गाथा के अनुसार आद्याशक्ति ने अपने को श्री कृष्ण के शरीर से पाँच रूप में (राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती) प्रकट किया था। सरस्वती उनके कण्ठ से उत्पन्न हुई थीं। माँ की द्वादश नामावली का दिन की तीनों सन्ध्याओं में पाठ करने से पाठकर्त्ता की जिह्वा पर सरस्वती विराजमान रहती हैं। **''प्रथमं भारती नाम द्वितीयं च सरस्वती। तृतीयं शारदा देवी चतुर्थं हंस वाहिनी।। पंचमं जगती ख्याता षष्ठं वागीश्वरी तथा। सप्तमं कुमुदी प्रोक्ता अष्टमं ब्रह्मचारिणी।। नवं बुद्धिदात्री च दशमं वरदायिनी। एकादशं चन्द्रकान्तिर्द्वादशं भुवनेश्वरी।। द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः। जिह्वाग्रे वसते नित्यं ब्रह्मरूपा सरस्वती।।''** सरस्वती माँ से श्रद्धा रखने वालों को वेद, पुराण, रामायण, गीता आदि ग्रन्थों को अपवित्र स्थान पर नहीं रखना चाहिये ना ही अपवित्र अवस्था में इनका स्पर्श करना चाहिये। इन्हें अनादर में फेंकना भी नहीं चाहिये।

माघ शुक्ल षष्ठी (मन्दार षष्ठी - दारिद्रय हर षष्ठी) : दरअसल यह सूर्य देवता की उपासना के लिये तीन दिनों तक चलने वाला व्रत है जो पंचमी से प्रारंभ होकर सप्तमी को समाप्त होता है। पंचमी को सारी कामनाएँ त्याग कर संयमपूर्वक रहते हैं। उस दिन एक शाम ही भोजन किया जाता है। मन्दार का अर्थ है आक के फूल जो शंकर जी को भी अत्यन्त प्रिय हैं। षष्ठी को सवेरे स्नानादि से निवृत होकर ब्राह्मण से आज्ञा लेकर व्रत प्रारंभ करते हैं तथा सारा दिन उपवास रखकर रात में मन्दार के फूल ही खाते हैं। सप्तमी की सुबह स्नान करके ब्राह्मणों का पूजन किया जाता है तथा ताम्बे के पात्र में काले तिलों से आठ दल का कमल बनाया जाता है जो आठ दिशाओं का प्रतीक है। पूर्व दिशा के दल पर एक आक का फूल रखकर प्रार्थना करते हैं– ''भास्कराय नमः'', इसी प्रकार अग्नि, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर तथा ईशान दिशाओं के मन्त्र हैं ''सूर्याय नमः'', ''सूर्याय नमः'', ''यज्ञेशाय नमः'', ''वसुधाम्ने नमः'', ''चण्डभानवे नमः'', ''कृष्णाय नमः'', तथा ''श्री कृष्णाय नमः''। सभी दिशाओं में उनके मन्त्र पढ़कर आक के फूल रखते जाते हैं। कमल के बीच में सोने की सूर्य भगवान की रखी मूर्ति की पूजा ''सूर्याय नमः'' मन्त्र से करते हैं। सप्तमी के दिन बिना तेल या नमक का भोजन करते हैं। यह पूजा प्रत्येक शुक्ल सप्तमी को साल भर करने के बाद समाप्ति के दिन कलश पर लाल सूर्य मूर्ति स्थापित करके उनकी पूजा की जाती है। मन्त्र है, **''नमो मन्दार नाथाय मन्दारभवनाय च। त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात्।।''** ऐसा मन्त्र पढ़ कर सूर्य की प्रतिमा ब्राह्मण को दान दी जाती है। यह पाप नाश के किया जाता है। कुछ लोग इस षष्ठी को एक बार खाकर, उपवास करके अथवा बिना माँगे जो मिल

जाये वह एक बार स्वयं खाकर (अयाचित) ब्राह्मण को भोजन कराते हैं तथा प्रत्येक षष्ठी को कटोरे में दूध, घी, भात और शक्कर भर कर दान करते हैं। ऐसा करने से कुल से दरिद्रता दूर होती है।

माघ शुक्ल सप्तमी (भानु सप्तमी, सूर्य सप्तमी, रथ सप्तमी, या महती सप्तमी, पुत्र सप्तमी, अचला सप्तमी तथा सप्त सप्तमी) : आज के दिन अलग–अलग प्रयोजनों से सूर्य भगवान की पूजा की जाती है। सूर्य सप्तमी आरोग्य के लिये, विशेष रूप से चर्मरोग से छुटकारा पाने के लिये, मनाते हैं। सूर्योदय के उपरान्त कसुम्भा की बत्ती तथा तिल के तेल वाले दीपक में सात आक तथा सात बेर के पत्ते रखकर नदी या तालाब के किनारे उसे सर पर रख लेते हैं तथा सूर्य का ध्यान करके गन्ने से जल को हिलाकर (सूर्य की परछाई हटाकर) दीपक को प्रवाहित कर देते हैं जिसका मन्त्र है "**नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः। वरुणाय नमस्तेऽस्तु।**" फिर "**यद् यज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम्। मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः।। इति सप्तविधं पापं स्नानान्ते सप्त सप्तिके। सप्तव्याधिसमाकीर्णं हर भास्करि सप्तमि।।**" मन्त्र का जाप करके केशव और सूर्य भगवान को देखकर गंगाजल को जल में डाल कर स्नान करने से सारे पाप दूर हो जाते हैं। इसके बाद सूर्य को अर्घ्य देते हैं जिसका मन्त्र है– "**सप्तसप्तिवह प्रीत सप्तलोक प्रदीपन। सप्तभ्या सहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर।**" अर्घ्य में जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, दूर्वा, आक तथा बेर के सात–सात पत्ते रखे जाते हैं। तत्पश्चात् सप्तमी तिथि को अर्घ्य दिया जाता है। उसका मन्त्र है, "**जननी सर्वलोकानां सप्तमी सप्तसप्तिके। सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमण्डले।।**" इसके उपरान्त ब्राह्मण को तालक (ताड़ का फल) दान में देने के लिये चन्दन से अष्टदल कमल बनाकर इसकी आठों दिशाओं में, पूर्व से प्रारंभ करके, क्रमशः शिव, शिवा, रवि, भानु, वैवस्वत, भास्कर, सहस्रकिरण और सर्वात्मा की स्थापना और पूजा की जाती है। तत्पश्चात् ताम्बे आदि के पात्र में सोने के कुण्डल, घी, गुड़, तथा तिल रखकर लाल वस्त्र से ढककर इसकी गन्ध, पुष्पादि से पूजन का विधान है। पूजन के बाद "**आदितस्य प्रसादेन प्रातःस्नानफलेन च। दुष्टदुर्भाग्यदुःखघ्न मया दत्तं तुतालकम्।।**" ऐसा कहकर इसे दान कर दिया जाता है। कई स्थानों में आदित्य हृदय का पाठ तथा हवन करने का भी विधान है। आज एक ही शाम, वह भी बिना नमक और तेल के, खाना खाते हैं। भानु सप्तमी के लिये सूर्य भगवान की मूर्ति को, अष्टदल कमल बनाकर बीच में स्थापित किया जाता है। संकल्प मन्त्र है– "**ममाखिलाकामनासिद्धर्थे सूर्यनारायण प्रीतये च सूर्य पूजनं करिष्ये।**" फिर "**ॐ सूर्याय नमः**" अथवा पुरुषसूक्तादि से षोडशोपचार पूजन किया जाता है। सूर्य भगवान की रथयात्रा निकाली जाती है तथा सूर्यास्त से पहले बिना नमक, तेल का भोजन किया जाता है। महती सप्तमी या रथ

सप्तमी का सारा विधान यही है। अन्तर इतना ही है कि इसमें सूर्य भगवान की पूजा रथ पर बैठे हुए स्वरूप की होती है तथा प्रत्येक शुक्ल पक्ष की सप्तमी को इनकी पूजा की जाती है एवं वर्ष पूरा होने पर इसे ब्राह्मण को दे दिया जाता है।

पुत्र सप्तमी भी आज की तिथि को ही प्रारंभ करते हैं। अन्तर इतना ही है कि पुत्र सप्तमी के व्रत के लिये षष्ठी को उपवास किया जाता है। सप्तमी की सुबह स्नान करके लाल कमल के फूलों से सूर्य नारायण की पूजा की जाती है तथा सूर्य भगवान के मन्त्रों से हवन करके ब्राह्मणों को अनोना भोजन कराते हैं। इसी प्रकार व्रत पूजन आदि कृष्ण पक्ष की षष्ठी/सप्तमी को किया जाता है। प्रत्येक मास में दो बार करते हुए पूरे वर्ष पर्यन्त यह व्रत होता है। वर्ष के अन्त में उद्यापन करते हैं। इसे सन्तान (पुत्र) प्राप्ति के लिये किया जाता है।

सप्त सप्तमी : यह भी आज की तिथि को ही प्रारंभ किये जाने वाले व्रतों में एक है पर इसका सम्बन्ध वार से होता है। रविवार की सप्तमी को जया अथवा अर्क सम्पुटक, सोमवार की सप्तमी को विजया अथवा मरीचि, मंगल की सप्तमी को महाजया अथवा निम्ब पत्र, बुधवार की सप्तमी को जयन्ती अथवा सुफला, गुरुवार की सप्तमी को अपराजिता अथवा अनोदना, शुक्रवार की सप्तमी को नन्दा या विजया तथा शनिवार की सप्तमी को भद्रा अथवा कामिका कहते हैं। अर्क सम्पुटक से धनवृद्धि, मरीचि से सन्तान और प्रिय जनों से मिलन, निम्ब पत्र से रोगनाश, सुफला से पुत्र, पौत्र, नाती आदि की वृद्धि, अनोदना से धन–धान्य, आरोग्य लाभ, विजया से शत्रुओं पर विजय तथा कामिका से कामना पूर्ति होती है। एक मत यह भी कहता है कि रविवार को यदि पंचतारक नक्षत्र (वैसे नक्षत्र जिसमें पाँच तारे हैं यथा रोहिणी, आश्लेषा, मघा तथा हस्ता) अथवा पुन्नाम नक्षत्र (मृगश्रृरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्ता, अनुराधा) हों तो फल की सिद्धि होती है। व्रत के नियम वही हैं – अर्थात् आकाश स्थित सूर्य भगवान अथवा उनकी प्रतिमा का पूजन, हवन आदि तथा अनोना भोजन दान करके स्वयं व्रत का पारायण करना चाहिये। कई बार सूर्य सप्तमी को आरोग्यष्टमी भी कहते हैं क्योंकि इस व्रत को करने से स्वास्थ्य लाभ तो होता ही है।

माघ शुक्ल अष्टमी (भीष्माष्टमी) : ऐसी मान्यता है कि इसी तिथि को भीष्म पितामह ने प्राण त्यागे थे। उनकी सन्तान नहीं थी इसलिये प्रत्येक जानकार व्यक्ति को आज की तिथि को उनके लिये तर्पण तथा तिल–जल आदि का दान करना चाहिये। सवेरे स्नान करके हाथ में तिल, जल आदि लेकर अपसव्य (जनेऊ दाहिने कन्धे पर रखकर) और दक्षिण की ओर मुँह करके निम्नांकित मन्त्र पढ़ा जाता है–

"वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च। गंगा पुत्राय भीष्माय सर्वदा ब्रह्मचारिणे।। भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः। आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचिता

क्रियाम्।।" फिर सव्य होकर पूर्व की ओर मुँह करके अर्घ्य देने का मंत्र है, "**वसूनामवताराय शंतनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे।।**" इससे पुत्र पौत्र दीर्घायु होते हैं तथा पितृभक्त भी।

माघ पूर्णिमाः इसी दिन कल्पवास शेष होता है। प्रातः काल स्नान करके विष्णु भगवान की पूजा होती है। फिर पितरों का श्राद्ध किया जाता है। असमर्थों को भोजन कराया जाता है, तिल, गुड़, घी, गर्म कपड़े, फल, अन्नादि का यथा शक्ति दान किया जाता है। पूरे दिन के व्रतोपरान्त रातभर कथा/कीर्त्तन कही जाती है और अगले दिन पारण होता है। यदि इस दिन शनि मेष में, गुरु और चन्द्रमा सिंह में तथा सूर्य श्रवण में हो तो इसे महामाघी पूर्णिमा कहते हैं तथा यह अक्षय फलदायिनी होती है।

फाल्गुन कृष्णाष्टमी (श्री सीता जयन्ती/हलाष्टमी) : एक प्रचलित मत के अनुसार आज के दिन समुद्र तट पर बैठकर श्री राम ने सीता जी की प्राप्ति की कामना से यह व्रत किया था – ऐसा उन्हें गुरु वशिष्ठ ने कहा था। इसमें चरु का हवन तथा पूये आदि का नैवेद्य चढ़ाते हैं। कुछ लोग इस अष्टमी को सीता जी का जन्म हुआ मानते हैं। सीता का अर्थ हल का फाल होता है। अतः आज ही हल की पूजा की जाती है तथा सीता जी की भी।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी (महाशिवरात्रि) : यूँ तो जन्माष्टमी तथा दीपावली को छोड़कर प्रायः सभी पर्व/ उत्सव/ व्रत दिन में सम्पन्न होते हैं किन्तु रात्रि के चारों प्रहर में सम्पन्न किये जाने वाले इस पर्व का महत्व कुछ और ही है। वैसे तो चाहे शुक्ल पक्ष की हो या कृष्ण पक्ष की, चतुर्दशी के स्वामी महादेव ही कहलाते हैं और उस दिन उनका पूजन किया जाता है किन्तु फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को विशेष रूप से भगवान शंकर की आराधना करने का विधान है जिसे महाशिवरात्रि कहा जाता है क्योंकि ईशान संहिता में कहा गया है कि इसी अर्धरात्रि (निशीथ) में "**फाल्गुन कृष्ण-चतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि। शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः।।**" अर्थात् कोटि सूर्य की प्रभा के समान शिवलिंग का प्रादुर्भाव हुआ। एक प्रश्न अनायास मन में उठता है कि यह पर्व रात्रि में ही क्यों मनाया जाता है। कुछ विद्वान कहते हैं कि शंकर भगवान तो संहार के स्वामी हैं, तमोगुण उनका विशेष प्रभा क्षेत्र है अतः रात्रि से शंकर भगवान का स्नेह स्वाभाविक है। रात्रि का अर्थ है निद्रा और निद्रा का प्रभाव है समस्त चेतनाओं का संहार। रात्रि आरंभ होने का तात्पर्य है प्रकाश का शेष होना, धीरे–धीरे सारे कर्मों का शेष होना – तभी तो भगवान शंकर का अपने बच्चों के प्रति दुलार प्रकट होता है। यह तो हम जानते ही हैं कि प्रदोष की पूजा शाम में ही की जाती है जो दिन के अवसान का प्रतीक है और रात्रि के, शंकर जी के काल के, प्रारंभ का भी। अमावस्या की रात्रि सबसे घनघोर होती है जब चन्द्रमा का प्रकाश

नहीं रहता – इस समय तामसिक वृत्तियाँ अपने चरम पर रहती हैं और इन्हें ही हम प्रेत–भूत आदि कहते हैं। चतुर्दशी को भगवान शंकर की पूजा करके इन्हें नियंत्रण में रखा जाता है। एक मत से फाल्गुन वर्ष का अन्तिम मास होता है अतः फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को यह पर्व मनाना एकदम सही है। जो भी हो, इस व्रत का बहुत महात्म्य है क्योंकि ऐसी मान्यता है कि देवताओं में सबसे जल्दी प्रसन्न हो जाने वाले औघड़दानी बाबा शंकर ही हैं और महाशिवरात्रि ऐसी पूजा है जिसमें पृथ्वी के सारे उपादानों से महांन वेदपाठी द्वारा उनकी पूजा की जाये तो भी कम है या फिर निर्धन से निर्धन और घोर मूर्ख भी केवल विल्ब पत्र तथा जल चढ़ा कर मात्र पंचाक्षरी का उच्चारण करके सभी फल प्राप्त कर सकता है। एक मत के अनुसार यह व्रत एकादशी, कृष्णाष्टमी, रामनवमी तथा नृसिंह जयन्ती की भांति है जिसके न करने से दोष लगता है।

पूजन विधि : शिवपुराण में बताया गया है कि आज के दिन प्रातःकाल की सन्ध्या आदि करके माथे पर भस्म का त्रिपुण्ड तिलक और गले में रुद्राक्ष की माला पहनकर शिवालय जाकर भगवान शंकर का विधिपूर्वक पूजन करके व्रत का संकल्प लिया जाता है। "**शिवरात्रि व्रतं ह्येतत् करिष्येऽहं महाफलम्। निर्विघ्नमस्तु मे चात्र त्वन्प्रसादाज्जगत्पते।**" संकल्प करने के लिये वही सामान्य विधि है अर्थात् हाथ में जल, अक्षत, पुष्प, विल्बपत्र तथा चन्दन लेकर मन्त्र पढ़कर उसे छोड़ दिया जाता है। बाद गें पढ़ने का मन्त्र है, "**देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते। कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव।। तव प्रसादाद्देवेश निर्विघ्नेन भवेदिति। कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि।।**"

यह श्लोक बहुत सुन्दर है जिसमें भगवान शंकर को बार–बार नमस्कार करके कहा जाता है कि हे प्रभु, हम आपका यह शिवरात्रि व्रत करना चाहते हैं, हे देवेश्वर, आपकी कृपा से यह व्रत निर्विघ्न सम्पन्न हो जाये तथा काम आदि शत्रु मुझे पीड़ा न दें। इस प्रार्थना के बाद घर आकर सारा दिन पंचाक्षरी (नमः शिवाय) का जाप किया जाता है। जो यज्ञोपवीत धारण करते हैं तथा उसके सभी नियमों को मानते हैं उनके लिये मन्त्र है "ऊँ नमः शिवाय"। इसके अतिरिक्त सारा दिन मौन और उपवास रखा जाता है। यथाशक्ति निराहार रह कर सन्ध्यापूजन प्रारंभ किया जाता है। यह पूजा रात के चारों प्रहरों में, अलग–अलग, की जाती है। जो बीमार, अशक्त अथवा वृद्ध हैं, वे दिन में फलाहार कर सकते हैं। शाम में स्नानादि करके घर में नर्मदेश्वर महादेव (नर्मदा नदी से प्राप्त शिवलिंग) अथवा ऐसे ही शिवलिंग हों तो वहीं अथवा शिवमन्दिर में पूर्व या उत्तराभिमुख होकर भगवान शंकर को दूध, दही, घी, शहद तथा शक्कर से पहले अलग–अलग बाद में सबों को मिलाकर पंचामृत बनाकर

उससे और अन्त में शुद्ध जल से स्नान कराते हैं। स्नान कराने से पहले संकल्प लेने का मन्त्र है, "**ममाखिलपापक्षयपूर्वकसकला अभिष्ट सिद्धये शिवप्रीत्यर्थं च शिवपूजनमहं करिष्ये।**" स्नान या अभिषेक करते समय वैदिक मन्त्रों का पाठ करने का विधान है। सामान्यतः रुद्र पाठ करना उत्तम है अन्यथा पंचाक्षरी तो है ही। आज सामान्य फल, फूल के अतिरिक्त विल्वपत्र, धतूरा तथा आक के पुष्प विशेष रूप से चढ़ाये जाते हैं। रुद्राभिषेक के बाद अर्घ्य पुष्पांजली और देते हैं जिसका मन्त्र है, "**मयाकृतान्यनेकानि पापानि हर शंकर। शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यनुमाकान्त गृहाण मे।**" फिर प्रार्थना करते हैं, "**संसार क्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर। प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव।**" पुष्पांजली अर्पित करते समय भगवान के आठ नामों का उच्चारण किया जाता है। ये नाम हैं भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान, भीम और ईशान। फिर शंकर जी की आरती करते हैं और उनकी परिक्रमा की जाती है। इसी प्रकार से रात्रि जागरण करते हुए चारों प्रहर की पूजा की जाती है। शास्त्रों में कहा गया है कि यदि किसी से, अशक्त होने के कारण, चारों प्रहर की पूजा संभव न हो तो चतुर्दशी के पहले प्रहर की पूजा और अगली प्रातः चौथे प्रहर की पूजा अवश्य करनी चाहिये। अन्तिम पूजा के उपरान्त प्रार्थना की जाती है, "**नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया। विसृज्यते मया स्वामिन् व्रतं जातमनुत्तमम्।। व्रतेनानेन देवेश यथाशक्ति कृतेन च। सन्तुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि।।**" हे भोलेनाथ, आपकी आज्ञा से यह उत्तम व्रत यथाशक्ति मैंने किया। हे शर्व, आप सन्तुष्ट हों और मुझ पर कृपा करें।

इस व्रत की महिमा का वर्णन संभव ही नहीं है।

फाल्गुन अमावस्या (फाल्गुनी अमा): लिंग पुराण में कहा गया है कि यदि सोम, मंगल, गुरु या शनिवार की अमावस्या हो तो उसमें व्रत, दान का फल सूर्य ग्रहण के व्रत/दान से अधिक होता है। इस दिन कुछ लोग युग का आरंभ मानते हैं अतः आज पितरों का श्राद्ध भी किया जाता है। सामान्यतः इस व्रत में रुद्र, अग्नि तथा ब्राह्मणों का पूजन करके उन्हें उड़द, दही और पूरी आदि का भोग लगाया जाता है तथा वही सारे दिन में एक बार प्रसाद के रूप में खाया जाता है। इसी दिन एक और बारह दिन चलने वाला व्रत भी प्रारंभ किया जाता है जिसका नाम पयोव्रत है। पयो का अर्थ दूध होता है। श्रीमद्भागवत् पुराण में कहा गया है कि देवमाता अदिति ने इसी व्रत को करके वामन भगवान को जन्म दिया था अतः पुत्र की इच्छा रखने वाले स्त्री पुरुष को यह व्रत करना चाहिये। इसके लिये अमावस्या के दिन मिट्टी का लेप करके सरोवर में शुद्ध स्नान करते हैं अथवा घर में ही शुद्ध स्नान करके गौ के दूध की खीर बना कर दो विद्वान ब्राह्मणों को उसका भोजन कराते हैं और व्रती स्वयं भी वही खाते हैं। शुक्ल प्रतिपदा को भगवान को गौ के दूध से स्नान कराया जाता है तथा जल से संकल्प इस मन्त्र से किया जाता है, "**मम सकल गुणगण**

वरिष्ठ महत्व सम्पन्नायुष्मत्पुत्र प्राप्ति कामनया विष्णु प्रीतये पयोव्रतमहं करिष्ये।" फिर सोने की बनी हृषिकेश भगवान की मूर्ति का षोडशोपचार से पूजन करके **"ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय"** का जाप किया जाता है। तत्पश्चात् उनके नौ नामों – (1) महापुरुषाय नमः, (2) सूक्ष्माय नमः, (3) द्विशीर्ष्णे नमः, (4) शिवाय नमः, (5) हिरण्यगर्भाय नमः, (6) आदि देवाय नमः, (7) मरकतश्यामवपुषे नमः, (8) त्रयी विद्यात्मने नमः, (9) योगश्व्यर्य शरीराय नमः से उन्हें प्रणाम करते हैं तथा पुष्पांजली दी जाती है। फिर एक बार गौ का दूध पीकर सारा दिन उपवास करने का विधान है। ऐसा प्रतिपदा से द्वादशी तक, बारह दिनों पर्यन्त, किया जाता है। त्रयोदशी को यथाविधि भगवान विष्णु का पूजन करते हैं। सामान्यतः विष्णु सहस्त्रनाम, पुरुर्ष सूक्त तथा नारायण कवच पढ़ने का विधान है। फिर विष्णु भगवान की प्रतिमा को पंचामृत एवं शुद्धजल से स्नान कराते हैं। तेरह ब्राह्मणों को गाय के दूध की बनी खीर खिलायी जाती है तथा भगवान विष्णु की मूर्ति को गुरु को दान में दे देते हैं। व्रत की समाप्ति के बाद, तेरहवें दिन, स्वयं भी गौ दुग्ध की खीर खायी जाती है।

फाल्गुन शुक्ल तृतीया (मधुक तृतीया) : अवैधव्य की कामना रखने वाली स्त्रियाँ इस दिन गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य से गौरी माता की पूजा करती हैं। गन्ध (चन्दन) आदि अर्पण करने के मन्त्र इस प्रकार हैं – **ऊँ भूमिकायै नमः गन्धं समर्पयामि; ऊँ देवभूषायै नमः, पुष्पम् समर्पयामि; ऊँ उमायै नमः, धूपं समर्पयामि; ऊँ तपोवनरतायै नमः दीपं समर्पयामि तथा ऊँ गौर्ये नमः नैवेद्यं समर्पयामि। अन्त में पढ़ा जाने वाला मन्त्र है, "दौर्भाग्यं मे शमयतु सुप्रसन्नं मनः सदा। अवैधव्यं कुले जन्म ददात्वपरजन्मनि।।"**

फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी (अविघ्नकर चतुर्थी, मनोरथ चतुर्थी) : महाराज सगर ने अश्वमेध के समय, त्रिपुर असुर युद्ध के समय शिवजी ने तथा समुद्र मन्थन में विघ्न न होने के लिये यह व्रत स्वयं नारायण ने किया था। आज के दिन गणेश जी की मूर्ति का षोडशोपचार से पूजन करके तिल के पदार्थों का भोग लगाया जाता है, तिल से ही हवन भी किया जाता है, पाँच विभिन्न धातुओं के पात्रों में तिल भर कर ब्राह्मणों को दान में दिया जाता है, उन्हें तिल की वस्तुओं का भोजन करा कर स्वयं भी वही खाया जाता है। यह व्रत प्रत्येक शुक्ल चतुर्थी को, चार मास तक, करने के बाद पाँचवे माह (आषाढ़) में यह मूर्ति ब्राह्मण को दान में दी जाती है। इससे सभी विघ्न दूर होते हैं।

अगर आज से प्रारंभ करके, पूरे वर्ष पर्यन्त प्रत्येक शुक्ल चतुर्थी को भगवान गणेश की षोडशोपचार पूजा की जाये तथा नक्त व्रत (निराहार रहना) रहा जाये तो सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा मनोरथ सिद्ध होते हैं।

फाल्गुन शुक्ल सप्तमी (अर्कपुष्ट सप्तमी, कामदा सप्तमी, कल्याण सप्तमी): आज भी सूर्य भगवान की पूजा की जाती है। षष्ठी को एक समय भोजन करके सप्तमी को निराहार रहकर, "**खरखोल्काय नमः**" मन्त्र से, सूर्य भगवान की पूजा की जाती है तथा अष्टमी को तुलसी दल के समान अर्क (आक) के पत्तों को खाया जाता है। यह सभी रोग दूर करता है। कामदा सप्तमी साल भर चलने वाला व्रत है। आज स्नानादि करके सूर्य भगवान का पूजन किया जाता है। सारा दिन भगवान सूर्य का स्मरण "सूर्याय नमः" मन्त्र से किया जाता है। आज नमक रहित भोजन करते हैं तथा अष्टमी को स्नान करके सूर्य देव का हवन–पूजन किया जाता है। ब्राह्मण को दक्षिणा दी जाती है। नैवेद्य में कसार का भोग लगाया जाता है। सात घोड़ों की पूजा करके सब सामग्री दान में दी जाती है। यह वर्ष भर प्रत्येक शुक्ल सप्तमी को किये जाने से सन्तान, धन, स्वास्थ्य तथा पद प्राप्ति होते हैं। सामान्य कल्याण के लिये आज सूर्य का पूजन करके दान में घी, गुड़, जल से भरा कलश आदि दिये जाते हैं। दूसरे दिन ब्राह्मणों का पूजन करके उन्हें खीर खिलाने का विधान है।

फाल्गुन शुक्ल एकादशी (आमलकी एकादशी): आज के दिन आँवले के वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान का पूजन करने का विधान है। सामान्यतः सारे दिन के उपवास के बाद वृक्ष के नीचे खिचड़ी बनाकर खाने की परम्परा है।

फाल्गुन शुक्ल द्वादशी (परशुराम द्वादशी) : यह व्रत परशुराम जी की प्रसन्नता के लिये किया जाता है। द्वादशी को संकल्प करते हैं "**द्वादश्यां तु निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि। भोक्ष्यामि जामदग्न्येश शरणं मे भवाच्युत।।**" आँवले के वृक्ष के नीचे वेदी बनाकर ताँबे या बाँस के पात्र में खील भर कर उसमें भगवान परशुराम की मूर्ति रखी जाती है। उनके ध्यान का मन्त्र है, "**क्षत्रान्तकरणं घोरमुद्वहन् परशुं करे। जामदग्यन्यः प्रकर्त्तव्यो रामो रोषारुणेक्षणः।।**" फिर पंचामृत से स्नान करा कर षोडशोपचार की पूजा के बाद उनकी अंग पूजा की जाती है। "**पादयोर्विशोकाय नमः, जान्वो सर्वरुपिणे नमः, नासिकायां शोकनाशाय नमः, ललाटे वामनाय नमः, भ्रुवो रामाय नमः तथा शिरसि सर्वात्मने नमः।**" फिर श्री राम के नाम मन्त्र से उनके फरसे की पूजा की जाती है। इसके बाद उन्हें अर्घ्य देने का मन्त्र है, "**नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोस्तु ते। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मालत्या सहितो हरे।**" इसके बाद आँवले की जड़ में जल देते हैं। "**माता पितामहश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः। ते पिबन्तु मय दत्तं धात्रीमूले सदा पयः।**" फिर आँवले के वृक्ष का अभिषेक किया जाता है तथा आठ, अठ्ठाईस या एक सौ आठ बार उसकी प्रदक्षिणा की जाती है। फिर मूर्ति को दान में देकर ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है और स्वयं भी व्रत का पारण करते हैं।

फाल्गुन पूर्णिमा (व्रत द्वयी पूर्णिमा, होलिका दहन) : आज के दिन ही अदिति के गर्भ से सूर्य तथा अनुसूया के गर्भ से चन्द्रमा का जन्म हुआ था – ज्योति के दोनों स्वरूप का आदुर्भाव आज की तिथि को होने से इसका विशेष महत्व है। कहीं–कहीं सूर्योदय तथा चन्द्रोदय के समय सूर्य भगवान एवं चन्द्रमा देवता की अलग–अलग और कहीं कहीं चन्द्रोदय तथा सूर्यास्त के समय एक साथ ही दोनों की पूजा की जाती है। इस दिन रात्रि में एक बार (नक्त व्रत) भोजन का विधान है।

होलिका दहनः यह वास्तव में एक वैदिक यज्ञ है। वैदिक यज्ञों में सोम यज्ञ सबसे महत्वपूर्ण माने गये। इन यज्ञों में सोमलता का रस निचोड़ कर उससे यज्ञ किये जाते थे। सोमलता अब नहीं मिलती। पहले सोमरस के प्रयोग के यज्ञ के तीन प्रमुख भेद थे – इनके नाम हैं क्रमशः एकाह, अहीन और सत्र याग। सत्र याग पूरे वर्ष भर तक चलने वाला अनुष्ठान था। गवामयन भी एक सत्रयाग है जो 360 दिनों तक चलता था। इसके अन्तिम दिन से एक दिन पहले का दिन महाव्रत कहा जाता था। महाव्रत प्रजापति (संवत्सर के स्वामी) को प्रसन्न रखने का अनुष्ठान है। इस दिन वर्ष भर यज्ञ आदि करके थके ऋत्विक (हवन करने वाले ऋषि आदि) कुछ मनोरंजन और आमोद प्रमोद भी करते थे। इसके लिये यज्ञवेदी के समीप गूलर की टहनी गाड़ी जाती थी जिसके नीचे बैठ कर साम वेद पाठी वेद पाठ करते थे। उद्‌गता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता तथा सुब्रह्मण्य, ये चार श्रेणियाँ सामवेद गायकों की हैं जो पहले अपने–अपने भाग और बाद में सामूहिक रूप से गाते थे। गीत के अतिरिक्त यज्ञवेदी के चारों ओर नगाड़े बजाये जाते थे तथा स्त्रियाँ चारों ओर नृत्य करती थीं – अन्य स्त्रियाँ तथा पुरुष वीणा बजाते थे। उस दिन अभिगर (ब्राह्मण) – अयगर (शूद्र) – संवाद भी होता था जिसमें दोनों एक दूसरे से ठिठोली करते थे। उस दिन स्वादिष्ट पकवान बनाये जाते थे। आज भी प्रायः यही सब होता है पर स्वरूप बिगड़ गया है। माघ की पूर्णिमा को ही बस्ती के पश्चिमी छोर पर एरण्ड की लकड़ी गाड़ दी जाती है (जो गूलर का प्रतीक है) तथा उसके नीचे कण्डे, उपले और सूखी लकड़ियाँ एकत्र की जाती हैं। कुछ वर्षों पहले तक एरण्ड के स्थान पर जंगल से टहनियों सहित वृक्ष की पूजा करके उसे गाजा बाजा के साथ लाकर स्थापित किया जाता था। यह होली अथवा प्रह्लाद के नाम से जाना जाता है।

आज सवेरे स्नानादि करने के बाद संकल्प का मन्त्र है "**मम बालक बालिकादिभिः सह सुखशान्तिप्राप्त्यर्थं होलिकाव्रतं करिष्ये।**" फिर होलिका दहन के स्थल की जल से शुद्धि करके वहाँ काष्ठ, उपले आदि इकठ्ठे क़िये जाते हैं। शाम में गीत, संगीत के साथ होली के समीप पूर्व या उत्तर मुख बैठकर पूरी टोली के द्वारा संकल्प किया जाता है जिसका मन्त्र है, "**मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य सर्वापच्छान्तिपूर्वक-सकलशुभफल प्राप्त्यर्थं ढुण्ढाप्रीतिकामनया होलिकापूजनं करिष्ये।**"

तत्पश्चात् बाहर से अग्नि मँगा कर होलिका जलाते हैं। गन्ध, पुष्प, अक्षत, जल आदि से अग्नि का पूजन किया जाता है। इसके बाद उसकी तीन बार परिक्रमा की जाती है, "**असृक्पाभयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः। अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूते प्रदा भव।।**" तथा अर्घ्य दिया जाता है। इसके बाद होली का डण्डा हटा कर उसे ठण्डे पानी से ठण्डा किया जाता है। बची आग में जौ–गेहूं की बाली तथा चने की झाड़ को सेंक कर थोड़ी सी यज्ञ की भस्मि सहित घर ले आते हैं जहाँ आँगन को गोबर से लीपकर उसपर नवान्न (आग पर सेकी गयी बालियाँ तथा चना) रखते हैं। हास–परिहास, आमोद–प्रमोद के बाद गुड़ के पकवान खाने की रीति है। इसे प्रकारान्तर से नवान्नेष्टि यज्ञ भी कहा जाता है।

वैदिक काल के बाद इसी दिन से प्रह्लाद की बुआ होलिका के जलने की कथा भी जुड़ गयी है। कुछ लोग इसी तिथि को भगवान शंकर द्वारा कामदेव के दहन से भी जोड़ते हैं।

देश के कई हिस्सों में फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा तक होलाष्टक (आठ दिनों का पर्व) मनाया जाता है। इस दिन आम की मंजरी में चन्दन मिलाकर खाने का भी विधान है। आज के दिन सबों को शिष्ट हास–परिहास करने की छूट रहती है जिससे मन में दबी कुण्ठाएँ बाहर हो जाती हैं।

चैत्र कृष्ण प्रतिपदा (होली, वसंतोत्सव प्रारंभ, गणगौर पर्व) : आज के दिन रंग–गुलाल और आमोद–प्रमोद की छटा रहती है। पूरे वर्ष भर के गिले–शिकवे भूल कर एक दूसरे से गले मिलते हैं। उत्तम, सुस्वाद भोजन तथा मित्रों से मिलने–जुलने का दिन है यह।

गणगौर पूरे चैत्र कृष्ण पक्ष, अर्थात् चैत्र कृष्ण प्रतिपदा से लेकर शुक्ल प्रतिपदा तक मनाये जाने वाला पर्व है। यह कुँवारी कन्याओं अथवा नवविवाहिताओं द्वारा किया जाने वाला व्रत है। इसके पीछे गण (भगवान शंकर) तथा गौर (माता पार्वती) की पन्द्रह दिनों तक पूजा किये जाने का रहस्य है। स्त्रियाँ गाँव अथवा नगर के बाहर स्थित शंकर–पार्वती के मन्दिर में जाकर श्री कृष्ण जैसा भाई और कामदेव जैसे सुन्दर वर की प्रार्थना करती हैं। इस व्रत में होली की राख से पिण्ड बनाये जाते हैं तथा अंकुरित जौ के साथ इनका पूजन होता है। प्रत्येक प्रातः युवतियाँ पूजा सामग्री सहित अपने सर पर तीन या सात कलश लेकर पूजन के लिये मंदिर को जाती हैं। राजस्थान में माना जाता है कि इस उत्सव का आरंभ पार्वती जी के गौने के उपरान्त घर लौटने पर उनकी सहेलियों द्वारा स्वागत गान के द्वारा हुआ था। इसी कारण से आज भी गणगौर की काठ की प्रतिमाओं के साथ मिट्टी की प्रतिमाएँ भी लेकर नवयुवतियाँ किसी जलाशय के किनारे जाकर नृत्य और गीत के उपरान्त मिट्टी

की प्रतिमाएँ विसर्जित कर देती हैं तथा काठ की प्रतिमाएँ वापस लाकर पूजती हैं।

चैत्र कृष्ण चतुर्थी (संकष्ट चतुर्थी) : यदि कोई संकट चल रहा हो, या आने की संभावना हो तो संकष्ट चतुर्थी या संकटा चतुर्थी का व्रत करने से यह संकट दूर हो जाता है या आता ही नहीं है। प्रत्येक माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को गणेश जी की पूजा की जाती है। चतुर्थी को प्रातः स्नानादि से निवृत होकर पुष्प, चन्दन, अक्षत और जल से संकल्प लिया जाता है, "**मम वर्तमानागामिसकलसंकटनिरसन पूर्वक सकलाभिष्ट सिद्धये संकट चतुर्थी व्रतमहं करिष्ये।**" अर्थात् मेरे वर्तमान तथा आगामी सभी संकटों को हटाने तथा सभी अभिष्ट की सिद्धि के लिये मैं संकट चतुर्थी का व्रत करता हूँ।

यह संकल्प करके सारा दिन मौनव्रत का पालन करते हुए सन्ध्या में गणेश जी की पूजा की जाती है। इसके बाद चन्द्रमा का गन्ध–पुष्पादि से पूजन किया जाता है। उन्हें अर्घ्य देने का मन्त्र है, "**ज्योत्सनापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते। नमस्ते रोहिणीकान्त गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते।**" फिर उनकी प्रार्थना का मन्त्र है, "**नमोमण्डल दीपाय शिरोरत्नाय धूर्जटेः। कलाभिर्वर्धमानाया नमश्चन्द्राय चारवे।**" चन्द्रमा की पूजा के उपरान्त फिर गणेशजी को तीन बार अर्घ्य दिया जाता है, "**गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धि प्रदायक। संकटष्टं हरमे देव गृहाणर्घ्यं नमोऽस्तु ते।**" इसके बाद चतुर्थी तिथि को अर्घ्य देते हैं। "**तिथीनामुत्तमे देवि गणेश प्रिय वल्लभे। गृहाणार्घ्यं भयाहत्तं सर्वसिद्धि प्रदायिके।**" इसके उपरान्त गणेशजी का विसर्जन, "**आयातस्त्वमुमापुत्र ममानुग्रहकाम्यया। पूजितोऽसि मया भक्त्या गच्छ स्थानं स्वकं प्रभो।**" मन्त्र से करके ब्रह्मणों को भोजन कराने का विधान है जिसके बाद व्रती स्वयं तेल रहित भोजन करता है। यह व्रत प्रत्येक कृष्ण चतुर्थी को तथा चार अथवा तेरह वर्षों तक किया जाता है। व्रत की समाप्ति अर्थात् चार या तेरह वर्ष पूरे होने, के उपरान्त सर्वतोभद्र मण्डल पर कलश स्थापन किया जाता है तथा उस पर सोने के गणेश और चाँदी के चन्द्रमा की पूजा की जाती है। फिर हवन किया जाता है तथा इक्कीस मोदक (लड्डू) गणेश जी को निम्नाकित नामों से चढ़ाये जाते हैं। गणंजः", गणपति, हेरम्ब, धरणीधर, महागणाधिपति, यज्ञेश्वर, शीघ्रप्रसाद, अभंगसिद्धि, अमृत, मन्त्रज्ञ, किन्नाम, द्विपद, सुमंगल, बीज, आशापूरक, वरद, शिव, कश्यप, नन्दन, सिद्धिनाथ तथा ढुण्ढिराज। इन 21 मोदकों में एक गणेश जी के लिये छोड़कर दस ब्राह्मणों को देकर शेष दस को प्रसाद स्वरूप ग्रहण किया जाता है। ब्राह्मणों को गोदान, शय्यादान आदि कराने का विधान भी है जिसके बाद उन्हें भोजन कराके स्वयं भोजन किया जाता है। चन्द्रमा की पूजा इसलिये की जाती है क्योंकि मान्यता

है कि गणेश का मस्तक चन्द्रमा में है क्योंकि गणेशजी का असली सर चन्द्रलोक में चला गया था जिसके स्थान पर हाथी का सर लगा है।

चैत्र कृष्णाष्टमी (शीतलाष्टमी/ संतानाष्टमी): शीतलाष्टमी को माता शीतला की कृपा के लिये व्रत करते हैं जो व्रती के कुल में किसी प्रकार के ज्वर, दुर्गन्ध युक्त फोड़े, नेत्रों के रोगों आदि को प्रविष्ट ही नहीं होने देती। शीतला के निशान आदि भी दूर हो जाते हैं। इस व्रत की विशेषता है कि सारा भोग शीतल होता है अर्थात् उसे एक दिन पहले बनाया जाता है और माता शीतला को बासी भोग लगाया जाता है। इसलिये लोकाचार में इस व्रत को बसौड़ा भी कहा जाता है। रोटी, सब्जी, खीर, मिठाई, पूआ, पूरी, दाल–चावल आदि एक दिन पहले बना कर रख लिया जाता है। व्रत के दिन चूल्हा नहीं जलता। व्रत के दिन सवेरे स्नान के बाद का संकल्प मन्त्र है, **"मम गेहे शीतलारोगजनितोपद्रवप्रशमनपूर्वकायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धये शीतलाष्टमीव्रतं करिष्ये।"** इसके बाद पाँचों उँगलियां घी में डुबो कर रसोई की दीवार पर छापा लगाया जाता है। उस पर रोली तथा चावल चढ़ा कर शीतला माता के गीत गाये जाते हैं। शीतलामाता का षोडशोपचार से पूजन करके शीतला स्तोत्र का पाठ तथा शीतला माता की कथा सुनी जाती है। इस दिन दीपावली जैसा त्योहार मनाने तथा रात्रि जागरण का भी विधान है। कहीं–कहीं चौराहे पर जल चढ़ाने की परम्परा भी है। कुछ जगह थाली में प्रसाद–जल पूजन सामग्री आदि रखकर शीतला माता के मन्दिर में दान भी किया जाता है। शीतला स्तोत्र में देवी का स्वरूप बताया गया है, **"वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बरी। मार्जनी कलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम्।।"** अर्थात् माता गर्दभ पर बैठी हैं तथा दिम्बरी हैं। सूप, झाड़ू तथा नीम के पत्ते उनके अलंकार हैं तथा वे हाथ में ठण्डे जल का कलश रखती हैं। संतानाष्टमी के लिये प्रातः स्नानादि के उपरान्त भगवान श्री कृष्ण तथा माता देवकी की षोडशोपचार से पूजा की जाती है तथा दोपहर में सात्विक पदार्थों का भोग लगाया जाता है।

चैत्र कृष्ण त्रयोदशी (वारुणी पर्व): चैत्र कृष्ण त्रयोदशी को यदि शतभिषा (वारुण) नक्षत्र हो तो 'वारुणी', अगर त्रयोदशी तथा शतभिषा शनिवार को पड़ें तो 'महावारुणी' तथा त्रयोदशी, शतभिषा एवं शनिवार के अतिरिक्त शुभ योग भी हो तो 'महामहावारुणी' पर्व कहा जाता है। इस योग में काशी, प्रयाग अथवा हरिद्वार में स्नान/ दान/ उपवास करने से करोड़ों सूर्य ग्रहणों के समान फल प्राप्त होता है।

चैत्र अमावस्या: इस दिन श्राद्ध/ दान/ जप/ ध्यान/ पूजन और उपवास किया जाता है। इस दिन यदि सोम, मंगल या गुरुवार हो तो किये गये पुण्य कार्य का फल सूर्यग्रहण में दान/स्नान के समान होता है। इसी दिन संवत्सर भी समाप्त होता है।

इस प्रकार वर्ष भर जीवन आनन्दमय, रसमय तथा भक्तिमय रहने से तीनों प्रकार की आपदाएँ दूर होती हैं तथा सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

प्रदोष व्रत

शिवजी की प्रसन्नता के लिये प्रत्येक मास के शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को किया जाने वाला यह व्रत एकादशी की भांति ही सभी कामनाओं की पूर्ति करता है। कहा जाता है कि प्रदोष काल में (सूर्यास्त से दो घड़ी बीतने तक) सभी देवतागण, यक्ष, गन्धर्व, पक्षी, अप्सराएँ, भूतादि कैलास पर्वत पर जाकर शिवजी की आराधना करते हैं। इसलिये प्रदोष का विशेष महत्व है तथा इस दिन पूजा प्रदोष काल में की जाती है।

त्रयोदशी के दिन उपवास करके सूर्यास्त से तीन घड़ी पूर्व स्नानादि करके श्वेत कपड़े पहनकर गोबर से लीप कर वेदी बनाते हैं जिस पर पांच रंगों से कमल का फूल बनाकर शिवजी की दिव्य मूर्ति या किसी गहरे बर्तन में अर्घी सहित शिव लिंग रख देते हैं। कुशासन पर पूरब या उत्तर मुँह बैठकर भगवान शंकर का ध्यान करते हैं। हाथ में जल, पुष्प, बिल्व पत्र, चन्दन और अक्षत लेकर संकल्प किया जाता है जिसका मन्त्र है, "**मम शिवप्रसादप्राप्तिकामनया प्रदोषव्रतांगीभूतं शिवपूजनं करिष्ये।**" इसके उपान्त "**उमा महेश्वराभ्यां नमः**" से आह्वान किया जाता है। रुद्राभिषेक भी करने की परम्परा है जिसके बाद षोडशोपचार पूजन करते हैं। फिर प्रार्थना का मन्त्र है, "**जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभंजन। जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो।। प्रसीद मे महाभाग संसारार्तस्य खिद्यतः। सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर।।**" फिर आरती करते हैं तथा "**नमः शिवाय**" का यथा शक्ति जप किया जाता है। अन्त में भोजन करते हैं।

कुछ विशेष जानने योग्य बातें भी हम कहना चाहते हैं। ऊपर कही गयी पूजा सामान्य सुख–शान्ति के लिये है किन्तु प्रदोष व्रत अलग–अलग कामनाओं की पूर्ति के लिये भी किया जाता है। यह प्रदोष के वार पर निर्भर करता है। जैसे आरोग्य प्राप्ति के लिये उस त्रयोदशी को प्रदोष व्रत प्रारंभ करते हैं जब रविवार हो; और यह व्रत वर्ष पर्यन्त किया जाता है। इसी प्रकार सोम प्रदोष से प्रारंभ होने वाला व्रत अभिष्ट सिद्धि के लिये, मंगल प्रदोष से प्रारंभ होने वाला व्रत ऋण से छुटकारा पाने के लिये, सौभाग्य तथा विवाहादि के लिये शुक्र प्रदोष से प्रारंभ होने वाला व्रत तथा सन्तान सुख के लिये शनि प्रदोष से प्रारंभ होने वाला व्रत करना बताया गया है। ये व्रत कम से कम दोनों पक्षों में पूरे वर्ष या कामना की सिद्धि तक करने की संस्तुति की गयी है।

व्रत के दिन प्रातःकाल स्नान करके संकल्प लिया जाता है "**मम आरोग्यादि/ अभिष्टादि/ ऋणमोचनादि/ सौभाग्य एवं कलत्रादि/ पुत्रादि प्राप्ति कामनया प्रदोषंव्रतमहं करिष्ये।।**" फिर सूर्यास्त से पहले स्नान करके पहले बताई रीतियों के अनुसार पूजा की जाती है। प्रार्थना का मन्त्र है –

"भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमते। रुद्राय नीलकण्ठाय शर्वाय शशिमौलिने।।
उग्रायोग्राघनाशाय भीमाय भयहारिणे। ईशानाय नमस्तुभ्यं पशूनां पतये नमः।।"

इसके बाद षोडशोपचार से पूजा करते हैं। नैवेद्य में सेंके हुए जौ का सत्तू, घी और शकर का भोग लगाया जाता है तथा आठों दिशाओं में दीपक रखकर प्रत्येक को आठ बार नमस्कार करते हैं।

इसके बाद शंकर जी के वाहन स्वरूप किसी वृष (साँड या बैल) को दूर्वा खिलाते हैं तथा पानी पिलाते हैं फिर उनका पूजन करते हैं जिसका मन्त्र है, "**धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक। अष्टमूर्त्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन।।**" अन्त में शंकर तथा माता पार्वती की पूजा का मन्त्र है, "**ऋण रोगादि दारिद्रय पापक्षुदपमृत्यवः। भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा।। पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरान्तानि यानि च। अण्डमाश्रित्य तिष्ठन्ति प्रदोषे गोवृषस्य तु।। स्पृष्ट्‌ठा तु वृषणौ तस्य श्रृंगमध्ये विलोक्य च। पुच्छं च ककुदं चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते।।**" आज वृष के सींग तथा पूंछ आदि का भी स्पर्श किया जाता है।

सामान्यतः यह व्रत हरेक माह के दोनों पक्षों में किया जाता है परन्तु श्रावण मास में शंकर जी की पूजा का विशेष महत्व है। कहा जाता है कि भगवान शंकर ने क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न हलाहल का पान इसी माह में किया था अतः उसके ताप को कम करने के लिये शंकर जी ने सर पर चन्द्रमा धारण किया है तथा श्रावण मास में उन्हें जलाभिषेक, दुग्धाभिषेक, पंचामृताभिषेक आदि किये जाने से उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता होती है। श्रावण के सोमवार तथा प्रदोष के दिनों में किया गया यह पूजन अत्यन्त फलदायी होता है।

संलग्नक - 2

मुगल साम्राज्य और ज्योतिष

मुगल साम्राज्य की नींव डाली थी बाबर ने। बाबर के नाना और दादा क्रमशः चंगेज खां और तैमूर लंग थे। इन दोनों नामों को सारा हिन्दुस्तान आज भी पशुता और गिरी हुई विकृत मानसिकता का प्रतीक मानता है। बाबर के दादा तैमूर लंग ने हिन्दुस्तान पर 1398 में हमला किया था पर वे यहाँ पर रुके नहीं। लूट–पाट कर और अपनी लंगड़ी औकात दिखा इतिहास के पन्नों में अपनी बदनामी और बदमाशी के चर्चे छोड़ कर हज़रत चले गये।

1526–1530 तक बाबर ने 4 साल ही हमारे देश पर राज्य किया। बाबर के पास हमसे बेहतर हथियार थे। हिन्दुस्तान में लड़ाई के मैदान पर पहली बार तोपों का प्रयोग बाबर ने ही किया – 1526 में। अपनी फौज से कहीं बड़ी इब्राहीम लोधी की फौज को पानीपत की पहली लड़ाई में हरा कर बाबर ने मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

बाबर को बाहर खदेड़ने के लिये राणा साँगा ने राजपूतों की फौज जमा की और आगरा की तरफ कूच किया। आगरे से 40 मील दूर खनुआ के पास, बाबर ने राजपूतों को हरा कर मुगलों के पैर हिन्द में जमा दिये, बाबर ने इस लड़ाई से पहले अपने ज्योतिषी मुहम्मद शरीफ़ (आज के तथाकथित सेक्युलर लोग नोट करें) से सलाह ली थी और उसका कहना था कि बाबर की हार होगी। बाबर ने वहाँ ड्रामा किया उसने अपने सभी साथियों और फौज को इकट्ठा कर प्रण किया कि वह शराब छोड़ रहा है। उसने बेशकीमती मीना और पैमाने तोड़ दिये और ऐलान किया "मुझे यश (नाम) चाहिये – इसके लिये मुझे मरना मंजूर है क्योंकि मेरा जिस्म तो मौत को गिरवी है ही"। इसके बाद उसके योद्धा धर्म के नाम पर पूरी शक्ति से लड़े और बाबर जीता। मुहम्मद शरीफ़ को एक लाख रुपये दिये गये और उसे देश से निकाल दिया गया।

हुमायूँ

बाबर ने हुमायूँ के जन्म को कुछ इस तरह से बताया है– "मंगलवार को 4 ज़िकद 913 हिज़री (6 मार्च 1508 एडी) जब सूर्य मीन नक्षत्र में था तब के काबुल किले के अन्दर हुमायूँ पैदा हुआ" मौलाना मुसनादौन एक जाने–माने शायर ने जन्म के दिन की गणना के अनुसार नाम दिया "सुल्तान हुमायूँ खान'। एक दूसरे आज़िम ने अंक गणित का प्रयोग कर नाम बताया "शहे फिरोज़ कद्र"। अंक गणित (Numerology) और जन्मदिन को समन्वित करके हुमायूँ नाम चुन लिया गया।

जन्मदिन समारोह और ज्योतिष

हुमायूं के जन्म दिवस पर "तुला दान" होता था । बादशाह को सोने में तोलकर वह सोना रियाआ में बाँटा जाता था। दरबार को राशियों के अनुरूप सजाया जाता था। दरबारी ग्रहों के रगों के हिसाब से बैठाये जाते थे। सबसे बाहरी इलाका सफेद रंग का होता था उसके बाद क्रम् से नीला, काला, केसरी, लाल, सुनहरी, बैंगनी, हरा और सबसे अन्दर का चक्र फिर सफेद होता था।

बादशाह सुनहरी (सूर्य) के चक्र में बैठता था। हिन्दू अमीर–उमरा काले (शनि) चक्र में, सैयद और आलिम केसरी (बृहस्पति) चक्र में, सिपहसलार और गोलंदाज़ लाल (मंगल) चक्र में, शायर और कसीदे वाले बैंगनी (शुक्र) चक्र में बैठते थे। बाकी लोग अपने काम के मुताबिक अपने चक्र में जगह लेते थे। हर ग्रह के रंग में 200 लोग बैठ सकते थे इस तरह से इस जन्मदिन दरबार में 1400 लोग शिरकत करते थे।

हुमायूँ का स्वभाव

हुमायूँ ने 25 बरस राज किया। वह ज्योतिष शास्त्र का अच्छा जानकार था। उसे खगोल विद्या भी आती थी। वह अंधविश्वासी भी था। उसके दरबार में दाहिना पैर आगे रख कर आने का हुक्म था और यह हुक्म बड़ी संजीदगी से लागू किया जाता था। हुमायूँ तो मस्जिद में भी दायाँ पैर ही पहले रख कर जाता था। हुमायूँ खुले दिल और खुले हाथ वाला बादशाह था।

शकुनः शकुन हुमायूँ की एक बड़ी विशेषता रही है। मुसलमान शकुन को "फाल" कहते थे और आज भी कहते है। शकुन स्कंधपंच का हिस्सा है। "कानूने हुमायूँनी" नामक ग्रन्थ में फाल को इस प्रकार से समझाया गया है :–

"दो किस्म के शकुन होते हैं – अच्छे शकुन को "फाल" कहते है और बुरे शकुन को "तियाराह"। हज़रत मोहम्मद ने कहा है कि "फाल" को अपनाओं और "तियाराह" को छोड़ो। पैगम्बर साहब ने फरमाया है कि जो भी अच्छा शब्द तुम सुनो

वह "फाल" है। उन्होंने यह भी कहा कि चिड़ियों का उड़ना, जानवरों की हरकतें और पत्थरों का फेंकना जो बुत–परस्तों में "फाल" माने जाते है उन्हें मत मानों।

"कानूने हुमायूँनी में दो वाकये यह दिखाने को बयान किये गये हैं कि हुमायूँ शकुन में कितना विश्वास करता था। एक बार हुमायूं घुड़सवारी के लिये अपने साथी मौलाना मसीहुद्दीन के साथ निकला। उसने "फाल" पढ़ने का फैसला किया और कहा कि अगले जो तीन लोग उनको मिलेंगे उन तीनों के नाम से "फाल' का फैसला होगा। पहला आदमी एक बूढ़ा था उसने अपना नाम बताया "मुराद ख्वाजा" दूसरा एक लकड़हारा था जिसका नाम था "दौलत ख्वाजा"। अब हुमायूँ ने कहा कि अगर तीसरा आदमी जो मिलेगा उसका नाम "सदात" हो तो यह शकुन बड़ा ही अच्छा होगा। उन्हें एक बच्चा दिखा और उसका नाम भी था "सदात"। अब इन तीनों नामों की क्या खूबी है यह देखिये :

मुराद : अच्छे दिखने वाले, दिल वाले लोग इस नाम को सार्थक करते हैं।

दौलत : अमीर–उमरा, बड़े लोग समाज के श्रेष्ठ जन इस नाम के साथ जुड़े हैं।

सदात : सैय्यद, आलिम, काज़ी, पढ़े लिखे लोग इस नाम के साथ है।

इस फाल से हुमायूँ को दैवीय संदेश मिला कि वह अपनी हर कोशिश में कामयाब होगा।

एक बार लड़ाई पर जाने को तैयार हुमायूँ ने "फाल" निकाला। एक सफेद रंग का मुर्गा उसके दाहिने कन्धे पर आकर बैठ गया। हुमायूँ इस शकुन से इतना खुश हुआ कि उसने अपने सैनिकों को जीत की बधाई तक दे डाली।

दिनों की बात : शनिवार और बृहस्पतिवार, ये दो दिन "एहले सादात" कहलाते थे। इन दिनों में अपनी पढ़ाई और इबादत पर जोर दिया जाता था। शनि को अपनी संस्कृति और बृहस्पति को अपनी शरियत और इबादत के साथ जोड़ा जाता था। यह परम्परा संभवतः आज भी मुसलमानों में होगी, हिन्दू समाज में भी है।

इतवार-मंगलवार को "एहले दौलत" कहा जाता था – इन दिनों में बादशाहत के काम लोगों की फरियाद सुनना तथा कानून और अमन चैन बनाकर रखने वाले काम होते थे। यह तो सभी ज्योतिष प्रेमी जानते हैं कि इतवार सूर्य का दिन है जो बादशाही से जुड़ा है और हुकूमत देता है। इसी प्रकार मंगल बहादुरी और सिपाहियों से जुड़ा है।

सोमवार-बुधवार का नाम था 'एहले मुराद" जिससे नदीम और ख़ास लोग जुड़े थे। इन दिनों में महफिलें सजती थीं, जहाँ गजलें गाई जाती थी और मुशायरे

होते थे। चन्द्रमा जैसे सुन्दर लोगों का दीदार होता था और बुध के प्रभाव में वाह वाह करने वाली तारीफें सुनी जाती थीं।

शुक्रवार – यह खूबसूरत रहने और दिखने का दिन था। शुक्र का यही काम तब भी था और आज भी है। शुक्रवार खुद को अपने भगवान, अपने खुदा के सामने सबसे सुन्दर रूप में पेश किया जाता है ताकि वो खुश हो। शुक्र इबादत का दिन है।

तत्त्व और कार्य प्रणाली : हुमायूँ के प्रशासनिक विभाग पंच तत्त्वों के आधार पर बाँटे गये थे।

आतिशी विभाग (अग्नितत्त्व) : इस विभाग के मातहत हथियार, तोपखाना, युद्ध के सारे असलहे आते थे। इस विभाग का वज़ीर दरबार में लाल कपड़े पहनता था और "मीर आतिश" का खिताब पाता था।

हवाई विभाग (वायु तत्त्व) : यह विभाग घोड़े, खच्चर, शाही अस्तबल और रसोईघरों को चलाता और नियंत्रित करता था। इसके वज़ीर पीले कपड़े पहनते थे।

आबी विभाग (जल तत्त्व) : यह विभाग राज्य के तरल पदार्थों पर नियंत्रण रखता था। जल साधनों से लेकर शरबत, शराब इसी के आधीन थे। वज़ीरे आब नीले कपड़े पहन कर दरबार में जाते थे।

खाकी विभाग (पृथ्वी तत्त्व) : खेती–बाड़ी, मकान, महलों का निर्माण तथा जमीन से जुड़े सारे काम इस महकमे के अधीन थे। वज़ीरे खाकी–हरे कपड़े पहन कर दरबार जाते थे।

हुमायूँ के काल में ज्योतिष शास्त्र ने मुस्लिम समाज और राज्य को पूरी तरह से प्रभावित कर रखा था। ज्योतिष की पैठ हर तरफ और हर काम मे थी और मज़े की बात यह थी यह सब जिसके शासन काल में हो रहा था यह एक मुसलमान राजा था। ज्योतिष विश्व को भारत की देन है। इसे हिन्दुत्व के छोटे से दायरे में तो 700 साल पहले भी नहीं रखा जा सका था, आज के भूमंडलीकरण के युग में तब इसे कैसे संकीर्णता में बाँध कर रखा जा सकता है।

शेरशाह सूरीः शेरशाह सूरी पूर्वी भारत में अपना राज्य स्थापित करना चाहता था जिसमें बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा प्रमुख थे। शेरशाह सूरी को ज्ञात हुआ कि एक प्रसिद्ध ज्योतिषी उड़ीसा के राजा की सेवा में कार्यरत हैं। वह उस ज्योतिषी से मिलकर अपने भविष्य के बारे में ज़ानकारी हासिल करना चाहता था किन्तु उड़ीसा के राजा ने इसकी अनुमति नहीं दी। वस्तुतः उस ज्योतिषी ने लिखित में यह भविष्यवाणी की थी कि शेरशाह को एक वर्ष तक बंगाल में विजय प्राप्त नहीं होगी।

उसने अपनी भविष्यवाणी में उस तारीख का जिक्र किया है जब शेरशाह को गंगा नदी पार करके बंगाल पर चढ़ाई करनी चाहिए ताकि उसे युद्ध में सफलता प्राप्त हो सके। शेरशाह सूरी ने 10 मुहर्रम 947 हिज़री (17 मई 1540) को हुमायूँ की सेना से युद्ध किया एवं उसे परास्त किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि हुमायूँ को भारत देश छोड़ना पड़ा।

उपर्युक्त घटनाएँ यह दर्शाती हैं कि किस प्रकार ज्योतिष ने हुमायूँ के आचरण एवं उसकी आत्मा को गहराई तक छुआ था जो कि स्वयं द्वितीय मुगल सम्राट था। ध्यान देने योग्य यह बात है कि हुमायूँ अपने जीवन काल में कई युद्ध हारा था। जीवन के उतार–चढ़ाव ने उसे ज्योतिष का दृढ़ अनुचर बना दिया था। क्योंकि ज्योतिष विषय निश्चित तौर पर भाग्य के उत्थान एवं पतन के बहाव का निर्धारण करने वाला है।

अकबर का जन्म

अकबर का जन्म 4 रज़ब 949 हिजरी (14 अक्टूबर 1542 ई.) को प्रातःकाल अमरकोट में हुआ। उनके जन्म के समय चंद्रमा सिंह राशि में गोचर कर रहे थे, जो एक शुभ स्थिति थी। ज्योतिषियों का मानना था कि इस शुभ मुहूर्त में पैदा हुआ जातक राजातुल्य भोग को भोगने वाला एवं दीर्घजीवी होता है। पिता हुमायूँ ने 4 रब्बी ऊसानी 947 हिज़री (8 अगस्त1540 ई.) को लाहौर मे देखे एक स्वप्न के आधार पर अपने पुत्र का नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर रखा।

एक विश्वासी दरबारी सूत्र के अनुसार हुमायूँ अक्सर एकान्त में अकबर की कुण्डली को देखता था एवं प्रसन्न हो जाता था। ऐसी ही एक घटना का वर्णन करते हुए उसने कहा है कि एक बार वह उस एकान्त स्थान पर गया जहाँ हुमायूँ अकेला था। उसने कदमों की आवाज सुनी। चूंकि किसी भी व्यक्ति को वहाँ जाने की इजाजत नहीं थी इसलिए उसने चिन्तन किया और फिर उसे आभास हुआ कि उसके हज़रत पाशा (हुमायूँ) अत्यन्त प्रसन्नचित होकर नृत्य कर रहे हैं। जब हुमायूँ को ज्ञात हुआ कि उसके अधीनस्थ अधिकारी ने उसे नृत्य करते हुए देख लिया है तो उसने उसे अपने आनन्दित होने का कारण यह बताया कि वह अपने पुत्र अकबर की कुण्डली को देखकर प्रसन्न है जो यह कहती है कि उसका पुत्र महाभाग्यशाली है।

एक बार युद्ध काल में हुमायूँ ने अकबर को बैरम खान के साथ रणभूमि में भेजा। कुछ समय के पश्चात् पिता को अपने पुत्र की कुशलता आदि की फिक्र होने लगी। इसलिए उसने अक़बर की कुण्डली का पुनर्लोकन किया। हुमायूँ ने स्वयं कुण्डली का अध्ययन किया, ग्रहों की शुभ स्थिति एवं कुण्डली में व्याप्त विभिन्न प्रकार के राजयोगों ने उसे सांत्वना दी कि उसका पुत्र दीर्घजीवी ही नहीं, वरन

शत्रुओं पर विजय भी अवश्य ही प्राप्त करेगा। उसकी कुण्डली सफलता एवं सौभाग्य का प्रतिबिम्ब थी। हुमायूँ ने मौलाना बैज़ीद को अकबर की शिक्षा–दीक्षा के लिए नियुक्त किया जो स्वयं ज्योतिषाचार्य थे एवं प्रसिद्ध तुर्की ज्योतिषी मिर्ज़ा उलेम बेग के रिश्तेदार भी ।

अकबर

अकबर के जन्म के समय 'चाँद' नामक ज्योतिषी से सलाह मशविरा किया गया जिसने स्पष्ट रूप से अकबर के शुभ मुहूर्त में पैदा होने की भविष्यवाणी की। अकबर नामा के तृतीय अध्याय में हमें अकबर की जो कुण्डली प्राप्त हुई है वह ग्रीक अस्त्रलैब पर आधारित है। मोलाना चाँद ज्योतिषी ने अकबर की जो कुण्डली बनाई वह नीचे दी गई है।

नामः अकबर, जन्म स्थानः अमरकोट, जन्म समयः 15 Oct 1542 02:00 a.m.

मौलाना चाँद ने युवराज सलीम (जहाँगीर) की कुण्डली भी बनाई थी। यह कुण्डली अकबर के शासन के चौदहवे वर्ष में 1570 में बनाई गई। हिन्दू ज्योतिष के अनुसार अकबर की कुण्डली 'जोतिक राय' ने बनाई जो अकबर के राज दरबार में राज ज्योतिषी था। उनकी कुण्डली निम्न प्रकार से है।

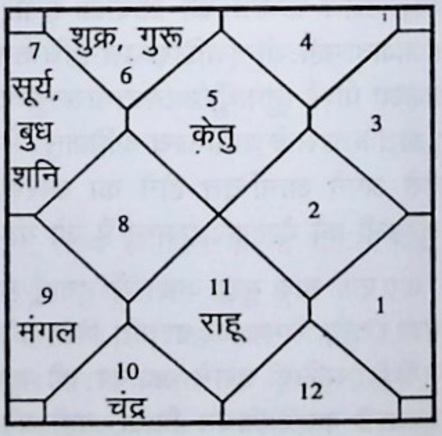

दोनों कुण्डलियों में लग्न का अन्तर है जो इसलिए है क्योंकि दोनों ज्योतिषियों ने दो अलग प्रकार के नियमों का पालन किया है।

अबकर नामा के ही पंचम अध्याय में एक और कुण्डली दी गई है जो अजदुद्दौलाह अमीर–फतुल्लाह–शिराज ने बनाई थी। ये 1583 में अकबर के दरबार आये थे। वह नीचे दी गयी है।

अर्दाबिल (अजरबैजान की राजधानी) के मौलाऩा अल्यास ने इल्खानी सारणी का उपयोग किया है। अल्यास एक प्रसिद्ध गणितज्ञ था जो तबरीज़ देश का नागरिक था। वहीं नसीर–उद–दीन तूसी की वेधशाला भी थी। नीचे दी गई कुण्डली उसके द्वारा बनाई गई है।

आपने ऊपर की चार कुण्डलियों में देखा कि ग्रीक एवं भारतीय ज्योतिषियों द्वारा बनाई गई अकबर की कुण्डली में अन्तर है। भारतीय ज्योतिषियों ने अकबर का लग्न सिंह माना है जबकि ग्रीक ज्योतिषियों ने उन्हें कन्या लग्न का बताया है। दोनों कुण्डलियों में अन्तर का प्रमुख कारण दोनों देशों के दर्शनशास्त्रियों के बीच राशि चक्र को लेकर मतभेद है। यह मतभेद आज भी मौजूद है।

अकबर के शासनकाल में ज्योतिष की दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

''फलित ज्योतिष' नाम की पुस्तक के रचयिता अब्दुररहीम खान–खाना थे। यह मनसवी (कथा) के रूप में थी जिसमें संस्कृत एवं फारसी में श्लोक यथाक्रमानुसार दिये गये हैं।

ताज़िक – यह पुस्तक एक ज्योतिष पुस्तक का रूपांतर है जिसका फारसी भाषा में अकबर के आदेशानुसार मुकम्मल खान गुजराती ने रूपान्तर किया। ताज़िक मध्य एशिया में रहने वाली जाति का नाम है जो पर्शियन भाषा बोलते हैं। इस शब्द का प्रयोग अरेबिया में भी किया गया है। संस्कृत भाषा में रचित 'ताज़िक नीलकण्ठी' फलित ज्योतिष की एक श्रेष्ठतम पुस्तक है। इस पुस्तक का नाम 'ताज़िक नीलकण्ठी' इसलिए रखा गया क्योंकि ताज़िक शब्द फलित ज्योतिष का पर्याय बन चुका था। ('अकबर' रचयिता राहुल सांस्कृत्यायन पृष्ठ 308)।

अकबर के राज्याभिषेक की कुण्डली

कलानौर (गुरदासपुर के समीप) की ईदगाह में अकबर के राज्याभिषेक को चिन्हित करने के लिए स्मारक का निर्माण किया गया। द्वितीय रबी–अस–सनी 963 के चन्द्र वर्ष के अनुसार (14 फरवरी 1556) शुक्रवार अपरान्ह का समय राज्याभिषेक के लिए शुभ मूहूर्त था। किन्तु एक अन्य गणना के अनुसार दरूम इसफनदरनाज जुलाई, वर्ष 477 के तृतीय का मध्य (15 फरवरी), यज़दजीरदी वर्ष 925 का 15 तीर, रूमी का 14 शवर, वर्ष 1867 दिन तय किया गया। अकबर के राज्याभिषेक के पावन पर्व का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि उसकी गौरवपूर्ण वंशपरम्परा को चिन्हित करते हुए उसे स्वर्णिम वस्त्र धारण कराये गये एवं उसके मस्तक पर मस्किन मुकुट

14 फरवरी 1556 दोपहर, कालानौर

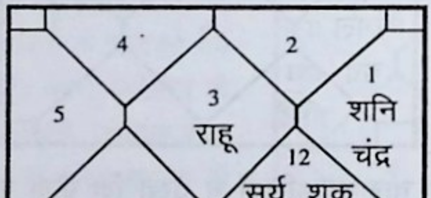

पहनाया गया जो उसके गरिमापूर्ण साम्राज्य का द्योतक था। उसे खलीफा का स्थान दिया गया।

सम्राटों के सम्राट् के राज्याभिषेक की कुण्डली का वर्णन

शुभ मुहूर्त में बनी इस कुण्डली में कई विशेषताएँ हैं। दशम भाव में स्थित दिग्बली सूर्य महान साम्राज्य एवं राजगद्दी का द्योतक है। दशम भाव में स्थित ग्रहों की स्थिति इस भाव को अत्यधिक बल प्रदान कर रही है। जो दर्शाती है कि इस शुभ मुहूर्त में राजगद्दी सम्भालने वाला व्यक्ति विश्व का प्रिय होगा।

इमाम –अबूल–मोहम्मद गजनी, जो खगोलीय–शकुन के प्रसिद्ध ज्ञाता थे, का मानना था कि यदि वृश्चिक लग्न होता तो स्थिति अत्यधिक शुभ होती क्योंकि तब सूर्य देव दशम भाव के स्वामी होते हैं। किन्तु इस कुण्डली में भी सूर्य दशम भाव के स्वामी न सही किन्तु दशम भाव में स्थित हैं जो सूर्य की दिग्बली स्थिति है इसलिए सूर्य का शुभत्व उसे शुभ भाग्य के रूप में प्राप्त होता रहेगा।

कुण्डली में द्वितीय स्थान सम्पत्ति का है, द्वितीयेश चन्द्रमा एकादश भाव में हैं जो महत्वकांक्षाओं को पूर्ण करने का भाव है। अभिप्राय यह है कि यह पृथ्वी पर व्याप्त धन को हासिल करने का प्रमाण है जो आसानी से इस व्यक्ति के भाग्य में है। तृतीय भाव कुण्डली का मित्र एवं भाई बन्धुओं एवं रिश्तेदारों का भी भाव है। तीसरे भाव में सिंह राशि है जिसका स्वामी सूर्य दशम भाव में दिग्बली हैं जो दर्शाती है कि जातक के रिश्तेदार उसका आदर करेंगे एवम् उसकी आज्ञा का निर्विरोध पालन करेंगे।

चतुर्थ भाव में कन्या राशि है, चतुर्थ भाव भूमि, सम्पदा इत्यादि का भाव है। चतुर्थेश बुध नवम भाव में स्थित हैं जो यात्रा का भी भाव है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि शहंशाह को भविष्य में सम्भावित युद्धों में विजय के साथ राज्यों का भी लाभ प्राप्त होगा जो मुगल साम्राज्य के विस्तार में प्रमुख भूमिका निभायेगा।

पंचम भाव में तुला राशि है जिसके स्वामी शुक्र उच्च के होकर मीन राशि में स्थित हैं। पंचम भाव सन्तान, यश, पदवी का भाव है। शुक्र की उच्च स्थिति दिखाती है कि सन्तान यशस्वी होगी एवं राजा को प्रिय होगी। राजा का प्रभुत्व समस्त विश्व में व्याप्त होगा एवं पूरे विश्व में सम्राट के नाम का परचम लहरायेगा।

छठे भाव में वृश्चिक राशि है, छठा भाव शत्रुओं, नौकरों एवं रोग का भी भाव है। इसके स्वामी मंगल दशम भाव में हैं। मंगल की दिग्बली स्थिति वफादार गुलाम एवं समर्पित नौकर–चाकर को दिखलाती है। यह राजा का सभी के प्रति समान भाव भी दर्शाता है।

कुण्डली का सप्तम भाव क्षितिज का अधोबिन्दु है इसलिए वैरी, शत्रुओं का भी भाव है। सप्तम भाव में स्थित बृहस्पति हैं जो एक शुभ ग्रह है इसलिए शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना कठिन कार्य नहीं होगा।

कुण्डली का आठवाँ भाव पैतृक सम्पदा या विरासत में प्राप्त लाभ का भी भाव है। इसके स्वामी शनि लाभ भाव में स्थित हैं जो पैतृक आशीर्वाद से प्राप्त लाभ को दर्शाता है। नवम भाव का सम्बन्ध उच्च शिक्षा, धर्म एवं यात्रा से है। लग्नेश स्वयं नवम भाव में स्थित हैं। जो जातक को बुद्धिमान एवं धार्मिक बनाते हैं। जातक धार्मिक क्रिया कलाप में संलग्न होगा एवं अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा जीवन में सफलता प्राप्त करेगा।

कुण्डली का दशम भाव राजगद्दी एवं पदवी का भाव है। दशम भाव में सूर्य, शुक्र एवं मंगल स्थित हैं। अर्थात राजा का शासन काल सुखपूर्वक व्यतीत होगा एवं उसका शौर्य व यश दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जायेगा।

एकादश भाव में मेष राशि है। इस भाव का सम्बन्ध करीबी मित्रों एवं स्वयं से है। यह सूर्य की उच्च राशि है और तीव्र गति से चलने वाले चंद्रमा यहाँ स्थित हैं। जातक के पवित्र मन में उदित होने वाली महत्वाकांक्षाएँ शीघ्रता से पूर्ण होंगी, एवं जातक से मित्रता करने वाले संगी–साथी भी उसके शुभ भाग्य से लाभान्वित होंगे।

द्वादश भाव में वृषभ राशि है। यह भाव शत्रुओं का भाव है। ग्रहों से हीन इस स्थिर भाव को कोई भी ग्रह प्रभावित नहीं करता है अतः जातक उन सब शत्रुओं को परास्त करेगा जो राज्य या धर्म के विस्तार में अड़चन बनेंगे। चंद्रमा सूर्य की उच्च राशि में स्थित हैं। इन ज्योतिषाचार्यों के अनुसार चन्द्रमा, जो श्रेष्ठ दिव्य अंश (सूर्य) से प्रकाश लेकर हीन दिव्य अंश तक पहुँचाने की मध्यस्थता करता है, उन्हें मेष में ही होना चाहिए। यह अपने आप में एक शुभ स्थिति है। सूर्य का चन्द्रमा के साथ समागम हो रहा है। दशम भाव के स्वामी बृहस्पति सप्तम भाव में स्थित हैं। लग्न में वायु तत्त्व की राशि है जो विजयी सेना को अनुशासन प्रिय बनाती है अतः इसने राजकीय गौरव व प्रतिष्ठा बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभाई। यश के कारक सूर्य दशम भाव में हैं। राजभक्ति के प्रतीक बृहस्पति सप्तम भाव में, अपनी मूलत्रिकोण राशि में, हैं। दशम भाव, जो शासक का भाव है, अति बली है। राज्य के कार्य सुचारु ढंग से पूर्ण होंगे। यानि पूर्ण रूप से कुण्डली भाग्य में बढ़ोतरी एवं महत्वाकांक्षाओं की पूर्णता दिखाती है। यदि राज्याभिषेक के समय ब्रह्माण्ड में व्याप्त ग्रहों, एवं उनकी अत्यधिक शुभ स्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण कुण्डली के माध्यम से किया जाय तो इसे ईश्वरीय कृपा का अनन्त आशीर्वाद माना जा सकता है। किस प्रकार सृष्टि निर्माण

के बाद पहली बार ग्रहों नक्षत्रों एवं ईश्वरीय आशीर्वाद का परस्पर मिलन एक ऐसे मुहूर्त का निर्धारण कर रहा था जो इससे पहले कभी नहीं हुआ था।

जहाँगीर

जहाँगीर को ज्योतिष में पूर्ण विश्वास था। 'जहाँगीरनामा' में यह स्पष्ट है कि जहाँगीर स्वयं ज्योतिष शास्त्र का जानकार था व उसे हिन्दू ज्योतिष एवं ग्रीक ज्योतिष में अन्तर का ज्ञान भी था। "जहाँगीरनामा" जहाँगीर द्वारा लिखित पुस्तक है जिसमें उसके शासन काल का विस्तार से वर्णन है। यह फारसी भाषा में लिखी गई है जिसका हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हुआ है। हिन्दी भाषा में रचित 'जहाँगीरनामा' से कुछ संक्षिप्त आख्यान यहाँ दिये जा रहे हैं जो दर्शाते हैं कि जहाँगीर ज्योतिष शास्त्र का उपयोग अपनी दिनचर्या एवं शासन सम्बन्धी निर्णय लेने में किया करता था। जहाँगीरनामा का द्वितीय संस्करण 1990 में प्रकाशित हुआ जिसके प्रकाशक 'नागरी प्रचारिणी सभा' काशी हैं। 'जहाँगीरनामा' के संकलन से कुछ तथ्य यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे है।

राज्याभिषेक

जहाँगीर अपने पिता अकबर की मृत्यु के बाद 20 जमादी–उल–अव्वल 1014 हिज़री को गुरुवार प्रातःकाल गद्दी पर बैठा जब वह 38 वर्ष का था। उस मुहूर्त का समय आगरा शहर के एक ज्योतिषी ने निकाला था।

जुलूसी वर्ष किसी भी राजा के राज्याभिषेक से शुरू होता है एवं उसकी मृत्यु तक चलता है जिसकी गणना क्रमशः प्रथम, द्वितीय व तृतीय वर्ष के अनुसार चलती है। किन्तु जहाँगीर ने द्वितीय जुलूसी वर्ष की शुरूआत नौरोज़ के दिन से की जो ईरान का प्रथम दिन/मास होता है। इस दिन मेष संक्राति भी होती है यानि इस दिन सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है। जहाँगीर ने अपने जन्म के समय स्थित ग्रहों का वर्णन भी किया है। अकबर ने पुत्र प्राप्ति के लिए दरगाह शरीफ ख्वाज़ा मोईउद्दीन चिश्ती का आशीर्वाद लिया था। जहाँगीर ने इस घटना का वर्णन निम्न शब्दों में किया हैः–

"पुत्र की चाह में पिता ने निर्मल हृदय से निवेदन किया, मेरे भाई की मृत्यु के 6 वर्ष बाद बुधवार 17 रबी–उल–अव्वल 977 हिज़री जब दिन के 7 घटी पूर्ण हुए थे, तब क्षितिज पर तुला राशि 24 अंश उदित हो चुकी थी तब ईश्वर ने मुझे इस धरती पर भेजा।"

जहाँगीर ने कम से कम दो मुगल ज्योतिषियों का जिक्र किया है जो अकबर एवं उसके शासन काल में रहेः– "उसका नाम शेख अब्दुल्लाह था जिसके ज्ञान,

बुद्धिमत्ता एवं विश्लेषण क्षमता का कोई दूसरा सानी नहीं था। वह ज्योतिष में अत्यन्त प्रवीण था किन्तु उसके भाग्य का सितारा मेरे पिता के साथ शोभित नहीं हुआ।"

"दूसरा उदाहरण तब का है जब मैं खुसरो का पीछा कर रहा था। उस वक्त मैने किसी शुभ मुहूर्त का इन्तजार नहीं किया। जबंतक मैंने उसे पकड़ नहीं लिया, तब तक मैंने आराम तक नहीं किया। यहं विचित्र बात है कि जब मेरे गणितज्ञ ज्योतिषी हाकिम अली से खुसरो का पीछा करने का सही समय पूछा गया तब उनका उत्तर था कि यदि तुम अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए सही समय का इन्तजार करते तो शायद कई वर्षों तक तुम्हें ऐसा अच्छा समय नहीं प्राप्त होता।"

जहाँगीर सभी अवसरों का मुहूर्त जरूर निकलवाया करता था जैसे यात्रा, किसी नगर में प्रवेश, नये वर्ष या राज्याभिषेक। यहाँ तक कि वह शिकार पर जाने का मुहूर्त भी निकलवाया करता था। जब कभी 'अहर' (शिकार) की इच्छा होती थी तब ज्योतिषियों द्वारा निर्धारित समय पर वह शिकार के लिए प्रस्थान करता था।

'जहाँगीरनामा' में सामुद्रिक शास्त्र का भी वर्णन है।

"शहंशाह अकबर के नाक के बाईं तरफ तिल था जो शुभ लक्षण था। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार यंह तिल अत्यधिक सम्पदा एवं शुभ भाग्य का द्योतक है।"

जहाँगीर को हिन्दू ज्योतिष एवं ग्रीक ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था। जहाँगीरनामा में वह वर्णन करता है, "उज्जैन नगरी उन सात प्राचीन नगरों में से एक तीर्थस्थान है जहाँ राजा विक्रमादित्य ने आकाश में स्थित नक्षत्रों की गणना करने की रीति की शुरूआत की। आज, जब 1026 हिज़री बीत रही है एवं हमारा ग्यारहवाँ जुलूसी वर्ष चल रहा है, हिन्दुओं के 1675 वर्ष बीत चुके हैं।"

"हिन्दू ज्योतिषियों की गणना के अनुसार रविवार को जब धनु राशि 27 अंश 37 पल के बाद तथा ग्रीक गणना के अनुसार जब मकर राशि 15 अंश पर है तब, आसफ खान की पुत्री के गर्भ से (शाहजहाँ की पत्नी) एक अनमोल हीरा इस धरती पर आया।"

जहाँगीर को चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण के प्रभाव पर पूर्ण विश्वास था एवं इस अवसर पर वह दान पुण्य करता था।

"शनिवार 13 को जब दिन के व्यतीत होने में मात्र 4 घटी ही शेष थीं तब चन्द्र ग्रहण शुरू हुआ। चन्द्रग्रहण के अशुभ प्रभाव को खत्म करने के लिए तुलादान किया जाता है जिसमें चाँदी, सोना, वस्त्र, खाद्य सामग्री, हाथी, घोड़े इत्यादि दान में दिये जाते थे।

रविवार 9 को सूर्यग्रहण था जब दिन के 12 घटी व्यतीत हो गये थे। यह पश्चिम की तरफ से शुरू हुआ एवं राहु ने 5 हिस्से में से 4 हिस्सों को पीड़ित कर रखा था। ग्रहण की शुरूआत से अन्त तक पूरे आठ घटी लगे। विभिन्न प्रकार के धातु, जानवर एवं सब्जियाँ इत्यादि दान के रूप में फकीर एवं गरीब लोगों के बीच बाँटा जाता है।

तुलादान का रिवाज मुगल काल में अकबर के समय से ही विद्यमान था जिसका ग्रहण से कोई सम्बन्ध नहीं था। तुलादान के लिये राजसी पुरुष के वजन के बराबर स्वर्ण, चाँदी एवं वस्त्र दान में बाँटे जाते थे। इस अवसर पर ज्योतिषियों की भी राय ली जाती थी।

जहाँगीरनामा में कहा गया है, "मेरे पिता (शहंशाह अकबर) इस रिवाज का पालन करते थे। वे स्वयं का तुलादान वर्ष में दो बार करते थे एक बार सौर वर्ष (ईरानी सौर वर्ष) एवं दूसरी बार चन्द्र वर्ष के अनुसार (इस्लामिक हिज़री वर्ष)। इस वर्ष जब खुर्रम ने (शाहजहां) अपने सोलहवें चन्द्र वर्ष में प्रवेश किया तो सभी ज्योतिषियों एवं रमल ने बताया किया कि जन्मपत्री के अनुसार खुर्रम के लिये यह वर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि युवराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। इसलिए मैंने आदेश दिया कि तुलादान के रूप में स्वर्ण, चांदी एवं अन्य धातुएँ दान में दी जाए।"

जहाँगीर को ज्योतिष का इतना ज्ञान अवश्य था कि सूर्य मेष राशि में उच्च का होता है। अपने शासन काल के तृतीय वर्ष के शुरूआत में उसने लिखा –

"गुरुवार 2 ज़ी–हिज़्जा, (19 मार्च 1608 ई) को सूर्य, जो सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशवान करता है एवं गर्माहट प्रदान करता है, मीन राशि से अपनी उच्च राशि मेष में प्रवेश करता है जो कि सुख–समृद्धि का एक ठहराव है। यह विश्व को एक नई ऊर्जा प्रदान करता है। नये वर्ष का समारोह रंगता ग्राम में मनाया गया जो कि आगरा से 5 कोस की दूरी पर है और मैं राजगद्दी पर राजकीय सम्मान के साथ बैठा जब सूर्य मेष राशि में गोचर कर रहा था।

जहाँगीर ज्योतिषियों की हर क्षेत्र में सलाह लिया करता था एवं उनमें विश्वास भी करता था।

"मंगलवार 13 को मैंने अपने बेटे खुसरो की बेटी को बुलाया। मुझे प्रतीत हुआ कि वह पिता के समान ही है जिसे पहले किसी ने नहीं देखा। ज्योतिषी के अनुसार वह अपने पिता के लिए तो नहीं किन्तु मेरे लिए भाग्यशाली है। आखिरकार उनके द्वारा दी गई सभी भविष्यवाणियाँ सत्य साबित हुई। उन्होंने मुझे सलाह दी थी कि मैं उसे 3 वर्ष के बाद देखूँ इसलिए मैंने उसे उसके तीन वर्ष पूर्ण हो जाने के बाद ही देखा।"

जहाँगीर ने जहाँगीरनामा में कई बार ज्योतिषी राम का जिक्र किया है जो उसके अनुसार ज्योतिष शास्त्र में निपुण था एवं जिसकी भविष्यवाणियाँ सत्य साबित होती थीं। जहाँगीर ने उस घटना का जिक्र किया है जिसमें शाह शुजा (शाहजहाँ का पुत्र) खेलते हुए खिड़की से सिर के बल गिर जाता है किन्तु वह ज़ाजिम (चटाई) पर गिरता है जिससे उसको जीवनदान मिल जाता है। जहाँगीर के अनुसार ज्योतिषी राम ने इस घटना की भविष्यवाणी पहले ही कर दी थी।

"यह विचित्र बात है कि 3 महीने पहले ही ज्योतिषी राम ने इस घटना की चेतावनी दी थी जो ज्योतिष शास्त्र में पारंगत था। उसने मुझे युवराज की कुण्डली देखकर कहा था कि उसके आने वाले तीन–चार महीने शुभ नहीं हैं। यह संभव है कि वह किसी ऊँचाई से गिर जाए किन्तु इसमें उसके जीवन को कोई खतरा नहीं है। जहाँगीर आगे लिखता है:

"बादशाह बेगम का स्वर्गवास मंगलवार 21 को हुआ। मैं अत्यधिक दुःखी था। मैंने ईश्वर से प्रार्थना की कि वह उन्हें जन्नत नशीन करें। अद्भुत बात यह है कि ज्योतिषी राम ने दो महीने पहले ही यह भविष्यवाणी नौकरों को बताई थी कि कोई प्रधान स्त्री अल्लाहताला को प्यारी होने वाली है। उसकी यह भविष्यवाणी मेरी कुण्डली पर आधारित थी जो सत्य साबित हुई।"

इसी प्रकार एक मज़ेदार भविष्यवाणी शाहशुजा के बारे में भी थी। शाहशुजा जहाँगीर का अत्यन्त प्रिय था।

"इन दिनों केवल शाहशुजा व्रण से पीड़ित था। वह पानी तक नहीं पी सकता था। उसके जीवित रहने की उम्मीद कम ही थी। उसके पिता की कुण्डली मे लिखा था कि इस वर्ष उसका पुत्र मृत्यु को प्राप्त होगा इसीलिए सभी ज्योतिषियों की राय थी कि वह नहीं बचेगा। किन्तु इसके विपरीत ज्योतिषी राम के अनुसार मृत्यु की धूल तक भी उस तक नहीं पहुँचनी थी। जब मैंने उससे इस बात का कारण पूछा तो उसने कहा कि मेरी कुण्डली के अनुसार इस साल कोई दुःखद घटना मुझे दुःखी नहीं करेगी चूंकि शाहशुजा मुझे अत्यन्त प्रिय था इसलिये उसे कुछ भी नहीं होगा। भले ही कोई दूसरा बालक मृत्यु का ग्रास बने। जैसा कि उसने कहा था ठीक वैसा ही हुआ। शाहनवाजखान की पुत्री से जन्मे पुत्र का देहवासान बुरहानपुर में हुआ। इस प्रकार ज्योतिषी राम की सारी भविष्यवाणियाँ सत्य ही निकलीं।" जहाँगीर ने लिखा है कि उसके दादा हुमायूँ को भी ज्योतिष शास्त्र का अच्छा ज्ञान था।

"उसी समय अब्दुल सत्तार ने हुमायूँ द्वारा लिखित एक संकलन प्रस्तुत किया जिसमें कुछ प्रार्थनाएँ, ज्योतिष सम्बन्धी तथ्य एवं अन्य मजेदार विषय दिये गये थे जिसे हुमायूँ ध्यान करता था एवं उसका उपयोग भी करता था।"

जहाँगीर ज्योतिष शास्त्र से इतना प्रभावित था कि उसने ज्योतिष गणनाओं के अनुसार ही सिक्का ढालने का आदेश दिया।

"पहले सिक्के की ढलाई के समय धातु के एक तरफ मेरा नाम होता था एवं दूसरी तरफ स्थान, महीना एवं जुलूसी वर्ष अंकित किया जाता था। किन्तु मेरे दिमाग में आया कि महीने के स्थान पर उस महीने की राशि के आराध्य की प्रतिमा अंकित की जाए। जैसे फरवारदिन मास (ईरानी सौर वर्ष का प्रथम मास जो मेष संक्रान्ति से शुरू होता है) में भेड़ का चिन्ह एवं उर्दीबिहिषित मास में (ईरानी सौर वर्ष का द्वितीय मास जो वृष संक्रांति से शुरू होता है) बैल का चिन्ह अंकित किया जाय। इसी प्रकार जब भी सिक्कों की ढलाई होती थी तो उस महीने की राशि के चिन्ह को अंकित किया जाता था। यह इस प्रकार से किया जाता था कि सूर्य उन चिन्हों से उभरता हुआ प्रतीत होता था। यह प्रयोग मेरे द्वारा ही चलाया गया एवं इसका कहीं और प्रचार–प्रसार नहीं हुआ।"

साहित्य में ज्योतिष का प्रतिबिम्ब

साहित्य समाज का दर्पण है। ज्योतिष का प्रचार–प्रसार 16वीं एवं 17वीं शताब्दी में परमोच्च शिखर पर था जब मुगल साम्राज्य अपनी ऊँचाई पर था। जिनके उदाहरण हैं दो प्रसिद्ध एवं आदरणीय कवि जिनकी कविताएँ जनमानस में बसी हुई हैं; ये कवि हैं तुलसी एवं बिहारी। तुलसीदासजी का जन्म 1589 में पूर्वी उत्तर प्रदेश के राजापुर, बाँदा के निकट हुआ था। उन्होंने 'रामचरित मानस' नामक अमर कथा की रचना की। मानस के अन्दर ऐसे कई उदाहरण है जहाँ ज्योतिष का प्रयोग किया गया है, जैसे जब भगवान राम का जन्म हुआ था तो तुलसीदास जी ने लिखा है –

"नवमी तिथि मधुमास पुनीता, शुक्लपक्ष, अभिजीत हरिप्रीता,
मध्यदिवस अति शीत न घामा, पावन काल लोक विश्रामा"

यहाँ शुद्ध ज्योतिष का प्रयोग है। तुलसीदास ने रामचरित मानस के लिखने के समय जो विवरण दिया है उसे भी देखें।

"सम्वत् सोरहसौ इकतीस, करहूँ कथा पद धारी सीसा
नवमी, भौमीवार, मास, अवधपुरी, यह चित्र प्रकासा"

तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की कथा उसी तिथि एवं वार को लिखना प्रारंभ किया जब कई शताब्दी पहले भगवान राम जन्मे थे।

अब हम साहित्य की रूमानियत की तरफ चलते हैं। हम सोलहवीं एवं सत्रहवीं

शताब्दी के काल की बात कर रहे हैं। इस युग में राजा, महाराजा, उच्च पद पर आसीन अधिकारीगण व्यभिचारी और लम्पट थे तथा भोगविलास में लिप्त जीवन जीते थे। इसी काल में बिहारी ने, जो जयपुर दरबार में कवि थे, 'सतसई' नामक रचना की। यह पुस्तक आज भी हिन्दी पाठ्य पुस्तक की सूची में एक अनिवार्य पाठन है। चूंकि बिहारी दरबार के कवि थे इसलिए उन्होंने शराब एवं शबाब में लिप्त अपने स्वामी का चित्त आकर्षित्र करने के लिए अपनी कविता में ज्योतिषीय उपमा व लक्षण का प्रयोग किया है। सतसई से एक उदाहरण प्रस्तुत है।

"मंगल बिन्दु सुरंग, मुखशशि केसरी ओट गुरु
एक नारी लही संगू रसमय किये लोचन जगत"

इसका अभिप्राय यह है कि नायिका के माथे पर लगी लाल 'बिन्दी' मंगल के समान है चेहरा चन्द्रमा के समान है। त्वचा केसरी है। जो बृहस्पति को दर्शाती है। यदि ये तीनों एक ही नारी में हों तो समस्त विश्व के नेत्र रसमय हो जाएँगे। वो स्त्री जिसका केसरिया रंग, चन्द्रमा के समान मुख तथा माथे पर मंगल की तरह बिन्दी होगी वह लोगों के आकर्षण का केन्द्र तो होगी ही।

यदि इस कविता का ज्योतिषीय विश्लेषण किया जाए तो हम इसे दो स्तर पर देख सकते हैं। स्थूल एवं सूक्ष्म। स्थूल अवस्था में मंगल वृश्चिक, चन्द्र कर्क एवं बृहस्पति मीन राशि के स्वामी हैं। तीनों ही राशियाँ जल तत्त्व की हैं। यह स्वाभाविक है कि जब इन तीनों का समागम किसी नारी में होगा तो प्रेममयी धारा अवश्य ही उन नेत्रों से बहने लगेगी जो उसे देखेंगे।

अब यदि हम इसे सूक्ष्म रूप में देखे तो भारत जो कृषि प्रधान समाज है, यहाँ पंडित एवं बुद्धिजीवी ऐसे कई तरीके बतलाते हैं जिससे खेती का भरपूर लाभ लिया जा सकता है। इसे ही वर्षा विज्ञान कहा गया है। सप्तनाड़ी चक्र वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है। इस चक्र के अनुसार यदि मंगल, बृहस्पति एवं चंद्रमा एक ही नाड़ी में आ जाएँ तो वर्षा अवश्य होती है।

इस बात मे कोई संशय नहीं है कि बिहारी जी को ज्योतिष का प्रचुर ज्ञान था। विशेषता इस बात की है कि ये रूमानी कवि अपने छन्दों में ज्योतिष का ज्ञान भी समाहित किये होते थे जिन्हें उनके पाठकों द्वारा समझा एवं सराहा जाता था। यही अपने आप में स्पष्ट प्रमाण है कि उस काल में भी ज्योतिष शास्त्र ने राजाओं, दरबारियों, आम जनसमूह एवं विचारकों पर अपना अमिट प्रभाव डाला था। मुगल ही शासक थे जिन्होंने ज्योतिष शास्त्र का प्रसार–प्रचार किया।

समाप्ति

मुगल शासन काल में ज्योतिष शास्त्र का काफी उपयोग हुआ। बाबर, जो मात्र

4 वर्षो के लिए शासक रहा, ज्योतिषियों की सलाह के पश्चात ही युद्ध के लिए कूच करता था।

हुमायूँ स्वयं ज्योतिष जानता था एवं वह इसका उपयोग अनिवार्य रूप से करता था। वह शकुन प्रेमी था। उसने राज्य का कार्य ज्योतिष के आधार पर चलाने का प्रयास किया।

अकबर ने ज्योतिष शास्त्र के प्रचार के लिए कई कदम उठाए। उसके राज्य में ज्योतिषियों को पूर्ण सम्मान दिया जाता था। अकबर ने सायन एवं निरयन के बीच के अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास करवाया। यह अंतर आज भी विद्यमान है।

जहाँगीर ज्योतिष को जानने एवं मानने वाला था। "जहाँगीरनामा" में इस बात की स्पष्ट पुष्टि हुई है। उसने राजगद्दी पर बैठने से पहले उपयुक्त मुहूर्त का आसरा लिया था। वह अपने दादा हुमायूँ की तरह 'शकुन' का प्रयोग बड़े एवं छोटे दोनों ही अवसरों पर किया करता था चाहे वह शिकार पर जाने का ही मुहूर्त क्यों न हो ?

शाहजहाँ एवं औरंगज़ेब के शासन काल में भी ज्योतिष का उपयोग बड़े पैमाने पर होता था। उस युग के ज्योतिष के ज्ञाता के रूप में तुलसीदास एवं बिहारी जैसे कवि जागृत प्रमाण हैं जिन्होंने अपने पद्य के द्वारा ज्योतिष को एक नये संदर्भ में प्रस्तुत किया।

इतिहास गवाह है कि ज्योतिष शास्त्र धर्म निरपेक्षता का पूरक है।

संलग्नक - 3

नई दिल्ली की जनवरी दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.
1	8.11	9.54	11.22	12.46	14.22	16.17	18.31	20.52	23.10	1.26	3.44	6.03
2	8.07	9.50	11.18	12.42	14.18	16.13	18.27	20.48	23.06	1.22	3.40	5.59
3	8.03	9.46	11.14	12.38	14.14	16.09	18.23	20.44	23.02	1.18	3.36	5.55
4	7.59	9.42	11.10	12.34	14.10	16.05	18.19	20.40	22.58	1.14	3.32	5.51
5	7.55	9.38	11.06	12.30	14.06	16.01	18.15	20.36	22.54	1.10	3.38	5.47
6	7.51	9.34	11.02	12.26	14.02	15.57	18.11	20.32	22.50	1.06	3.24	5.43
7	7.47	9.30	10.58	12.22	13.58	15.53	18.07	20.28	22.46	1.02	3.20	5.39
8	7.43	9.26	10.54	12.18	13.54	15.49	18.03	20.24	22.42	0.58	3.16	5.35
9	7.39	9.22	10.50	12.14	13.50	15.45	17.59	20.20	22.38	0.54	3.12	5.31
10	7.35	9.18	10.46	12.10	13.46	15.41	17.55	20.16	22.34	0.50	3.08	5.27
11	7.31	9.14	10.42	12.06	13.42	15.37	17.51	20.12	22.30	0.46	3.04	5.23
12	7.27	9.10	10.38	12.02	13.38	15.33	17.47	20.08	22.26	0.42	2.60	5.19
13	7.23	9.06	10.34	11.58	13.34	15.29	17.43	20.04	22.22	0.38	2.56	5.15
14	7.19	9.02	10.30	11.54	13.30	15.25	17.39	19.60	22.18	0.34	2.52	5.11
15	7.15	8.58	10.26	11.50	13.26	15.21	17.35	19.56	22.14	0.30	2.48	5.07
16	7.11	8.55	10.23	11.47	13.23	15.18	17.32	19.53	22.11	0.27	2.44	5.03

नई दिल्ली की जनवरी दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.
17	7.07	8.51	10.19	11.43	13.19	15.14	17.28	19.49	22.07	0.23	2.40	5.59
18	7.03	8.47	10.15	11.39	13.15	15.10	17.24	19.45	22.03	0.19	2.36	5.55
19	6.59	8.43	10.11	11.35	13.11	15.06	17.20	19.41	21.59	0.15	2.32	4.52
20	6.55	8.39	10.07	11.31	13.07	15.02	17.16	19.37	21.55	0.11	2.28	4.48
21	6.51	8.35	10.03	11.27	13.03	14.58	17.12	19.33	21.51	0.07	2.24	4.44
22	6.48	8.31	9.59	11.23	12.59	14.54	17.08	19.29	21.47	0.03	2.20	4.40
23	6.44	8.27	9.55	11.19	12.55	14.50	17.04	19.25	21.43	23.59	2.16	4.36
24	6.40	8.23	9.51	11.15	12.51	14.46	17.00	19.21	21.39	23.55	2.13	4.32
25	6.36	8.19	9.47	11.11	12.47	14.42	16.56	19.17	21.35	23.51	2.09	4.28
26	6.32	8.16	9.43	11.08	12.44	14.39	16.53	19.14	21.31	23.48	2.05	4.24
27	6.28	8.12	9.40	11.04	12.40	14.35	16.49	19.10	21.28	23.44	2.01	4.20
28	6.24	8.08	9.36	10.60	12.36	14.31	16.45	19.06	21.24	23.40	1.57	4.17
29	6.20	8.04	9.32	10.56	12.32	14.27	16.41	19.02	21.20	23.36	1.53	4.13
30	6.16	7.60	9.28	10.52	12.28	14.23	16.37	18.58	21.16	23.31	1.49	4.09
31	6.12	7.56	9.24	10.48	12.24	14.19	16.33	18.54	21.12	23.28	1.45	4.05

नई दिल्ली की फरवरी दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.
1	7.52	9.20	10.44	12.20	14.15	16.29	18.50	21.08	23.24	1.41	4.01	6.05
2	7.48	9.16	10.40	12.16	14.11	16.25	18.46	21.04	23.20	1.37	3.57	6.01
3	7.44	9.12	10.36	12.12	14.07	16.21	18.42	20.60	23.16	1.33	3.53	5.57
4	7.40	9.08	10.32	12.08	14.03	16.17	18.38	20.56	23.12	1.29	3.49	5.53
5	7.36	9.04	10.28	12.04	13.59	16.13	18.34	22.53	23.08	1.25	3.45	5.49
6	7.32	8.60	10.24	11.60	13.55	16.09	18.30	20.49	23.04	1.22	3.41	5.45
7	7.28	8.56	10.20	11.56	13.51	16.05	18.26	20.45	22.60	1.18	3.37	5.40
8	7.24	8.52	10.16	11.52	13.47	16.01	18.22	20.41	22.56	1.14	3.33	5.37
9	7.20	8.48	10.12	11.48	13.43	15.57	18.19	20.37	22.52	1.10	3.29	5.33
10	7.16	8.44	10.08	11.44	13.39	15.53	18.15	20.33	22.48	1.06	3.25	5.29
11	7.12	8.40	10.04	11.40	13.35	15.49	18.11	20.29	22.44	1.02	3.21	5.25
12	7.08	8.36	9.60	11.36	13.31	15.45	18.07	20.25	22.40	0.58	3.17	5.21
13	7.05	8.32	9.56	11.32	13.27	15.41	18.03	20.21	22.36	0.54	3.13	5.17
14	7.01	8.28	9.52	11.28	13.23	15.37	17.59	20.17	22.32	0.50	3.09	5.13
15	6.57	8.24	9.48	11.24	13.19	15.33	17.55	20.12	22.28	0.46	3.05	5.09
16	6.53	8.20	9.44	11.20	13.15	15.29	17.51	20.09	22.24	0.42	3.01	5.05

नई दिल्ली की फरवरी दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.
17	6.49	8.16	9.40	11.16	13.11	15.25	17.47	20.05	22.20	0.38	2.57	5.02
18	6.45	8.12	9.36	11.12	13.07	15.21	17.43	20.01	22.16	0.34	2.53	4.58
19	6.41	8.08	9.32	11.08	13.03	15.17	17.39	19.57	22.12	0.30	2.49	4.54
20	6.37	8.05	9.29	11.05	12.59	15.14	17.35	19.53	22.08	0.26	2.45	4.50
21	6.33	8.01	9.25	11.01	12.56	15.10	17.31	19.49	22.04	0.22	2.42	4.46
22	6.29	7.57	9.21	10.57	12.52	15.06	17.27	19.45	21.60	0.18	2.38	4.42
23	6.25	7.53	9.17	10.53	12.48	15.02	17.23	19.41	21.56	0.15	2.34	4.38
24	6.21	7.49	9.13	10.49	12.44	14.58	17.19	19.37	21.52	0.11	2.30	4.34
25	6.17	7.45	9.09	10.45	13.40	14.54	17.15	19.33	21.48	0.07	2.26	4.30
26	6.13	7.41	9.05	10.41	12.36	14.50	17.11	19.29	21.44	0.02	2.22	4.26
27	6.09	7.37	9.01	10.37	12.32	14.46	17.07	19.25	21.40	23.59	2.18	4.22
28	6.06	7.33	8.58	10.33	12.28	14.42	17.03	19.21	21.36	23.55	2.14	4.18

नई दिल्ली की मार्च दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.
1	7.29	8.54	10.29	12.24	14.38	16.59	19.17	21.32	23.51	2.10	4.14	5.58
2	7.25	8.50	10.25	12.20	14.34	16.55	19.13	21.28	23.47	2.06	4.10	5.54
3	7.22	8.46	10.22	12.17	14.31	16.51	19.09	21.24	23.43	2.02	4.06	5.50
4	7.18	8.42	10.18	12.13	14.27	16.47	19.05	21.20	23.39	1.58	4.02	5.46
5	7.14	8.38	10.14	12.09	14.23	16.43	19.01	21.16	23.36	1.54	3.59	5.42
6	7.10	8.34	10.10	12.05	14.19	16.39	18.57	21.12	23.32	1.50	3.55	5.38
7	7.06	8.30	10.06	12.01	14.15	16.35	18.53	21.09	23.28	1.46	3.51	5.34
8	7.02	8.26	10.02	11.57	14.11	16.31	18.49	21.05	23.24	1.42	3.47	5.30
9	6.58	8.22	9.58	11.53	14.07	16.28	18.46	21.01	23.20	1.39	3.43	5.26
10	6.54	8.18	9.54	11.49	14.03	16.24	18.42	20.57	23.16	1.35	3.39	5.22
11	6.50	8.14	9.50	11.45	13.59	16.20	18.38	20.53	23.12	1.31	3.35	5.18
12	6.46	8.10	9.46	11.41	13.55	16.16	18.34	20.49	23.09	1.27	3.31	5.15
13	6.42	8.06	9.42	11.37	13.51	16.12	18.30	20.45	23.05	1.24	3.28	5.11
14	6.38	8.02	9.38	11.33	13.47	16.08	18.26	20.41	23.01	1.20	33.24	5.07
15	6.34	7.58	9.34	11.29	13.43	16.04	18.22	20.37	22.57	1.16	3.20	5.03
16	6.30	7.54	9.30	11.25	13.39	15.60	18.18	20.33	22.53	1.12	3.16	4.59

नई दिल्ली की मार्च दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.
17	6.26	7.50	9.26	11.21	13.35	15.56	18.14	20.29	22.49	1.08	3.12	4.55
18	6.22	7.46	9.22	11.17	13.31	15.52	18.10	20.25	22.45	1.04	3.08	4.51
19	6.18	7.42	9.18	11.13	13.27	15.48	18.06	20.21	22.41	0.60	3.04	4.47
20	6.14	7.38	9.14	11.09	13.24	15.44	18.02	20.17	23.37	0.56	2.60	4.43
21	6.10	7.34	9.10	11.05	13.20	15.40	17.58	20.13	22.33	0.52	2.56	4.39
22	6.06	7.30	9.06	11.01	13.16	15.36	17.54	20.09	22.29	0.48	2.52	4.35
23	6.02	7.27	9.02	10.57	13.12	15.32	17.50	20.05	22.25	0.44	2.48	4.31
24	5.58	7.23	8.58	10.54	13.08	15.28	17.46	20.01	22.21	0.40	2.44	4.28
25	5.54	7.19	8.54	10.50	13.04	15.24	17.42	19.57	22.17	0.36	2.40	4.24
26	5.50	7.15	8.50	10.46	12.60	15.20	17.38	19.54	22.13	0.32	2.36	4.20
27	5.46	7.11	8.47	10.42	12.56	15.16	17.34	19.50	22.09	0.28	2.32	4.16
28	5.42	7.07	8.43	10.38	12.52	15.12	17.30	19.46	22.05	0.24	2.29	4.12
29	5.38	7.03	8.39	10.34	12.48	15.08	17.26	19.42	22.01	0.20	2.25	4.08
30	5.35	6.59	8.35	10.30	12.45	15.04	17.22	19.38	21.57	0.16	2.21	4.04
31	5.31	6.55	8.31	10.26	12.41	14.60	17.18	19.34	21.53	0.12	2.17	3.60

नई दिल्ली की अप्रैल दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.
1	6.51	8.27	10.22	12.37	14.56	17.14	19.30	21.49	0.08	2.13	3.56	5.23
2	6.47	8.23	10.18	12.33	14.52	17.10	19.26	21.45	0.04	2.09	3.52	5.19
3	6.43	8.19	10.14	12.29	14.48	17.06	19.22	21.41	23.60	2.05	3.48	5.15
4	6.39	8.15	10.10	12.25	14.44	17.02	19.19	21.37	23.56	2.01	3.44	5.11
5	6.35	8.11	10.06	12.21	14.40	16.58	19.15	21.34	23.53	1.57	3.40	5.07
6	6.32	8.08	10.02	12.17	14.36	16.54	19.11	21.30	23.49	1.53	3.36	5.03
7	6.28	8.04	9.59	12.13	14.32	16.50	19.07	21.26	23.45	1.49	3.32	4.59
8	6.24	7.60	9.55	12.09	14.28	16.47	19.03	21.22	23.41	1.45	3.28	4.55
9	6.20	7.56	9.51	12.05	14.24	16.43	18.59	21.18	23.37	1.41	3.24	4.52
10	6.16	7.52	9.47	12.01	14.21	16.39	18.55	21.14	23.33	1.37	3.20	4.48
11	6.12	7.48	9.43	11.57	14.17	16.35	18.51	21.10	23.29	1.33	3.16	4.44
12	6.08	7.44	9.39	11.53	14.13	16.31	18.47	21.06	23.25	1.29	3.12	4.40
13	6.04	7.40	9.35	11.49	14.09	16.27	18.43	21.02	23.21	1.25	3.08	4.36
14	5.60	7.36	9.31	11.45	14.05	16.23	18.39	20.58	23.17	1.21	3.04	4.32
15	5.56	7.32	9.27	11.42	14.01	16.19	18.35	20.54	23.13	1.17	2.60	4.28
16	5.52	7.28	9.23	11.38	13.57	16.15	18.31	20.50	23.09	1.13	2.56	4.24

नई दिल्ली की अप्रैल दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.
17	5.48	7.24	9.19	11.34	13.53	16.12	18.27	20.46	23.05	1.09	2.52	4.20
18	5.44	7.20	9.16	11.30	13.50	16.08	18.24	20.42	23.01	1.05	2.48	4.16
19	5.40	7.16	9.12	11.26	13.46	16.04	18.20	20.38	22.57	1.01	2.44	4.12
20	5.36	7.12	9.08	11.22	13.42	15.59	18.16	20.34	22.53	0.57	2.40	4.08
21	5.32	7.08	9.04	11.18	13.38	15.55	18.12	20.30	22.50	0.53	2.36	4.04
22	5.28	7.04	8.60	11.14	13.34	15.51	18.08	20.26	22.46	0.49	2.32	3.60
23	5.24	6.60	8.56	11.10	13.30	15.47	18.04	20.23	22.42	0.45	2.28	3.56
24	5.20	6.56	8.52	11.06	13.26	15.43	17.60	20.19	22.38	0.41	2.24	3.52
25	5.16	6.52	8.48	11.02	13.22	15.39	17.56	20.15	22.34	0.37	2.20	3.48
26	5.12	6.48	8.44	10.58	13.18	15.35	17.52	20.11	22.30	0.33	2.16	3.44
27	5.08	6.45	8.40	10.54	13.14	15.31	17.48	20.07	22.26	0.29	2.12	3.40
28	5.04	6.41	8.36	10.50	13.11	15.27	17.44	20.03	22.22	0.25	2.08	3.36
29	4.60	6.37	8.32	10.46	13.07	15.23	17.40	19.59	22.18	0.21	2.04	3.32
30	4.56	6.33	8.28	10.42	13.03	15.20	17.36	19.55	22.14	0.18	1.60	3.28

नई दिल्ली की मई दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.
1	6.29	8.24	10.38	12.59	15.16	17.32	19.51	22.10	0.14	1.57	3.24	4.48
2	6.25	8.20	10.34	12.55	15.12	17.28	19.47	22.06	0.10	1.53	3.20	4.45
3	6.21	8.16	10.30	12.51	15.08	17.25	19.43	22.02	0.06	1.49	3.17	4.41
4	6.17	8.12	10.26	12.47	15.04	17.21	19.39	21.58	0.02	1.45	3.12	4.37
5	6.13	8.08	10.22	12.43	14.60	17.17	19.35	21.54	23.58	1.41	3.09	4.33
6	6.09	8.04	10.18	12.39	14.56	17.13	19.31	21.50	23.54	1.37	3.05	4.29
7	6.05	7.60	10.14	12.35	14.52	17.09	19.27	21.46	23.50	1.33	3.01	4.25
8	6.01	7.56	10.10	12.31	14.48	17.05	19.23	21.42	23.46	1.29	2.57	4.21
9	5.57	7.52	10.06	12.27	14.44	17.01	19.19	21.38	23.42	1.25	2.53	4.17
10	5.53	7.48	10.02	12.23	14.40	16.57	19.15	21.34	23.38	1.21	2.49	4.13
11	5.49	7.45	9.58	12.19	14.36	16.53	10.11	21.30	23.34	1.17	2.45	4.09
12	5.45	7.41	9.54	12.16	14.32	16.49	19.07	21.26	23.30	1.13	2.41	4.05
13	5.41	7.37	9.50	12.12	14.29	16.45	19.03	21.22	23.26	1.09	2.37	4.01
14	5.37	7.32	9.46	12.06	14.25	16.41	18.59	21.18	23.22	1.05	2.33	3.57
15	5.33	7.28	9.42	12.02	14.21	16.37	18.55	21.14	23.18	1.01	2.29	3.53
16	5.29	7.24	9.38	11.58	14.17	16.33	18.51	21.10	23.14	0.57	2.25	3.49

नई दिल्ली की मई दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.
17	5.25	7.20	9.34	11.54	14.13	16.29	18.47	21.06	23.10	0.53	2.21	3.45
18	5.21	7.16	9.30	11.50	14.09	16.25	18.43	21.02	23.06	0.49	2.17	3.41
19	5.17	7.12	9.26	11.46	14.05	16.21	18.39	20.58	23.02	0.45	2.13	3.37
20	5.13	7.08	9.22	11.42	14.01	16.17	18.35	20.54	22.58	0.41	2.10	3.33
21	5.09	7.04	9.18	11.38	13.57	16.13	18.31	20.50	22.54	0.37	2.06	3.29
22	5.05	6.60	9.14	11.34	13.53	16.09	18.27	20.46	22.50	0.33	2.02	3.25
23	5.01	6.56	9.10	11.30	13.49	16.05	18.23	20.42	22.46	0.29	1.58	3.21
24	5.57	6.52	9.06	11.27	13.45	16.02	18.20	20.39	22.43	0.26	1.54	3.17
25	4.53	6.48	9.02	11.23	13.41	15.58	18.16	20.35	22.39	0.22	1.50	3.13
26	4.49	6.45	8.59	11.19	13.37	15.54	18.12	20.31	22.35	0.18	1.46	3.09
27	4.45	6.41	8.55	11.15	13.33	15.50	18.08	20.27	22.31	0.14	1.42	3.05
28	4.41	6.37	8.51	11.11	13.29	15.46	18.04	20.23	22.27	0.10	1.38	3.02
29	4.37	6.33	8.47	11.07	13.25	15.42	17.60	20.19	22.23	0.06	1.34	2.58
30	4.34	6.29	8.43	11.03	13.21	15.38	17.56	20.15	22.19	0.02	1.30	2.54
31	4.30	6.26	8.39	10.59	13.17	15.34	17.52	20.11	22.15	23.58	1.26	2.50

नई दिल्ली की जून दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.
1	6.21	8.36	10.55	13.13	15.30	17.48	20.07	22.11	23.54	1.22	2.46	4.22
2	6.17	8.32	10.51	13.09	15.26	17.44	20.03	22.07	23.50	1.18	2.42	4.18
3	6.13	8.28	10.47	13.05	15.22	17.40	19.59	22.03	23.46	1.14	2.38	4.14
4	6.09	8.24	10.43	13.01	15.18	17.36	19.55	21.59	23.42	1.10	2.34	4.10
5	6.05	8.20	10.39	12.57	15.14	17.32	19.51	21.55	23.38	1.06	2.30	4.06
6	6.01	8.16	10.35	12.53	15.10	17.28	19.47	21.51	23.34	1.02	2.26	4.02
7	5.58	8.12	10.32	12.49	15.06	17.24	19.44	21.47	23.30	0.58	2.22	3.59
8	5.54	8.08	10.28	12.45	15.02	17.20	19.40	21.44	23.27	0.54	2.18	3.55
9	5.50	8.04	10.24	12.41	14.59	17.17	19.36	21.40	23.23	0.50	2.14	3.51
10	5.46	7.60	10.20	12.38	14.55	17.13	19.32	21.36	23.19	0.47	2.10	3.47
11	5.42	7.56	10.16	12.34	14.51	17.09	19.28	21.32	23.15	0.43	2.06	3.43
12	5.38	7.52	10.12	12.30	14.47	17.05	19.24	21.28	23.11	0.39	2.03	3.39
13	5.34	7.48	10.08	12.26	14.43	17.01	19.20	21.24	23.07	0.35	1.59	3.35
14	5.30	7.44	10.04	12.22	14.39	16.57	19.16	21.20	23.03	0.31	1.55	3.31
15	5.26	7.40	9.60	12.18	14.35	16.53	19.12	21.16	22.59	0.27	1.51	3.27
16	5.21	7.36	9.56	12.14	14.31	16.49	19.07	21.12	22.55	0.23	1.47	3.23

नई दिल्ली की जून दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.
17	5.18	7.32	9.52	12.10	14.27	16.45	19.04	21.08	22.51	0.19	1.43	3.19
18	5.14	7.28	9.48	12.06	14.23	16.41	18.60	21.04	22.47	0.17	1.39	3.15
19	5.10	7.24	9.44	12.03	14.19	16.37	18.56	20.60	22.43	0.11	1.35	3.11
20	5.06	7.20	9.40	11.59	14.15	16.33	18.52	20.56	22.39	0.07	1.31	3.07
21	5.02	7.16	9.37	11.55	14.11	16.29	18.48	20.52	22.35	0.03	1.27	3.03
22	4.58	7.12	9.33	11.51	14.07	16.25	18.44	20.48	22.31	23.59	1.23	2.59
23	4.54	7.08	9.29	11.47	14.03	16.21	18.40	20.44	22.27	23.55	1.19	2.55
24	4.50	7.04	9.25	11.43	13.59	16.17	18.36	20.40	22.23	23.52	1.16	2.51
25	4.47	6.60	9.21	11.39	13.55	16.14	18.32	20.36	22.19	23.48	1.12	2.47
26	4.42	6.56	9.17	11.35	13.51	16.10	18.28	20.32	22.15	23.44	1.08	2.44
27	4.39	6.52	9.13	11.31	13.47	16.06	18.24	20.28	22.11	23.40	1.04	2.40
28	4.35	6.48	9.10	11.27	13.44	16.02	18.21	20.24	22.07	23.36	0.60	2.36
29	4.31	6.44	9.06	11.24	13.40	15.58	18.17	20.21	22.03	23.32	0.56	2.32
30	4.27	6.40	9.02	11.20	13.36	15.55	18.13	20.17	21.60	23.29	0.53	2.29

नई दिल्ली की जुलाई दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.
1	6.36	8.58	11.16	13.32	15.51	18.10	20.14	21.57	23.25	0.49	2.25	4.19
2	6.32	8.54	11.12	13.28	15.47	18.06	20.10	21.53	23.21	0.45	2.21	4.15
3	6.28	8.50	11.08	13.24	15.43	18.02	20.06	21.49	23.17	0.41	2.17	4.11
4	6.25	8.37	11.05	13.20	15.39	17.58	20.02	21.45	23.13	0.37	2.13	4.07
5	6.21	8.43	11.01	13.16	15.35	17.54	19.58	21.41	23.09	0.33	2.09	4.03
6	6.17	8.39	10.57	13.12	15.31	17.50	19.54	21.37	23.05	0.29	2.05	3.59
7	6.13	8.35	10.53	13.08	15.27	17.47	19.50	21.33	23.01	0.25	2.01	3.56
8	6.10	8.31	10.49	13.05	15.23	17.43	19.47	21.29	22.57	0.22	1.57	3.52
9	6.06	8.27	10.45	13.01	15.19	17.39	19.43	21.25	22.54	0.18	1.54	3.48
10	6.02	8.23	10.41	12.57	15.16	17.35	19.39	21.22	22.50	0.14	1.50	3.44
11	5.58	8.19	10.37	12.53	15.12	17.31	19.35	21.18	22.46	0.10	1.46	3.40
12	5.54	8.15	10.33	12.49	15.08	17.27	19.31	21.14	22.42	0.06	1.42	3.37
13	5.50	8.11	10.29	12.46	15.04	17.23	19.27	21.10	23.38	0.02	1.38	3.33
14	5.46	8.07	10.26	12.42	14.60	17.19	19.23	21.06	23.35	23.58	1.34	3.29
15	5.42	8.04	10.22	12.38	14.56	17.15	19.20	21.03	22.31	23.55	1.31	3.25
16	5.38	7.60	10.18	12.34	14.52	17.11	19.16	20.59	22.27	23.51	1.27	3.21

नई दिल्ली की जुलाई दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.
17	5.35	7.56	10.14	12.30	14.48	17.07	19.12	20.55	22.23	23.47	1.23	3.17
18	5.31	7.52	10.10	12.26	14.44	17.03	19.08	20.51	22.19	23.43	1.19	3.13
19	5.27	7.48	10.06	12.22	14.41	16.59	19.04	20.47	22.15	23.39	1.15	3.09
20	5.23	7.44	10.03	12.18	14.37	16.55	18.60	20.43	22.11	23.35	1.11	3.05
21	5.19	7.40	9.59	12.14	14.33	16.52	18.56	20.39	22.07	23.31	1.07	3.01
22	5.16	7.36	9.55	12.10	14.29	16.48	18.52	20.35	22.03	23.27	1.03	2.57
23	5.12	7.33	9.51	12.06	14.25	16.44	18.48	20.31	21.59	23.23	0.59	2.54
24	5.08	7.25	9.47	12.02	14.21	16.40	18.44	20.27	21.56	23.19	0.55	2.50
25	5.04	7.26	9.43	11.59	14.17	16.36	18.41	20.24	21.52	23.15	0.51	2.46
26	5.01	7.21	9.39	11.55	14.13	16.32	18.37	20.20	21.48	23.11	0.47	2.42
27	4.57	7.17	9.35	11.51	14.09	16.28	18.33	20.16	21.44	23.07	0.43	2.38
28	4.53	7.13	9.31	11.47	14.05	16.24	18.29	20.12	21.40	23.03	0.39	2.35
29	4.49	7.09	9.28	11.43	14.01	16.20	18.25	20.08	21.36	22.59	0.36	2.31
30	4.45	7.05	9.24	11.39	13.57	16.16	18.21	20.04	21.32	22.55	0.32	2.27
31	4.41	7.01	9.20	11.35	13.54	16.13	18.17	19.60	21.28	22.51	0.28	2.23

नई दिल्ली की अगस्त दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.
1	6.57	9.16	11.32	13.50	16.09	18.13	19.56	21.24	22.48	0.24	2.19	4.33
2	6.53	9.12	11.28	13.46	16.06	18.10	19.52	21.20	22.44	0.20	2.15	4.29
3	6.49	9.08	11.24	13.43	16.02	18.06	19.48	21.16	22.40	0.16	2.11	4.25
4	6.45	9.04	11.20,	13.39	15.58	18.02	19.45	21.12	22.36	0.12	2.07	4.21
5	6.41	9.01	11.16	13.35	15.54	17.58	19.41	21.09	22.32	0.09	2.03	4.17
6	6.37	8.57	11.13	13.31	15.50	17.54	19.37	21.05	22.29	0.05	1.59	4.14
7	6.33	8.53	11.09	13.27	15.46	17.50	19.33	21.01	22.25	24.01	1.55	4.10
8	6.30	8.49	11.05	13.23	15.42	17.46	19.29	20.57	22.21	23.57	1.51	4.06
9	6.26	8.45	11.01	13.19	15.38	17.43	19.25	20.53	22.17	23.53	1.47	4.02
10	6.22	8.42	10.57	13.15	15.34	17.39	19.22	20.49	22.13	23.49	1.44	3.58
11	6.18	8.38	10.54	13.11	15.30	17.35	19.18	20.45	22.09	23.45	1.40	3.55
12	6.14	8.34	10.50	13.07	15.26	17.31	19.14	20.41	22.05	23.41	1.36	3.51
13	6.10	8.30	10.46	13.03	15.22	17.27	19.10	20.37	22.01	23.37	1.33	3.47
14	6.06	8.26	10.42	12.60	15.18	17.23	19.06	20.34	21.57	23.33	1.29	3.43
15	6.02	8.22	10.38	12.56	15.15	17.19	19.02	20.30	21.54	23.30	1.25	3.39
16	5.58	8.18	10.34	12.52	15.11	17.15	18.58	20.26	21.50	23.26	1.21	3.35

नई दिल्ली की अगस्त दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.
17	5.55	8.14	10.30	12.48	15.07	17.11	18.54	20.22	21.46	23.22	1.17	3.31
18	5.51	8.10	10.26	12.44	15.03	17.07	18.50	20.18	21.42	23.18	1.13	3.27
19	5.47	8.06	10.22	12.40	14.59	17.03	18.46	20.14	21.38	23.14	1.09	3.23
20	5.43	8.03	10.18	12.36	14.55	16.59	18.42	20.10	21.34	23.10	1.05	3.19
21	5.40	7.59	10.14	12.32	14.51	16.55	18.38	20.06	21.30	23.06	1.01	3.15
22	5.36	7.55	10.10	12.28	14.47	16.51	18.34	20.02	21.26	23.02	0.57	3.11
23	5.32	7.51	10.06	12.24	14.43	16.47	18.30	19.58	21.22	22.58	0.53	3.07
24	5.28	7.47	10.03	12.20	14.39	16.43	18.26	19.54	21.18	22.54	0.49	3.03
25	5.24	7.43	9.59	12.16	14.35	16.39	18.22	19.50	21.14	22.50	0.45	2.59
26	5.20	7.39	9.55	12.12	14.31	16.35	18.18	19.46	21.10	22.46	0.42	2.55
27	5.16	7.35	9.51	12.09	14.28	16.32	18.15	19.43	21.07	22.43	0.38	2.51
28	5.12	7.31	9.47	12.05	14.24	16.28	18.11	19.39	21.03	22.39	0.34	2.47
29	5.08	7.27	9.43	12.01	14.20	16.24	18.07	19.35	20.59	22.35	0.30	2.43
30	5.04	7.23	9.39	11.57	14.16	16.20	18.03	19.31	20.55	22.31	0.26	2.39
31	4.60	7.19	9.35	11.53	14.12	16.16	17.59	19.27	20.51	22.27	0.22	2.35

नई दिल्ली की सितम्बर दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.
1	7.15	9.31	11.49	14.08	16.12	17.55	19.23	20.47	22.23	0.18	2.32	4.53
2	7.11	9.27	11.45	14.04	16.08	17.51	19.19	20.43	22.19	0.14	2.28	4.49
3	7.07	9.23	11.41	13.60	16.04	17.47	19.14	20.39	22.15	0.10	2.24	4.45
4	7.03	9.19	11.37	13.56	15.60	17.43	19.11	20.35	22.11	0.06	2.20	4.41
5	6.59	9.15	11.33	13.52	15.56	17.39	19.07	20.31	22.07	0.02	2.16	4.37
6	6.55	9.11	11.29	13.48	15.52	17.35	19.03	20.27	22.03	23.58	2.12	4.33
7	6.51	9.07	11.25	13.44	15.48	17.31	18.59	20.23	21.59	23.54	2.08	4.29
8	6.47	9.03	11.21	13.40	15.44	17.27	18.55	20.19	21.55	23.50	2.04	4.25
9	6.43	8.59	11.17	13.36	15.40	17.23	18.51	20.15	21.51	23.46	1.60	4.21
10	6.39	8.55	11.13	13.32	15.36	17.19	18.47	20.11	21.47	23.42	1.56	4.17
11	6.35	8.51	11.09	13.28	15.32	17.15	18.43	20.07	21.43	23.38	1.52	4.13
12	6.31	8.47	11.05	13.24	15.28	17.11	18.39	20.03	21.39	23.34	1.48	4.09
13	6.27	8.43	11.01	13.20	15.24	17.07	18.35	19.59	21.35	23.30	1.44	4.05
14	6.23	8.39	10.57	13.16	15.20	17.03	18.31	19.55	21.31	23.26	1.40	4.01
15	6.19	8.35	10.53	13.12	15.16	16.59	18.27	19.51	21.27	23.22	1.36	3.57
16	6.15	8.31	10.49	13.08	15.12	16.55	18.23	19.47	21.23	23.18	1.32	3.53

नई दिल्ली की सितम्बर दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.
17	6.11	8.27	10.45	13.04	15.08	16.51	18.19	19.43	21.19	23.14	1.28	3.49
18	6.07	8.23	10.41	12.60	15.04	16.47	18.15	19.39	21.15	23.10	1.24	3.45
19	6.03	8.19	10.37	12.56	14.60	16.43	18.11	19.35	21.11	23.06	1.20	3.41
20	5.59	8.15	10.33	12.52	14.56	16.39	18.07	19.31	21.07	23.02	1.16	3.37
21	5.55	8.11	10.29	12.48	14.52	16.35	18.03	19.27	21.03	22.58	1.12	3.33
22	5.51	8.07	10.25	12.44	14.48	16.31	17.59	19.23	20.59	22.54	1.08	3.29
23	5.47	8.03	10.21	12.40	14.44	16.27	17.55	19.19	20.55	22.50	1.04	3.25
24	5.43	7.59	10.17	12.36	14.40	16.23	17.51	19.15	20.51	22.46	0.60	3.21
25	5.39	7.55	10.13	12.32	14.36	16.19	17.47	19.11	20.47	22.42	0.56	3.17
26	5.35	7.51	10.09	12.28	14.32	16.15	17.43	19.07	20.43	22.38	0.52	3.13
27	5.31	7.47	10.05	12.24	14.28	16.11	17.39	19.03	20.39	22.34	0.48	3.09
28	5.27	7.43	10.01	12.20	14.24	16.07	17.35	18.59	20.35	22.30	0.44	3.05
29	5.23	7.39	9.57	12.16	14.20	16.03	17.31	18.55	20.31	22.26	0.40	3.01
30	5.19	7.35	9.54	12.13	14.17	15.60	17.28	18.52	20.28	22.23	0.37	2.58

नई दिल्ली की अक्तूबर दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.
1	7.31	9.50	12.09	14.13	15.56	17.24	18.48	20.24	22.19	0.33	2.54	5.12
2	7.27	9.46	12.05	14.09	15.52	17.20	18.44	20.20	22.15	0.29	2.50	5.08
3	7.24	9.43	12.01	14.05	15.48	17.16	18.40	20.16	22.11	0.25	2.46	5.04
4	7.20	9.39	11.57	14.01	15.44	17.12	18.36	20.12	22.07	0.21	2.42	4.60
5	7.16	9.35	11.53	13.57	15.40	17.08	18.32	20.08	22.03	0.17	2.38	4.56
6	7.12	9.31	11.49	13.53	15.36	17.04	18.28	20.04	21.59	0.13	2.34	4.52
7	7.08	9.27	11.45	13.49	15.32	16.60	18.24	19.60	21.55	0.09	2.30	4.48
8	7.04	9.23	11.41	13.45	15.28	16.56	18.20	19.56	21.51	0.05	2.26	4.44
9	6.60	9.19	11.37	13.41	15.24	16.52	18.16	19.52	21.47	24.01	2.22	4.40
10	6.56	9.15	11.33	13.37	15.20	16.48	18.12	19.48	21.43	23.57	2.18	4.36
11	6.52	9.11	11.29	13.33	15.16	16.44	18.08	19.44	21.39	23.53	2.14	4.32
12	6.48	9.07	11.25	13.29	15.12	16.40	18.04	19.40	21.35	23.49	2.10	4.28
13	6.44	9.03	11.21	13.25	15.08	16.36	17.60	19.36	21.31	23.45	2.06	4.24
14	6.40	8.59	11.17	13.21	15.04	16.32	17.56	19.32	21.27	23.41	2.02	4.20
15	6.36	8.55	11.13	13.17	14.60	16.28	17.52	19.28	21.23	23.37	1.58	4.16
16	6.32	8.51	11.09	13.13	14.56	16.24	17.48	19.24	21.19	23.33	1.54	4.12

नई दिल्ली की अक्तूबर दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.
17	6.28	8.47	11.05	13.09	14.52	16.20	17.44	19.20	21.15	23.29	1.50	4.08
18	6.24	8.43	11.01	13.05	14.48	16.16	17.40	19.16	21.11	23.25	1.46	4.04
19	6.20	8.39	10.57	13.01	14.44	16.12	17.36	19.12	21.07	23.21	1.42	3.60
20	6.16	8.35	10.53	12.57	14.40	16.08	17.32	19.08	21.03	23.17	1.38	3.56
21	6.12	8.31	10.49	12.53	14.36	16.04	17.28	19.04	20.59	23.13	1.34	3.52
22	6.08	8.27	10.45	12.49	14.32	15.60	17.24	18.60	20.55	23.09	1.30	3.48
23	6.04	8.23	10.41	12.45	14.28	15.56	17.20	18.56	20.51	23.05	1.26	3.44
24	5.60	8.19	10.37	12.41	14.24	15.52	17.16	18.52	20.47	23.01	1.22	3.40
25	5.57	8.16	10.34	12.38	14.21	15.49	17.13	18.49	20.44	22.58	1.18	3.37
26	5.53	8.12	10.30	12.34	14.17	15.45	17.09	18.45	20.40	22.54	1.14	3.33
27	5.49	8.08	10.26	12.30	14.13	15.41	17.05	18.41	20.36	22.50	1.10	3.29
28	5.45	8.04	10.22	12.26	14.09	15.37	17.01	18.37	20.32	22.46	1.07	3.25
29	5.41	7.60	10.18	12.22	14.05	15.33	16.57	18.33	20.28	22.42	1.03	3.21
30	5.37	7.56	10.14	12.18	14.01	15.29	16.53	18.29	20.24	22.38	0.59	3.17
31	5.34	7.52	10.10	12.13	13.57	15.25	16.49	18.25	20.20	22.34	0.55	3.13

नई दिल्ली की नवम्बर दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.
1	7.48	10.07	12.11	13.54	15.22	16.45	18.21	20.16	22.30	0.51	3.09	5.26
2	7.44	10.03	12.07	13.50	15.18	16.41	18.17	20.12	22.26	0.47	3.05	5.22
3	7.40	9.59	12.03	13.46	15.14	16.38	18.14	20.09	22.23	0.44	3.01	5.18
4	7.36	9.55	11.59	13.42	15.10	16.34	18.10	20.05	22.19	0.40	2.57	5.14
5	7.32	9.51	11.55	13.38	15.06	16.30	18.06	20.01	22.15	0.36	2.53	5.10
6	7.28	9.47	11.51	13.34	15.02	16.26	18.02	19.57	22.11	0.32	2.49	5.06
7	7.25	9.43	11.47	13.30	14.58	16.22	17.58	19.53	22.07	0.28	2.46	5.02
8	7.21	9.39	11.43	13.26	14.54	16.18	17.54	19.49	22.03	0.24	2.42	4.58
9	7.17	9.35	11.39	13.22	14.50	16.14	17.50	19.45	21.59	0.20	2.38	4.54
10	7.13	9.31	11.35	13.18	14.46	16.10	17.46	19.41	21.55	0.16	2.34	4.50
11	7.09	9.27	11.31	13.14	14.42	16.06	17.42	19.37	21.51	0.12	2.30	4.46
12	7.05	9.23	11.27	13.10	14.38	16.02	17.38	19.33	21.47	0.08	2.26	4.42
13	7.01	9.19	11.23	13.06	14.34	15.58	17.34	19.29	21.43	0.04	2.22	4.38
14	6.57	9.15	11.19	13.02	14.30	15.54	17.30	19.25	21.39	23.60	2.18	4.34
15	6.53	9.11	11.15	12.58	14.26	15.50	17.26	19.21	21.35	23.56	2.14	4.30
16	6.49	9.07	11.11	12.54	14.22	15.46	17.22	19.17	21.31	23.52	2.10	4.26

नई दिल्ली की नवम्बर दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	वृश्चिक घं. मि.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.
17	6.44	9.03	11.07	12.50	14.18	15.42	17.18	19.13	21.27	23.48	2.06	4.22
18	6.40	8.59	11.03	12.46	14.14	15.38	17.14	19.09	21.23	23.44	2.02	4.18
19	6.36	8.55	10.59	12.42	14.10	15.34	17.10	19.05	21.19	23.40	1.58	4.14
20	6.32	8.51	10.55	12.38	14.06	15.30	17.06	19.01	21.15	23.36	1.54	4.10
21	6.28	8.47	10.51	12.34	14.02	15.26	17.02	18.57	21.11	23.32	1.50	4.06
22	6.24	8.44	10.48	12.31	13.59	15.23	16.59	18.54	21.08	23.29	1.47	4.03
23	6.21	8.40	10.44	12.27	13.55	15.19	16.55	18.50	21.04	23.25	1.43	3.59
24	6.17	8.36	10.40	12.23	13.51	15.15	16.51	18.46	20.60	23.21	1.39	3.55
25	6.13	8.32	10.36	12.19	13.47	15.11	16.47	18.42	20.56	23.17	1.35	3.51
26	6.09	8.29	10.32	12.15	13.43	15.07	16.43	18.38	20.52	23.13	1.31	3.47
27	6.05	8.24	10.28	12.11	13.39	15.03	16.39	18.34	20.48	23.09	1.27	3.43
28	6.01	8.20	10.24	12.07	13.35	14.59	16.35	18.30	20.44	23.05	1.23	3.39
29	5.57	8.17	10.21	12.04	13.32	14.56	16.32	18.27	20.41	23.02	1.20	3.36
30	5.54	8.13	10.17	11:60	13.28	14.52	16.28	18.23	20.37	22.58	1.16	3.32

नई दिल्ली की दिसम्बर दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.
1	8.09	10.13	11.56	13.24	14.48	16.24	18.19	20.33	22.54	1.12	3.28	5.46
2	8.05	10.09	11.52	13.20	14.44	16.20	18.15	20.29	22.50	1.08	3.24	5.42
3	8.01	10.05	11.48	13.16	14.40	16.16	18.11	20.25	22.46	1.04	3.20	5.38
4	7.57	10.01	11.44	13.12	14.36	16.12	18.07	20.21	22.42	0.60	3.16	5.34
5	7.53	9.57	11.40	13.08	14.32	16.08	18.03	20.17	22.38	0.56	3.12	5.30
6	7.49	9.53	11.36	13.04	14.28	16.04	17.59	20.13	22.34	0.52	3.08	5.26
7	7.45	9.49	11.32	12.60	14.24	15.60	17.55	20.09	22.30	0.48	3.04	5.22
8	7.41	9.45	11.28	12.56	14.20	15.56	17.51	20.05	22.26	0.44	2.60	5.18
9	7.37	9.41	11.24	12.52	14.16	15.52	17.47	20.01	22.22	0.40	2.56	5.14
10	7.34	9.38	11.21	12.49	14.13	15.49	17.44	19.58	22.19	0.37	2.53	5.11
11	7.30	9.34	11.17	12.45	14.09	15.45	17.40	19.54	22.15	0.33	2.49	5.07
12	7.26	9.30	11.13	12.41	14.05	15.41	17.36	19.50	22.11	0.29	2.45	5.03
13	7.22	9.26	11.09	12.37	14.01	15.37	17.32	19.46	22.07	0.25	2.41	4.59
14	7.18	9.22	11.05	12.33	13.57	15.33	17.28	19.42	22.03	0.21	2.37	4.55
15	7.14	9.18	11.01	12.29	13.53	15.29	17.24	19.38	21.59	0.17	2.33	4.51
16	7.10	9.14	10.57	12.25	13.49	15.25	17.20	19.34	21.55	0.13	2.29	4.47

नई दिल्ली की दिसम्बर दैनिक लग्न-प्रवेश सारणी

ता.	धनु घं. मि.	मकर घं. मि.	कुम्भ घं. मि.	मीन घं. मि.	मेष घं. मि.	वृष घं. मि.	मिथुन घं. मि.	कर्क घं. मि.	सिंह घं. मि.	कन्या घं. मि.	तुला घं. मि.	वृश्चिक घं. मि.
17	7.06	9.10	10.53	12.22	13.45	15.21	17.16	19.30	21.51	0.09	2.25	4.43
18	7.02	9.06	10.50	12.18	13.41	15.17	17.12	19.26	21.47	0.05	2.21	4.39
19	6.57	9.02	10.46	12.14	13.37	15.13	17.08	19.22	21.43	24.01	2.17	4.35
20	6.54	8.58	10.42	12.10	13.33	15.09	17.04	19.18	21.39	23.57	2.13	4.31
21	6.50	8.54	10.38	12.06	13.29	15.05	16.60	19.14	21.35	23.53	2.10	4.27
22	6.46	8.50	10.34	12.02	13.25	15.01	16.56	19.11	21.31	23.50	2.06	4.23
23	6.42	8.46	10.30	11.58	13.21	14.57	16.52	19.07	21.27	23.46	2.02	4.19
24	6.38	8.43	10.26	11.54	13.17	14.53	16.49	19.03	21.24	23.42	1.58	4.15
25	6.34	8.39	10.22	11.50	13.13	14.49	16.45	18.59	21.20	23.38	1.54	4.11
26	6.31	8.35	10.18	11.46	13.10	14.45	16.41	18.55	21.16	23.34	1.50	4.07
27	6.27	8.31	10.14	11.42	13.06	14.42	16.37	18.51	21.12	23.30	1.46	4.04
28	6.23	8.27	10.10	11.38	13.02	14.38	16.33	18.47	21.08	23.26	1.42	3.60
29	6.19	8.23	10.06	11.34	12.58	14.34	16.29	18.43	21.04	23.22	1.38	3.56
30	6.15	8.19	10.02	11.30	12.54	14.30	16.25	18.39	21.00	23.18	1.34	3.52
31	6.11	8.15	9.58	11.25	12.50	14.26	16.21	18.35	20.56	23.14	1.30	3.48

संलग्नक - 4

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
अगरतला	-53	-48	-46	-47	-51	-56	-60	-65	-67	-66	-63	-57
अजमेर	+12	+14	+15	+14	+13	+11	+9	+6	+5	+6	+8	+10
अमृतसर	+6	+4	+2	+3	+5	+9	+12	+15	+16	+14	+13	+10
अम्बाला	+0	-3	-3	-3	-1	+1	+3	+4	+5	+5	+4	+2
अलवर	+3	+5	+6	+5	+4	+3	+1	0	-1	0	+1	+2
अलमोड़ा	-11	-13	-13	-13	-12	-10	-9	-8	-7	-7	-8	-10
अलीगढ़	-3	-2	-1	-2	-2	-3	-3	-5	-6	-5	-4	-4
अहमदाबाद	+22	+27	+30	+29	+24	+19	+14	+9	+5	+7	+12	+17
आगरा	-2	0	0	-1	-2	-3	-5	-6	-7	-6	-5	-4
आज़मगढ़	-22	-20	-18	-19	-22	-23	-26	-28	-30	-29	-27	-24
आरा	-27	-24	-24	-23	-26	-29	-32	-35	-36	-36	-33	-31
इम्फाल	-64	-61	-58	-59	-63	-66	-70	-74	-76	-75	-72	-68
इलाहाबाद	-16	-14	-12	-13	-15	-18	-21	-24	-25	-24	-22	-19
इटारसी	+3	+8	+12	+10	+6	-1	-7	-12	-16	-14	-9	-2
इटावा	-6	-4	-3	-4	-5	-7	-8	-10	-11	-12	-10	-8
इंदौर	+10	+15	+19	+17	+13	+6	0	-5	-9	-7	-2	+5
उज्जैन	+11	+15	+18	+16	+12	+7	+2	-3	-7	-5	0	+5
उदयपुर	+18	+21	+23	+22	+19	+15	+11	+7	+4	+6	+9	+14

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
उन्नाव	-11	-9	-8	-9	-10	-12	-14	-17	-18	-17	-15	-13
उरई	-7	-5	-3	-4	-6	-8	-11	-13	-15	-14	-12	-9
ईटा नगर	-5	-4	-3	-4	-3	-5	-7	-8	-9	-8	-7	-6
कटक	-29	-21	-17	-19	-25	-33	-40	-49	-52	-50	-45	-36
कटनी	-9	-5	-2	-4	-7	-12	-16	-21	-24	-22	-18	-13
कन्नौज	-9	-9	-7	-8	-9	-10	-12	-13	-14	-14	-12	-11
कटिहार	-38	-35	-34	-34	-37	-40	-44	-47	-48	-48	-45	-42
करनाल	0	-2	-2	-2	-1	+1	+2	+3	+4	+5	+4	+1
कांगड़ा	+1	-3	-5	-4	-1	+3	+6	+10	+12	+11	+8	+5
कांचीपुरम	+2	+15	+22	+19	+7	-7	-21	-35	-42	-39	-28	-14
कानपुर	-11	-9	-8	-9	-10	-12	-14	-17	-18	-17	-15	-13
काशी	-20	-18	-16	-17	-19	-23	-26	-29	-31	-30	-27	-23
कुरुक्षेत्र	+2	-3	-4	-4	-3	-1	+2	+5	+5	+5	+5	+4
कोटा	+9	+11	+13	+12	+10	+6	+3	0	-2	-1	+2	+6
कोलकाता	-40	-35	-31	-33	-37	-44	-50	-55	-59	-57	-52	-45
कोल्हापुर	+21	+31	+36	+33	+25	+14	+2	-7	-12	-10	-2	+10
कोहिमा	-65	-62	-61	-60	-63	-67	-70	-73	-75	-74	-71	-68

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
काटमांडू	-31	-29	-28	-28	-30	-32	-34	-35	-36	-35	-34	-32
गया	-28	-25	-40	-23	-27	-30	-34	-38	-40	-39	-36	-32
गैंगटोक	-45	-43	-42	-43	-45	-46	-46	-49	-49	-48	-47	-46
गाजियाबाद	-1	0	0	0	0	-1	-1	-1	-1	-1	-1	-1
गाज़ियाबाद	-22	-20	-18	-19	-21	-24	-28	-30	-33	-32	-29	-25
गांधीनगर	+23	+28	+30	+29	+25	+19	+14	+8	+5	+6	+11	+17
गुडगांव	+1	+1	+1	0	+1	0	+1	0	+1	+1	+1	0
गुवाहाटी	-56	-54	-52	-53	-55	-58	-60	-62	-64	-63	-61	-59
गुना	+3	+6	+8	+7	+4	0	-4	-8	-11	-9	-6	-1
गुरदासपुर	+5	+3	+2	+2	+3	+6	+9	+13	+15	+14	+11	+8
गौंडा	-18	-18	-16	-17	-18	-19	-21	-22	-23	-23	-21	-20
गोरखपुर	-24	-22	-21	-22	-23	-24	-26	-27	-28	-29	-27	-25
ग्वालियर	-2	0	+2	+1	-1	-3	-6	-8	-10	-9	-7	-4
गिरिडीह	-33	-30	-28	-29	-32	-36	-40	-44	-47	-45	-42	-37
चमोली	-10	-13	-13	-13	-11	-9	-7	-6	-5	-5	-6	-8
चंडीगढ़	0	-3	-3	-3	-1	+1	+3	+5	+6	+6	+4	+2
चंबा	+1	-4	-5	-4	-1	+3	+8	+12	+14	+13	+10	+5

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
चुरू	+8	+8	+9	+9	+10	+9	+8	+7	+6	+6	+7	+8
चैन्नई	-1	+12	+19	+16	+5	-10	-24	-36	-43	-40	-30	-15
छपरा	-27	-25	-24	-24	-27	-29	-33	-35	-36	-36	-34	-31
जबलपुर	-6	-2	+1	-1	-5	-10	-15	-20	-24	-22	-17	-12
जयपुर	+7	+8	+9	+8	+7	+6	+4	+2	+1	+2	+4	+5
जम्मू	+6	+1	0	+1	+4	+8	+13	+17	+19	+18	+15	+10
जमशेदपुर	-31	-25	-23	-24	-29	-35	-41	-46	-48	-47	-43	-37
जालंधर	+5	+2	+2	+2	+5	+7	+9	+11	+12	+12	+10	+8
जालौन	-7	-5	-3	-4	-6	-8	-11	-13	-15	-14	-12	-9
जींद	+4	+2	+3	+2	+3	+4	+4	+5	+5	+5	+5	+4
जैसलमेर	+27	+28	+29	+28	+27	+26	+24	+22	+21	+22	+24	+25
जोधपुर	+18	+20	+22	+21	+19	+17	+14	+12	+10	+11	+13	+16
जौनपुर	-19	-17	-15	-16	-18	-21	-25	-27	-29	-28	-25	-22
झांसी	-2	-0	+2	+1	-1	-5	-8	-11	-13	-12	-9	-5
झुंझुनू	+8	+8	+8	+8	+8	+7	+6	+6	+6	+6	+6	+7
तिरूपति	+2	+15	+22	+19	+8	-6	-19	-33	-39	-36	-26	-11
तिरूवनंतपुरम	+15	+32	+41	+37	+23	+5	-13	-30	39	-35	-22	-2

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
दतिया	-2	-0	+2	+1	-1	-4	-8	-10	-12	-11	-8	-5
दरभंगा	-33	-30	-30	-30	-32	-34	-37	-39	-39	-39	-38	-35
दिसपुर	-57	-53	-52	-52	-55	-58	-62	-65	-66	-66	-63	-60
देवरिया	-25	-23	-22	-23	-24	-26	-28	-31	-32	-31	-29	-27
देवास	+9	+13	+16	+14	+10	+5	0	-5	-9	-7	-2	+3
देहरादून	-5	-6	-7	-8	-6	-4	-2	-1	-0	-0	-1	-3
द्वारिका	+39	+45	+47	+46	+41	+38	+28	+21	+19	+20	+25	+32
धनबाद	-33	-28	-27	-28	-32	-36	-41	-45	-47	-46	-43	-37
धर्मशाला	+1	-3	-4	-5	-3	-1	+3	+6	+7	+8	+6	+3
धौलपुर	-1	+1	+2	+2	+0	-2	-4	-5	-6	-6	-5	-4
नागपुर	-2	+5	+8	+7	+1	-6	-14	-21	-25	-23	-16	-9
नासिक	+19	+26	+30	+29	+23	+16	+8	+2	-2	-1	-5	-13
नालंदा	-30	-26	-25	-25	-28	-32	-36	-39	-40	-40	-37	-34
नैनीताल	-9	-11	-10	-11	-10	-9	-9	-8	-8	-8	-8	-9
पंजिम	+23	+35	+41	+39	+28	+16	+4	-8	-13	-11	-2	+11
पटना	-29	-27	-25	-26	-28	-31	-35	-37	-39	-38	-35	-32
पटियाला	+2	-0	-1	+0	+1	+3	+5	+6	+7	+6	+5	+4

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
पानीपत	+0	-4	-5	-5	-4	-2	+1	+4	+5	+6	+4	+1
पाँडिचैरी	+2	+16	+23	+20	+8	-7	-22	-37	-44	-41	-30	-14.
पिथौरागढ़	-12	-14	-13	-14	-13	-12	-12	-11	-11	-11	-11	-12
पीलीभीत	-10	-10	-10	-10	-10	-10	-10	-10	-10	-10	-10	-10
पुरी	-28	-20	-16	-17	-24	-33	-41	-49	-53	-51	-45	-36
पुणे	+21	+30	+34	+32	+24	+15	+5	-3	-7	-5	+1	+11
पूर्णिया	-38	-36	-34	-35	-37	-40	-44	-46	-48	-47	-44	-41
पोर्ट ब्लेयर	-50	-36	-28	-31	-44	-59	-74	-89	-96	-93	-82	-65
प्रतापगढ़	-16	-14	-12	-13	-15	-18	-22	-24	-27	-25	-22	-19
फतेहपुर	-12	-10	-8	-9	-11	-14	-18	-20	-22	-21	-18	-15
फरूख़ाबाद	-8	-8	-7	-8	-8	-9	-11	-12	-12	-12	-11	-10
फरीदाबाद	-1	-1	-1	-1	-1	-1	-1	-1	-1	-1	-1	-12
फिरोज़पुर	+9	+6	+4	+6	+8	+10	+12	+14	+15	+16	+13	+11
फिरोज़ाबाद	-3	-3	-1	-2	-3	-4	-6	-7	-8	-8	-6	-5
बंगलौर	+11	+23	+29	+27	+16	+2	-13	-26	-34	-30	-18	-4
बदायूँ	-7	-6	-5	-6	-7	-8	-9	-10	-10	-10	-9	-8
बलिया	-25	-23	-21	-22	-24	-27	-31	-33	-35	-34	-31	-28

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
बरेली	-8	-8	-7	-7	-7	-9	-9	-9	-9	-9	-9	-8
बस्ती	-20	-18	-17	-18	-19	-21	-23	-26	-27	-26	-24	-22
बहराइच	-16	-16	-15	-16	-16	-17	-19	-20	-20	-20	-19	-18
बदरीनाथ	-12	-13	-14	-14	-13	-10	-8	-5	-4	-4	-7	-9
बांदा	-9	-7	-5	-6	-8	-12	-15	-18	-20	-19	-16	-12
बाड़मेर	+25	+28	+29	+28	+26	+24	+21	+18	+17	+18	+19	+22
बाराबंकी	-14	-13	-12	-13	-14	-15	-17	-19	-20	-19	-17	-16
बिलासपुर	-14	-9	-5	-7	-12	-18	-25	-31	-35	-33	-27	-21
बीकानेर	+16	+17	+18	+17	+16	+15	+14	+14	+13	+14	+15	+16
बुलंदशहर	-3	-4	-4	-4	-4	-4	-3	-2	-1	-1	-2	-3
बोकारो	-31	-27	-25	-26	-29	-34	-39	-43	-45	-44	-39	-36
बक्सर	-24	-22	-21	-21	-23	-26	-30	-32	-33	-33	-30	-28
भटिंडा	+8	+5	+5	+5	+7	+9	+11	+12	+13	+13	+12	+10
भरतपुर	+0	+0	+2	+1	-0	-1	-3	-4	-5	-5	-3	-2
भागलपुर	-37	-33	-32	-33	-36	-38	-42	-45	-46	-45	-43	-42
भावनगर	+25	+32	+34	+33	+28	+22	+14	+9	+6	+7	+12	+19
भुज (कच्छ)	+35	+40	+42	+40	+36	+31	+26	+21	+18	+19	+23	+29

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
भुवनेश्वर	-29	-21	-18	-20	-26	-33	-42	-48	-51	-50	-44	-36
भोपाल	+4	+8	+11	+9	+5	+0	-5	-10	-14	-12	-7	-2
भिवानी	+5	+4	+3	+4	+4	+5	+4	+5	+6	+5	+5	+4
मंडी	+2	+5	+7	+6	+4	-0	-4	-7	-9	-8	-5	-2
मथुरा	-1	-0	-0	-0	-1	-2	-3	-4	-4	-4	-3	-2
मधुबनी	-33	-31	-30	-30	-32	-34	-38	-40	-41	-41	-39	-36
मिर्ज़ापुर	-18	-16	-14	-15	-17	-21	-24	-27	-29	-28	-25	-21
मुजफ्फ़रनगर	-2	-4	-3	-4	-3	-2	-2	-1	-1	-1	-1	-2
मुजफ़रपुर	-31	-28	-28	-28	-30	-32	-35	-37	-38	-38	-36	-34
मुंगेर	-34	-31	-30	-30	-33	-36	-40	-43	-44	-44	-41	-38
मुम्बई	+25	+33	+38	+35	+28	+19	+10	+1	-4	-2	+7	+16
मुरादाबाद	-7	-8	-7	-8	-7	-7	-6	-6	-5	-5	-6	-6
मेरठ	-2	-4	-3	-4	-3	-2	-2	-1	-1	-1	-1	-2
मैनपुरी	-6	-6	-4	-5	-6	-8	-9	-10	-11	-11	-9	-8
रतलाम	+13	+17	+20	+18	+14	+9	+4	-1	-5	-3	+2	+7
रांची	-26	-23	-20	-22	-26	-32	-37	-40	-45	-43	-38	-32
रामपुर	-8	-9	-8	-9	-8	-8	-7	-7	-7	-7	-7	-7

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
रायपुर	-12	-5	-3	-4	-10	-16	-24	-31	-33	-32	-26	-19
रायबरेली	-14	-12	-11	-12	-13	-15	-17	-20	-21	-20	-18	-16
रीवा	-12	-9	-7	-8	-11	-15	-19	-23	-26	-24	-21	-16
रोपड़	+1	-2	-2	-2	-0	+3	+5	+7	+8	+8	+6	+4
रोहतक	+2	+1	+2	+1	+2	+2	+3	+3	+3	+3	+3	+3
लखनऊ	-14	-12	-11	-12	-13	-14	-16	-17	-18	-18	-17	--15
लुधियाना	+3	+1	+0	+1	+2	+5	+7	+9	+10	+11	+8	+6
बड़ोदरा	+22	+27	+30	+29	+24	+18	+11	+5	+2	+3	+8	+14
काशी	-20	-18	-16	-17	-19	-23	-26	-29	-31	-30	-27	-23
वृंदावन	-0	+0	+1	+0	-0	-1	-3	-4	-4	-4	-3	-2
शाहजहानपुर	-9	-9	-8	-9	-9	-10	-12	-13	-13	-13	-12	-11
शिमला	-2	-4	-6	-5	-3	+0	+2	+4	+6	+5	+3	+1
शिलांग	-56	-53	-48	-51	-53	-57	-61	-63	-64	-63	-61	-58
श्रीनगर	+5	-2	-3	-2	-+3	+8	+14	+20	+23	+22	+16	+11
श्रीगंगानगर	+12	+11	+10	+10	+11	+13	+14	+15	+16	+16	+14	+13
सवाईमाधौपुर	+5	+8	+8	+8	+6	+4	+1	-2	-3	-2	-1	+2
सहारनपुर	-2	-4	-4	-4	-3	-2	-0	+1	+2	+1	+0	+1

देश के प्रमुख नगरों की लग्न-प्रवेश परिवर्तन सारणी

नगर	मेष मिनट	वृष मिनट	मिथुन मिनट	कर्क मिनट	सिंह मिनट	कन्या मिनट	तुला मिनट	वृश्चिक मिनट	धनु मिनट	मकर मिनट	कुम्भ मिनट	मीन मिनट
सतना	-11	-8	-6	-7	-10	-14	-18	-22	-25	-23	-20	-15
सागर	-2	+2	+4	+3	-1	-5	-10	-14	-16	-15	-12	-7
सीतामढ़ी	-40	-38	-38	-38	-40	-41	-44	-46	-46	-47	-45	-43
सिवान	-27	-25	-23	-24	-26	-28	-31	-33	-35	-34	-32	-29
सीकर	+9	+10	+10	+10	+9	+8	+7	+6	+6	+6	+6	+7
शिहोर	+5	+9	+12	+10	+6	+1	-4	-9	-13	-11	-6	-1
सीतापुर	-12	-12	-11	-12	-12	-13	-15	-16	-16	-16	-15	-14
सुलतानपुर	-18	-16	-15	-16	-17	-19	-21	-24	-25	-24	22	-20
सूरत	+25	+31	+34	+33	+27	+20	+12	+7	+4	+5	+6	+18
हमीरपुर	-10	-8	-6	-7	-9	-11	-14	-16	-18	-17	-15	-12
हरदोई	-10	-10	-9	-10	-10	-11	-13	-14	-14	-14	-13	-12
हरिद्वार	-6	-7	-8	-7	-6	-4	-3	-2	-1	-1	-2	-4
हज़ारीबाग	-29	-25	-23	-23	-27	-31	-37	-41	-42	-42	-38	-34
हैदराबाद	+3	+12	+18	+15	+7	-4	-14	-24	-29	-27	-18	-7
होशियारपुर	+2	-1	-2	-2	+1	+4	+7	+10	+11	+11	+8	+5

लेखक परिचय

कर्नल अशोक कुमार गौड़—लखनऊ के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में कर्नल अशोक कुमार गौड़ का जन्म 9 मार्च, 1938 को हुआ। राष्ट्रीय रक्षा अकादमी तथा भारतीय मिलिट्री अकादमी से दीक्षित कर्नल गौड़ भारतीय सेना में मात्र 19 वर्ष की आयु में सम्मिलित हुए। 34 वर्षों की अबाध सेवा के उपरान्त कर्नल गौड़ ने भारतीय सेना से स्वेच्छा से निवृति ले ली।

धर्म और ईश्वर में आस्था तथा जीवन की शाश्वतता का पाठ उनकी माँ ने मानो उन्हें घुट्टी में ही पिला दिया था। इसलिये सेना के दुरूह अभियानों में भी, जहाँ कर्नल गौड़ सदैव आगे रहते थे, इसी आस्था और विश्वास ने उन्हें सबकी आँखों का तारा बना दिया। तभी उन्हें जीवन और मृत्यु की निरंतरता का ज्ञान हुआ।

उसी आस्था और विश्वास के साथ चरम सत्य की तलाश में कर्नल गौड़ श्री के. एन. राव के सम्पर्क में सन 1989 में भारतीय विद्या भवन में आए और तब से यहीं के होकर रह गये। श्री राव के बाद भारतीय विद्या भवन की ज्योतिष संस्थान के वरिष्ठतम सदस्य हैं कर्नल गौड़। भारतीय विद्या भवन के ज्योतिष संकाय में पिछले सत्रह वर्षों से पढ़ा रहे हैं। ज्योतिष और व्यवसाय तथा गोचर फल दर्पण जैसी अनूठी शोध परक पुस्तकों के रचयिता।

डा. उदय कान्त मिश्र :- 7 अक्टूबर, 1949 को जन्म। ज्योतिष शिक्षा : परिवार में 9 वर्ष की आयु से। इण्डियन काउंसिल ऑफ एस्ट्रोलोजिकल साईन्सेस, मद्रास, से ज्योतिष विशारद, भारतीय विद्या भवन, नयी दिल्ली से ज्योतिष आचार्य। सन 1995 से भारतीय विद्या भवन में ज्योतिष के अवैतनिक शिक्षक। हिंदी, उर्दू, बांग्ला, संस्कृत और अंग्रेजी सहित कई भाषाओं का ज्ञान। ज्योतिष शास्त्र की कई पुस्तकों का सुन्दर और सरस अनुवाद। कर्नल गौड़ के साथ Introduction to Astrology का लेखन। सन् 1976 की अखिल भारतीय इंजीनियरिंग सेवा में विभाग में प्रथम स्थान। तब से कई वरिष्ठ पदों पर कार्यरत। सिविल इंजीनियरी में पी.एचडी. की उपाधि। सम्प्रति दूर संचार विभाग के उपक्रम सी. डॉट. में महाप्रबन्धक के पद पर कार्यरत। अभिरुचि-योग, प्राणायाम आदि। आप आर्ट ऑफ लिविंग का प्रशिक्षण भी देते हैं।

ISBN 81-7948-047-X
9788179480472

एल्फा पब्लिकेशन

२६४०, रोशनपुरा, नई सड़क, दिल्ली-११०००६